चलते हुए दिखाई देते है। समुद्र मे लहरें उठती है जो किनारे से टकराकर लौट जाती हैं। रेल का एंजिन और मोटर तो ६० मील प्रति घंटे की रफ्तार मे चल सकते हैं और आधुनिक ढग के कुछ वायुयान तो ६०० मील प्रति घंटे की रफ्तार से उड सकते हैं। क्या इन सभी वस्तुओं को हम जीव कह सकते हैं? याद रक्खो अजीवो या निर्जीव वस्तुओं की गति बाहरी शक्ति का परिणाम होती है किन्तु जीवो की गति आत्मग होती है, जीवधारी अपनी इच्छानुसार जिधर चाहते हैं उधर चल-फिर सकते हैं और अपने अगो को इच्छानुसार हिला-डुला सकते हैं। निर्जीव वस्तुओं में अपनी गति पर किसी प्रकार नियंत्रण नही होता।

(७) उत्तेजनशीलता (Irritability)—जीवो में अच्छे तथा बुरे उद्दीपनो (stimuli) के प्रति चेष्टा करने की विशेष क्षमता होती है। इसे उत्तेजनशीलता कहते हैं। अधिक ठड पडने पर गिलहरी अपनी घनी पूँछ से अपने शरीर को ढक लेती है। चिडिया अपने परो (feathers) को खडा करके अपने शरीर को फुला लेती है और इस प्रकार ठड से अपने को बचाती हैं। छिपकली, मक्खी, मच्छर, मेढक इत्यादि जन्तु सर्दी से बचने के लिए छिप जाते हैं। इसी लिए शरद् ऋतु मे ये जन्तु नही दिखाई देते। पेड-पौधो में भी उत्तेजनशीलता होती है। तुमने देखा होगा छुईमुई की पत्तियाँ छूते ही बन्द होकर लटक जाती है। इस गुण की सहायता से जीव सरलता से अपनी रक्षा कर सकते हैं। अजीवो में इस प्रकार का कोई गुण नहीं मिलता।

(८) जनन (Reproduction)—सभी प्रकार के छोटे-बडे जीव पूरी तौर पर बढ जाने अर्थात् प्रौढ होने पर अपनी ही आकार तथा रूप-रग के जीव उत्पन्न करते हैं। निर्जीव पदार्थ ऐसा नही कर सकते। सजीव तथा निर्जीव में यही अकेला सबसे महान् अन्तर है।

(९) मृत्यु (Death)—सभी जीवो की मृत्यु अनिवार्य है। कोई भी जीव उत्पन्न होने के पश्चात्, धीरे धीरे बढता है, प्रौढ अवस्था में अपने समान अन्य जीवो को उत्पन्न करता है, आयु बढने के साथ साथ उसकी क्षय की शक्ति का ह्रास होने लगता है और उसकी कोशिकाएँ नये प्रोटोप्लाज्म या जीवद्रव्य का निर्माण नही कर पाती और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

जीव-विज्ञान के विभाग

जीवो का अध्ययन दो प्रमुख भागो में बाँटा जा सकता है —(१) प्राणि-विज्ञान (Zoology) तथा (२) वनस्पति-विज्ञान (Botany)। प्राणि-विज्ञान या जुओलोजी विभिन्न प्रकार के छोटे-बडे जन्तुओ के बाह्य आकार (external features) आन्तरिक रचना (internal structure)

तथा जीवन-क्रियाओ का अध्ययन है। ठीक इसी प्रकार पेड-पौधो की सरचना तथा उनके विभिन्न भागो के कार्य के अध्ययन को **वनस्पति-विज्ञान** या **बौटनी** कहते हैं।

जीवो के जितने लक्षण बताये गये हैं, वे सभी प्राणियो (animals) और पादपो (plants) में समान रूप से पाये जाते है। प्राणियो तथा पादपो के बीच भिन्नता की कोई अकाट्य रेखा खीचना सरल नही है। वास्तव में कुछ माइक्रास्कोपिक जीव ऐसे मिलते हैं जिन्हे न तो हम **प्राणि-सृष्टि** में और न वनस्पति-सृष्टि (plant kingdom) ही में रख सकते है। प्राणियो तथा पदापो में मिलनेवाले प्रमुख अन्तर निम्न प्रकार हैं —

पादप	प्राणी
(१) एककोशिकीय बैक्टीरिया और एलगी के अतिरिक्त अधिकतर पौधो में चलने की शक्ति नही होती।	(१) स्पन्ज, ओबेलिया, कोरल्स सी-एनीमोन के समान कुछ प्राणियो के अलावा अन्य सभी में चलन की क्षमता होती है।
(२) पादप-कोशिकाओ मे कोशिका-भित्तियाँ होती है।	(२) प्राणि-कोशिकाओ में भित्ति का अभाव होता है।
(३) पर्णहरिम या क्लोरोफिल की उपस्थिति के कारण अधिकाश पौधे प्रकाश-सश्लेपण (photosynthesis) द्वारा स्वय अपना भोजन बना सकते हैं। इस प्रकार अधिकाश पौधे आत्मपोषी या होलोफिटिक (holophytic) होते है।	(३) ये स्वय भोजन नही बना पाते जिससे ये पौधो द्वारा निर्मित भोजन पर निर्भर रहते हैं। सक्षेप में प्राणियो में होलोजोइक पोषण (holozoic nutrition) होता है।
(४) इनमे पर्णहरिम होता है।	(४) इनमें इसका अभाव होता है।
(५) प्राणियो की अपेक्षा इनमे कही कम कैटाबौलिक (katabolic) या अपचय क्रियाएँ होती हैं।	(५) इनमे अपचय क्रियाएँ अधिक होती है।
(६) उच्च श्रेणी की पादप कोशिकाओ में सेन्ट्रोसोम नही होता है।	(६) प्राणि-कोशिकाओ में सेन्ट्रोसोम होता है।
(७) पादपो मे कई प्रकार के कार्बोहाइड्रेट्स मिलते है।	(७) प्राणियो मे आमतौर पर ग्लाइकोजन (glycogen) ही मिलता है।
(८) इनमे तन्त्रिका तत्र (nervous system) और ग्राहक-अगो (receptor organs) का अभाव होता है।	(८) ये प्राय सभी प्राणियो में मिलते हैं।

एककोशिकीय (Unicellular) जन्तु होते हैं। मैटाजोआ में बहुकोशीय जन्तु होते हैं। मैटाजोआ सब-किंग्डम में कई फाइला होते हैं जैसे सीलनट्रेटा (Coelenterata), प्लैटीहैलमैन्थीज (Platyhelminthes) एनीलेडा (Annelida), मौलस्का (Mollusca), एकानोडर्मेटा (Echinodermata), कौर्डेटा (Chordata) इत्यादि।

फाइलम कौर्डेटा के अतिरिक्त अन्य सभी फाइला को इनवर्टिब्रेट्स (Invertebrates) कहते हैं। जिन कौर्डेट्स मे वरटिब्रल-कॉलम होता है उन्हे वरटिब्रेट्स (Vertebrates) कहते हैं। सक्षेप में प्राणियो का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है —

(१) सब-फाइलम **प्रोटोकौर्डेटा** (Protochordata)—इसमें वे सभी कौर्डेटा होते हैं जिनमे नोटोकौर्ड आजीवन मिलता है और इसके स्थान पर वरटिब्रल कॉलम या कशेरुक दड नही बनता। ऐम्फिऑक्सस (*Amphioxus*), बलानाग्लौसस (Balanoglossus) इत्यादि प्राणी इस सब-फाइलम के सुपरिचित प्राणी हैं।

(२) सब-फाइलम **वरटिब्रेटा** (Vertebrata)—इस विशाल समुदाय में ६५,७०० प्रकार के वे सभी जन्तु होते हैं जिनमें वरटिब्रल कॉलम आजीवन मिलता है। इस सब-फाइलम में निम्नलिखित क्लासेस (Classes) मिलते हैं —

(१) क्लास पिसीज (Pisces)—इसमें लगभग १४,००० प्रकार की छोटी बडी मछलियां मिलती हैं।

(२) क्लास एमफीबीया (Amphibia)—इसमें २००० प्रकार के जल-स्थलचारी वरटिब्रेट्स मिलते हैं। मेढक, टोड, सैलामेण्डर सुपरिचित प्राणी हैं।

(३) क्लास रेप्टीलिया (Reptilia)—इसमें ४००० प्रकार के जन्तु मिलते हैं। सांप, कछुआ, घडियाल, गिरगिट इत्यादि इस क्लास के सुपरिचित प्राणी हैं।

(४) क्लास एवीज (Aves)—इसमें १४,००० प्रकार के जन्तु मिलते हैं। शुतुरमुर्ग (ostrich), पैंग्युइन, चील, कौए इत्यादि चिडियां इसी क्लास के प्राणी हैं।

(५) क्लास मैमेलिया (Mammalia)—इस क्लास में लगभग ४००० प्रकार के स्तनधारी मिलते हैं। मनुष्य, हाथी, घोडा, खरगोश, ह्वेल इत्यादि इसी क्लास के प्राणी हैं।

इनवर्टिब्रेट (Invertebrate) प्राणियो में वरटिब्रल कॉलम नहीं

हिस्टौलोजी कहते हैं। इस प्रकार का अध्ययन केवल माइक्रास्कोप की सहायता से हो सकता है।

(४) **ऐम्ब्रिआलोजी** (Embryology)—इसमें अडे से लेकर वयस्क (adult) अवस्था तक के सभी परिवर्धन (development) का अध्ययन किया जा सकता है। परिवर्धन काल की सभी भ्रूणीय अवस्थाओ के अध्ययन को **भ्रूण-तत्त्व** (Embryology) कहते हैं।

(५) **पेलिओज़ूआलोजी** (Palaeozoology)—आमतौर पर लोगो को प्राय उन्ही जन्तुओ का ज्ञान होता है जो आधुनिक समय में मिलते हैं। किन्तु वैज्ञानिको ने अनेक ऐसे प्राणियो के फौसिल्स (fossils) पृथ्वी के गर्भ से ढूंढ निकाले हैं जो लाखो वर्ष पूर्व मिलते थे किन्तु अब नही मिलते। जन्तुओ के ऐसे फौसिल्स के अध्ययन को **पेलिओज़ूआलोजी** कहते हैं।

(६) **फाइलोजेनी** (phylogeny) **या जाति इतिहास**—जन्तुओ के विकास के पथ के अध्ययन को **फाइलोजेनी** कहते हैं।

(७) **जेनेटिक्स** (Genetics) **या आनुवशिकी**—माता-पिता से सन्तान में किस प्रकार गुण पहुँचते हैं, इसके अध्ययन को **आनुवशिकी** (Heredity) या **जेनेटिक्स** कहते हैं।

(ग) आचरण और व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली जन्तु-विज्ञान की शाखाएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) **फिजियालोजी** (Physiology)—इसका सम्बन्ध विभिन्न अगो, ऊतको तथा सेल्स के कार्य के अध्ययन से है।

(२) **जन्तु मनोविज्ञान** (Animal psychology)—इसका सम्बन्ध प्राणियो के व्यवहार या आचरण के अध्ययन से है।

प्राणि-सृष्टि
(Animal Kingdom)

ससार में लगभग ८,५०,००० प्रकार के जन्तु मिलते हैं। यदि हम अपना पूरा जीवन भी इन सभी प्राणियो के अध्ययन में व्यतीत करना चाहे तो भी इनका अध्ययन करना सभव नही है। इसीलिए समान सरचना तथा भ्रूणीय परिवर्धनवाले प्राणियो को अलग-अलग समूह में रखा जाता है। प्राणि-सृष्टि (animal kingdom) को दो **सब-किंग्डम** (Sub-kingdoms) में बाँटते है—**प्रोटोजोआ** तथा **मेटाजोआ**। **सब-किंग्डम प्रोटोजोआ** मे केवल एक फाइलम होता है जिसे प्रोटोजोआ ही कहते हैं। इस फाइलम में केवल

सबक्लास—एम्फीबिया
ऑर्डर—एन्यूरा
जीनस—राना
स्पेशीज—टिग्रीना

प्राणि-शास्त्र की उपयोगिता
(Utility of Zoology)

तुम मे से कुछ अवश्य यह सोच सकते हैं कि आखिर प्राणियो के अध्ययन से लाभ क्या है ? रोचक होने के साथ ही साथ इस विषय का हम सभी के स्वास्थ्य, भोजन, वस्त्र, कृषि, अनेक उपयोगी इन्डस्ट्रीज (industries) तथा मनोरजन से बहुत ही निकट सम्बन्ध है।

(१) कृषि (Agriculture)

जेनेटिक्स या आनुवशिकता (heredity) के क्षेत्र में काम करनेवाले वैज्ञानिको ने अपने अनवरत परिश्रम द्वारा अच्छी नस्ल के पालतू जानवर जैसे गाय, बैल, भैंस, घोडे, मुर्गी इत्यादि पैदा किये हैं और बराबर उनकी नस्ल सुधारने का प्रयोग कर रहे हैं। इसके अलावा अनेक प्रकार के कीट या इनसेक्टस (insects) हमारी फसलो, गोदाम में इकट्ठा अनाज, हमारे वस्त्र तथा सामान को काफी नुकसान पहुँचाते हैं और मनुष्य तथा उसके पालतू जानवरो में अनेक प्रकार के भयानक रोग उत्पन्न करते हैं। मच्छर तथा मक्खी की काली करतूतो से सभव है तुम परिचित हो। यदि तुम्हे अनेक प्रकार के हानिकारक जन्तुओ की रचना, स्वभाव तथा जीवन-चक्र का ज्ञान हो तो तुम उनके निदमन (control) के उपायो को काम में लाकर अपने स्वास्थ्य तथा अपनी चीजो की बचत कर सकते हो।

(२) स्वास्थ्य तथा रोग
(Health and Disease)

इस क्षेत्र मे जीव-विज्ञान की देन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। स्वस्थ रहने के लिए हम सभी को अच्छा भोजन, स्वस्थ व्यवसाय, रहने के लिए साफ-सुथरे मकान तथा शारीरिक और मानसिक थकावट दूर करने के लिए मनोरजन के स्वस्थ साधन चाहिए। हमे अपने शरीर का भी समुचित ज्ञान होना चाहिए तथा पास-पडोस मे मिलनेवाले सभी हानिकारक तथा उपयोगी जानवरो का भी आवश्यक ज्ञान होना चाहिए। रोग दूर करने तथा स्वस्थ बने रहने के लिए हमें डाक्टरो की सलाह की आवश्यकता पडती है। डाक्टर बनने के लिए हमें मनुष्य के

शरीर की रचना तथा फिजियालोजी का समुचित ज्ञान होना चाहिए। बालको की ठीक देख-रेख रखने के लिए माताओ को भी स्वास्थ्य-विज्ञान (hygiene) का उचित ज्ञान होना चाहिए।

(३) भोजन तथा व्यवसाय

पेड-पौधो के अतिरिक्त मनुष्य को अपने भोजन के लिए जन्तुओ पर भी निर्भर रहना पडता है। दूध, मक्खन, घी, पनीर, मास, मछली, अडे इत्यादि हमें जन्तुओ से ही मिलते हैं। देश की भौगोलिक स्थिति के अनुसार ही आमतौर पर मनुष्य का भोजन होना चाहिए। उदाहरण के लिए समुद्र के किनारे रहनेवाले लोगो के भोजन में मछली, केकडा, झीगा, सीपी, घोघा का प्रमुख स्थान होता है। यहाँ के रहनेवाले कुछ लोगो का मछली पकडना मुख्य व्यवसाय होता है। यदि मछली को मछली की आदतो तथा अभिजनन (breeding) इत्यादि का समुचित ज्ञान हो तो वे इस व्यवसाय में अधिक सफलता पा सकते हैं। इसी प्रकार मुर्गियो से अडे-बच्चे उत्पन्न करने मे भी जन्तु-विज्ञान से बहुत, सहायता मिलती है।

(४) जन्तु-विज्ञान तथा इन्टस्ट्री
(Zoology and Industry)

जन्तु-विज्ञान के उचित ज्ञान से लाभ उठाकर जापान में लोग मोतियो (pearls) के व्यवसाय के ध्येय से सवर्धन (culture) करते हैं और करोडो रुपये मूल्य के मोती-सीपियो में उत्पन्न करते हैं। ठीक इसी प्रकार ऊन (wool) के व्यवसाय में भी हमें जन्तु-विज्ञान के अध्ययन से सहायता मिलती है। जगलो का ठेका लेनेवाले लोगो के लिए कीडे-मकोडे से पेडो की रक्षा करने के लिए कीट-विज्ञान (Etomology) का समुचित ज्ञान होना चाहिए।

(५) मनोरजन (Recreation)

मछली पकडना, तितलियाँ इकट्ठा करना, चिडियो के अडे एकत्र करना, बाइनोकुलर्स (binoculars) की सहायता से चिडियो को उनके प्राकृतवास मे देखना तथा उनकी आदतो (habits) का अध्ययन करना, मलस्कस की शेल्स (shells) इकट्ठा करना इत्यादि सुन्दर मनोरजन के साधन हैं। यदि जन्तु-विज्ञान का ज्ञान हो तो मनोरजन के इन साधनो म और अधिक मजा आये।

प्राणियो की सामान्य रचना

प्राणियो के शरीर के परिमाण में काफी अन्तर होता है। इसी प्रकार आकार में भी बहुत अन्तर होता है। अधिकाश प्राणियो में शरीर का आकार समितीय (regular) और निश्चित होता है। अपवाद के रूप में अमीबा ही ऐसा प्राणी है जिसका कोई भी निश्चित आकार नही होता। अधिकाश

प्राणियो का आकार गोल, अडाकार, लम्बा तथा चपटा या रंभाकार (cylindrical) होता है। अनिश्चित आकार के प्राणियो को असमितीय (asymmetrical) कहते हैं। निश्चित आकार के प्राणियो में प्राय दो प्रकार की समिति (symmetry) मिलती है—रेडियल तथा बाइलेट्रल (bilateral)।

रेडियल सिमिट्री में प्राणियो का शरीर खडे या वर्टीकल प्लेन्स द्वारा बीचोबीच से अनेक समान भागो मे बाँटा जा सकता है। हाइड्रा के समान प्राणियो में इसी प्रकार की समिति या सिमिट्री मिलती है। इसके विपरीत बाइलेट्रल सिमिट्री में केवल एक ही वर्टीकल प्लेन होता है जो कि शरीर के बीचोबीच में लम्बी अक्ष के समान्तर फैला होता है और शरीर को दो समान अर्धांशो में बाँट सकता है। मेढक, केचुआ, खरगोश, मछली, मनुष्य इत्यादि प्राणियो में इसी प्रकार की समिति मिलती है।

चित्र २—रेडियल सिमिट्री

पृष्ठ
अग्र
पश्च
फ्रोन्टल प्लेन
सेजाइटल प्लेन
ट्रान्सवर्स प्लेन
प्रतिपृष्ठ
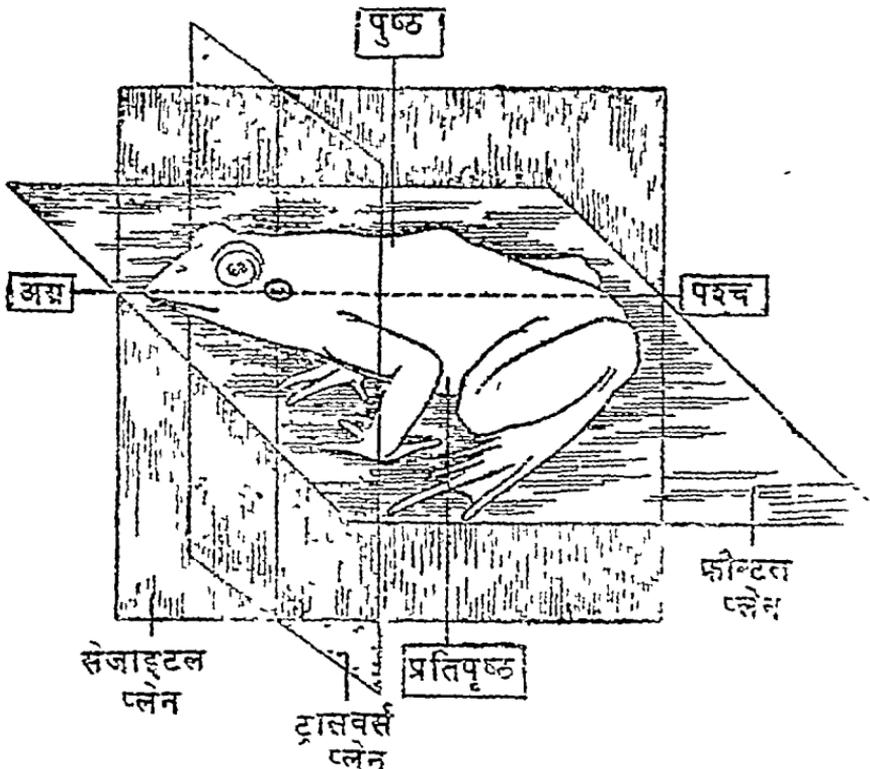
चित्र ३—मेढक मे बाइलेट्रल सिमिट्री

प्राणियो के शरीर का वह भाग जो कि सिर या मुखद्वार के निकट होता है, **अग्र** या **एन्टीरियर** (Anterior) सिरा कहलाता है। गुदा या अवस्कर द्वार (cloacal aperture) के निकट स्थित भाग **पश्च** या **पोस्टीरियर** सिरा (posterior end) कहलाता है। गुदा के पीछे शरीर की अक्ष का जितना भाग होता है, उसे पूंछ (tail) कहते हैं। बाइलेट्रली सिमिट्रीकल प्राणियो के शरीर का वह भाग जो कि विश्राम या चलते समय भूमि के निकट होता है **प्रतिपृष्ठ** या **वेन्ट्रल** सतह कहलाता है। विपरीत सतह को **पृष्ठ** या **डोरसल** साइड कहते हैं।

प्रश्न

१—जीवधारियो के प्रमुख लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

२—प्राणि-सृष्टि के वर्गीकरण की रूपरेखा समझाओ।

३—प्राणिशास्त्र के अध्ययन की उपयोगिता विस्तारपूर्वक समझाओ।

४—द्विनाम-पद्धति को उदाहरण-सहित समझाओ।

आमतौर पर हम जन्तु-विज्ञान या जूआलोजी का अध्ययन मेढक से ही आरभ करते हैं। ऐसा करने के कई कारण हैं। यदि आप मेंढक की रचना तथा इसके समस्त जीवन-क्रम को भली भाँति समझ ले तो किसी भी अन्य जन्तु तथा मनुष्य के शरीर की रचना का ज्ञान सरलतापूर्वक हो सकता है। अन्य जन्तुओ की अपेक्षा मेढक आसानी से प्रदेश के सभी भागो में मिल जाता है। इसके अडे-बच्चे भी आसानी से मिल जाते हैं जिससे परिवर्धन (development) की सभी अवस्थाओ का भी अध्ययन आसानी से किया जा सकता है। साथ ही साथ ये बहुत बडे नही होते जिससे प्रयोगशाला में इनके अगो का विच्छेदन (dissection) भी सुविधाजनक होता है। साथ ही साथ ये साफ सुथरे होते हैं और जीवित अवस्था में छूने पर ये किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाते।

प्राणि-सृष्टि में मेढक की स्थिति

मेंढक और टोड (toad) वरटिब्रेटा (vertebrata) समुदाय के प्राणी है। वरटिब्रेटा के सभी प्राणियो में रीढ की हड्डी **या वरटिब्रल कालम** होता है। इस समुदाय मे **मत्स्य** (fishes), **एमफीबिया** (Amphibia), **रेप्टीलिया** (Reptilia), **एवीज** (Aves) और **मैमेलिया** (Mammalia) होते है।

एम्फीबिया क्लास (class) के अनेक जन्तु सदा पानी में ही रहते हैं लेकिन कुछ जल और स्थल दोनो ही **स्थानो** मे रह सकते है इसलिए इन्हे **जल-स्थलचर** (amphibious) कहते हैं इनकी त्वचा स्केलरहित, नम, लसलसी और ग्रन्थिल (glandular) होती है। नगी और नम त्वचा द्वारा ये साँस ले सकते हैं। इस क्लास के सभी प्राणियो में अगली और पिछली टाँगो में आमतौर पर पाँच अँगुलियाँ होती हैं। ये असमतापी (poikilothermal) होते हैं अर्थात् इनके शरीर का ताप वातावरण के ताप के अनुसार घटा-बढा करता है। इस क्लास के अधिकाश प्राणी अडज (oviparous) होते है, अर्थात् अडे देते है। इन अडो का बाह्य-निषेचन (external fertilisation) होता है। एम्फीबिया क्लास के कुछ

जन्तुओं में अंडों से लार्वा या टैडपोल (tadpole) उत्पन्न होते हैं जो पानी में रहते हैं और गिल्स या जल-श्वसनिकाओं से सांस लेते हैं। कुछ प्राणी आजीवन गिल्स से सांस लेते हैं। वयस्क (adult) अवस्था में अधिकतर एम्फीबिया में फेफड़ों द्वारा श्वसन होता है।

भारतीय मेंढक—राना टिग्रीना (*Rana tigrina*)

संसार में मेंढक की लगभग १००० स्पेशीज मिलती हैं। साधारण भारतीय मेंढक राना टिग्रीना (*Rana tigrina*) कहलाता है। उष्णकटिबन्ध
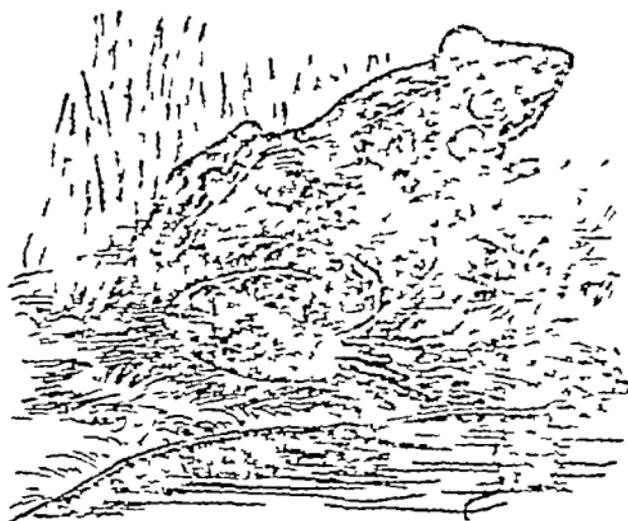
चित्र ५—भारतीय मेंढक राना टिग्रीना का प्राकृतवास

में ये बड़ी संख्या में मिलते हैं लेकिन जैसे-जैसे विषुवत्-रेखा के उत्तर या दक्षिण में सर्दी बढ़ने के कारण इनकी संख्या उत्तरोत्तर घटती जाती है।

प्राकृतवास (Habitat)—अन्य जातियों या स्पेशीज की तरह भारतीय मेंढक, राना टिग्रीना भी तालाबों, पोखरों, नदियों के स्थिर पानी या इनके पास-पड़ोस में मिलता है। वर्षा ऋतु में जब जगह-जगह पानी भर जाता है तो यह इधर-उधर कूदता हुआ दिखाई देता है। जलाशयों में या उनके पास-पड़ोस में ही रहना यह क्यों पसन्द करता है? त्वचीय श्वसन (cutaneous respiration) के लिए इनकी त्वचा का नम बनी रहना आवश्यक होता है। त्वचा के सूखते ही इस प्रकार की श्वसन-क्रिया बन्द हो जाती है जिससे वह मर जाता है। इसी लिए मेंढक का तालाब, पोखर तथा नदी-नालों के पास रहना आवश्यक है जिससे कभी-कभी वह पानी में डुबकी लगाकर अपनी त्वचा को बराबर गीली बनाये रख सके। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का निवास-स्थान अनेक शत्रुओं से भी इनको रक्षा करने में सहायता देता है।

प्रकार की आहट होने पर ये तुरन्त तालाब के पानी मे कूदकर शत्रु की पकड के बाहर हो जाते हैं। ये छोटे-मोटे कीडे-मकोडे, घोघे, केचुए इत्यादि खाते हैं। तालाब के पास-पडोस में इस प्रकार के भोजन की कमी नही होती। मैथुन तथा अडरोपण (ovıposıtıon) के लिए तो इनका वासस्थान बहुत उपयुक्त है।

भोजन (Food)—सूँघने तथा स्वाद लेने की शक्ति मेढक में अल्प-विकसित या अविकसित होती है जिससे यह सडे-गले कीडे-मकोडो को निगलने में भी नही हिचकता। आमतौर पर यह चलते-फिरते या उडते हुए जन्तुओ का ही शिकार करता है। शिकार करने मे इसकी अनोखी जीभ सहायता देती है। इसका अगला सिरा निचले जबडे के अगले सिरे से जुडा रहता है लेकिन पिछला भाग स्वतंत्र तथा द्विशाख (bıfurcated) होता है। यह लसलसी होती है। मेढक शिकार की टोह में चुपचाप बैठा रहता है और शिकार देखते ही यह जीभ को तेजी से बाहर निकालता है और शिकार को लपेट में लिये

चित्र ६—जीभ द्वारा भोजन की पकड

हुए तुरन्त खीच लेता है। छोटे-मोटे कीडे लसलसी जीभ मे चिपकते ही वेबस हो जाते हैं। मुंह बद होने पर वह किसी पकार बाहर नही निकल पाते। जब कभी मेढक किसी बडे जन्तु जैसे टैडपोल, केचुआ इत्यादि को पकडता है तो अपनी-अगली टाँगो की सहायता से उसे मुंह में ठेलना पडता है।
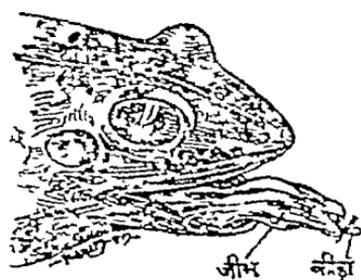
चिडियो तथा स्तनधारी जन्तुओ की तरह मेढक मुँह से पानी नही पीता, आवश्यकतानुसार यह पानी अपनी त्वचा द्वारा सोख लेता है। त्वचा और पेशियो के बीच सबक्यूटेनियस साइन्यूसेज (subcutaneous sınuses) होते हैं जिनमें एक प्रकार का द्रव या लिम्फ भरा रहता है। इसी मे सोखा हुआ पानी मिल जाता है।

मेढक के शत्रु (Enemıes)—दूसरे प्राणियो की तरह मेढक में शत्रुओ मे अपनी रक्षा करने के लिए सीग, दाँत, नाखून इत्यादि नही होते जिससे इसके अनेक शत्रु जैसे साँप, नेवले, चील, कौआ, बगुले, मछलियां इत्यादि इसे आसानी से पकड लेते हैं। मनुष्य भी इनका शत्रु है। लाखो मेढक प्रतिवर्ष जीव-विज्ञान की प्रयोगशालाओ मे मारे जाते हैं। कुछ देशो में लोग इनकी पिछली टाँगो के मास को वडे चाव से खाते है। थोडी बहुत सख्या में वडे-

मेढक अपने छोटे भाई-बन्धुओ को खा जाते हैं। टेडपोल्स (tadpoles) की मृत्यु तो और भी अधिक होती है। इन्हे मुर्गाबी, कौडिल्ला, मछलियाँ आदि खाती हैं।

यद्यपि मेढक छोटा और असहाय जन्तु है फिर भी शत्रु के चगुल में फँस जाने पर यह निकल भागने का प्रयत्न करता है। सिर के पकड में आ जाने पर यह अपनी शक्तिशाली पिछली टाँगो को सहसा झटके के साथ फैलाता है और शरीर को फुलाता तथा पिचकाता जाता है जिससे ढील पाते ही वह निकल भागता है। मूत्र-त्याग का प्रयोग भी शत्रु से छुटकारा पाने का अच्छा साधन है। यदि तालाब के पास पडोस में इसे शत्रु की आहट मिलती है तो यह डुबकी लगाकर भाग जाता है। शत्रु को देखकर यह कूदने के बजाय निश्चल हो जाता है। इस प्रकार चुपचाप बैठ जाने से इसके शत्रु को इसका पता नही चलता।

पास-पडोस के रग के अनुसार अपनी खाल या त्वचा का रग बदलते रहने की अनोखी शक्ति भी इसकी रक्षा का सफल साधन है। इसे रक्षक-रग-परिवर्तन (protective colouration) कहते हैं। इसकी पृष्ठ (ऊपरी) सतह का रग हरा और धब्बेदार होता है जब कभी यह हरी घास में बैठा होता है, इसकी त्वचा का गहरा हरा रग हो जाता है जिससे यह आसानी से नहीं दिखाई पडता। नालियो या अन्य अँधेरे स्थानो में रहने पर इसका रग काला हो जाता है। इस प्रकार पास-पडोस के रग में घुल-मिल जाने से इसके शत्रु इसे आसानी से नही देख पाते।
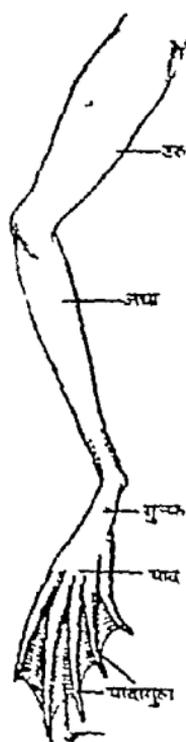
चित्र ७—मेढक की पिछली टाँग

चलन (Locomotion)—मेढक एक स्थान से दूसरे स्थान में उछाल मारकर (leaping) या तैरकर (swimming) जा सकता है। इन दोनो प्रकार के चलन में इसकी पिछली टाँगें ही विशेषरूप से सहायक होती हैं। बैठने पर पिछली टाँगें अँगरेजी के अक्षर Z के समान दोहरी होती है जिससे ये स्प्रिंग (spring) का काम करती हैं। एकाएक झटके के साथ भूमि को ठेलने पर इसका शरीर उछल जाता है। भूमि पर गिरते समय अगली टाँग शरीर को रोकने में सहायता देती हैं।

पानी में तैरते समय पिछली टाँगो को झटके से पीछे फेंकने पर अँगुलियाँ फैल जाती हैं और

का जाल (web) फैलकर एक सुन्दर पतवार का काम देता है। जालदार (webbed) पिछली टाँगो को शीघ्रता से फैलाने पर पानी के दवाव से शरीर आगे वढ जाता है। टाँगो को सिकोडकर मेढक उन्हे फिर से तेजी के साथ फैलाता है जिससे शरीर और आगे वढ जाता है। इस क्रम को वार-वार दोहराने से मेढक तेजी से पानी मे तैरता है।

मेढक में पूँछ का अभाव वास्तव मे असमजस में डाल देता है क्योकि पानी के अन्य जन्तुओ जैसे मछली, घडियाल, मगर, न्यूट्स (Newts) इत्यादि मे तैरने मे शक्तिशाली पूँछ विशेषरूप से सहायता देती है। पूंछ के अभाव को पूरा करने के लिए ही मेढक की पिछली टाँगें लम्वी, शक्तिशाली और जालदार हो जाती हैं। यदि मेढक में पूँछ होती तो वास्तव मे कूदने में वडी वाधक होती। चलन में मेढक की अगली टाँगो का उपयोग केवल इतना ही है कि वह उसके शरीर को इच्छित दिशा मे मोडकर उस दिशा मे कूदने में सहायता देती हैं।

चित्र ८—उतराते समय मेढक के नेत्र तथा नासा-छिद्र पानी की सतह के ऊपर रहते हैं।

तालाव के अधिक गहरे होने पर मेढक अपने फेफडो को फुलाकर, साँस लेने के लिए जल की सतह के ऊपर उठाये हुए अपना अधिक समय उतराते हुए विताते हैं। उतराते समय इसका शरीर निष्क्रिय रहता हैं, यह अपनी टाँगो को आधा या पूरा फैलाये हुए सधा रहता है। उतराते समय ये वडे चौकन्ने रहते हैं, किसी प्रकार की आहट मिलते ही ये तुरन्त गोता लगाकर ओझल हो जाते हैं।

चित्र ९—नर और मादा मेढक में अन्तर

मेढक की टर्र-टॉं टर्र-टॉं (Croaking)—वर्षा ऋतु में विशेषरूप से सध्या के समय इनकी टर्र-टॉं टर्र-टॉं की आवाज सुनाई देती है। नर की आवाज मादा की अपेक्षा अधिक तेज होती है।
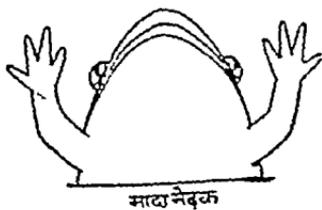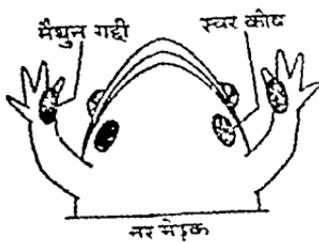
क्योंकि नर की आवाज को तेज करने के लिए राना टिग्रीना में दो वोकल सैक या स्वर-कोष्ठ होते हैं। इन दोनों थैलियों की त्वचा काली तथा झुर्रीदार होती है और ये सिर के निचले भाग में गले के इधर-उधर स्थित होती है। मेढक के स्वर-यन्त्र या लैरिक्स (larynx) में दो स्वर-रज्जु या वोकल कौर्ड होते हैं। जब हवा मुख-गुहा से फेफडो में या फेफडो से मुखगुहा में आती-जाती है तो स्वररज्जु हिलते हैं जिससे टर्र-टॉं टर्र-टॉं की आवाज उत्पन्न
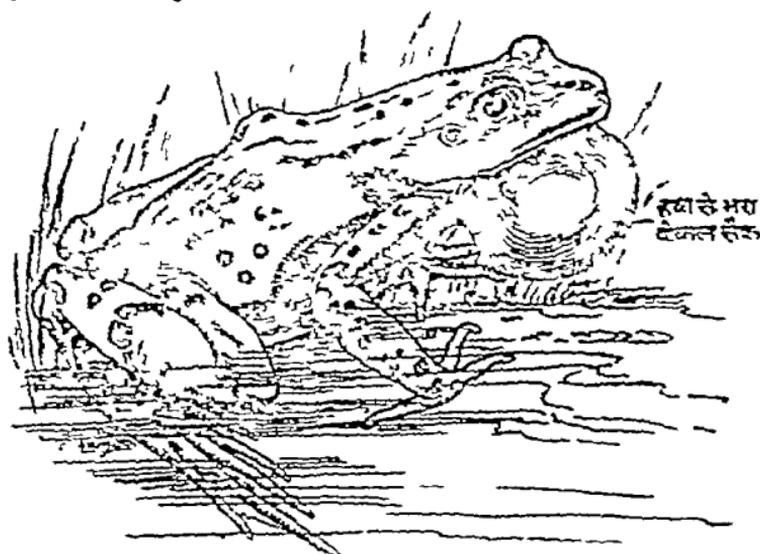
चित्र १०—नर मेढक वोकल सैक की सहायता से टर्र-टॉं करता है

होती है। फूले हुए स्वर-कोष्ठो में गूंजने से यह आवाज नर मेढको में बहुत तेज हो जाती है। ट्री-फॉग (tree frogs) में टर्र-टॉं करते समय वोकल सैक हवा भरने से इतना फूल जाता है कि वह उसके सिर से भी बडा दिखाई देता है।

शीत-निष्क्रियता या हाइबर्नेशन (Hibernation)—मेढक एक असमतापी (poikilothermal) जन्तु है जिससे उसके शरीर का तापक्रम चारो के वायुमडल के ताप के अनुसार घटता-बढता रहता है। शीत या जाडे की अधिकता में इनके शरीर का ताप घट जाता है जिससे वे निष्क्रिय (inactive) हो जाते हैं। इनकी इस अवस्था को शीत-निष्क्रियता कहते हैं। खुले स्थानो में ऐसी दशा में रहना उनके लिए घातक होता है। इसलिए ये शीत ऋतु के आरभ होते ही, तालाबो की तह की मिट्टी में घुस जाते हैं और वहीं निष्क्रिय अवस्था मे पडे रहते हैं। ऐसी दशा में इनकी सभी जीवन-क्रियाएँ मद पड जाती हैं। मुंह और नाक के छेदो के बन्द होने से ये केवल अपनी नम त्वचा द्वारा साँस ले सकते हैं। इनके हृदय की धडकन भी बहुत धीमी होती है। भोजन करने का प्रश्न

ही नही उठता। जिगर या यकृत में एकत्र भोजन के सहारे ही इसकी जीवन-क्रियाएँ होती हैं।

शीतकाल में अन्त मे जब गर्मी पडने लगती है तो ये फिर सक्रिय हो जाते हैं और मिट्टी के बाहर निकलकर फिर से कीडे-मकोडो की खोज में उछल-कूद करने लगते हैं।

ग्रीष्म निष्क्रियता (Aestivation)—मई-जून के महीनो में जब हमारे प्रदेश के मैदानो में लू चलने लगती है तथा गर्मी अपनी पराकाष्ठा पर होती है तो मेढक फिर नदी, नालो और तालावो की नम मिट्टी में घुस जाता है। और गर्मी से अपनी त्वचा को सूखने से बचाने के लिए छिपा रहता है। इस निष्क्रिय व्यवस्था को **इस्टीवेशन** (aestivation) कहते है। वर्षा ऋतु में जब जगह-जगह पानी भरा रहता है और हवा नम होती है, कीडे-मकोडो की कमी नही रहती तो इसका जीवन सबसे अधिक सुखद होता है।

प्रश्न

१—जन्तु-विज्ञान के अध्ययन का आरम्भ मेढक से करने मे क्या सुविधा है?

२—सामान्य भारतीय मेढक, **राना टिग्रीना** के रहन-सहन का वर्णन करो।

३—(क) मेढक अधिकतर जलाशय में या उसके निकट क्यो मिलते हैं?

(ख) मेढक की अगली टाँगो की अपेक्षा पिछली टाँगें क्यो अधिक लम्बी होती हैं?

(ग) शत्रुओ से मेढक किस प्रकार अपनी रक्षा करते हैं?

४—मेढक को असमतापी क्यो कहते हैं? इससे इसे क्या असुविधा होती है?

५—मेढक की वाह्य आकृति का वर्णन करो। इसकी वाह्य-आकृति मे कौन-कौन-सी ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनके फलस्वरूप यह जल तथा स्थल दोनो स्थानो में सफलतापूर्वक रह सकता है?

६—निम्न विषयो पर सक्षेप मे टिप्पणियाँ लिखो —

हाइबर्नेशन रक्षार्थ-रग साम्य, टरटराना (croaking), मेढक की जिह्वा, त्वचीय श्वसन।

७—जननकाल में मेढक जलाशय में क्यो इकट्ठा होने लगते हैं? जल में अडरोपण से क्या लाभ हैं?

अध्याय २

बाह्य-आकृति

केवल मध्य-पृष्ठ रेखा पर काटने से ही मेढक का शरीर दो सामान भागो में बाँटा जा सकता है। शरीर की इस विशेषता को **द्विपार्श्व-सम्मिति** या **वाइलेट्रल-सिमिट्री** (bilateral symmetry) कहते हैं। अन्य सभी वरटिब्रेट्स में भी यही विशेषता मिलती है।

मेढक के शरीर की ऊपरी सतह को **पृष्ठ-सतह** या **डौरसल साइड** (dorsal side) कहते हैं। शरीर की जो सतह भूमि की ओर रहती है उसे **प्रतिपृष्ठ** या **वेन्ट्रल साइड** (ventral side) कहते हैं। शरीर के अगले सिरे को **अग्र** या **ऐन्टीरियर** और पिछले को **पश्च** या **पोस्टीरियर** (posterior) सिरा कहते हैं। शरीर के दोनो किनारो को **पार्श्व** या **लेट्रल साइड** कहते हैं। मेढक का शरीर नौकाकार (boat-shaped) होता है अर्थात् अग्र सिरा थोडा नुकीला और बीच का भाग चौडा होता है। शरीर का यह **धारा-रेखी** (streamlined) आकार इनके जलीय-जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण अनुकूलन (adaptation) है।

चित्र ११—मेढक की बाह्य आकृति

मेढक का शरीर दो प्रमुख भागो में बाँटा जा सकता है—(१) **सिर** और (२) **धड** (trunk)। मेढक में गर्दन और पूंछ का अभाव होता है। मेढक में गर्दन का अभाव शरीर को प्रवाहरोधी वना देता है जिससे उसे पानी में तैरने में वडी सुविधा होती है।

सिर (Head)

मेढक का सिर तिकोना (triangular) तथा पृष्ठ-प्रतिपृष्ठ या डौर्सो-वेन्ट्रल प्लेन (dorso-ventral plane) में चपटा होता है। सिर के अगले नुकीले भाग को **तुड** (snout) कहते हैं। मेढक में न तो गाल

होते हैं और न होठ। गालो (cheeks) के अभाव से इसका विशाल **मुख** (mouth) एक कान से दूसरे कान तक फैला होता है। विशाल मुख होने से मेढक की अनोखी लसलसी जीभ शिकार पकडने के लिए वडी तेजी मे वाहर निकल सकती है और शिकार को लपेट में लिये आसानी से लौट जाती है। मुख के वद होने पर दोनो जवडे इस प्रकार सटकर मिल जाते है कि वायु केवल **नासा-छिद्रों** (nares) द्वारा ही मुख-गुहा मे घुस सकती है। दोनो वाल्-व्युलर (valvular) **वाह्य नासा-छिद्र** (external nares) तुंड के सिरे के समीप ऊपरी सतह पर स्थित होते है।

गर्दन के होने पर हम सिर घुमाकर इच्छित दिशा में देख सकते हैं। मेढक मे गर्दन के न होने पर इस प्रकार की सुविधा नही होती किन्तु इसकी कमी वडे ही अनोखे ढग से उसके वडे-वडे नेत्रो द्वारा पूरी की जाती है जो सिर के दोनो ओर (पार्श्व मे) उभरे हुए स्थित होते हैं। नेत्रो के वडे उभरे हुए और सिर के पार्श्व (lateral) भागो में स्थित होने से रक्षाविहीन तथा डरपोक मेढक लगभग सभी दिशाओ में विना सिर घुमाये देख सकता है। इस प्रकार वह सदैव सजग और चौकन्ना रहता है। मेढक के नेत्र में **ऊपरी पलक** (upper lid) मोटी और अचल होती है किन्तु **निचली पलक** छोटी और थोडी-वहुत गतिशील होती है। तीसरी पलक जिसे **निक्टिटेटिंग झिल्ली** (nictitating membrane) कहते हैं पतली और पारदर्श होती है और निचली पलक से जुडी रहती है। आवश्यकतानुसार इन्हे आँखो की वाहरी सतह पर खीचकर मेढक मिट्टी तथा अन्य प्रकार के हानिकारक पदार्थों से आँखो की रक्षा कर सकता है।
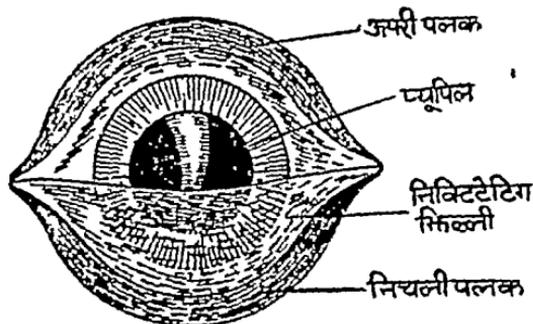
चित्र १२—मेढक का नेत्र

मेढक मे **वाह्य-कर्ण** (external ears) नही होते। प्रत्येक नेत्र के कुछ नीचे तथा पीछे काले रग का एक अडाकार पर्दा होता है जिसे **कर्ण-पटह** (tympanum) कहते है। यह पर्दा कार्टिलेज के एक छल्ले की ऊपरी सतह पर मढा रहता है। नर-मेढक में सिर की प्रतिपृष्ठ (ventral) सतह पर गले के इधर-उधर एक एक काली झुर्रीदार थैली होती है जिसे **स्वर-कोष्ठ या वोकल-सैक** कहते है। इन्ही को फुलाकर मेढक टर्र टर्र करता है।

धड़ (Trunk)

सिर को छोड़ शरीर का शेष भाग धड़ (trunk) कहलाता है। धड़ का पृष्ठ भाग चितकबरा-हरा किन्तु प्रतिपृष्ठ भाग सफेद, हल्का पीला या लाल होता है। क्या तुमने कभी सोचा है कि इस प्रकार की असमानता का क्या कारण है ? जब कभी मेढक हरी घास के बीच बैठा होता है तो उसकी पृष्ठसतह की त्वचा का रग पास-पडोस के पौधो के रग से बहुत कुछ मिल जाता है और इस प्रकार इसके शत्रु इसको आसानी से नही देख पाते। जल में तैरते समय इसकी प्रतिपृष्ठ सतह की त्वचा का रग पानी के मटमैले रग से मिल जाता है जिससे तालाब की तलहटी (bottom) में रहनेवाले शत्रु इसे सरलता से नही देख पाते।

मेढक की त्वचा कोमल, नम और लसलसी (slimy) होती है और इसका पेशियो से ढीला लगाव होता है। पृष्ठ भाग की त्वचा में बहुत-सी झुर्रियाँ होती है जो पीली मध्य रेखा के समान्तर दोनो ओर आगे से पीछे की ओर फैली दिखाई देती हैं। इन झुर्रियों को **डौर्सो-लेट्रल डर्मल प्लीकी** (dorsolateral dermal plicae) कहते हैं। सिर के कुछ पीछे मध्य रेखा पर एक काला-सा धब्बा होता है जिसे **ब्राऊ स्पाट** (brow spot) कहते हैं। यह मेढक के तीसरे नेत्र का चिह्न मात्र है जो किसी काल में इसके पूर्वजों में मिलता था।

भूमि पर बैठे होने पर मेढक की पीठ पर एक कूबड (hump) सा निकल आता है। वास्तव में यह दिखावटी कूबड श्रोणि मेखला या पैल्विक-गर्डिल और वरटिब्रल कॉलम के जुडे होने का स्थान है। दोनो जाँघो के बीच पृष्ठ भाग के समीप एक छेद होता है जिसे **अवस्कर** या **क्लोएका द्वार** (cloacal aperture) कहते हैं। यह मल-मूत्र और जनन-कोशिकाओ (reproductive cells) को बाहर निकालने का स्थान है। पूंछ के न होने से क्लोएका द्वार रीढ़ की हड्डी या वरटिब्रल कॉलम के पिछले नुकीले सिरे के ठीक पीछे पृष्ठ-सतह पर मिलता है।

धड के अगले सिरे से अगली **टाँगें** (fore limbs) और पिछले भाग से दोनों **पिछली टाँगें** जुडी रहती हैं। अगली टाँगों या **अग्रपादों** की अपेक्षा **पश्चपाद** (hind limbs) या पिछली टाँगें अधिक लम्बी होती हैं। प्रत्येक अगली टाँग तीन स्पष्ट भागो में बाँटी जा सकती है—प्रथम भाग जो धड से जुडा रहता है **उत्तर बाहु** (upper arm), बीच का भाग पूर्वबाहु (fore arm) और जो भाग भूमि पर टिका रहता है, **हस्त** (hand) कहलाता है। हस्त में कलाई (wrist), हथेली (palm) और चार नखरहित अँगुलियाँ होती हैं।

अँगूठे का अभाव होता है। नर मेढक में जननकाल मे तर्जनी (first finger) की ग्रन्थिल त्वचा (glandular skin) के मोटे होने से एक गद्दी-सी बन जाती है जिसे मैथुन-गद्दी (copulatory pad) कहते हैं। मैथुन के समय नर इन्ही गद्दियो की सहायता से मादा मेढक को दृढता पूर्वक पकड लेता है। सभी अँगुलियो की

क ख ग
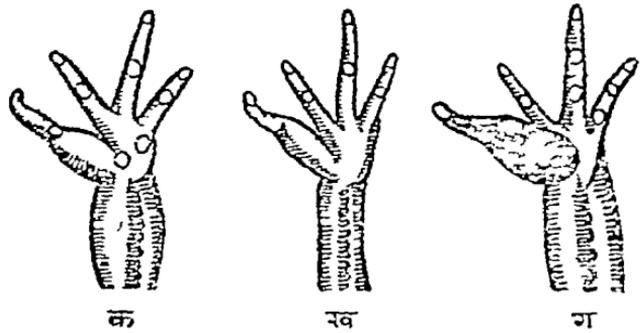
चित्र १२—क, मादा, ख, नर, ग, मादा की तर्जनी जनन काल में

प्रतिपृष्ठ सतह पर प्रत्यक जोड के नीचे भी एक छोटी-सी गद्दी होती ह जिसे सबआर्टिकुलर पैड (sub-articular pad) कहते है।

अगली टाँगो की अपेक्षा पिछली टाँगें या पश्चपाद अधिक लम्बे और पेशीय (muscular) होते हैं। पिछली टाँग का ऊपरी भाग ऊरु (thigh), मध्य भाग जंघा (shank) और उसके नीचे का भाग गुल्फ या टखना (ankle) और अतिम भाग पाद (foot) कहलाता है। भूमि पर बैठे होने पर गुल्फ तथा पाद भूमि के सम्पर्क में होते है। मेढक का गुल्फ असाधारण रूप से लम्बा होता है। पाद की पाँचो अँगुलियाँ विशेषरूप से लम्बी, नखरहित तथा जालदार (webbed) होती हैं। मेढक की शक्तिशाली, लम्बी और जालदार पिछली टाँगें जल में पतवार के समान और भूमि पर स्प्रिंग (spring) के समान काम करती हैं। भूमि पर बैठे होने पर मेढक की दोनो अगली टाँगें कोहनी पर मुडकर आगे की ओर झुकी हुई और पिछली टाँगें घुटने तथा टखने पर पीछे की ओर मुडी रहती है। इस मुद्रा में वह सदैव कूदने के लिए तैयार रहता है और आहट पाते ही अपनी पिछली टाँगो को फैलाकर तुरन्त छलाँग भरकर आँखो से ओझल हो जाता है।

नर और मादा मेढक में अन्तर

नर मेढक की अगली टाँगें मादा की अगली टाँगो की अपेक्षा अधिक पेशीय (muscular) होती हैं तथा नर की अगली टाँगो की तर्जनी में मैथुन गद्दी होती है। नर के सिर की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्वर-कोष्ठ या वोकल सैक होते हैं। मादा की देह अधिक फूली हुई होती है और मादा की त्वचा का रग भी नर की अपेक्षा हल्का होता है।

प्रश्न

१—मेढक की वाह्य-आकृति में जल और स्थल पर रहने के लिए कौन-कौन-सी अनुकूलनाएँ (adaptations) मिलती हैं? सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

२—(क) मेढक के नेत्र सिर के पार्श्व-भागो में किन्तु मनुष्य मे अगले भाग में स्थित होते हैं। क्यो?

(ख) त्वचा के सूखने पर मेढक मर जाता है किन्तु खरगोश में ऐसा नही होता। क्यो?

(ग) मेढक की अगली टाँगें पिछली टाँगो की अपेक्षा छोटी होती हैं। क्यों?

३—नर और मादा मेढको में क्या अन्तर होता है?

४—निम्नलिखित पर सक्षेप में टिप्पणियाँ लिखो —

निक्टिटेटिंग झिल्ली, ब्राऊ स्पाट, (brow spot), कर्ण-पटह, वोकल सैक या स्वर-कोष्ठ, जाल (web) तथा हाइबर्नेशन।

अध्याय ३

आंतरंग (Viscera)

क्लोरोफार्म सुंघाने पर जब मेढक अच्छी तरह बेसुध हो जाय तो उसे पीठ के सहारे लेटा दो। फिर उसकी प्रतिपृष्ठ या वैन्ट्रल सतह की मध्य रेखा के किनारे-किनारे आगे से पीछे तक काटकर त्वचा तथा मास की पर्तों को उलटकर दोनो ओर सुइयो द्वारा खोस दो। ऐसा करने पर विशाल **देह-गुहा या सीलोम** (coelom) दिखाई देती है। इस गुहा में मिलनेवाले सभी भीतरी अगो को **आंतरग या विसरा** (viscera) कहते है। इन अगो को पूरी तौर पर देखने के लिए दोनो अगली टाँगो के बीच स्थित असमेखला या पैक्टोरल गर्डिल को बीचोबीच मे काटकर इधर-उधर फैलाना आवश्यक हो जाता है।

देहगुहा के अगले भाग के बीचोबीच में लाल रग का शक्वाकार **हृदय** (heart) होता है। इसके चारो ओर एक दोहरी पतली झिल्ली होती है जिसे **हृदयावरण** या **पेरीकार्डियम** (pericardium) कहते हैं। इसकी गुहा, जोकि वास्तव में सीलोम का ही एक भाग है, **पेरीकार्डियल कैविटी** कहलाती है। इसमे एक प्रकार का लसीका-सदृश द्रव भरा रहता है जो वाहरी धक्को (shocks) से हृदय की रक्षा करता है। हृदय के दोनो ओर तथा पीछे तक फैले हुए **यकृत पिण्डक** (liver lobes) होते हैं। इसमें दाहिने तथा बाएँ पिण्डक होते है किन्तु बायाँ पिण्डक दाहिने से बडा होता है और स्वय दो पिण्डको में बँटा होता है। दाहिने और बाएँ पिण्डको के बीच में एक गोल हरे रग का **पित्ताशय** (gall bladder) होता है। इसमे हरे रग का **पित्त** (bile) भरा रहता है। यकृत-पिण्डको से लगभग ढके हुए दो लोचदार (elastic) फेफडे होते है। ये रबर की तरह लचीले होते हैं। हवा भरने पर फूलकर ये २-२½ इच लम्बे हो जाते हैं। हवा से फूले हुए फेफडो की बाहरी सतह मधुमक्खी के छत्तो के समान दिखाई पडती है।

यकृत के बाएँ पिण्डक को आगे की ओर पलटने पर **आमाशय** दिखाई देता है। यह **आहार-नाल** (alimentary canal) का सबसे चौडा भाग होता है। इसका अगला सिरा **ग्रसिका** या **ईसोफेगस** (oesophagus) से जुडा रहता है किन्तु पिछला भाग **पाइलोरिक वाल्व** (pyloric valve) द्वारा

ग्रहणी या ड्यूओडीनम में खुलता है। छोटी आंत का यह भाग आमाशय के समान्तर थोड़ा आगे, जाकर अँगरेजी के अक्षर U का आकार बनाता है। ड्यूओडीनम ;
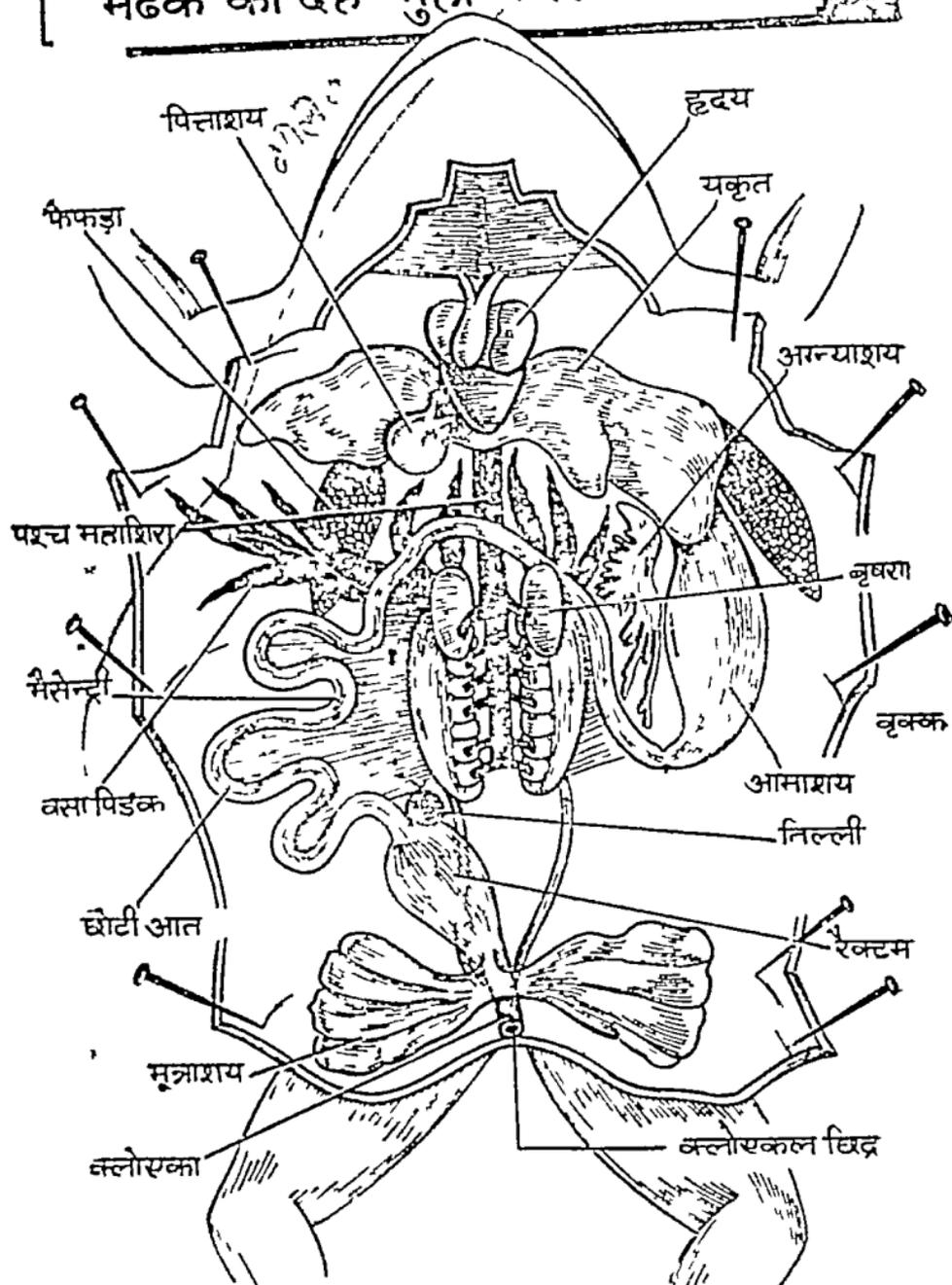
चित्र १४—मेढक के आंतरांग

के अलावा छोटी आंत के शेष भाग को क्षुद्रांत्र या ईलियम कहते हैं। क्षुद्रांत्र ७-८ इंच लम्बी, कुंडलित (coiled), तथा देहगुहा के बाएं भाग में स्थित होती

है। पिछले सिरे पर यह एकाएक फैलकर वडी आँत या बृहदान्त्र (large intestine) वनाती है। यह पीछे की ओर उत्तरोत्तर सकरी होती जाती हैं। इसका अन्तिम भाग क्लोएका (cloaca) कहलाता है। यह क्लोएका-द्वार में होकर वाहर खुलता है। ईसोफेगस, आमाशय, ड्यूओडीनम, क्षुद्रान्त्र तथा क्लोएका ये सब मिलकर आहार-नाल वनाते है।

आमाशय और ड्यूओडीनम के वीच झिल्ली से सधी हुई एक लम्वी, चपटी तथा अनियमित आकार की ग्रन्थि होती है जिसे अग्न्याशय (pancreas) कहते हैं। बृहदान्त्र के अगले सिरे के समीप गहरे लाल रग की तिल्ली या प्लीहा (spleen) होती है। यह झिल्ली द्वारा आहार नाल से जुडा रहता है।

आहार-नाल को एक ओर खिसकाने पर दोनो वृक्क-(kidneys) और जननेन्द्रियाँ दिखाई पडती हैं। लाल रग के दोनो लम्वे वृक्क वरटिब्रल कालम के इधर-उधर स्थित होते हैं। इनके वाहरी किनारे गोल और चिकने होते हैं किन्तु भीतरी किनारे जगह-जगह कटे हुए होते है। प्रत्येक वृक्क के वाहरी किनारे से एक सकरी नली निकलती है जिसे मूत्रवाहिनी या यूरेटर (ureter) कहते हैं। प्रत्येक वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर अनियमित आकार और पीले रग की एक सुप्रारीनल ग्लैण्ड (suprarenal gland) होती है।

नर मेढक के प्रत्येक वृक्क की ऊपरी सतह पर अगले सिरे के समीप एक लम्वा, अडाकार, पीले रग का वृषण या टेस्टिस (testis) होता है। यह झिल्ली द्वारा वृक्क से जुडा रहता है। प्रत्येक वृषण के अगले सिरे से पीले रग तथा अँगुलियो के आकार की रचनाओ का एक गुच्छा जुडा होता है जिसे वसा पिण्डक (fat body) कहते हैं।

मादा मेढक में प्रत्येक वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर एक अनियमित आकार का अंडाशय (ovary) होता है। छोटे मेढको में यह छोटा, सफेद, पारभास (translucent) और अनियमित आकार का होता है किन्तु प्रौढ़ मादा में इसके पिण्डक (lobes) वडे होते हैं और यह इतना वडा होता है कि यह देहगुहा के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला होता है। इसके रग में भी परिवर्तन हो जाता है। इसमें असख्य अडे होते हैं जो लगभग काले रग के होते हैं। प्रत्येक अडाशय भी झिल्ली द्वारा वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह से वँधा रहता है। नर मेढक की तरह मादा में भी अडाशय से जुडे वसा-पिण्डक होते हैं। प्रत्येक अडाशय के वाहरी भाग में एक सफेद वहुत लम्बी तथा कुडलित नली होती है जिसे ओवीडक्ट या अडवाहिनी (oviduct) कहते हैं। प्रत्येक अडवाहिनी का अगला सिरा देहगुहा की पृष्ठ सतह से सटा हुआ अपनी ओर के फेफडे के आधार के समीप एक छेद द्वारा देहगुहा में खुलता है। इस छेद को ऑस्टियम

या मुखिका (ostium) कहते हैं। अडवाहिनी का पिछला भाग चौडा होकर ओवीसैक (ovisac) बनाता है। इसी में अडे एकत्र होते हैं। दोनो ओर के ओवीसैक क्लोएका या अवस्कर की पृष्ठ सतह पर खुलते हैं। क्लोएका की प्रतिपृष्ठ सतह से एक पारदर्श तथा लचीली झिल्ली की थैली जुडी रहती है जिसे मूत्राशय या युरेनरी ब्लैडर (urinary bladder) कहते हैं।

पेरिटोनियम या उदर्या

(Peritoneum)

देहभित्ति की भीतरी सतह से सटकर लगी हुई एक झिल्ली होती है जिसे **पेरिटोनियम** (peritoneum) कहते हैं। इस झिल्ली के पूरे फैलाव तथा कार्य को ठीक-ठीक समझने के लिए मेढक के धड के वृक्क तथा हृदय क्षेत्रो के ट्रासवर्स या अनुप्रस्थ काट को देखना आवश्यक है।

वृक्क प्रदेश के ट्रासवर्स सेक्शन में पृष्ठ सतह के बीचोबीच में **वरटिब्रल कालम या कशेरुक दड** होता है। इसके दोनो ओर की पेशियाँ अन्य भागो की अपेक्षा अधिक मोटी होती हैं। देहभित्ति (body wall) से घिरी सीलोम (coelome) या देहगुहा होती है। इसमें सीलोमिक-द्रव भरा रहता है जो
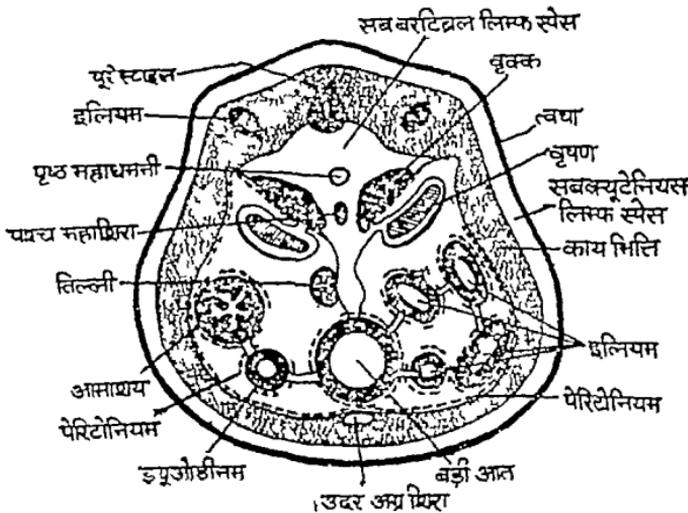
चित्र १५—मेढक के वृक्क प्रदेश की अनुप्रस्थ काट

आतरग (viscera) को बाहरी धक्को तथा आपसी रगड से बचाता है। देहभित्ति की भीतरी सतह से सटी हुई एक पारदर्श तथा चिकनी झिली मिलती है जिसे **पेरिटोनियम या उदर्या** (peritoneum) कहते हैं। पृष्ठ सतह के समीप दोनो ओर की पेरिटोनियम देह-भित्ति से अलग होकर एक दूसरे के

ममीप आकर एक दोहरी पर्तवाली झिल्ली वनाती है जिसे **मैसेण्टरी** (mesentery) कहते हैं। यह आहार नाल के विभिन्न भागो को एक दूसरे से बाँधने तथा उन्हे यथास्थान रखने में सहायता देती है। इस प्रकार मैसेण्टरी द्वारा एक दूसरे से जुडे रहने के कारण उछलने-कूदने पर आतरग अपने-अपने स्थानो से हटने नही पाते।
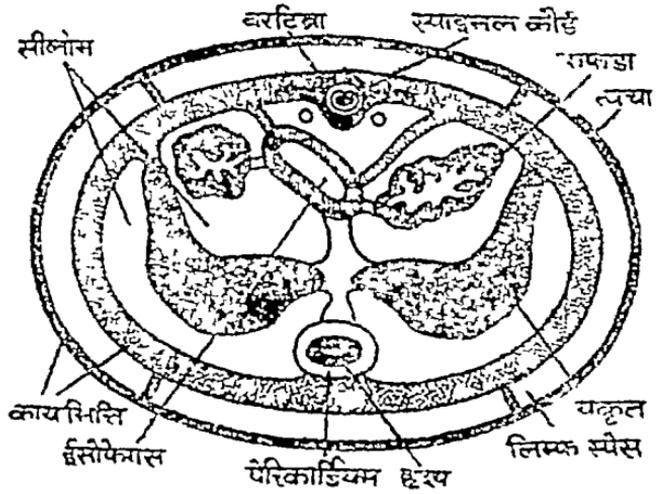
चित्र १६—मेढक के हृदय-प्रदेश की अनुप्रस्थ काट

स्थिति के अनुसार पेरिटोनियम तीन प्रकार का होता है। उसके उस भाग को जो कि कार्यभित्ति की भीतरी सतह से सटा रहता है **पेरिटोनियम की पैराइटल लेयर** (perietal layer) कहते हैं। इसका वह भाग जो कि आतरग (viscera) को घेरे रहता है **विसरल लेयर** (visceral layer) कहलाता है और जो भाग दोहरा होकर आहार-नाल के विभिन्न भागो को लटकाने में सहायता देता है **मैसेण्टरी** (mesentery) कहलाता है।

पृष्ठ सतह से पेरिटोनियम के अलग हो जाने के कारण **सब-वरटिब्रल लिम्फ स्पेस** (sub-vertebral lymph space) वन जाता है। इसमें भी लिम्फ या लसीका सदृश द्रव भरा रहता है। इसी में दोनो वृक्क मिलते हैं।

अब धड के अगले भाग का ट्रासवर्स सेक्शन देखो। तुम पढ चुके हो कि हृदय हृदयावरण नाम की झिल्ली से घिरा रहता है। यह प्रतिपृष्ठ सतह के निकट होता है और इसके इधर-उधर यकृत पिण्डक होते हैं जो फेफडो को ढके रहते हैं।

न्यूरल-कैनाल
(Neural canal)

सीलोम (coelome) और मुख-गुहा के पृष्ठ भाग मे कशेरुका और खोपडी से घिरी हुई एक नली मिलती है जिसे **न्यूरल या तन्त्रिका-नाल** कहते हैं। इसी में मस्तिष्क (brain) तथा रीढ़-रज्जु (spinal cord) मिलते हैं।

प्रश्न

१—मेढक की देह-गुहा में कौन-कौन से आंतरग (viscera) मिलते हैं ? इनमें कौन-कौन युग्मित (paired) और कौन-कौन अयुग्मित होते हैं।

२—पैरिटोनियम (peritoneum) तथा मैसेण्टरी में क्या अन्तर है ? इन दोनो के कार्य समझाओ।

३—देह-गुहा में स्थित सभी अगो का चित्रसहित वर्णन करो।

४—नर मेढक के वृक्क प्रदेश के ट्रासवर्स सेक्शन का स्वच्छ चित्र बनाओ और सभी भागो का नाम लिखो।

५—मेढक के धड का सेक्शन जो कि हृदय प्रदेश का हो बनाओ और सभी भागो के नाम लिखो।

अध्याय ४

जन्तु-कोशिका तथा हिस्टौलोजी

मेढक का विस्तृत अध्ययन करने के पूर्व उसके शरीर के विभिन्न अगो की रचना समझ लेना आवश्यक है। सभी प्रकार के जीवो की रचना तथा कार्य की एकाई **कोशिका** या **सेल** (cell) होती है। जिस प्रकार मकान एक-एक ईंट जोडकर बनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार अधिकाश जीवों का शरीर भी अनेक कोशिकाओ के मेल से बनता है। कुछ निम्न श्रेणी के जीवो में पूरा शरीर केवल एक ही **कोशिका** का बना होता है। इस प्रकार के जीवो को **यूनिसेल्युलर** या **एककोशिकीय** और **मल्टीसेल्युलर** (multicellular) या **बहुकोशिकीय** कह सकते हैं।

सन् १६६५ में सर्वप्रथम हुक (Hooke) नाम के अँगरेज वैज्ञानिक ने सेल (cell) शब्द का प्रयोग किया था। सेल के भीतर क्या मिलता है इसका उसे कुछ न पता चल सका क्योकि उसने केवल कौर्क (cork) के पतले सेक्शन्स को माइक्रौस्कोप द्वारा
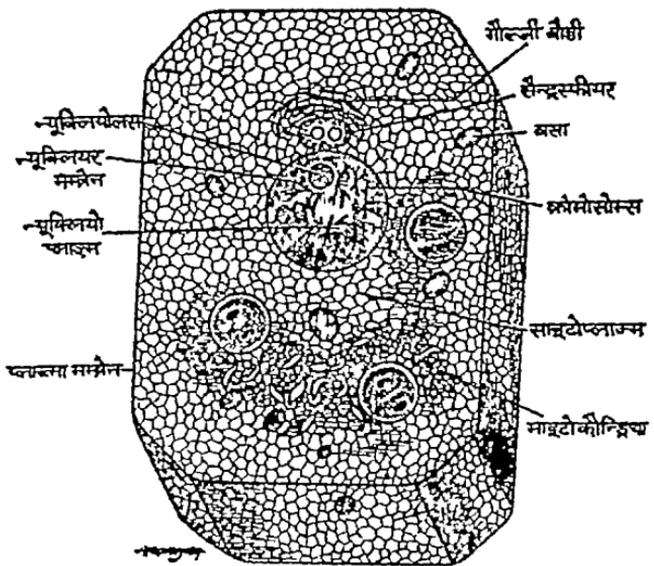
चित्र १७—प्रारूपिक जन्तु कोशिका

देखा था। सेल में भरे लसलसे द्रव को सर्वप्रथम **कोर्टी** (Corti) ने १७७२ ई० में देखा। **डुजार्द** (Dujardin) इस लसलसे पदार्थ के महत्त्व को समझ सका और उसने इसे **सार्कोड** (sarcode) का नाम दिया। **फॉन मोल** (Von Mohl 1846) ने इसे वनस्पति सेल्स या कोशिकाओ में देखा और

सर्वप्रथम इसे प्रोटोप्लाज्म (protoplasm) के नाम से पुकारा। सन् १८६१ ई० में मैक्स शुल्जे (Max Schulze) ने अपने गभीर अध्ययन द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि प्रोटोप्लाज्म सभी जीवो की कोशिकाओ में मिलता है। यही प्रोटोप्लाज्म जीवन-क्रियाओं का भौतिक आधार है।

शरीर की सभी सेल्स या कोशिकाएँ आकार (shape) और कार्य में एक सी नही होतीं। कार्य के अनुरूप इनकी रचना (structure) और आकार में कई प्रकार के परिवर्तन मिलते हैं। इन सभी वातो को भली भाँति समझने के लिए हम एक प्रारूपिक (typical) जन्तु-कोशिका की सरचना लेंगे।

प्रारूपिक जन्तु कोशिका
(Typical animal cell)

प्रत्येक कोशिका के चारो ओर एक बहुत ही पतली झिल्ली होती है जिसे सेल मेम्ब्रेन (cell membrane) कहते हैं। वनस्पति-कोशिकाओ कोशिका-भित्ति (cell wall) होती है जो कि मोटी और मजबूत होती है और आमतौर पर सेलुलोज (cellulose) की वनी होती है। प्रत्येक कोशिका को दो प्रमुख भागो में निम्न प्रकार वाँट सकते हैं —

(अ) कोशिका-काय या साइटोसोम (cytosome)
- (१) साइटोप्लाज्म या कोशिकारस
- (२) सेन्ट्रोसोम (centrosome)
- (३) साइटोप्लाज्मिक कणिकाएँ
- (४) तन्तु (fibrillae)
- (५) माइटोकौन्ड्रिया
- (६) गौल्जी वौडी
- (६) वैक्युओल (vacuole) या धानी
- (८) मेटाप्लाज्मिक पदार्थ (metaplasmic bodies)
- (९) प्लाज्मा मेम्ब्रेन

(आ) केन्द्रक या न्यूक्लियस
- (१) न्यूक्लियर मेम्ब्रेन
- (२) न्यूक्लियोप्लाज्म
- (३) न्यूक्लियोलाई
- (४) क्रोमोसोम्स या केन्द्रक-सूत्र।

(अ) साइटोप्लाज्म—

(१) साइटोप्लाज्म—न्यूक्लिय या केन्द्रक के अलावा जो कुछ द्रव कोशिका में होता है, उसे साइटोप्लाज्म (cytoplasm) कहते हैं। यही

कोशिका में अवशोषण (absorption), स्राव (secretion) पाचन, उत्सर्जन (excretion), श्वसन तथा उत्तेजनशीलता (irritability) का प्रमुख केन्द्र (centre) होता है। यह दो भागो में विभाजित किया जा सकता है। इसकी वाहरी पर्त (layer) को एक्टोप्लाज्म (ectoplasm) और भीतरी भाग को ऐण्डोप्लाज्म (endoplasm) कहते हैं। माइक्रोस्कोप के नीचे देखने पर इसकी रचना सदैव एक सी नही दिखाई पडती। साथ ही साथ किन्ही दो कोशिकाओ का साइटोप्लाज्म विल्कुल एक सा नही दिखाई पडता।

(२) सेन्ट्रोसोम (centrosome)—कोशिका की विश्रामी (resting) की अवस्था में अर्थात् जव उसका विभाजन नही होता रहता न्यूक्लियस के पास ही सेन्ट्रोसोम मिलता है। प्रत्येक सेन्ट्रोसोम में एक स्वच्छ क्षेत्र होता है जिसे सेन्ट्रोस्फीयर (centrosphere) कहते हैं। इसके वीच में प्राय एक कणिका होती है जिसे सैन्ट्रिओल (centriole) कहते हैं। विश्रामी अवस्था में सेन्ट्रोसोम निष्क्रिय होता है किन्तु कोशिका-विभाजन (cell division) में यह प्रमुख भाग लेता है।

(३) साइटोप्लाज्मिक कणिकाएँ (cytoplasmic granules)—मृत कोशिकाओ को रँगने की विधियो द्वारा साइटोप्लाज्म में अनेक प्रकार की कणिकाएँ साफ-साफ देखी जा सकती हैं। इनमें माइटोकौन्ड्रिया (mitochondria) तथा गौल्जी वौडी (Golgi body) का प्रमुख स्थान है। कुछ अन्वेपको के अनुसार माइटोकौन्ड्रिया सभी प्रकार की जन्तु-कोशिकाओ में मिलता है। ये छोटी-छोटी शलाकाओ (rods) अथवा धानियो (vacuoles) के रूप में मिलते हैं। ये पूरे साइटोप्लाज्म में एक समान छितरे हुए या कोशिका में किसी एक स्थान में इकट्ठे रहते हैं। आम तौर पर ये कोशिका के उसी भाग में जहाँ मैटावौलिज्म या उपापचय अधिक होता है मिलते हैं। इस प्रकार इनके कार्य के सम्बन्ध में अधिकाश लोगो का यही मत है कि इनका सम्बन्ध कोशिका-उपापचय (cell metabolism) से होता है।

(४) गौल्जी वौडी (Golgi body) भी सभी प्रकार की जन्तु कोशिकाओ में मिलता है। यह न्यूक्लियस के चारो ओर एक जाल के रूप में या उसके निकट किसी एक स्थान में मिलता है। इसके कार्य के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद है। ऐसा अनुमान है कि ये स्राव (secretion) जैसे एन्जाइम्स के वनाने में सहायता देते हैं।

(५) तन्तु या फाइब्रिली (fibrillae)—इस प्रकार के तन्तुक साइटोप्लाज्म के वने होते हैं और कुछ विशेष प्रकार की कोशिकाओ में

मिलते हैं। उदाहरण के लिए पेशी तन्तुओं में पेशी तन्तुक (myofibrillae) मिलते हैं। इन्हीं की उपस्थिति के कारण पेशी-कोशिकाओं में सिकुड़ने की शक्ति होती है। तन्त्रिका तन्तुक या न्यूरोफिब्रिली (neurofibrillae) तन्त्रिका-कोशिकाओं में मिलती हैं।

(६) रसधानी या वैक्युओल्स (vacuoles)—आमतौर पर निम्न-श्रेणी के एक कोशिकीय जन्तुओं में रसधानियाँ मिलती हैं। इनमें एक प्रकार का तरल पदार्थ भरा रहता है जिसे सेल सैप (cell sap) कहते हैं। प्रोटोज़ोआ समुदाय के प्राणियों में ये दो प्रकार की होती हैं—(१) भोजन-धानी (food vacuole) तथा (२) कुचनशील धानी (contractile vacuole)। भोजन धानी में भोजन का पाचन होता है और कुचनशील धानी अतिरिक्त जल तथा वर्ज्य पदार्थों को बाहर निकालने में सहायता देती हैं। उच्च श्रेणी के जन्तुओं की कोशिकाओं में धानियाँ नहीं मिलती।

(७) मैटाप्लाज्मिक पदार्थ (metaplasmic substances)—कई प्रकार की निर्जीव वस्तुएँ भी कोशिका में मिलती हैं। इनमें ग्लाइकोजन (glycogen), तेल या वसा (fat), स्राव (secretion) तथा एक्सक्रीटरी पदार्थ होते हैं।

(आ) केन्द्रक या न्यूक्लियस—

न्यूक्लियस का आकार आमतौर पर गोल या अंडाकार (oval) होता है। प्रत्येक कोशिका में प्राय एक ही न्यूक्लियस मिलता है। इसके चारों ओर एक झिल्ली होती है जिसे न्यूक्लियर मेम्ब्रेन (nuclear membrane) कहते हैं। यह न्यूक्लियस कोशिका-द्रव्य या साइटोसोम से अलग करती है। न्यूक्लियस में एक प्रकार का द्रव भरा रहता है जिसे न्यूक्लियोप्लाज्म (nucleoplasm) या कैरियोलिम्फ कहते हैं। इसमें क्रोमोसोम्स या केन्द्रक-सूत्र (chromosomes) होते हैं। जन्तुओं की विभिन्न जातियों या स्पेशीज में इनकी संख्या निश्चित तथा अलग-अलग होती है। प्रत्येक न्यूक्लियस में एक या दो न्यूक्लियोलाई (nucleoli) होते हैं।

न्यूक्लियस कोशिका का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। यह कोशिका के विभाजन में, कोशिका में होनेवाली क्रियाओं, एन्जाइम्स के स्राव इत्यादि पर नियंत्रण रखता है।

ऊतक या टिशूज
(Tissues)

मेंढक तथा अन्य बहुकोशिकीय जन्तुओं के शरीर की तुलना किसी बड़े देश से की जा सकती है। देश के असंख्य निवासी अलग-अलग वर्गों में बाँटे

जा सकते है। खेती करने वाले किसान, कारखानो में काम करनेवाले श्रमिक (labourer), मछली पकडनेवाले मछुए, कपडा बुननेवाले जुलाहे कहलाते हैं। प्रत्येक वर्ग के लोग अपने-अपने व्यवसाय में कुशल होते हैं और उनके रहन-सहन, वेश-भूषा आदि इनके व्यवसाय के अनुरूप हो जाती है। सभी वर्गों के लोग समाज के आवश्यक अग होते हैं क्योकि इन सभी की कार्य-कुशलता पर ही पूरे समाज का सुव्यवस्थित सचालन निर्भर रहता है। ठीक इसी प्रकार वहुकोशिकीय प्राणियो की असख्य कोशिकाओ का भी उनके कार्य के अनुरूप वर्गीकरण किया जा सकता है। एक ही आकार तथा एक ही-सा कार्य करनेवाली कोशिकाओ के समूह को ऊतक (tissue) कहते हैं। जन्तुओ के शरीर में निम्नलिखित चार प्रकार के ऊतक मिलते हैं —

(१) एपिथीलियम (epithelium)
(२) कनेक्टिव या संयोजी ऊतक (connective tissue)
(३) पेशी ऊतक (muscular tissue)
(४) नर्वश टिशू या तत्रिका ऊतक

(१) एपिथीलियम (Epithelium)

शरीर के विभिन्न अगो की वाहरी और भीतरी स्वतत्र सतहो को ढकने-वाले ऊतक को एपिथीलियम कहते हैं। इस प्रकार यह ऊतक त्वचा की ऊपरी सतह में तथा आमाशय, ईसोफेगस, ड्यूओडीनम तथा आहार नाल के अन्य सभी भागों की भीतरी स्वतत्र सतह में मिलता है। रुधिर वाहिनियों, मूत्राशय इत्यादि की भीतरी सतह इसी प्रकार के ऊतक की वनी होती है। इसकी कोशिकाओ के एक दूसरे के अत्यन्त निकट होने से इनको परस्पर जोडने वाला इन्टरसेल्युलर पदार्थ या मैटरिक्स (matrix) वहुत ही कम मात्रा में होता है। कोशिकाओ के आकार के अनुसार यह ऊतक कई प्रकार का होता है। जव एपिथीलियम कोशिकाएँ एक ही पक्ति में होती हैं तो उसे **सरल-एपिथीलियम** (simple epithelium) कहते हैं। इसके विपरीत जव कोशिकाएँ कई पर्त्तों में होती हैं तो उसे **स्ट्रैटीफाइड** या **स्तृतीकृत एपिथीलियम** (stratified epithelium) कहते हैं।

(क) सरल एपिथीलियम

कोशिकाओ के आकार के अनुसार सरल एपिथीलियम निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है —

(अ) पटलाकार या स्क्वैमस एपिथीलियम—इस प्रकार के एपिथी-लियम की कोशिकाएँ चौडी किन्तु इतनी चपटी होती हैं कि प्रत्येक कोशिका या सेल का वह भाग जहाँ न्यूक्लियस स्थित होता है। तटो की अपेक्षा अधिक

उभरा हुआ दिखाई पडता है। सभी सेल्स एक दूसरे से इस प्रकार सटी रहती हैं कि एक प्रकार की झिल्ली सी बन जाती है। माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर यह टाइल्स के बने फर्श सा दीखता है जिससे इसे **पेवमेन्ट एपियीलियम** (pavement epithelium) भी कहते हैं। यह पेरिटोनियम (perito-

चित्र १८—विभिन्न प्रकार के एपिथीलियम
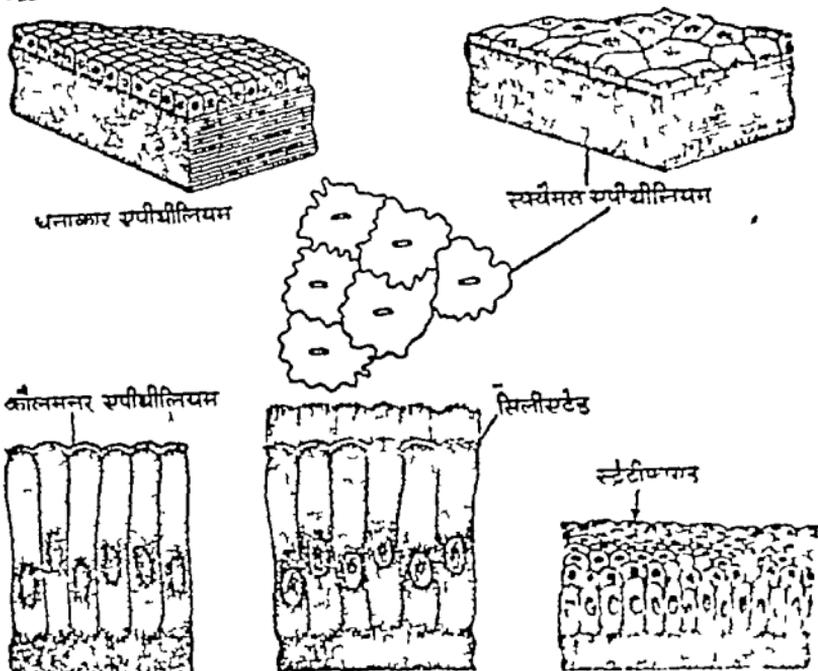
neum), मैम्ब्रेनस लैबिरिन्थ और रुधिर कोशिकाओ में मिलता है। रुधिर वाहिनियो में, जहाँ यह सबसे भीतरी पर्त के रूप में मिलता है, इसे **एण्डोथीलियम** (endothelium) कहते हैं।
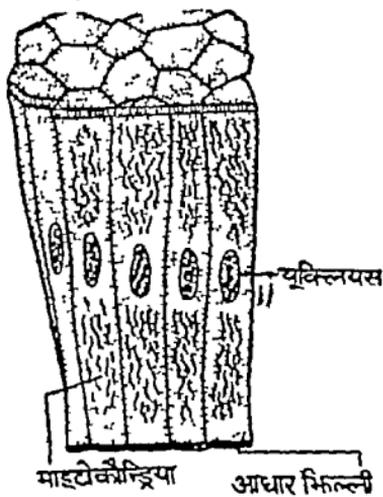
(आ) स्तम्भी या कॉलमनर एपियीलियम—इस ऊतक की सभी कोशिकाएँ बेलनाकार (cylindrical) होती हैं। ये सभी एक दूसरे से सटी रहती हैं और स्वतत्र सतह के साथ लम्बकोण (right angle) बनाती हैं। प्रत्येक कोशिका का भीतरी सिरा कुछ सँकरा होता है किन्तु ऊपरी स्वतत्र सिरा रेखित (striated) होता है। इस प्रकार का एपिथीलियम आहार-नाल के विभिन्न भागों, जननेन्द्रियो और उनकी वाहिनियो (ducts) की भीतरी सतह में मिलता है।

चित्र १९—स्तम्भी एपियीलियम

(इ) सीलियेटेड या रोमिकी एपि-

थीलियम—यह भी कौलमनर ऊतक का रूपान्तर है। इस प्रकार के ऊतक की प्रत्येक कोशिका के स्वतत्र भाग से अनेक प्रोटोप्लाज्मिक **रोमाभ या सीलिया** (cilia) निकले रहते हैं। प्रत्येक सीलियम (cilium) के आधार पर एक **आधार कण** (basal granule) होता है। कभी-कभी इन सीलिया की लम्बाई लगभग ३-४ म्यू (μ) होती है। ये धीरे-धीरे एक दिशा में झुकते हैं और फिर धीरे-धीरे ही अपनी पूर्व स्थिति मे आ जाते हैं। इस प्रकार एक सेकेंड में ये लगभग १० वार झुकते हैं। इनकी गति ठढक से धीमी और गर्मी से तेज हो जाती हैं। कार्वन डाइआक्साइड, ईथर, क्लोरोफौर्म और एल्कोहाल के प्रयोग से भी इनकी गति धीमी पड जाती है। सीलिया की **संकालीयगति** (synchronous movement) के फलस्वरूप म्यूकस या जल मे प्रवाह होने लगता है। इस प्रकार का एपिथीलियम अड-वाहिनी (oviduct), वृक्क नलिकाओ (uriniferous tubules), ट्रेकिया या श्वास नली, स्पाइनल कौर्ड की केन्द्र-नली और मुख-गुहा के म्यूकस मेम्ब्रेन में मिलता है। प्रोटोजोआ वर्ग के कुछ जन्तुओ में पूरा शरीर सीलिया से ढका रहता है। इस प्रकार के कुछ जन्तुओ में सीलिया चलनी या फिल्टर भी बनाते हैं।
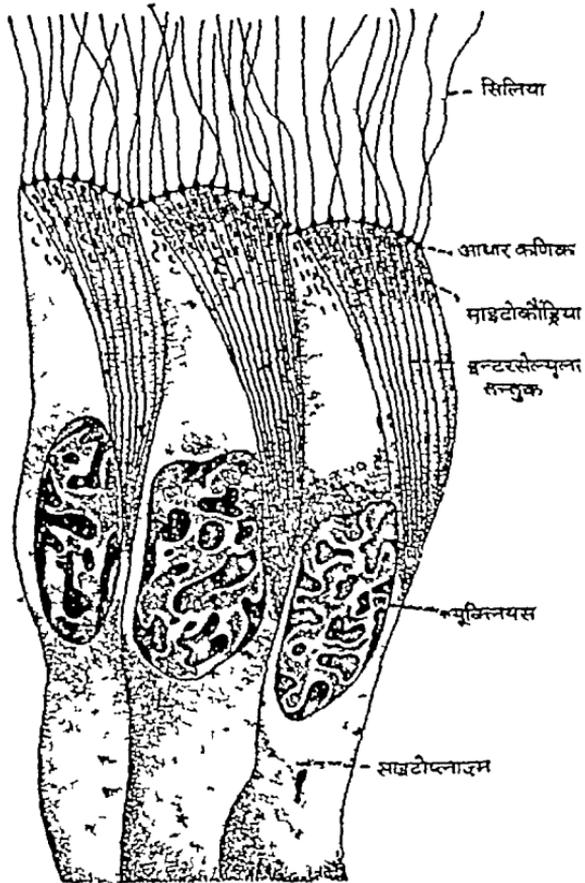
चित्र २०—सीलियेटेड एपिथीलियम

(ई) **ग्रन्थिल ऊतक** (glandular epithelium)—यह भी एक प्रकार से कौलमनर एपिथीलियम का रूपान्तर है। इस प्रकार के ऊतक की कोशिकाओ में स्राव (secretion) या रस वनते हैं। ग्रन्थिल ऊतक की कोशिकाएँ दूसरे प्रकार के एपिथीलिया की कोशिकाओ की अपेक्षा वडी होती

है और उनका साइटोप्लाज्म ग्रैन्यूलर (granular) होता है। मेंढक तथा अन्य वरटिब्रेट्स में मिलनेवाली विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ या ग्लैण्ड्स इसी प्रकार के एपिथीलियम की बनी होती हैं। रचना के अनुसार ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं —

(१) एककोशिकीय (unicellular)

(२) बहुकोशिकीय (multicellular)

एक कोशिकीय ग्रन्थियाँ, जो कि केवल एक कोशिका की बनी होती हैं, बड़ी आँत की श्लेष्मिक झिल्ली या म्यूकस मेम्ब्रेन में मिलती हैं। ये स्तम्भी एपिथीलियम की कोशिकाओं के बीच-बीच में छितरी मिलती हैं और श्लेष्मि या म्यूकस (mucus) पैदा करती हैं। कोशिका या ग्रन्थि के ऊपरी भाग में यह स्राव इकट्ठा होता है जिससे यह भाग फूल जाता है। फूल जाने पर इनका आकार सुराही सा हो जाता है जिससे इन्हें गौबलेट सेल्स (goblet cells) भी कहते हैं।
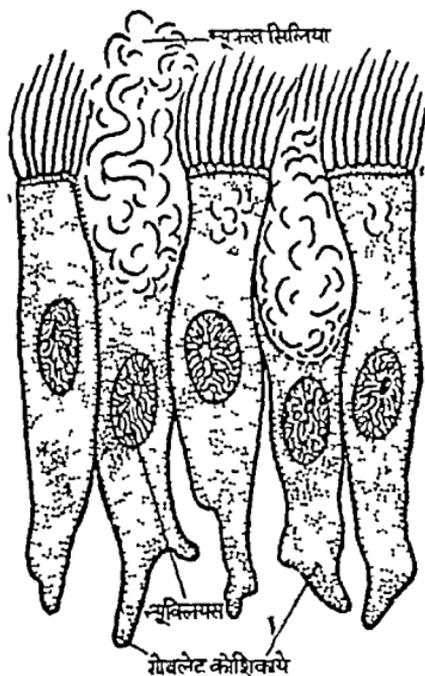
चित्र २१—गौबलेट सेल्स
(एककोशिकीय ग्रन्थियाँ)

शरीर की अधिकांश ग्रन्थियाँ बहुकोशिकीय होती हैं। आकार के अनुसार ये ट्यूबलर (tubular) या एलव्योलर (alveolar) होती हैं। साथ के चित्र २० में विभिन्न प्रकार की सरल (simple) और संयुक्त ट्यूबलर और एलव्योलर ग्रन्थियाँ दिखलाई गई हैं। सरल एलव्योलर ग्लैण्डस मेंढक की त्वचा में मिलती हैं। मनुष्य की त्वचा में मिलनेवाली स्वेद-ग्रन्थियाँ कुंडलित नालाकार (coiled tubular) होती हैं। इनकी वाहिनियाँ लहरियादार होती हैं। आमाशय में मिलनेवाली गैस्ट्रिक या जठर ग्रन्थियाँ संयुक्त ट्यूबलर (compound tubular) होती हैं।

(उ) संवेदक ऊतक (sensory epithelium)—यह भी स्तम्भी एपिथीलियम का रूपान्तर होता है। इसकी कोशिकाओं की बाहरी सतह पर प्रोटोप्लाज्मिक संवेदक रोम (sensory hair) होते हैं और निचली सतह तंत्रिका तन्तुओं (nerve fibres) से जुड़ी रहती है। इस प्रकार का

एपिथीलियम रेटिना (retina) औलफैक्टरी या घ्राण कोषो, जीभ और मुखगुहा के म्यूकस मेम्ब्रेन मे मिलता है।

(ऊ) **जर्मिनल या जनन ऊतक** (Germinal epithelium) – इस प्रकार के ऊतक की कोशिकाएँ आमतौर पर घनाकर (cubical) होती हैं। इस प्रकार का एपिथीलियम अडाशय (ovary) तथा वृषण (testes) में मिलता है। इसकी कोशिकाओ के विभाजन तथा भिन्नन (differentiation) से अडे (egg) और शुक्राणु (sperm) वनते हैं।
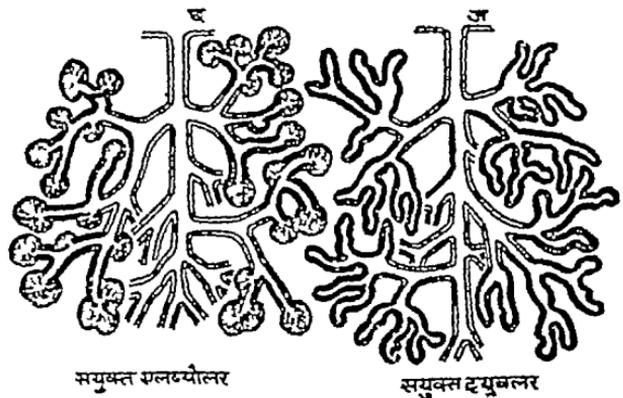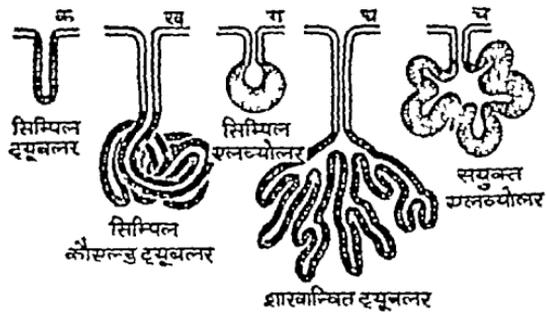
चित्र २२—विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ

(ख) सयुक्त एपिथीलियम

स्ट्रैटीफाइड एपिथीलियम (stratified epithelium) में कोशिकाओ की कई पर्तें होती हैं। त्वचा का एपिडर्मिस (epidermis) इस प्रकार के एपिथीलियम का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसमें सब से नीचे कोशिकाओ की एक पर्त होती है जिसे **मैल्फीजियन लेयर** (malpighian layer) कहते हैं। इन कोशिकाओ में बराबर विभाजन करते रहने की क्षमता होती है। इस प्रकार जितनी नई-नई कोशिकाएँ
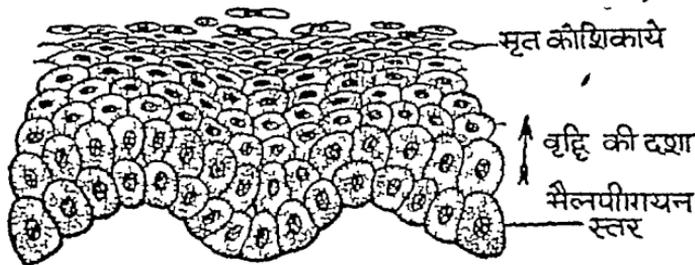
चित्र २३—स्ट्रैटीफाएड एपिथीलियम

वनती हैं वे सभी धीरे-धीरे ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं। ऊपर खिसकने से वे क्रमश चपटी होती जाती हैं और अन्त में इनका प्रोटोप्लाज्म सीग के समान एक कठोर रासायनिक पदार्थ वनाता है जिसे करैटिन (keratin)

कहते हैं। इस प्रकार की चपटी तथा मृत कोशिकाओ की सबसे ऊपरी पर्त ही स्क्वैमस एपिथीलियम बनाती हैं।

परिवर्तीय एपिथीलियम (transitional epithelium)—यह मूत्राशय तथा मूत्र-वाहिनी (ureter) में मिलता है। इस प्रकार के ऊतक मे भीतरी पर्तों की कोशिकाएँ एक दूसरे से सटी नही रहती जिससे वे एक दूसरे के ऊपर फिसल सकती हैं और इस प्रकार के एपिथीलियम द्वारा निर्मित झिल्ली आसानी से फैल सकती है।

(२) कनेक्टिव टिशू या सयोजी ऊतक
(Connective Tissue)

एपिथीलियम के विपरीत इस प्रकार के ऊतक मे इन्टरसेल्युलर पदार्थ (intercellular substance) की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। इसलिए इस प्रकार के ऊतक में अन्तरकोशिकीय पदार्थ या मैटरिक्स (matrix) कोशिकाओ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इस प्रकार का ऊतक एक अग को दूसरे अग से या एक ऊतक को दूसरे ऊतक से जोड़ता है, नष्ट हो जानेवाले ऊतको का पुनर्जनन (regeneration) करता है, बाहर से शरीर में प्रवेश करने वाले विषो की रोकथाम करता है और शरीर को सहारा देनेवाले ककाल (skeleton) का निर्माण करता है। रचना के अनुसार **सयोजी ऊतक** निम्न प्रकार के होते हैं —

(1) **एरिओलर टिशू** (areolar tissue)—यह एक पतली और लचीली (elastic) झिल्ली के रूप में मिलता है। इस प्रकार का ऊतक त्वचा के नीचे, पेरिटोनियम, मैसेण्ट्री (mesentery) मे तथा उन स्थानो में जहाँ रुधिर-वाहिनियाँ शरीर के विभिन्न अगो या देह-गुहा (सीलोम) में प्रवेश करती हैं, मिलता है। शरीर
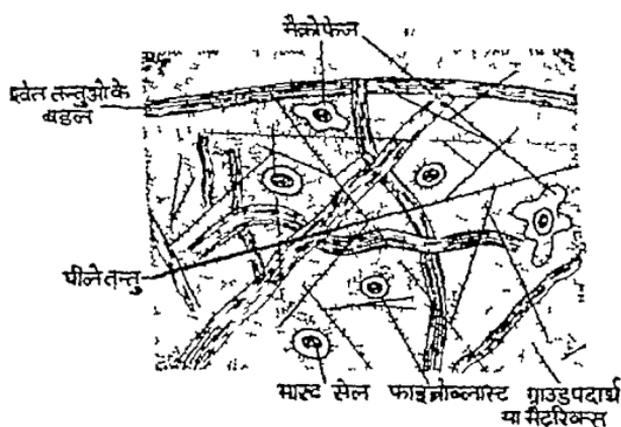
चित्र २४—एरिओलर कनेक्टिव टिशू

से अलग करने पर यह सिकुडकर एक लसलसा पदार्थ बनाता है। माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर इसकी लसलसी मैटरिक्स में दो प्रकार के तन्तु (fibres) और कई प्रकार की कोशिकाएँ इधर उधर छितरी हुई दिखाई देती हैं।

श्वेत तन्तु (white fibres) लहरियादार (wavy) तथा अशाखान्वित

बंडल्स (bundles) मे होते हैं। ये **कोलाजेन** (collagen) के बने होते हैं जिससे इन्हे पानी मे उबालकर **जेलेटीन** (gelatin) बनाया जाता है। **बडल्स** में मिलने के कारण ये लचीले नही होते। इसके विपरीत **पीले-तन्तु** (yellow fibres) सख्या मे कम होते है और अकेले ही इधर-उधर फैले रहते हैं। ये सीधे, लचीले और शाखान्वित होते हैं। इन्ही के कारण एरिओलर टिशू लचीला होता है।

इस प्रकार के ऊतक मे तीन प्रकार की कोशिकाएँ मिलती हैं। इनमें से **फाइब्रोब्लास्ट** (fibroblasts) श्वेत (सफेद) और पीत तन्तुओ का निर्माण करते हैं। सफेद तन्तु बनानेवाले फाइब्रोब्लास्ट सफेद तन्तुओ के बडल्स से चिपके रहते हैं किन्तु पीले तन्तुओ को उत्पन्न करनेवाले फाइब्रोब्लास्ट मैटरिक्स में छितरे हुए मिलते हैं। दूसरे प्रकार की कोशिकाएँ **फैगोसाइट्स** (phagocytes) या **हिस्टियोसाइट्स** (histiocytes) कहलाती हैं। श्वेत रुधिर कणिकाओ की तरह ये अनियमित आकार की होती हैं। जब कभी बाहरी विषो के प्रवेश करने या चोट लगने से किसी अग में सूजन आ जाती है तो वहाँ इनकी सख्या तथा रुधिर परिवहन की मात्रा बढ जाती है। ऐसी दशा में ये जीवाणुओ को निगलने लगती हैं। तीसरे प्रकार की कोशिकाओ को **मास्ट-सेल्स** (mast cells) कहते हैं। ये भी आमतौर पर अनियमित आकार की होती हैं। इनमें वृक्काकार न्यूक्लियस होता है। इनके कार्य के सम्बन्ध में ठीक से नही पता है।

(ii) **श्वेत तन्तुमय** या **ह्वाइट फाईब्रस टिशू** (White fibrous tissue)—इस प्रकार के ऊतक मे केवल **श्वेत-तन्तु** (white fibres) मिलते हैं जो बडल्स के रूप मे एक दूसरे के समान्तर फैले रहते हैं। फाइब्रोब्लास्ट या सयोजी-ऊतक कोशिकाएँ (connective tissue cells) इन बडल्स के बीच-बीच में दबी पडी रहती हैं जिससे से चपटी तथा लम्बी हो जाती हैं। इस प्रकार का ऊतक कडा और बहुत मजबूत होता है और उसमें लचीलापन (elasticity) नही होता। यह **कंडरा** (tendon) के रूप में मिलता है जो **पेशियो** को **अस्थ्यावरण** (periosteum) से जोडता है। लचीला न होने के कारण कडरा पेशियो मे खीच-तान होने देता है किन्तु स्वय घट-बढ नही सकता।

(iii) **यलो इलैस्टिक ऊतक** (Yellow elastic tissue)—इसमें केवल पीले तन्तु मिलते हैं जिससे इस प्रकार के ऊतक में काफी लचीलापन होता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण **स्नायु** या **लिगामेन्टस** (ligaments) हैं। ये हड्डियो को परस्पर बाँधते है।

(iv) **वसोतक** या **एडीपोज टिशू** (adipose tissue)—यह सामान्य एरिओलर ऊतक का ही रूपान्तर है। इसमें सयोजी ऊतक कोशिकाओ

(connective tissue cells) की संख्या कम होती है। आरम्भ में प्रत्येक सेल छोटी होती है और उसके साइटोप्लाज्म में वसा या चर्वी की कणिकाएँ छितरी हुई मिलती हैं। धीरे-धीरे ये सभी मिलकर चर्वी की एक बड़ी बूंद बनाती हैं जो साइटोप्लाज्म को खिसकाकर एक पतली पर्त के रूप में कोशिका भित्ति
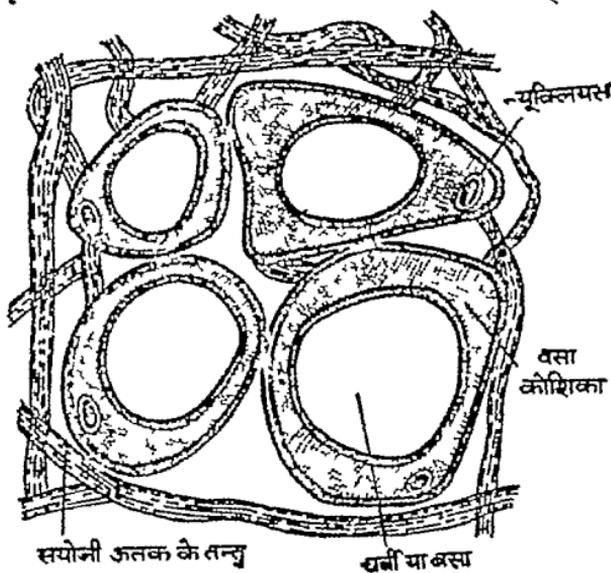
चित्र २५—वसोतक या एडीपोज टिशू

से सटा देती है। इस प्रकार की कोशिकाओं के आलम्बन के लिए तन्तुओं का ढीला जाल होता है। वसोतक मेंढक के वसा पिंडकों लम्बी हड्डियों की पीत-मज्जा (yellow marrow), मैसेण्टरी वृक्कों के पास तथा हृदयावरण (pericardium) में मिलता है। स्तनधारियों में इस प्रकार का ऊतक त्वचा के नीचे एक मोटी पर्त के रूप में मिलता है। मनुष्य और ह्वेल की नंगी त्वचा के नीचे चर्वी की काफी मोटी पर्त होती है जो शरीर से गर्मी की हानि को रोकती है। साथ ही साथ शरीर की आकृति को सुन्दर बनाये रखने में भी यह सहायता देती है। ऊँट (camel) का कूबड़ भी चर्वी का बना होता है। आवश्यकता पड़ने पर इस चर्वी के आक्सीडेशन (oxidation) से पानी उत्पन्न होता है जिससे रेगिस्तान में ऊँट को पानी न मिलने पर भी असुविधा नहीं होती। नेत्र-गोलक (eye balls) के नीचे भी चर्वी की गद्दी होती है जो इन्हें बाहरी धक्कों से बचाती है। बुढ़ापे में जब यहाँ की चर्वी कम हो जाती है तो नेत्र-गोलक भीतर घुस जाते हैं। आमतौर पर वसोतक एक प्रकार से ईंधन का काम करता है। आवश्यकता पड़ने पर इसी के प्रजारण (combustion) से पर्याप्त एनर्जी उत्पन्न की जा सकती है।

(v) कंकाल या स्कैलिटल ऊतक (skeletal tissue)—इस प्रकार के संयोजी ऊतक में कार्टिलेज (cartilage) तथा अस्थियाँ (bones) होती हैं जो मिलकर वरटिब्रेट जन्तुओं का अंतःकंकाल या एण्डोस्कैलिटन बनाती हैं। इसी कंकाल के सहारे पूरा शरीर सधा रहता है तथा शरीर का रूप या आकार भी निर्धारित हो जाता है। कंकाल कोमल अंगों की रक्षा करता है।

(१) कार्टिलेज (Cartilage)

इस प्रकार के कनेक्टिव टिशू में मैटरिक्स एक लसदार पदार्थ की वनी होती है जिसे कौन्ड्रिन (chondrin) कहते हैं। इसमें कोलाजेन (collagen) के श्वेत तन्तुओ का एक जाल होता है जिससे उसमें थोडा कडापन आ जाता है। ये तन्तु इतने महीन होते हैं कि इन्हे देखने के लिए इस ऊतक को विशेष विधि से रँगना (stain) आवश्यक होता है। मैटरिक्स में जगह-जगह द्रव से भरे स्थान होते हैं जिन्हे लैक्युनी (lacunae) कहते हैं। प्रत्येक लैक्युनी में एक या दो अर्धचन्द्राकार कार्टिलेज कोशिकाएँ या कौन्ड्रोब्लास्ट (chon-

चित्र २६—क, कार्टिलेज की रचना , ख, लैक्युनी में कार्टिलेज सेल्स
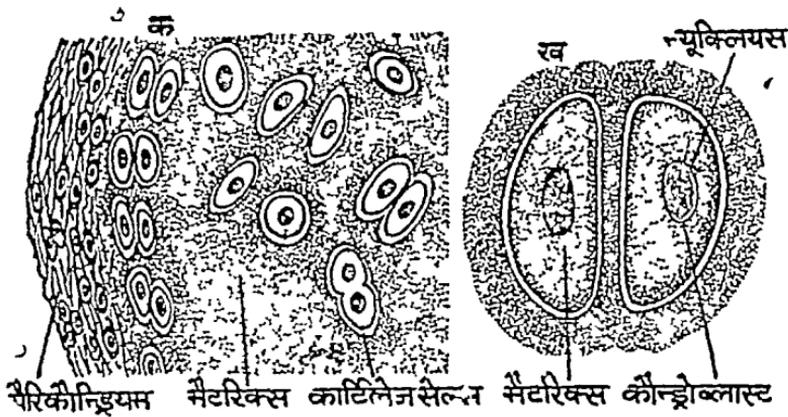
droblast) होती है। इनका वरावर विभाजन हुआ करता है। इसी लिए ये कोशिकाएँ आमतौर पर २-४ के समूह मे मिलती हैं। विभाजन के पश्चात् प्रत्येक कौन्ड्रोव्लास्ट अपने चारो ओर कौन्ड्रिन उत्पन्न करता है और इस प्रकार स्वय एक अलग लैक्युना में पहुँच जाता है। इस प्रकार इनके विभाजन से कार्टिलेज की थोडी वहुत वृद्धि होती है। कार्टिलेज की स्वतत्र सतह एक दृढ, आवरण से ढकी रहती है जिसे उपास्थ्यावरण या पैरिकौंड्रियम (perichondrium) कहते हैं। इसमे कौन्ड्रोव्लास्टस (chondroblasts) की विशेष पर्त होती है। इन्ही के विभाजन से कार्टिलेज की अधिकतर वृद्धि होती है। लिम्फ या लसीका द्वारा कार्टिलेज कोशिकाओ को पोषाहार मिलता रहता है।

(अ) हाइलिन कार्टिलेज (hyaline cartilage)—देखने में यह उज्ज्वल, चमकदार और हल्के नीले रग का होता है। इसका मैटरिक्स पारभास (translucent) होता है और उसमें कोलेजेन तन्तु नही होते। इसलिए इसमे लचीलापन होता है। लचीलेपन और अवरोध शक्ति (resistance) से यह लचक जाता है किन्तु टूटता नही। यह मेंढक

के हाइओइड (hyoid), तथा स्टर्नम में और स्तनधारियो में श्वासनली (trachea) के छल्लो में मिलता है।

(आ) इलैस्टिक कार्टलेज (elastic cartilage)—इस प्रकार के कार्टिलेज की मैटरिक्स में असख्य पीले तन्तुओ (yellow fibres) का जाल बिछा रहता है जिससे यह काफी लचीला हो जाता है। इस प्रकार का कार्टिलेज स्तनधारियो के वाह्यकर्ण या पिन्ना (pinna), नाक के सिरे पर, एपिग्लोटिस (epiglottis) इत्यादि में मिलता है।

(इ) कैलसीफाइड कार्टिलेज (calcified cartilage)—इसकी मैटरिक्स में कैलशियम के लवण इकट्ठे हो जाते हैं जिससे यह कडा और हड्डियो के समान सफेद दिखाई देता है। इस प्रकार का कार्टिलेज बूढ़े मेंढको की श्रोणि मेखला (pelvic girdle) की प्यूबिस या अग्रश्रोणिका, असमेखला की सुप्रास्कैपुला में तथा ह्यूमरस और फीमर के दोनो सिरो पर मिलता है।

(ई) तन्तुमय या फाइब्रो-कार्टिलेज (fibro-cartilage)—इस प्रकार के कार्टिलेज में श्वेत तन्तुओं के घने बडल्स (bundles) होते हैं जिससे इसमें काफी दृढता आ जाती है और लचीलापन कम होता है। यह आमतौर पर उन्ही स्थानो में मिलता है जहाँ धक्को और रगड के कारण हानि पहुँचने की सभावना होती है। स्तनधारियो के वरटिब्रल कालम में वरटिब्री के बीच-बीच में मिलनेवाली इन्टरवरटिब्रल (intervertebral) डिस्क इसी प्रकार के कार्टिलेज की बनी होती है।

(२) हड्डी (Bone)

इस प्रकार के सयोजी ऊतक में मैटरिक्स ओस्टिइन (ostein) की बनी होती है। कौन्ड्रिन की भाँति यह भी लचीला होता है किन्तु कई प्रकार के अकार्बनिक लवणो की उपस्थिति से यह मजबूत हो जाता है। इन लवणो में फौस्फेट्स का प्रमुख स्थान है। मेंढक की किसी सूखी लम्बी हड्डी जैसे फीमर का ट्रासवर्स सेक्शन यदि माइक्रोस्कोप में देखा जाय तो उसमें मैटरिक्स के अनेक स्तर दिखाई देंगे। ये हड्डी के बीचोबीच में स्थित अस्थि-मज्जा गुहा (marrow cavity) को घेरे रहते हैं। इन स्तरो को लैमिली (lamellae) कहते हैं। दो लैमिली के बीच-बीच मे जगह-जगह बहुत छोटे छेद दिखाई देते हैं। इन छेदो को लैक्युनी (lacunae) कहते हैं।

जीवित अवस्था में प्रत्येक लैक्युना द्रव से भरा रहता है उसमें और एक अस्थि-कोशिका (bone-cell) या ऑस्टिओसाइट (osteocyte) होती है। लैक्युनी से बहुत ही महीन कैनालीक्यूली (canaliculi)

निकलती है जो विभिन्न दिशाओ में फैली होती है और परस्पर मिलकर पास-पडोस की लैक्युनी में सम्बन्ध स्थापित करती है। लैक्युनी में स्थित अस्थि-कोशिकाओ के प्रोटोप्लाज्मिक प्रोसेस (processes) इन्ही कैनाली-क्यूली में होते हुए अन्य अस्थि-कोशिकाओ के प्रोसेस से मिलकर एक जाल बनाते
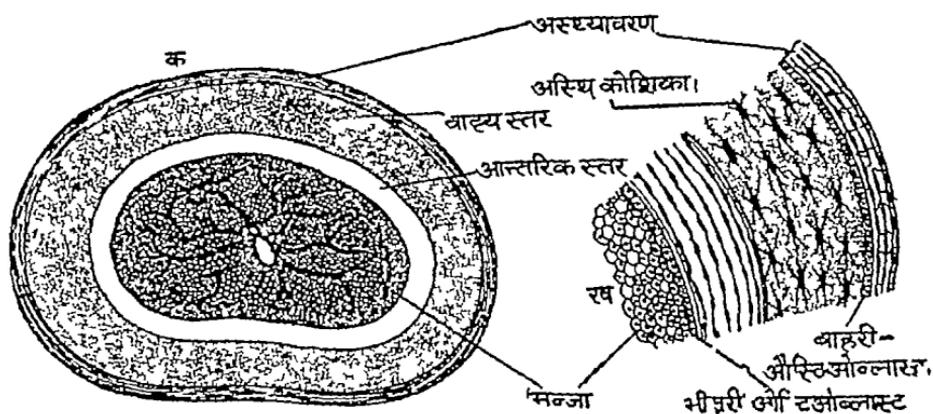
चित्र २७—मेंढक की हड्डी का अनुप्रस्थ सेक्शन : क, निम्न विशालन में ख, उच्च विशालन में

हैं। इस प्रकार विसरण (diffusion) द्वारा पोषाहार एक कोशिका से दूसरी में सरलता से पहुँचता रहता है।

मेंढक की हड्डियो में केवल पीत-मज्जा होती है जिसमें वसोतक, चर्बी, तत्रिका तन्तु तथा रुधिर वाहिनियाँ होती हैं। इन्ही वाहिनियो से पोषाहार कैनालीक्यूली में स्थित प्रोटोप्लाज्मिक प्रोसेस द्वारा सभी अस्थि-कोशिकाओं (ostocytes) में पहुँचता रहता है। मज्जा गुहा की बाहरी सतह पर **एण्डौस्टियम** (endosteum) और हड्डी की बाहरी सतह पर सयोजी ऊतक का **पैरिऔस्टियम** या **परिअस्थ्यावरण** (periosteum) होता है। पैरिऔस्टियम में सयोजी ऊतक की बाहरी पर्त के नीचे एक सवहनीय (vascular) पर्त होती है जिसमें **औस्टिओब्लास्ट** (osteoblast) भी होता है। औस्टिओब्लास्ट की सेल्स ही हड्डी का निर्माण करती है। इन कोशिकाओ में एक एन्जाइम उत्पन्न होता है जिससे **फौसफिटेज** (phosphitase) कहते हैं। रुधिर में कैलशियम हैक्सोज फौस्फेट (calcium hexose phosphate) होता है जिसे फौसफिटेज अघुलनशील बनाकर मैटरिक्स में इकट्ठा कर देता है। एण्डऔस्टियम की कोशिकाओ के विभाजन से नई अस्थि-कोशिकाएँ बनती हैं।

स्तनधारियो में हड्डी की रचना अधिक जटिल होती है। इनकी लम्बी

हड्डियों में अनेक हेवरशियन-कैनाल्स (Haversian canals) होती हैं जो
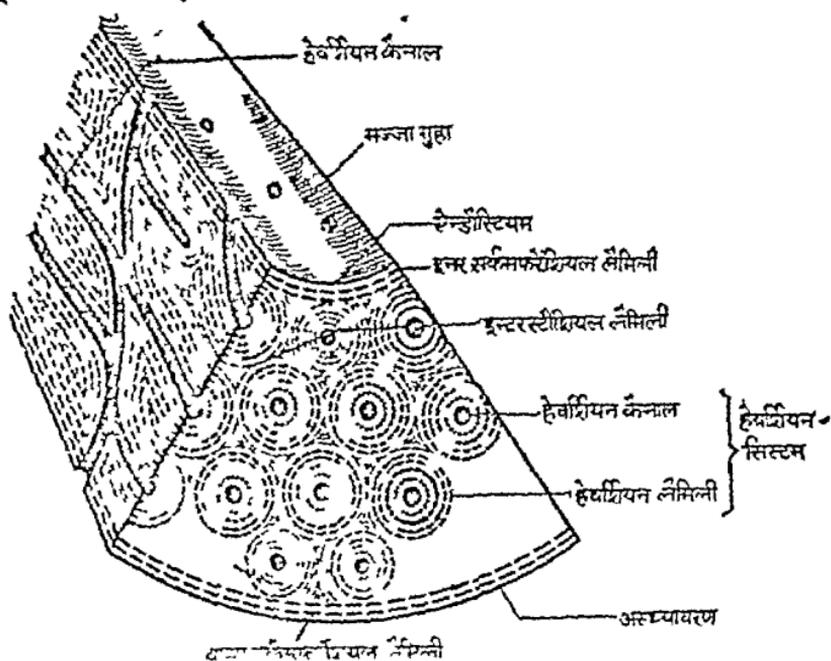
चित्र २८—स्तनधारी की लम्बी हड्डी का ट्रांसवर्स तथा लौंगिट्यूडिनल सेक्शन
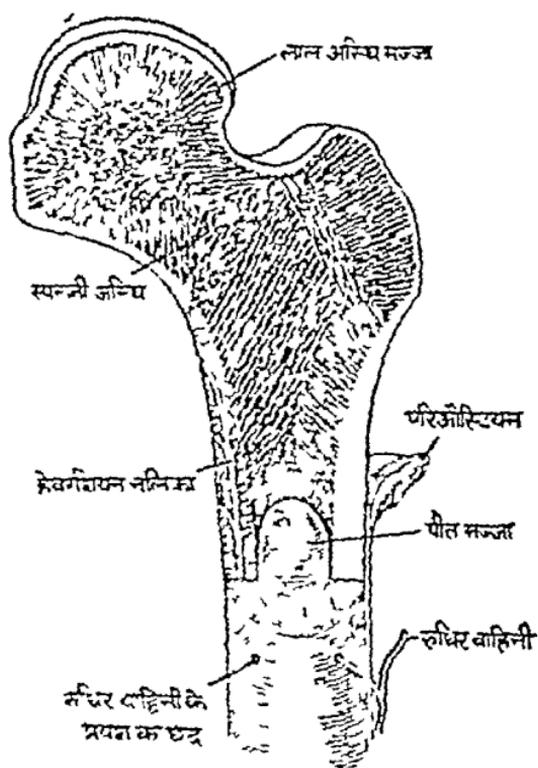
चित्र २९—स्तनधारी की हड्डी में लाल तथा पीतमज्जा की स्थिति

हड्डी की लम्बाई के समानान्तर फैली होती हैं। ये शाखान्वित होती हैं और इनमें से कुछ हड्डी के बीचोबीच में स्थित मज्जा-गुहा (marro cavity) में और कुछ वाहर की ओर खुलती हैं। जीवित अवस्था में धमनियो तथा शिराओं की शाखाएं हेवरशियन कैनाल में फैली होती हैं। मेंढक की तरह स्तनधारियो की हड्डी में भी पैरिओस्टियम तथा एण्डओस्टियम होते हैं किन्तु इनमें चार प्रकार की लैमिलो (lamellae) मिलती हैं। पैरिओस्टियम के नीचे

वाहरी परिधि लैमिली (outer contour lamellae), एण्डऔस्टियम के वाहर भीतरी परिधि दलों (inner contour lamellae) और प्रत्येक हेवरशियन कैनाल के चारो ओर हेवरशियन लैमिली (Haversian lamellae) मिलती हैं। हेवरशियन कैनाल और उसके चारो ओर स्थित लैमिली मिलकर हेवरशियन तन्त्र (Haversian system) कहलाते हैं। मेढक की तरह यहाँ भी लैमिली के वीच-वीच मे लैक्युनी (lacunae) होती है जिनमें अस्थि-कोशिकाएँ मिलती है जो कैनालीक्यूली में स्थित प्रोटोप्लाज्मिक प्रोसस द्वारा परस्पर जुडी रहती हैं।

मेढक के विपरीत स्तनवारियो की हड्डियो मे पीत-मज्जा (yellow marrow) के अतिरिक्त लाल-मज्जा (red marrow) भी होती है। यह खोपडी की चपटी हड्डियो तथा अगली और पिछली टाँगो की लम्बी हड्डियो के सिरो में मिलती है। लाल-मज्जा मे लाल रुधिर कणिकाएँ तथा एक प्रकार की श्वेत रुधिर कणिकाएँ (ग्रैन्यूलोसाइट्स) वनती हैं।

हड्डी और कार्टिलेज में अन्तर

हड्डी	कार्टिलेज
(१) इसमे मैटरिक्स औस्टिइन (ostein) का वना होता है।	(१) इसका मैटरिक्स कोन्ड्रिन का होता है।
(२) हड्डी की कोशिकाओ को रुधिर-वाहिनियां पोपाहार पहुँचाती हैं।	(२) इसमे रुधिर-वाहिनियाँ नही होती जिससे इसकी कोशिकाओ को पोषाहार लसीका या लिम्फ द्वारा मिलता है।
(३) अस्थि-कोशिकाएँ लैमिली के वीच-वीच में मिलती हैं।	(३) कोन्ड्रोव्लास्ट या कार्टिलेज कोशिकाएँ २-४ के समूह में छितरी हुई मिलती हैं।
(४) नई अस्थि-कोशिकाएँ सदैव औस्टिओव्लास्ट के विभाजन से वनती हैं।	(४) कार्टिलेज-कोशिकाओं की सख्या स्वय उनके विभाजन से वढ़ती है।
(५) लैक्यूनी से जुडी कैनाली-क्युली होती है।	(५) इसमें कैनालीक्युली नही होती।

रुधिर तथा लसीका (Blood and Lymph)

ये दोनो एक प्रकार के तरल सयोजी ऊतक हैं। रुधिर का मैटरिक्स (matrix) एक तरल पदार्थ के रूप में होता है जिसे प्लाज्मा (plasma) कहते हैं। इसी मे तीन प्रकार की कणिकाएँ (corpuscles) मिलती हैं जो वास्तव में कोशिकाएँ या सेल्स हैं। प्रारूपिक (typical) सयोजी ऊतक की तरह रुधिर भी अगो को जोडता तथा उन्हे आधार प्रदान करता है। इसे सयोजी

फा० ४

ऊतक की श्रेणी में न रखने के लिए भी कुछ दलीलें हैं—इसका मैटरिक्स रुधिर कणिकाओ द्वारा नही उत्पन्न होता, सामान्य रुधिर कणिकाएँ सयोजी ऊतक कोशिकाओ की भाँति पूर्व रुधिर-कणिकाओ के विभाजन फलस्वरूप नहीं बनती।

(३) पेशी ऊतक
(Muscular Tissue)

इस प्रकार के ऊतक में कोशिकाएँ आमतौर पर बहुत लम्बी और सँकरी होती हैं। इसी लिए इन्हें तन्तु (fibres) कहते हैं। एपिथीलियम की भाँति इसमें भी मैटरिक्स (matrix) का लगभग अभाव होता है। पेशी ऊतक निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है —

(अ) अरेखित पेशी (unstriated muscle)
(आ) रेखित पेशी (striated muscle)
(इ) हृदीय या कार्डिएक पेशी (cardiac muscle)

ऊपर की तीनो प्रकार की पेशियाँ एक दूसरे से रचना (structure), स्थिति, उद्गम (origin) तथा तंत्रिका प्रदान (nerve supply) में भिन्न होती हैं।

(अ) अरेखित पेशी (unstriated muscle)—इसकी कोशिकाएँ लम्बी, सँकरी और धागे के समान पतली होती हैं। लम्बाई में ये १/५०० इंच और चौडाई में १/४००० इंच होती हैं। इनके दोनो सिरे नुकीले होते हैं। प्रत्येक तन्तुवत् कोशिका के बीचो-बीच में एक लम्बा न्यूक्लियस होता है। इसके चारो ओर स्वच्छ साइटोप्लाज्म होता है जिसे सारकोप्लाज्म (sarcoplasm) कहते हैं। शेष साइटोप्लाज्म में असंख्य छोटे-छोटे पेशीतन्तुक (myofibrillae) होते हैं। इन्हीं की उपस्थिति से इस प्रकार की पेशी कुचनशील (contractile) होती हैं।
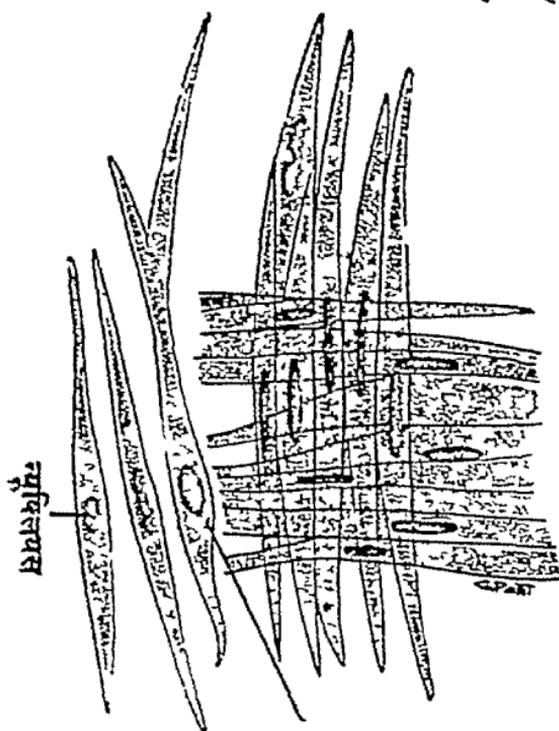
चित्र ३०—अरेखित पेशी तन्तु

अनेक अरेखित पेशी तन्तु मिलकर पतली और चपटी पर्त या नली वनाते हैं जो आहार-नाल, मूत्राशय, रुधिर-वाहिनियो मूत्र-वाहिनी (ureter) में मिलते हैं। इनमें सिम्पायेटिक और पैरासिम्पायेटिक (parasympathetic) तत्रिका तत्र होते हैं। इनमे धीरे-धीरे किन्तु देर तक कुचन की शक्ति होती है। मनुष्य में इस प्रकार के पेशी-तन्तुओ को **अनैच्छिक** (involuntary) भी कहते हैं क्योकि इनकी क्रिया पर इच्छा शक्ति का कोई नियत्रण नही रहता। किन्तु मेंढक तथा अन्य प्राणियो में इसे इस नाम से पुकारना उचित नही है क्योकि इनकी इच्छाशक्ति का हमें ज्ञान नही हो सकता।

(आ) **रेखित पेशियाँ** (striped muscles)—इस प्रकार की पेशी ककाल (skeleton) से जुडी रहती है और शरीर के मासल भाग का अधिकाश हिस्सा इसी प्रकार की पेशी का वना होता है। ककाल से घनिष्ठ सम्वन्ध होने के कारण इसे ककाल **या स्कैलिटल पेशी** (skeletal muscle) भी कहते हैं। इस प्रकार की पेशी के एकक (unit) को कोशिका न कहकर **सिनसीशियम या शकोशोति** (syncytium) कहते हैं। यह २·५ सेन्टीमीटर लम्बा और ०·०५ मिलीमीटर चौडा होता है। अरेखित तन्तुओ की तरह इसके सिरे नुकीले नही होते और इनकी वाहरी सतह **पेशी-चोल** या **सार्कोलीमा** (sarcolemma) की वनी होती है। सार्कोलीमा से घिरे सार्कोप्लाज्म (sarcoplasm) में अनेक पेशी तन्तुक या **मायोफिब्रिल** (myofibril) होते हैं। ये तन्तुक पेशी तन्तु (fibre) की लम्वाई के समान्तर फैले रहते हैं। प्रत्येक पेशी तन्तुक में एकान्तरिक गहरे (dark) और हल्के रग की पट्टियाँ होती हैं। सभी तन्तुको में गहरे रग की पटिटयाँ एक सीध में होती हैं जिससे इस प्रकार के पेशी तन्तु धारीदार या रेखित दिखाई देते हैं। प्रत्येक हल्के रग की पट्टी को, **क्राउसेस मेम्ब्रेन** (Krause's membrane) कहते हैं। यह

चित्र ३१—एक रेखित पेशी तन्तु तथा तन्तुक का विशालित दृश्य

जो कि एक ओर की सार्कोलीमा से दूसरी ओर की सार्कोलीमा तक फैला होता है जिससे लाइट बैंड दो समान भागों में बँट जाता है। न्यूक्लियाई आमतौर पर सार्कोलीमा के नीचे मिलते हैं।

रेखित पेशियाँ दो प्रकार की होती हैं—लाल तथा श्वेत। लाल पेशी तन्तुओं (red muscle fibres) में श्वेत पेशी तन्तुओं की अपेक्षा सार्कोप्लाज्म की मात्रा अधिक होती है किन्तु पेशी तन्तुओं (fibrils) की संख्या कम होती है, न्यूक्लियाई छितरे होते हैं और इनमें धारियाँ भी कम स्पष्ट होती हैं। दोनों मिले-जुले मिलते हैं। लाल तन्तु (red fibres) धीरे-धीरे किन्तु काफी देर तक कुंचन कर सकते हैं और इनका गहरा रंग मायोहीमोग्लोबिन (myohaemoglobin) की उपस्थिति के कारण होता है।

इस प्रकार की पेशी में रुधिर वाहिनियाँ काफी संख्या में होती हैं किन्तु ये सार्कोलीमा में प्रवेश नहीं करती। मोटर या प्रेरक तन्त्रिका (motor nerve) के तन्तु सार्कोलीमा में छेदकर भीतर घुस जाते हैं और यहाँ कई शाखाओं में बँटकर सार्कोप्लाज्म में मोटर एण्ड ऑर्गन (motor end organ) बनाते हैं। यह ऑर्गन कुछ रासायनिक पदार्थ बनाकर इस प्रकार के पेशी तन्तुओं को कुंचन की प्रेरणा देता है।

(इ) कार्डिएक या हृदीय पेशी (cardiac muscles)—रचना में ये अरेखित और रेखित पेशियों के बीच की होती हैं। इसके तन्तु शाखाओं में बँटे होते हैं और ये शाखाएँ परस्पर मिलकर एक सिनसीशियम (syncytium) बनाती हैं। न्यूक्लियाई, धारियाँ (cross-striations) और पेशी तन्तुक (fibrils) दिखाई देते हैं। साथ ही साथ एक न्यूक्लियस को दूसरे से अलग करने के लिए अनुप्रस्थ पट्टियाँ होती हैं जिन्हें इन्टरकॅलेटेड डिस्क (intercalated discs) कहते हैं। हृदीय-पेशियाँ जीवन भर विधिवत् कुंचन करती रहती हैं फिर भी रेखित पेशियों की तरह इनमें लेशमात्र थकान नहीं आती।
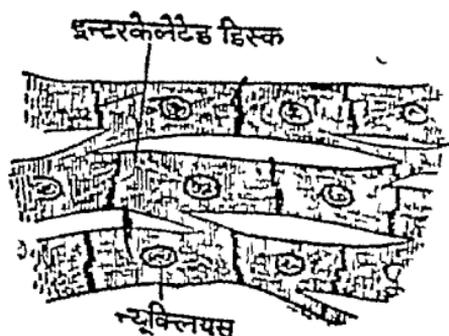
इन्टरकॅलेटेड डिस्क
न्यूक्लियस

चित्र ३२—कार्डिएक पेशी

(४) तन्त्रिका ऊतक या नर्वस टिशू
(Nervous tissue)

इसमें तन्त्रिका-कोशिकाएँ (nerve cells) या तन्त्रिका-कोणिका

(neuron) तथा उन्हे साधे रखनेवाला एक प्रकार का सयोजी-ऊतक मिलता है जिसे **तन्त्रिकाधारी** (neuroglia) कहते हैं।

वास्तव में **तन्त्रिका कोणिका** या **न्युरन** (neuron) ही तन्त्रिका तन्त्र का एकक (unit) होता है। प्रत्येक तन्त्रिका कोणिका में, जो व्यास में लगभग १०० म्यू (μ) होती है, एक न्यूक्लियस होता है। न्यूक्लियस के चारों ओर साइटोप्लाज्म होता है। इस साइटोप्लाज्म में तन्त्रिका-तन्तुक या न्यूरोफिब्रिली (neurofibrillae) मिलती हैं जो तन्त्रिका सवेगो को लाने और ले जाने में सहायता देते हैं।

तन्त्रिका कोणिका से दो प्रकार के प्रवर्ध (processes) जुडे रहते हैं। आमतौर पर छोटे और शाखान्वित (branched) **प्रोसेस डेनड्रौन** (dendron) कहलाते हैं। इनकी सख्या एक या एक से अधिक हो सकती है और ये सभी सदैव तन्त्रिका सवेगो (nervous impulses) को तन्त्रिका-कोणिका या न्यूरन के कोशिका काय (cell body) में पहुँचाते हैं। प्रत्येक न्यूरन में सदैव एक बहुत लम्बा **प्रोसेस** होता है जिसे **एक्सौन** (axon) या **लांगूल** कहते हैं। इसकी लम्बाई कई फीट हो सकती है और कभी-कभी इससे पार्श्व शाखायें निकलती हैं जिन्हे **सपार्श्विक** या **कोलेट्रल** (collateral) कहते हैं। इसका स्वतत्र शिरा अनेक सूक्ष्म शाखाओ मे बँटा होता है। इन्हें **टीलोडेन्ड्रिया** (telodendria) कहते हैं। ये तन्त्रिका सवेगो को सदैव न्यूरन की कोशिका काय से दूर ले जाते हैं —

कोशिका-काय से निकलनेवाले प्रोसेस की सख्या के आधार पर न्यूरन या तन्त्रिका-कोणिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं —

(१) **एकध्रुवीय** या **यूनिपोलर** (unipolar)—ऐसी तन्त्रिका कोणिकाओ में एक्सौन तथा डेन्ड्रौन दोनो एक दूसरे से इतने सटे हुए निकलते हैं कि एक ही प्रवर्ध (process) दिखाई देता है। इसलिए इन्हें एकध्रुवीय कहना भ्रान्तिमूलक है।

(२) **द्विध्रुवीय** (bipolar)—इस प्रकार के न्यूरन में एक सिरे से एक डेन्ड्रौन और दूसरे सिरे से एक एक्सौन निकलता है।

(३) **बहुध्रुवीय** (multipolar)—इनमें डेन्ड्रौन्स की सख्या एक से अधिक किन्तु एक्सौन एक ही होता है।

एक्सौन तथा डेन्ड्रौन दोनो ही आवश्यकतानुसार दो प्रकार के आवरणो से ढके हो सकते हैं। इनमे से एक आवरण एक प्रकार की चर्बी का बना होता है। यह मोटा और सफेद होता है और मेडयूलरी शीथ (medullary sheath) या **माइलिन** (myelin) **शीथ** कहलाता है। इसके बाहर एक पतली कोशिकीय

(cellular) तथा पारदर्श झिल्ली होती है जिसे न्यूरोलेमा (neurolemma) कहते हैं। एक्सौन का वह भाग जो इन दोनो आवरणो से ढका रहता है एक्सिस सिलिन्डर (axis cylinder) कहलाता है।

चित्र ३३—तन्त्रिका ऊतक
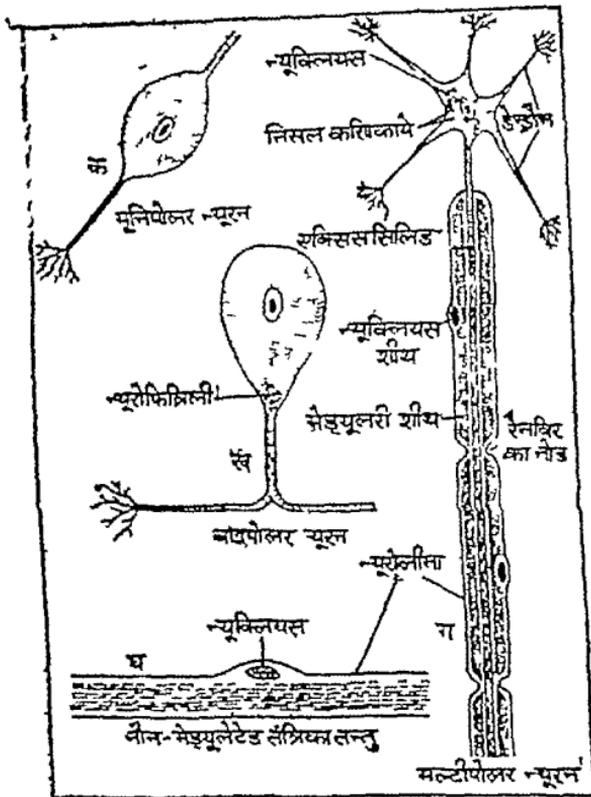
न्यूरोलेमा के नीचे प्रोटोप्लाज्म की एक बहुत ही पतली पर्त होती है जिसमें कही-कही न्यूक्लियाई भी दिखाई पडते हैं। इन्हें शीथ न्यूक्लियाई (sheath nuclei) कहते हैं। तन्त्रिका तन्तुओ के नष्ट हो जाने पर न्यूरोलेमा ही उनका पुनर्जनन (regeneration) करता है। इसके विपरीत मैड्युलरी शीथ को बनाने का काम एक्सिस सिलिन्डर करता है। इस प्रकार के तन्त्रिका तन्तुओ को मैडयुलेटेड (medullated) कहते हैं। ये क्रेनियल तथा स्पाइनल तन्त्रिकाओ में मिलते हैं। ये आमतौर पर बहुत लम्बे होते हैं जिससे कोशिका-काय के लिए इनकी पूरी लम्बाई में पोषाहार पहुँचाना सभव नही होता है। इसीलिए मैड्युलेटड तन्तुओ में मैड्युलरी शीथ जगह-जगह कटी होती है जिससे न्यूरोलेमा इन स्थानो में भीतर धँस जाती है। इस प्रकार जो सिकोड (constriction) बन जाते हैं रैनवियर के सिकोड (nodes of Ranvier) कहते हैं। ये लगभग १ मिलीमीटर की दूरी पर स्थित होते हैं और इनमें न्यूरोलेमा भीतर धँसकर एक्सिस सिलिण्डर को छूने लगती है। यही पर लसीका या लिम्फ से भोजन एक्सिस सिलिण्डर तक सरलता से पहुँच जाता है।

जिन तन्त्रिका-तन्तुओ में मैड्युलरी शीथ नही होती उन्हें नॉन मैडयुलेटेड (non-medullated) कहते हैं। इनमें केवल न्यूरोलेमा होती है। इस प्रकार के तन्तु सिम्पायेटिक तन्त्रिका तन्त्र (sympathetic nervous system) में मिलते हैं।

कार्य के अनुसार तन्त्रिका तन्त्र दो प्रकार के होते हैं। वे सभी जो तन्त्रिका-सवेगो को ग्राहक (receptor) अगो से मस्तिष्क या रीढ रज्जु (spinal cord) में पहुँचाते है अभिवाही या केन्द्रगामी (afferent) कहते हैं किन्तु इसके विपरीत जो तन्तु मस्तिष्क या स्पाइनल कौर्ड में उत्पन्न होनेवाले सवेगो को शरीर के अन्य अगो में पहुँचाते हैं उन्हे अपवाही या केन्द्र त्यागी (efferent) कहते हैं। अपवाही (efferent) तन्त्रिका तन्त्र तीन प्रकार के होते हैं—वे जो रेखित पेशियो से सम्बन्धित होते है मोटर (motor) या प्रेरक कहलाते हैं, जिनका अन्त अरेखित पेशियो मे होता है उन्हे प्रावेजक (accelerator) या निषेधक कहते है और जो ग्रन्थियो से जुडे रहते है स्रावक (secretory) कहलाते हैं।

सिनैप्स (Synapse)

दो न्यूरन तन्त्रिका कोशिकाओ का सीधा सम्बन्ध कभी नही होता। एक के डेन्ड्रौन दूसरे के एक्सौन की अन्तिम प्रशाखाओ या टीलोडेन्ड्रिया के अत्यन्त निकट पडे रहते हैं। डेन्ड्रौन और एक्सौन के बीच की यह जगह जो दोनो में क्रियात्मक सवन्ध स्थापित करती है सिनैप्स (synapse) कहलाती है। तन्त्रिका सवेग एक न्यूरन से दूसरे में केवल सिनैप्स ही द्वारा पहुँच पाते हैं और यह यातायात सदैव एक ही दिशा में होता है। यद्यपि सिनैप्स में एक्सौन की अन्तिम शाखाएँ डेन्ड्रौन की शाखाओ के अत्यन्त निकट होती हैं फिर भी परस्पर मिलती नही। इसलिए जन्तु-वैज्ञानिको का ऐसा मत है कि इस स्थान मे एसिटलकोलीन (acetylcholine) नाम का हारमोन बनता है जो शीघ्र ही एक छोर से दूसरे छोर तक फैल जाता है और इस प्रकार सवेग एक न्यूरन से दूसरे में पहुँच जाते हैं।

अंग तथा अंग-तंत्र
(Organs and Organ Systems)

विभिन्न प्रकार के ऊतको के समूह जो मिल-जुलकर एक ही प्रकार का काम करते हैं, अग-विशेष का निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिए आमाशय को ले लीजिये। इसकी रचना में एपिथीलियम, पेशी तथा सयोजी ऊतक मिलते हैं। इन सभी ऊतको की क्रियाओ के बल पर आमाशय आहार-नाल की कुछ विशेष क्रियाओ को करता है। इसी प्रकार जन्तुओ के शरीर में अनेक अग मिलते हैं।

शरीर में विभिन्न अग स्वाधीन होकर कार्य नही करते बल्कि कई अग जो अलग अलग कार्य करते है मिलकर अग-तन्त्र (organ system) का निर्माण करते हैं। इस प्रकार मुखगुहा, ईसोफेगस, ड्यूओडीनम तथा छोटी आँत तथा साथ की ग्रन्थियाँ मिलकर पाचक तन्त्र (digestive system) का निर्माण करती हैं।

मेढक तथा अन्य वरटिब्रेट प्राणियो में निम्नलिखित अग-तत्र मिलते हैं। उनका पूरा वृत्तान्त तुम आगे के अध्यायों में पढ़ोगे —

(१) पाचक-तत्र (Digestive system)—इसमे आहार-नाल तथा साथ की ग्रन्थियाँ होती हैं।

(२) श्वसन-तत्र (Respiratory system)—इसमें फेफड़े, मुख-गुहा तथा साथ के वायु-मार्ग होते हैं।

(३) परिवहन-तत्र (Circulatory system)—इसमें रुधिर, लसीका (lymph), हृदय, रुधिर-वाहिनियाँ तथा लसीका वाहिनियाँ होती हैं।

(४) जनन मूत्र-तत्र (Urino-genital system)—इसमें जननेन्द्रियाँ तथा उत्सर्जन अग (Excretory organs) होते हैं।

(५) तत्रिका तत्र (Nervous system)—मस्तिष्क, स्पाइनल कौर्ड तथा इन दोनो से निकलनेवाली तत्रिकाएँ तथा सिम्पाथेटिक तत्रिका तत्र (Sympathetic nervous system) होते हैं।

(६) ककाल तत्र (Skeletal system)—इसमें कार्टिलेज और हड्डियो द्वारा निर्मित ढाँचा होता है।

(७) ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organ)—इसमें आँख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा के समान ग्राहक अग (receptor organs) होते हैं।

(८) पेशी तत्र (Muscular system)—इसमें पेशियाँ होती हैं।

(९) अन्त स्रावी तत्र (Endocrine system)—इसमें अवाहिनी ग्रन्थियाँ (ductless glands) होती हैं।

प्रश्न

१—जन्तुओ में कितने प्रकार के ऊतक (tissues) होते हैं? एपिथीलियम की रचना और कार्य का वर्णन करो।

२—किसी प्रारूपिक (typical) जन्तु-कोशिका की रचना समझाओ।

३—पेशी ऊतक कितने प्रकार के होते हैं? रेखित तथा अरेखित पेशी तन्तुओं की रचना तथा कार्य में क्या अन्तर होता है?

४—मेढक की डिकैलसीफाएड हड्डी के ट्रासवर्स सेक्शन का चित्र बनाकर उसकी रचना समझाओ।

५—रुधिर, कडरा (tendon), स्नायु (ligament), म्यूकस मेम्ब्रेन तथा वसोतक किस प्रकार के ऊतक हैं? चित्र बनाकर इनकी रचना समझाओ।

६—तत्रिका-ऊतक में कितने प्रकार की कोशिकाएँ मिलती हैं। सभी का चित्र सहित वर्णन करो।

अध्याय ५

पाचन-तंत्र

पाचन-तत्र में वे सभी अग होते हैं जिनका काम भोजन को ग्रहण करना, उसे धीरे-धीरे आहार-नाल में खिसकाना, भोजन को पचाना, पचे हुए भोजन को सोखना और अन्त में अपच अवशेष को बाहर निकाल फेंकना है। मेढक की आहारनाल एक लम्बी और कुडलित नली है जो एक सिरे पर मुखगुहा में दूसरे सिरे पर क्लोएका में होकर बाहर खुलती है। सर्वप्रथम हम मुखगुहा लेंगे।

मुखगुहा (Mouth Cavity)

मुखगुहा दोनो जबडो के बीच में स्थित होती है। मेढक का मुख (mouth) काफी चौडा होता है और एक ओर के कर्णपटह (tympanum) से दूसरे ओर के कर्ण-पटह तक फैला होता है। शिकार को समूचा निगलनेवाले सभी
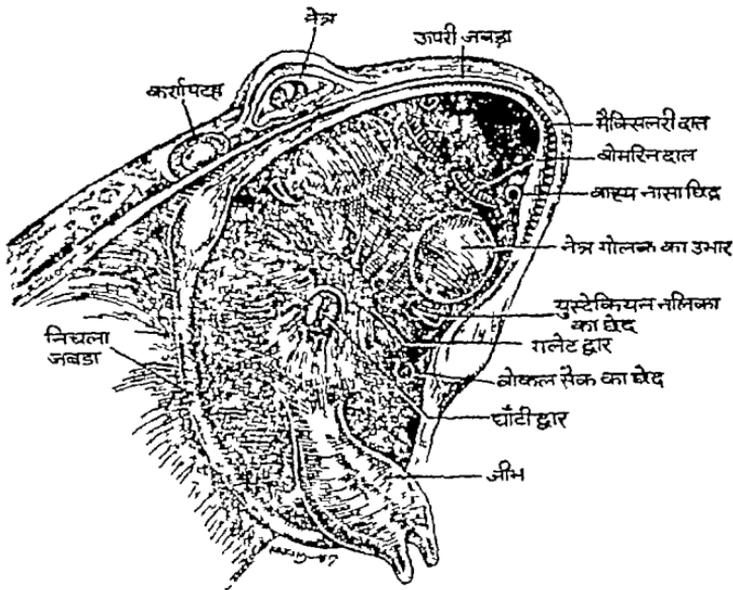
चित्र ३४—मेढक की खुली हुई मुखगुहा

जन्तुओ में विशाल मुख की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे मुख से जीभ द्वारा शिकार पकडने में भी सुविधा होती है। चूंकि मेढक भोजन को

दांतो द्वारा कुचलता नही इसलिए "गाल" (cheek) तथा होठ (lips) भी अनावश्यक होते हैं।

दांत—मेढक का ऊपरी जबडा अचल होता है किन्तु निचला जबडा या अधोहनु (lower jaw) ऊपर नीचे हिल-डुल सकता है। मेढक के ऊपरी जबडे मे अनेक, छोटे-छोटे नुकीले, पास-पास स्थित कटियानुमा मैक्सिलरी दांत (maxillary teeth) होते हैं। निचले जबडे में दांत नहीं होते। मुखगुहा की छत में मध्य रेखा के इधर-उधर वोमरिन दांतो (vomerine teeth) का एक समूह मिलता है। मेढक के सभी दांत एक ही आकृति के होते हैं। इसे समदन्ती-दतविन्यास (homodont dentition) कहते हैं। जैसे जैसे ये टूटते या घिसते जाते हैं, इनकी जगह नये दांत निकल आते हैं। इस प्रकार मेढक के जीवन-काल में आवश्यकतानुसार कई बार नये दांत निकल सकते हैं। इसे बहुदती (polyphyodont) दत-विन्यास कहते हैं। मेढक भोजन को दातो से चभलाता नही वरन् निगल जाता है। इसलिए इसके दांत नुकीले होते हैं तथा कुछ पीछे की ओर मुडे रहते हैं जिससे लसलसी जीभ द्वारा पकडा शिकार मुखगुहा में आते ही किसी भी प्रकार निकल भाग नहीं सकता।
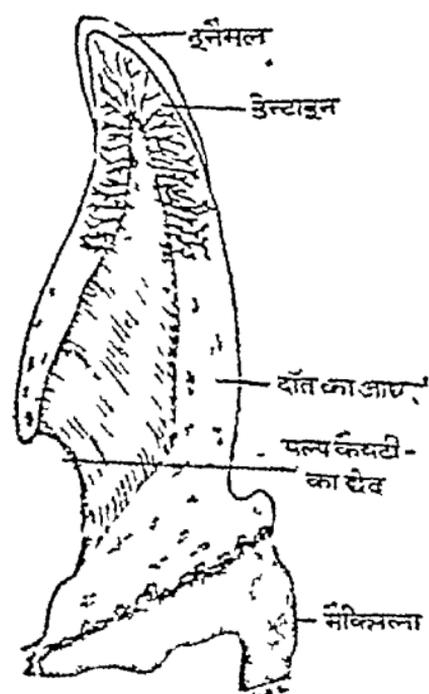
चित्र ३५—मेंढक के दांत की सरचना

जीभ—मेढक की अनोखी जीभ आगे की ओर चपटी और सकरी होती है और निचले जबडे के सिरे के पास ही जुडी रहती है। इसका पिछला भाग चौडा तथा द्विशाख (bifurcated) होता है। निष्क्रिय अवस्था मे यह मुखगुहा की भूमि (floor) पर पडी रहती है किन्तु शिकार की झलक पाते ही मेढक झटके के साथ उसके स्वतन्त्र सिरे को बाहर फेकता है। मुखगुहा की छत पर अनेक ऐसी ग्रन्थियां होती हैं जो एक प्रकार का लसलसा रस उत्पन्न करती हैं। बाहर जाते समय जीभ का पिछला स्वतन्त्र भाग इस स्राव को समेटे हुए निकलता है। इसी में छोटे-मोटे कीडे उलझ जाते हैं और जीभ इन्हें अपने साथ मुखगुहा में ले आती है। जीभ के निचले भाग में अनेक लिम्फ-कोष (lymph sacs)

होते हैं। पेशी-कुचन से जब ये लिम्फ से भर जाते हैं तो जीभ झटके के साथ बाहर आ जाती है। इस प्रकार मेंढक मे जीभ कीडे-मकोडो को पकडने का वहुत ही सफल यत्र है।

वोमरिन दाँतो (vomerine teeth) के प्रत्येक समूह के बाहर तथा कुछ ऊपर एक छोटा छेद होता है जिसे **आन्तरिक नासा-छिद्र** (internal nares) कहते हैं। यह अपनी ओर के **बाह्य नासा-छिद्र** से मिला रहता है। आन्तरिक नासा-छिद्रो के पीछे दो बडे गोल उभार से दिखाई देते हैं जो वास्तव मे दोनो **नेत्र-गोलक** (eye balls) हैं। यदि तुम दोनो नेत्रो को अँगुली से दवाओ तो तुम देखोगे कि ये उभार और भी स्पष्ट हो जाते हैं। इन उभारो के पीछे तथा दोनो जवड़ो के जोड के पास प्रत्येक ओर **यूस्टेकियन नली**
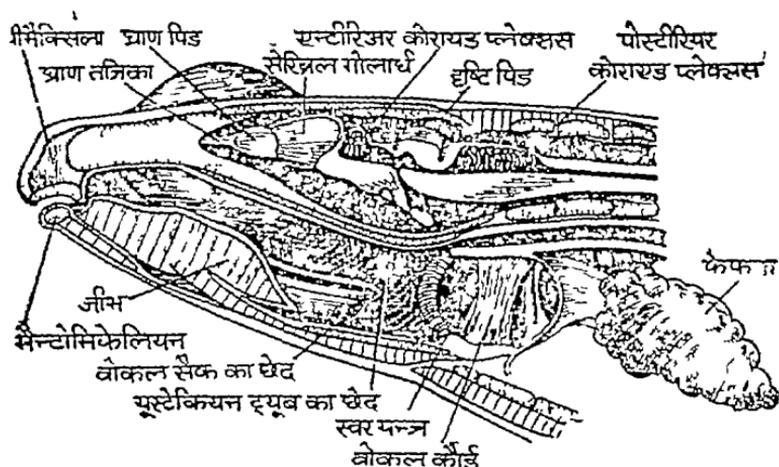
चित्र ३६—मेढक के सिर का लौंगिट्युडिनल सेक्शन

(eustachian tube) का एक तिकोना छेद होता है। नर मेढक में मुखगुहा के फर्श पर जीभ के नीचे इधर-उधर एक एक गोल छेद होता है जो अपनी ओर के **वोकल सैक या स्वर-कोष** (vocal sac) में खुलता है।

मुखगुहा का पिछला भाग **फैरिक्स या ग्रसनी** (pharynx) कहलाता है। इस भाग में दो छेद होते हैं। बडा तथा झुर्रियो (folds) से घिरा ईसोफेगस-द्वार होता है। इसके पीछे एक छोटी सी दरार होती है जिसे ग्लॉटिस खडी या **घाँटी-द्वार** (glottis) कहते हैं।

आहार-नाल

(Alimentary Canal)

गर्दन के न होने से मेढक में ईसोफेगस (oesophagus) छोटी किन्तु चौडी और लचीली-नाल के रूप मे होता है। भोजन से भरे होने पर यह
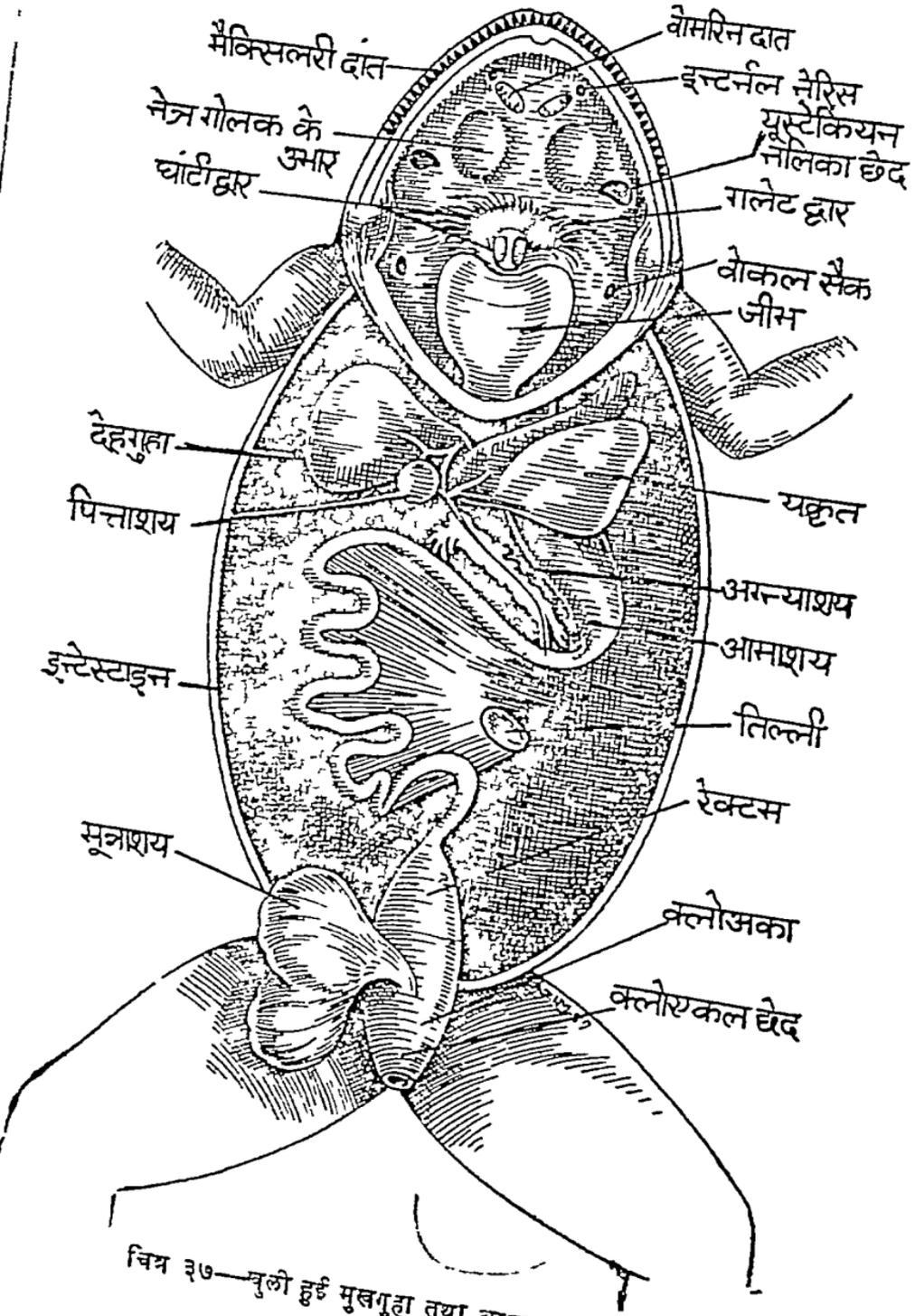
चित्र ३७—खुली हुई मुखगुहा तथा आहार-नाल

आसानी से फैल जाता है और खाली होने पर पिचक जाता है। इसका निचला सिरा **आमाशय** (stomach) में खुलता है। यह आहार-नाल का सबसे चौडा धनुषाकार थला होता है जो देह-गुहा के बाएँ भाग में स्थित होता है। इसकी लम्बाई लगभग २ इंच होती है और इसका अगला भाग पिछले भाग की अपेक्षा अधिक चौडा होता है। इसके चौडे अगले भाग को **कार्डिएक भाग** (cardiac portion) और पिछले सँकरे भाग को **पाइलोरिक भाग** (pyloric portion) कहते हैं। आमाशय की भीतरी सतह में अनेक लम्बी प्लेटें (folds) होती हैं जो एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती है। इनकी सहायता से आवश्यकता पडने पर आमाशय काफी फैल जाता है।

आमाशय और छोटी आँत के बीच स्थित सँकरे छेद को **पाइलोरस** (pylorus) कहते हैं। यह द्वार अरेखित पेशियो के एक छल्ले से घिरा रहता है। यह छल्ला एक प्रकार का वाल्व बनाता है जिसमें होकर भोजन के केवल बहुत छोटे-छोटे टुकडे ही छोटी आँत में जा सकते हैं।

छोटी आँत या **क्षुद्रांत्र** (small intestine) का प्रारम्भिक भाग जो कि आमाशय के समान्तर फैला होता है, **ड्यूओडीनम** (duodenum) कहलाता है। इसी का अगला सिरा **इलियम** (ileum) में खुलता है जो कि ८-१० इंच लम्बी और कुडलीदार (coiled) होती है। छोटी आँत की भीतरी सतह पर अवशोषक ट्रांसवर्स धारियाँ (ridges) होती हैं जिनके कारण इसका क्षेत्रफल कई गुना बढ जाता है।

चित्र ३८—क, आमाशय तथा ड्यूओडीनम, ख, इलियम और मलाशय की भीतरी सतह।

इलियम का निचला सिरा **वृहदांत्र** (large intestine) में खुलता है जो लगभग १½-२ इंच लम्बी हो सकती है। छोटी आंत की अपेक्षा यह बहुत चौडी होती है और इसका अन्तिम भाग जो मल-मूत्र तथा जनन-कोशिकाओ को बाहर निकालता है क्लोएका

(cloaca) या अवस्कर कहलाता है। क्लोएकल छेद (cloacal aperture) भी अरेखित पेशी के एक छल्ले से घिरा रहता है। जब मल काफी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है तभी क्लोएकल छेद खुलता है जिससे मल बाहर निकल सके। आहार-नाल के अन्य भागों की अपेक्षा वृहदान्त्र की दीवार पतली होती है और इसकी भीतरी सतह पर प्लेटें (folds) भी कम होती हैं।

हिस्टोलोजिकल रचना
(Histological Structure)

आहार-नाल के विभिन्न अंगों के कार्य का ठीक-ठीक समझने के लिए इनकी सूक्ष्म-रचना का समझना आवश्यक है। मेंढक तथा अन्य वरटिब्रेटस की आहार नाल में चार पर्तें या स्तर (layers) होते हैं जो भीतर से बाहर की तरफ निम्न क्रम में मिलते हैं —
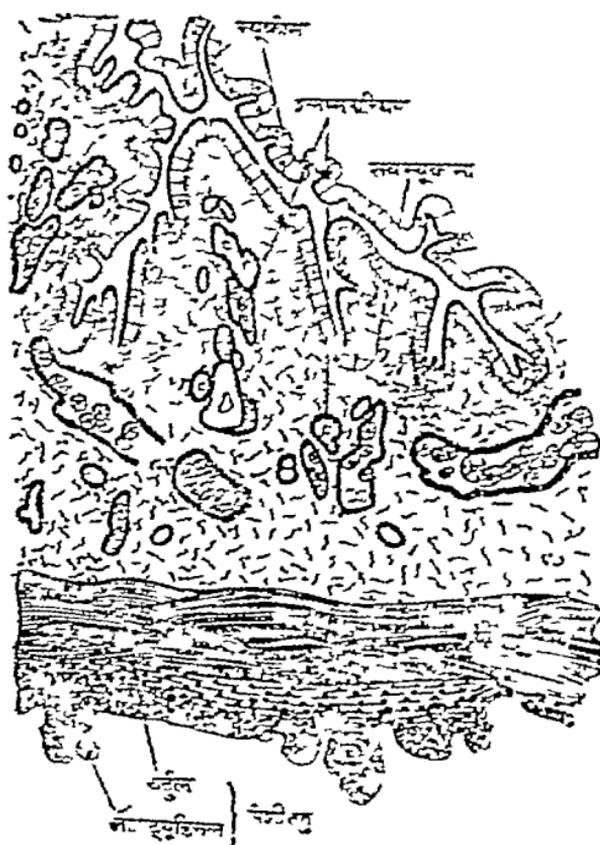
चित्र ३९—मेंढक के ईसोफेगस के अनुप्रस्थ सेक्शन का कुछ भाग

(१) म्यूकोजा (mucosa) या श्लेष्मिका

(२) सबम्यूकोजा या अव श्लेष्मिका (submucosa)

(३) पेशीय स्तर (muscular layer)
(४) पेरिटोनियम (peritoneum)

(क) ईसोफेगस (oesophagus)—आहार-नाल के विभिन्न भागो में इन चारो स्तरो में आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाते हैं। सबसे अधिक परिवर्तन म्यूकोसा में मिलता है। ईसोफेगस मे म्यूकोसा कौलमनर एपिथीलियम (columnar epithelium) का बना होता है। इसमें जगह-जगह सीलिएटेड तथा गौबलेट सेल्स (goblet cells) होती हैं। म्यूकोसा के जगह-जगह सब-म्यूकोसा मे धँस जाने के फलस्वरूप कम्पाउण्ड एलव्योलर ग्रन्थियाँ (compound alveolar glands) बन जाती है। इन ग्रन्थियो की वाहिनियाँ (ducts) ईसोफोगस की भीतरी सतह पर खुलती है। ये ग्रन्थियाँ म्यूकस बनाती हैं जो इसकी सतह को चिकना बनाये रखता हैं। सब-म्यूकोसा
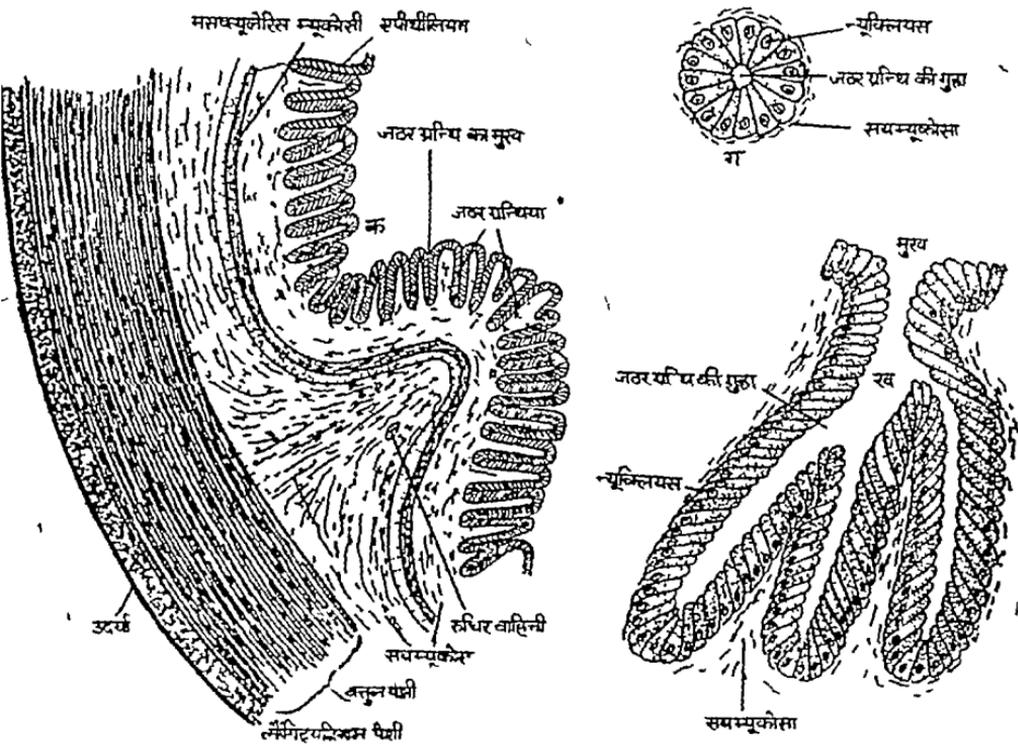
चित्र ४०—क, आमाशय के अनुप्रस्थ सेक्शन का थोडा भाग, ग, जठर ग्रन्थि की वाहिनी का सेक्शन, ख, जठर-ग्रन्थि]

सयोजी ऊतक का बना होता है जो रुधिर वाहिनियों, लिम्फ, वाहिनियो तथा तंत्रिका तन्तुओ को साधे रखता है। पेशीय स्तर में अरेखित तन्तु होते हैं। यह स्तर दो भागो मे बँटा रहता है। बाहरी पर्त को लौंगिट्युडिनल पेशी और भीतरी को सर्कुलर पेशी (circular muscle) कहते है। सर्कुलर पेशी की पर्त

लौंगिट्युडिनल पेशी की अपेक्षा बहुत मोटी होती है। सबसे बाहर पेरिटोनियम होती है जिसे सिरोसा (serosa) कहते हैं।

(ख) आमाशय—आहार-नाल के अन्य भागो की अपेक्षा आमाशय की दीवारें अधिक मोटी होती हैं। इसके म्यूकोसा (mucosa) में असख्य सरल या सयुक्त ट्यूबलर जठर ग्रन्थियाँ (gastric glands) होती हैं। ये ग्रन्थियाँ म्यूकोसा की सतह पर नन्हे-नन्हे छेदो द्वारा खुलती हैं। इनमें जठर-रस (gastric juice) बनता है। आमाशय में सब-म्यूकोसा में एक और पत होती है जिसे मस्क्युलेरिस म्युकोजी (muscularis mucosae) कहते है। इसमे अरेखित पेशी तन्तुओ की दो पर्तें होती हैं—भीतर सर्कुलर और बाहर लौंगिट्युडिनल। इस स्तर द्वारा आमाशय में मथन क्रिया (churning) होती है। पेशीय-स्तर में बाहर लौंगिट्युडिनल और भीतर सर्कुलर पेशी तन्तु होते हैं। आहार-नाल के अन्य भागो की अपेक्षा आमाशय में सर्कुलर पेशी सबसे अधिक विकसित होती है। कुछ लोगो के मतानुसार लौंगिट्युडिनल पेशी होती ही नहीं। सिरोसा में कुछ लौंगिट्युडिनल पेशी तन्तु होते हैं।

(ग) छोटी आँत (Small intestine)—इसकी दीवार आमाशय की अपेक्षा पतली होती है। म्यूकोसा मोटा और सवहनीय (vascular) होता है। इसमें अनेक एक-कोशिकीय म्यूकस ग्लैण्ड्स होती हैं। साथ ही साथ मिलने-वाली अन्य कोशिकाओ को अवशोपक सेल्स (absordtive cells) कहते हैं। सब-म्यूकोसा में
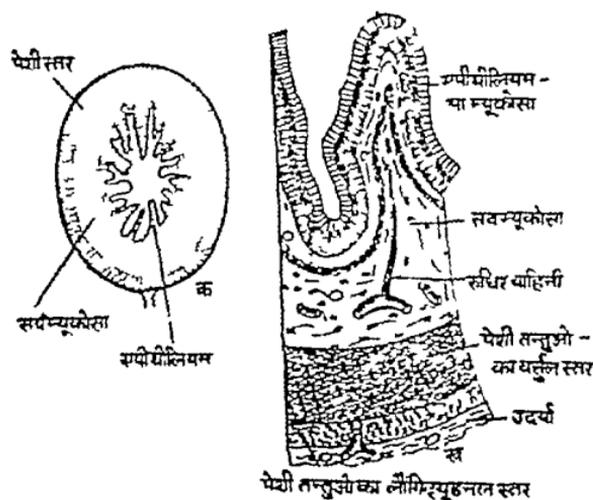
चित्र ४१—क, इलियम का टासवर्स सेक्शन,
ख, इलियम के सेक्शन का थोडा भाग

मसक्युलेरिस म्यूकोसी (muscularis mucosae) का लगभग अभाव होता है और लौंगिट्युडिनल पेशी आमाशय की अपेक्षा यहाँ अधिक मोटी होती है।

(ई) वृहदांत्र (Large intestine)—बडी आँत में भी चारो स्तर मिलते हैं। म्यूकोसा में एक प्रकार की प्लेटें (folds) मिलती हैं जो इसके ऊपरी भाग में एक प्रकार का जाल बनाती हैं किन्तु निचले भाग में लम्बाई से फैली

होती है। म्यूकोसा में जगह जगह गौबलेट-सेल्स (goblet cells) होती हैं।

यकृत (Liver)

पाचक ग्रन्थियो में यकृत सबसे बड़ा होता है। इसका रंग गहरा-लाल होता है और यह देह-गुहा के अगले भाग में स्थित होता है। इसके दाहिने और बायें पिंडको के बीच में एक गोल थैली होती है जिसे पित्ताशय (gall bladder) कहते हैं। यकृत में जो पित्त बनता है वह इसी थैली मे इकट्ठा होता है। इसकी
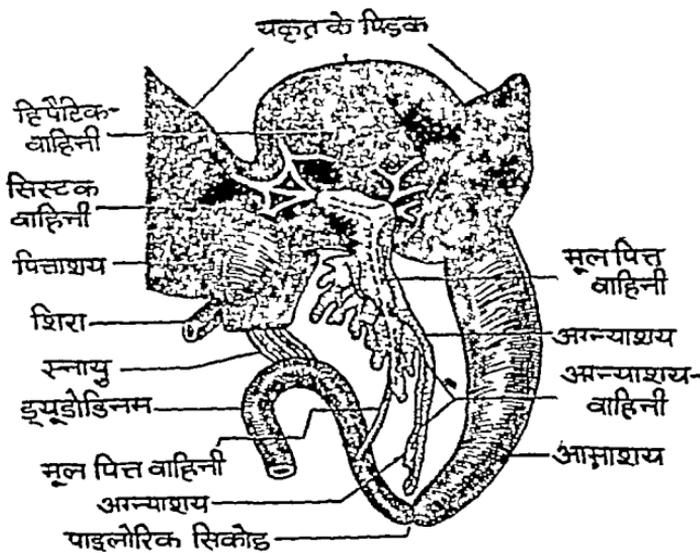
चित्र ४२—मेढक का यकृत तथा अग्न्याशय और संबद्ध वाहिनियाँ

डक्ट को सिस्टिक या पित्ताशय वाहिनी (cystic duct) कहते हैं। यकृत-पिंडको से आनेवाली याकृत-वाहिनियाँ (hepatic ducts) सिस्टिक-वाहिनी से मिलकर साधारण पित्त-वाहिनी (common bile duct) बनाती हैं जो आमाशय और ड्यूओडीनम के बीच मैसेण्टरी द्वारा सधे हुए अग्न्याशय (pancreas) में होती हुई अन्त में ड्यूओडीनम में खुलती है।

हिस्टोलोजी के दृष्टिकोण से यकृत की संरचना जटिल होती है। यकृत का प्रत्येक पिंडक (lobe) अनेक छोटी-छोटी पिंडकाओ (lobules) का बना होता है। ये सभी एक दूसरे से सटे रहते हैं और एक जटिल जाल बनाने के लिए एक दूसरे से मिल जाते हैं। पिंडकाओ के बीच में रुधिर-वाहिनियाँ तथा याकृत वाहिनियाँ (hepatic ducts) होती हैं। यकृत की कोशिकाएँ बहुभुजी (polyhedral) होती हैं। इन सेल्स की पंक्तियों के बीच-बीच में

पित्त केशिकाएँ (bile capillaries) होती है। ये मिलकर पित्त वाहिनियाँ (bile passages) बनाती है। अन्त में अनेक पिंडको की पित्त-वाहिनियाँ मिलकर याकृत-वाहिनियाँ बनाती हैं। प्रत्येक यकृत कोशिका में एक बडा सा न्यूक्लियस होता है। साइटोप्लाज्म ग्रैन्युलर होता है और इसमें प्रोटीन, चर्वी तथा ग्लाइकोजन के कण इकट्‌ठे होते हैं।
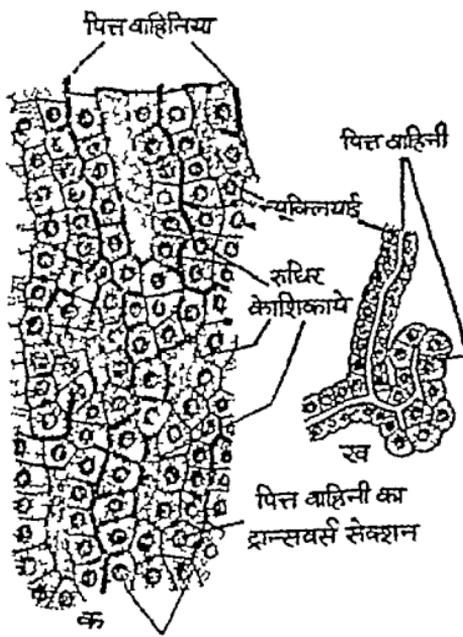
चित्र ४३—क, यकृत का सेक्शन, ख, यकृत का एक लोब्यूल

अग्न्याशय
(Pancreas)

यह लम्वा, चपटा, हल्के पीले रग और अनियमित आकार का होता है और आमाशय तथा ड्यूओडीनम के वीच मैसेण्टरी द्वारा सधा रहता है। साधारण पित्त-वाहिनी (bile duct) में ही इसकी अनेक वाहिनियाँ खुलती है जिससे अग्न्याशय-रस (pancreatic juice) तथा पित्त दोनो ही इसी के द्वारा
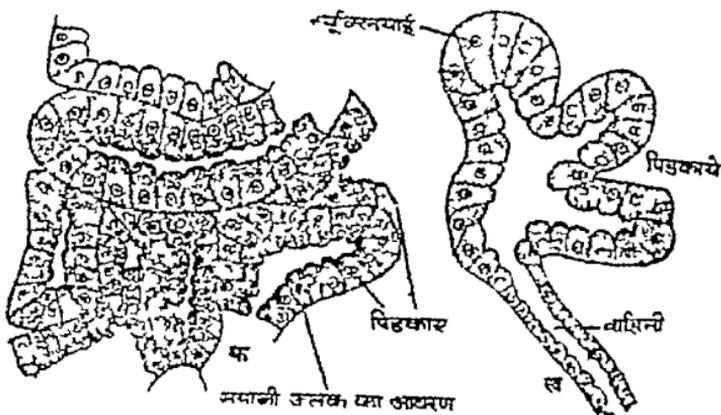
चित्र ४४—क, अग्न्याशय का सेक्शन, ख, एक लोब्यूल

ड्यूओडीनम में पहुँचते हैं। इस ग्रन्थि में भी अनेक पिंडक (lobules) होते हैं। प्रत्येक पिंडल ग्रन्थिल एपियीलियम कडा वना होता है जो अग्न्याशय रस वनाता है। कई पिंडको की वाहिनियाँ परस्पर मिलकर अग्न्याशय वाहिनी (pancreatic duct) वनाती हैं। ये सभी पित्त-वाहिनी में खुलती है।

पैंक्रीएज के सयोजी ऊतक में छितरे हुए **लैंगरहैन्स के समूह** (islets of Langerhans) मिलते हैं। इनमें वाहिनियाँ नही होती जिससे इनका स्राव चारो ओर स्थित केशिकाओ के घने जाल में सीधा पहुँच जाता है। इसी लिए यह **अंत स्रावी ग्रन्थि** या **डक्टलेस ग्लैण्ड** (ductless gland) कहलाता है। लैंगरहैन्स के समूह में एक हारमोन (hormone) बनता है जिसे **इनसुलिन** (insullin) कहते हैं।

भोजन

वे सभी पदार्थ जो जन्तुओ के शरीर में पचने के पश्चात् एनर्जी (energy) उत्पन्न करने, शरीर की वृद्धि (growth) तथा टूट-फूट की मरम्मत में सहायता देते हैं **भोजन** (food) कहलाते हैं। रासायनिक सरचना के आधार पर भोजन कई भागो में बाँटा जा सकता है —(१) **कार्बोहाइड्रेट** (carbohydrate), (२) **प्रोटीन** (protein), (३) **वसा या चर्बी** (fat) (४) **खनिज लवण** (mineral salts) (५) **विटामिन्स** (vitamins) तथा (६) **जल**।

कार्बोहाइड्रेट्स में शक्कर, माडी (starch) तथा सैलुलोज होते हैं। ये सभी कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन के मेल से बनते हैं। इसका मुख्य उपयोग शरीर में एनर्जी उत्पन्न करना है।

वसा या चर्बी भी कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के मेल से बनी होती है। इसमें तेल और चर्बी दोनो ही सम्मिलित हैं। इसका भी मुख्य उपयोग एनर्जी उत्पन्न करना है।

प्रोटीन में नाइट्रोजन भी मिलता है। ये शरीर की उचित वृद्धि तथा ऊतको की टूट-फूट की मरम्मत में विशेषरूप से सहायता देते है।

खनिज लवण शरीर के भार का लगभग ४% भाग बनाते हैं। लगभग २० तत्व (elements) जन्तुओ के शरीर में मिलते हैं। इनमें से कैलशियम कार्बोनेट तथा फौस्फेट हड्डियो में मिलते हैं। लोहा हीमोग्लोबिन में मिलता है। सोडियम क्लोराइड तथा कैलशियम के लवण रुधिर में मिलते हैं। सोडियम और पुटैशियम के लवण पेशियो की क्रियाशीलता के लिए भी आवश्यक होते हैं।

जल की आवश्यकता उपापचय क्रियाओ (metabolic activities) के लिए सबसे अधिक आवश्यक होती है। आमतौर पर प्राणियो के शरीर का ७०% भार जल की उपस्थिति के ही कारण होता है। उपापचय क्रियाओ के

अलावा जल भोजन के पाचन (digestion), वर्ज्य पदार्थों (waste-matter) को बाहर निकालने में भी सहायता देता है।

शारीरिक वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिए भोजन में **विटामिन्स** का होना बहुत आवश्यक होता है। ये सूक्ष्म मात्रा में सभी फलो, हरी तरकारियो, दूध-अनाज, अडा, मांस इत्यादि में मिलते हैं। विटामिन डी के अलावा अन्य सभी विटामिन्स का निर्माण जन्तुओं के शरीर में नही हो सकता। नीचे दिये टेबिल में प्रमुख विटामिन्स का उल्लेख है —

विटामिन्स की उपयोगिता तथा उद्गम

विटामिन्स	उपयोगिता	उदगम
विटामिन ए	शरीर की वाढ तथा परिवर्धन में सहायता देता है, छूत के रोगो से वचाता है, रात में देखने की शक्ति वढाता है, त्वचा को स्वस्थ रखता है।	मछलियो का तेल, कलेजी, गुर्दे, हरी पत्तियों वाले शाक, मक्खन, दूध पनीर, अडे, टमाटर, आलू।
विटामिन बी$_1$ (थीयामिन Thiamin)	घवडाहट से वचाता है, भूख वढ़ाता है, पाचन में सहायता देता है, शरीर को कार्वोहाइड्रेट का उपयोग करने में सहायता देता है, वेरीवेरी नाम का रोग नही होने देता।	सूअर का गोश्त (pork), कलेजी, गुर्दे, समूचा अनाज (धान्य), सूखी सेम, हरी मटर, आलू, अडे दूध, फल।,
विटामिन बी$_2$ (रीवोफ्लेविन Riboflavin)	शरीर की वाढ में सहायता देता है, त्वचा तथा पेशियो को स्वस्थ रखता है, भोजन के आक्सीडेशन में सहायता देता है।	कलेजी, मांस, दूध, अंडे, पत्तीवाले हरे शाक, सेम, लाइमा वीन, सोयावीन, साबूत अनाज (धान्य)।
निएसिन (Niacin विटामिन वी का भाग)	शरीर की वृद्धि में सहायता देता है, त्वचा स्वस्थ रखता है, आमाशय तथा आंत को कार्यशील वनाये रखता है। पैलेगरा (Pellagra) नहीं होने देता।	समूचा अनाज (Cereals), कलेजी, मांस, मछली, मटर, आलू, सेम, अडे, दूध।
विटामिन सी (एस्कोर्विक ऐसिड)	रुधिर वाहिनियों की दीवारो को मजबूत वनाये रखता है। हड्डियों, दांत, मसूढ़ों (gums) को स्वस्थ वनाये रखता है। हृदय की पेशियो का नियमन करता है, छूत के रोगो से वचाता है। स्कर्वी (scurvy) से वचाता है।	नीवू नारगी, सतरा, टमाटर, पातगोभी, हरेशाक, आलू, रसेदार फल, तरवूज।
विटामिन डी	शरीर को कैलशियम तथा	मछली का तेल

विटामिन्स	उपयोगिता	उद्गम
	फौस्फोरस आदि के लवणो का दाँत तथा हड्डियो की समुचित वृद्धि में उपयोग करने में सहायता देता है, सूखा रोग (rickets) नही होने देता।	सूर्य का प्रकाश, अडे की जर्दी (yolk), इरेडिएटेड (irradiated) दूध, मक्खन, क्रीम तथा कई प्रकार की मछलियाँ।
विटामिन (K)	रुधिर के अधिक स्राव (bleeding) को रोकता है। रुधिर के जमने मे सहायता देता है।	पत्तीदार हरे शाक, अडे का योक, सोयाबीन, दूध तथा दूध से बने सामान।

पाचन का अर्थ और आवश्यकता

मेढक की आहार-नाल दोनो सिरो पर खुली होती है इससे जो भोजन आमाशय या छोटी आँत में होता है वह एक प्रकार से शरीर के बाहर ही होता है। शरीर मे प्रवेश करने के लिए उसका आहार-नाल के म्यूकोसा में होते हुए रुधिर वाहिनियो मे पहुँचना बहुत आवश्यक है। इसके लिए भोजन के अघुलनशील भागो का घुलनशील अवस्था मे बदल जाना आवश्यक है जिससे वह **विसरण** (diffusion) द्वारा रुधिर प्रवाह में पहुँच सके। इसी लिए भोजन के सभी अघुलनशील भागो को घुलनशील बनाना आवश्यक होता है। **यह एक रासायनिक क्रिया है और इसे ही पाचन** (digestion) **कहते हैं।** इसके लिए **पाचकरसों** की आवश्यकता होती है जिन्हे आहार-नाल की दीवारें तथा उससे जुडी हुई ग्रन्थियाँ बनाती हैं।

पाचक रसो मे एन्जाइम्स (enzymes) होते हैं जो बायोकैटेलिस्ट (bio-catalysts) के रूप में काम करते हैं जिससे केवल इनकी उपस्थिति से ही जटिल रासायनिक क्रियाएँ बड़ी तेजी से और आसानी से होने लगती हैं और फिर भी इनमें कोई परिवर्तन नही होता। बहुत ऊचे और नीचे ताप में ये निष्क्रिय हो जाते है। कोई एक एन्जाइम अपना कार्य एक ही प्रकार के माध्यम में कर सकता है। उदाहरण के लिए जो एन्जाइम अम्लीय माध्यम में क्रियाशील होता है वह क्षारीय माध्यम में अक्रिय हो जाता है। प्रत्येक एन्जाइम भोजन के एक ही भाग पर क्रियाशील हो सकता है अर्थात् जो प्रोटीन पर क्रिया करता है वह माडी या चर्बी पर क्रिया नही कर सकता।

पाचन-क्रिया

मेढक की मुखगुहा का प्रमुख कार्य शिकार पकडना और पकडे हुए शिकार को निकल भागने से रोकना है। मेढक **कीटभक्षी** (insectivorous) जन्तु है। यह केवल उडते या रेंगते हुए कीडो को पकडता है। मुखगुहा में

पहुँचते ही वह कीडे को निगल जाता है। यहाँ किसी प्रकार की पाचन क्रिया नही होती।

ईसोफेगस (oesophagus) में पहुँचते ही क्रमाकुचक गति (peristaltic movement) आरम्भ हो जाती है। तुम पढ चुके हो कि आहार-नाल के सभी भागो की दीवारो में पेशीय-स्तर (muscular layer) होता है जिसमें सर्कुलर तथा लौंगिट्यूडिनल पेशी तन्तुओ की दो पतें होती हैं। भोजन की उपस्थिति से पेशीय स्तर की ये दोनों पतें सक्रिय हो जाती हैं। जिस भाग में भोजन होता है वह तो फैलकर चौडा हो जाता है किन्तु ठीक पीछे स्थित हिस्सा सिकुडता है। इस प्रकार भोजन क्रमाकुचन (peristalsis) द्वारा धीरे-धीरे नीचे खिसकता जाता है। ईसोफेगस में भी किसी प्रकार की पाचन क्रिया नही होती।
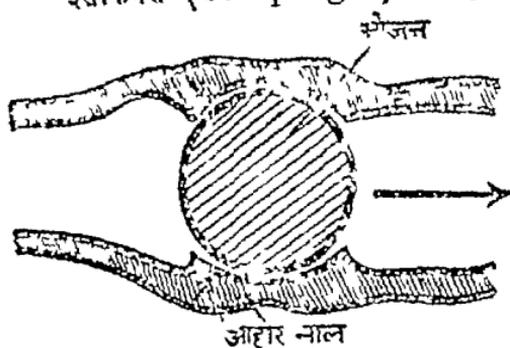
चित्र ४५—क्रमाकुचक गति किस प्रकार उत्पन्न होती है।

आमाशय में तीन प्रकार की क्रियाएँ होती हैं—भोजन का मथन (churning) अस्थायी सग्रह तथा पाचन। अस्थायी सग्रह होने के कारण जन्तुओं को निरन्तर भोजन खाने की आवश्यकता से छुटकारा मिल जाता है और इस प्रकार उन्हें सभी अन्य आवश्यक कार्यों को करने के लिए भी समय मिल जाता है।

आमाशय में मथन क्रिया मस्क्युलेरिस म्यूकोसी की सहायता से होती है। पायलोरस और कार्डिआ के वाल्व वन्द हो जाते हैं और फिर यह क्रिया आरम्भ होती है जिससे भोजन के नन्हे-नन्हे टुकडे हो जाते हैं। आमाशय की जठर ग्रन्थियाँ जठर-रस (digestive juice) उत्पन्न करती हैं। मथन क्रिया के फलस्वरूप यह भोजन में मिल जाता है। जठर-रस में ०.४% हाइड्रोक्लोरिक एसिड और पेप्सिन (pepsin) नाम का एन्जाइम होता है। पेप्सिन प्रोटीन्स को घुलनशील प्रोटिओसिस और पेप्टोन्स में वदल देता है। हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड जीवाणुनाशक होती है। मेढक असमतापी प्राणी है जिससे उसमें पाचन धीरे-धीरे होता है। इसलिए भोजन को आमाशय में अधिक समय तक रुकना पडता है। हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड के होने से भोजन आमाशय में सडने नही पाता। पाइलोरिक वाल्व का खुलना और वन्द होना भी आमाश

मे ऐसिड की मात्रा पर निर्भर रहता है। यह ऐसिड हड्डी के टुकडो को भी घुला देती है।

अधपचा, ऐसिडिक लेई के समान पतला भोजन जिसे **चाइम** (chyme) कहते हैं पाइलोरस मे होता हुआ ड्यूओडीनम में पहुँचता है। पाइलोरस जो एक प्रकार से सजग चौकीदार का काम करता है भोजन के बडे-बडे टुकडो को ड्यूओडीनम या ग्रहणी में जाने से रोक देता है।

ड्यूओडीनम मे चाइम की भेंट पित्त (bile) और **अग्न्याशय-रस** (pancreatic juice) से होती है। ये पाचक रस केवल उसी समय ड्यूओडीनम में पहुँचते हैं जब अम्लीय चाइम वहाँ पहुँचता है। सोचो, अग्न्याशय और यकृत को भोजन के पहुँचने की सूचना किस प्रकार मिलती होगी। ऐसिडिक चाइम की उपस्थिति से ड्यूओडीनम के **म्यूकोसा** को उद्दीपन (stimulus) मिलता है जिससे वह दो हारमोन्स उत्पन्न करता है। रुधिर परिवहन के फलस्वरूप ये शीघ्र ही यकृत और अग्न्याशय में पहुँच जाते है। **सेक्रीटीन** (secretin) नाम का हारमोन अग्न्याशय की कोशिकाओ को स्राव उत्पन्न करने के लिए तैयार करता है और **कोलीसिस्टोकाइनेन** (cholecystokinin) यकृत मे पहुँचकर पित्ताशय (gall bladder) के कुचन में सहायता देता है।

अग्न्याशय रस (pancreatic juice) मे निम्नलिखित तीन प्रबल एन्जाइम्स होते हैं जो केवल एल्केलाइन माध्यम मे ही क्रियाशील होते हैं।

(अ) **ट्रिप्सिन** (trypsin) प्रोटीन्स को **अमीनो ऐसिड्स** में बदल देता है। यह ट्रिप्सिनोजिन की निष्क्रिय दशा मे निकलता है। ड्यूओडीनम की दीवारें एक एन्जाइम उत्पन्न करती हैं जिसे **एन्टिरोकाइनेज** (enterokinase) कहते हैं। इसी एन्जाइम की सहायता से ट्रिप्सिनोजिन ट्रिप्सिन में बदल जाता है।

(आ) **एमीलोप्सिन** (amylopsin) माडी या स्टार्च को ग्लूकोज में बदल देता है।

(इ) **लाइपेस** (lipase) या **स्टिएप्सिन** (steapsin) इमल्सीफाइड वसा या चर्बी को ग्लिसरोल और फैटी-ऐसिड में तोड देता है।

यकृत (liver) गहरा हरा तथा क्षारीय रस उत्पन्न करता है जिसे पित्त (bile) कहते हैं। पित्त मे कोई एन्जाइम नही होता जिससे यह पाचन-क्रिया में कोई परोक्ष सहायता नही देता। इसके पित्त-लवण वसा की छोटी-छोटी कणिकाओ में टूट जाती है। चर्बी के इस प्रकार असख्य नन्हें-नन्हे टुकडो में टूट जाने की क्रिया को **इमल्सीफिकेशन** (emulsification) कहते हैं।

छोटी आँत की म्यूकोसा भी एक प्रकार का पाचक रस बनाती है जिसे **इन्टेस्टाइनल या आन्त्र रस** (intestinal juice) कहते हैं। इसमें **एन्टिरोकाइनेज** और **इरैप्सिन** (erepsin) नाम के एन्जाइम होते हैं। इरैप्सिन शेष प्रोटीन्स को एमीनो-एसिड में बदल देता है।

पचे हुए भोजन का अवशोषण

भोजन के विभिन्न भागों में पचने के बाद पचे हुए भोजन के अधिकांश भाग का अवशोषण (absorption) छोटी आँत की श्लेष्मिक-झिल्ली द्वारा होता है। मुखगुहा, ईसोफेगस में न तो पाचन-क्रिया ही होती है और न अवशोषण। आमाशय में पाचन तो अवश्य होता है लेकिन पचे हुए भोजन का अवशोषण नाम मात्र के लिए होता है। इस कार्य के लिए छोटी आँत सबसे अधिक उपयुक्त होती है। इसकी लम्बाई और भीतरी सतह पर प्लेटों (folds) की उपस्थिति से इन्टेस्टाइन की अवशोषक सतह का क्षेत्रफल कई गुना बढ़ जाता है। भोजन के सभी भाग इलियम (ileum) में पहुँचते-पहुँचते घुलनशील और विसरण (diffusion) के योग्य हो जाते हैं। पचे हुए भोजन का अवशोषण **औस्मोसिस** द्वारा होता है।
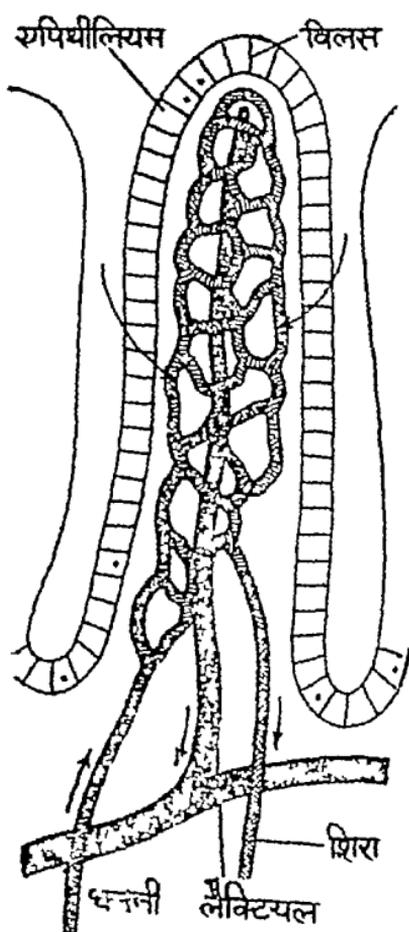
चित्र ४६—अवशोषक प्लेट या रसांकुर की सरचना

साथ के चित्र मे एक अवशोषक प्लेट (absorptive fold) की सरचना दिखाई गई है। सोख जाने के बाद **अमीनो अम्ल** (amino acid), **ग्लूकोज** (glucose), **लवण** इत्यादि का घोल रुधिर कोशिकाओं में पहुँच जाता है और फैटी ऐसिड तथा ग्लिसरोल (glycerol) लिम्फ-वाहिनी या लैक्टियल (lacteal) में पहुँच जाते हैं। लैक्टियल में पहुँचते ही फैटी ऐसिड तथा ग्लिसरोल के मेल से फिर चर्बी या वसा की कणिकाएँ बन जाती हैं जो

इस रूप में दूध के समान सफेद द्रव बनाती है। लिम्फ-वाहिनियाँ अन्त में शिराओ (veins) मे खुलती हैं। इस प्रकार पचे हुए भोजन के सभी भाग अन्त में रुधिर में मिल जाते है।

खाद्य पदार्थों का अन्तिम रूप
(Fate of Food)

आहार-नाल के विभिन्न भागो से **यकृतीय निवाहिका या हिपैटिक पोर्टल शिरा रुधिर** इकट्ठा करके यकृत में ले जाती है। यकृत एक रासायनिक नियत्रक का कार्य करता है। यहाँ ग्लूकोज का अतिरिक्त भाग **ग्लाइकोजन** (glycogen) में बदलकर याकृत-कोशिकाओ के साइटोप्लाज्म में इकट्ठा हो जाता है। ग्लूकोज का शेष भाग **याकृत-शिराओ** (hepatic veins) द्वारा हृदय में और वहाँ से शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचता रहता है। चर्बी और ग्लूकोज के आक्सीडेशन (oxidation) से एनर्जी उत्पन्न होती है। अमीनो एसिड, ग्लूकोज, वसा और लवणो के मेल से नया प्रोटोप्लाज्म बनता है। इस क्रिया को **एसिमिलेशन या स्वागीकरण** (assimilation) कहते हैं। अमीनो अम्ल की टूट-फूट से अमोनिया (ammonia) बनता है जिसे याकृत-कोशिकाएँ कम हानिकारक यूरिया (urea) मे बदल देती हैं।

यकृत के कार्य

पाचन में यकृत परोक्ष रूप से सहायता देता है फिर भी हम इसको पाचक-ग्रन्थि नही कह सकते हैं। वास्तव में यह ग्रन्थि शरीर की अनेक क्रियाओ में सहायता देती है। यकृत के कुछ उल्लेखनीय कार्यों का सक्षेप में वर्णन यही पर करना उचित होगा —

(१) यह पित्त बनाता है। लाल रुधिर कणिकाओ के हीमोग्लोबिन के अवशेष इसका रग गहरा हरा बना देते हैं। इसमें सोडियम कार्बोनेट, सोडियम ग्लाइकोकोलेट (glycocholate) तथा सोडियम टॉरोकोलेट इत्यादि पित्त-लवण (bile salts) तथा अन्य पदार्थ भी मिलते हैं। इन लवणो की सहायता से पित्त वसा का इमल्सीफिकेशन कर देता है।

(२) सोडियम कार्बोनेट की उपस्थिति से पित्त क्षारीय हो जाता है जिससे यह चाइम (chyme) की अम्लता (acidity) को नष्ट करके जठर-रस की क्रिया को रोक देता है।

(३) जीवाणुनाशक (antiseptic) होने के कारण पित्त बैक्टीरिया की वढती को रोकता है।

(४) पित्त अग्न्याशय-रस में मिलनेवाले लाइपेस (lipase) को अधिक क्रियाशील बना देता है।

(५) ग्लूकोज की अतिरिक्त मात्रा को याकृत-कोशिकाएँ रुधिर से निकाल-कर ग्लाइकोजन के रूप में इकट्ठा कर लेती हैं। आवश्यकता पड़ने पर याकृत-कोशिकाएँ ग्लाइकोजन को फिर ग्लूकोज में बदल देती हैं।

(६) जब कभी शरीर में ग्लाइकोजन (glycogen) की मात्रा कम हो जाती है और प्रोटीन्स की मात्रा अधिक होती है तो याकृत कोशिकाएँ रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्रोटीन्स से अमोनिया निकालकर उसे ग्लाइकोजन में बदल देती हैं।

(७) यकृत उत्सर्जन (excretion) में भी सहायता देता है। एमीनो ऐसिड्स की टूट-फूट से बननेवाली अमोनिया को याकृत-कोशिकाएँ यूरिया (urea) में बदल देती हैं। कुछ पित्त-लवण भी वर्ज्य पदार्थ होते हैं। ये भी पित्त के साथ बाहर निकल जाते हैं।

(८) यकृत में फाइब्रिनोजेन (fibrinogen) बनता है।

(९) स्तनधारियो के भ्रूण में यह लाल रुधिर कणिकाएँ बनाता है।

(१०) यकृत की रुधिर केशिकाओ की दीवारो में कुछ विशेष प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं जो फैगोसाइटस (phagocytes) के समान कार्य करती है। ये सदैव जीवाणुओ (bacteria) को रुधिर-प्रवाह से बाहर निकालती रहती है।

(११) यह विटामिन ए तथा डी का सग्रह करता है।

(१२) यकृत की कुछ कोशिकाएँ वसा को इस रूप में बदल देती हैं जिससे उसके प्रजारण (combustion) के फलस्वरूप एनर्जी उत्पन्न हो सके।

(१३) यही पर पुरानी लाल रुधिर कणिकाएँ टूट-फूट जाती हैं।

(१४) यकृत में हिपैरिन बनता है जो रुधिर को वाहिनियो में जमने —थक्का बनाने—नही देता।

(१५) यह बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न होनेवाले टॉक्सिन्स का क्लीवन (neutralisation) कर देता है।

(१६) यह ऐसे रासायनिक पदार्थ बनाता है जिनकी उपस्थिति से एनी-मिया (anaemia) का रोग नहीं होने पाता।

प्रश्न

१—नामांकित चित्र बनाकर मेढक की मुखगुहा का वर्णन करो।

२—मेढक की आहार-नाल के विभिन्न भागों का क्रमानुसार वर्णन करो तथा प्रत्येक भाग के कार्य का उल्लेख करो।

३—मेढक में पाचन-क्रिया का वर्णन करो और यकृत तथा अग्न्याशय के कार्यों का स्पष्ट उल्लेख करो।

४—भोजन के पाचन की क्या आवश्यकता है? एन्जाइम क्या है? मेढक में पाचन-क्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

५—मेढक के आमाशय, इलियम तथा ईसोफेगस की हिस्टोलोजिकल तुलना चित्र बनाकर समझाओ।

६—'भोजन' किसे कहते हैं? भोजन की क्यों आवश्यकता होती है? भोजन के विभिन्न भागों की उपादेयता समझाओ।

७—आहार-नाल के निम्न भागों की माइक्रोस्कोपिक संरचना (microscopic structure) चित्र सहित समझाओ —

ईसोफेगस (oesophagus) आमाशय ड्यूओडीनम तथा क्षुद्रांत्र का ईलियम।

८—यकृत की रचना तथा कार्य का सविस्तार वर्णन करो।

९—(क) आहार-नाल में भोजन किस प्रकार धीरे-धीरे नीचे खिसकता है? इस विधि की क्या उपयोगिता है?

(ख) क्रमाकुंचन (peristalsis) तथा आमाशय की मथन-क्रिया में क्या अन्तर है?

१०—क्या पित्त तथा पैंक्रीएटिक रस (pancreatic juice) बराबर ड्यूओडीनम में गिरते रहते हैं? यदि ऐसा नहीं होता है तो यकृत और पैंक्रीएस को भोजन की उपस्थिति का किस प्रकार पता चलता है?

११—आहार-नाल के किन-किन भागों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा चर्बी का पाचन होता है? पचे हुए भोजन का कहाँ पर और किस प्रकार अवशोषण होता है?

१२—निम्नलिखित में से किन्हीं तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो —

(क) मैटाबौलिज्म (ग) पैरिस्टैलसिस

(ख) एलिमिनेशन (घ) यकृत के कार्य

अध्याय ६

श्वसन तंत्र

श्वसन समस्त जीवो का एक सामान्य गुण है। भोजन तथा पानी के बिना जन्तु कुछ समय तक जीवित रह भी सकता है किन्तु श्वसन के बिना तो कुछ क्षण भी जीना दूभर हो जाता है। क्यो ? कारण स्पष्ट है। प्रत्येक जीव का शरीर भाप के एंजिन के समान है। एंजिन में कोयले के जलने से गर्मी (heat) तथा एनर्जी उत्पन्न होती है जिससे उसमें गतिशीलता आती है। कोयले के जलने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है। प्राणियो के लिए उनका भोजन ही कोयले के समान कार्य करता है। इसके क्रमश आक्सीडेशन के लिए भी आक्सीजन की आवश्यकता पडती है। इसी लिए सभी जन्तुओ मे साँस लेना भी आवश्यक होता है। इस प्रकार श्वसन वास्तव में एनर्जी उत्पन्न करने की सर्वोत्तम विधि है। मेढक के समान प्राणियो में श्वसन के लिए निम्नलिखित वस्तुओं का होना आवश्यक है —

(क) आक्सीजन का स्रोत (source)—पानी या हवा।

(ख) गैसियस लेन-देन (gaseous exchange) के लिए श्वसन-सतह।

(ग) आक्सीजन के परिवहन के लिए श्वसन-रग या हीमोग्लोबिन की उपस्थिति।

(ई) श्वसन माध्यम (respiratory medium) जैसे रुधिर तथा लसीका या लिम्फ।

इन चारो वस्तुओ की सहायता से केवल शरीर की जीवित कोशिकाओ को आक्सीजन मिल जाती है जिससे श्वसन या एनर्जी कोशिकाओ मे उत्पन्न होती है।

मेढक में श्वसन-क्रिया फेफडों (lungs), नम त्वचा तथा मुख-गुहा की श्लेष्मिक झिल्ली या म्यूकस मेम्ब्रेन (mucous membrane) द्वारा होती है।

(क) मुख-गुहा तथा पल्मोनरी श्वसन

बाहरी नासा छिद्र (external nares), घ्राण वेश्म (olfactory chamber) भीतरी नासा छिद्र, मुखगुहा, फैरिंक्स (pharynx), स्वर-यत्र

(larynx) तथा फेफड़े आदि सरचनायें फेफडो द्वारा साँस लेने में सहायता देती हैं। श्वसन-क्रिया मुखगुहा की श्लेष्मिक झिल्ली (mucous membrane) द्वारा तथा थोडी बहुत फेफडो मे होती है। अन्य सबद्ध सरचनायें केवल मुखगुहा से फेफड़ो मे और फेफडो से मुख-गुहा में वायु के आने-जाने का मार्ग बनाती हैं।
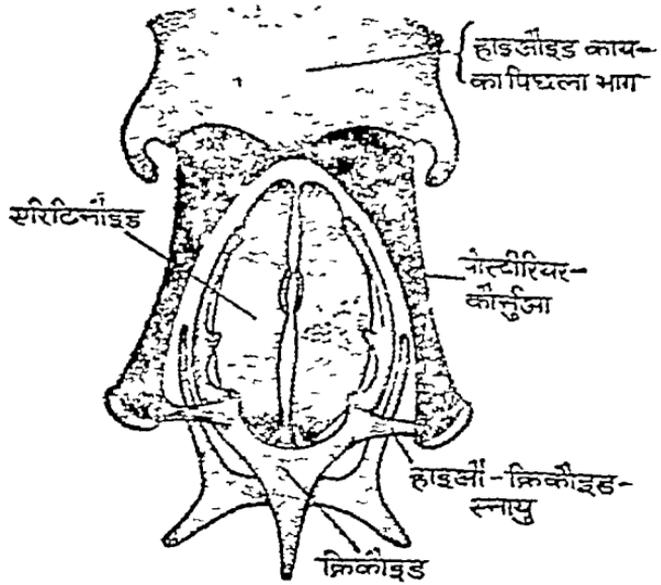
चित्र ४७—मेढक के स्वर कोप या लैरिंक्स का ककाल
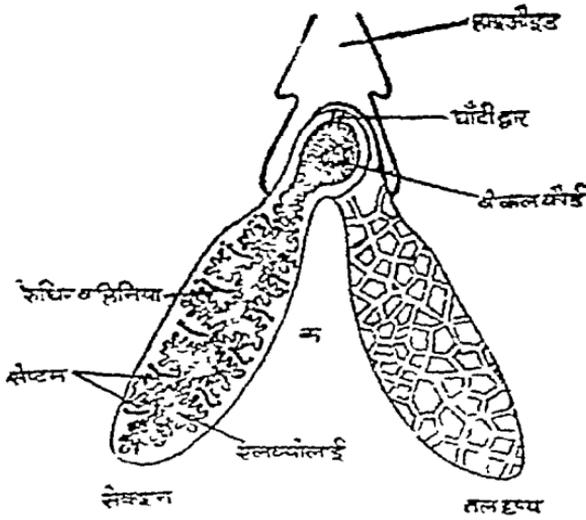
सिर के मीडियन लॉगिट्युडिनल सेक्शन (median longitudinal section) को ध्यान से देखने से पता चलता है कि फैरिंक्स या ग्रसनी में घाँटी द्वार (glottis) होता है। गर्दन के न होने से मेढक में श्वास-नली (trachea) और
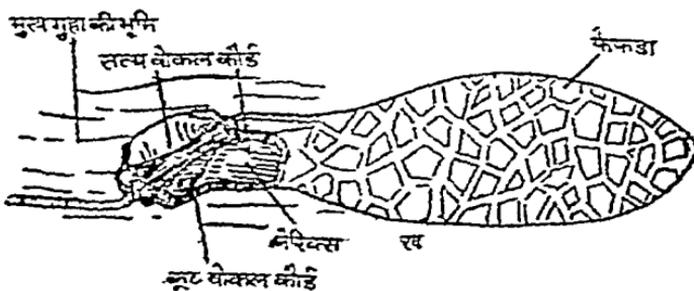
चित्र ४८—मेढक के फेफडो की सरचना क, बाएँ फेफडे का लॉगिट्यूडिनल ख, लैरिगोट्रेकियल चैम्बर का सेक्शन

घाटी द्वारा मिलकर लेरिंगोट्रैकियल चेम्बर (laryngo-tracheal-chamber) बनाते हैं। इसी से दोनों फेफड़े निकलते हैं। ये अंडाकार तथा पतली भित्ति के होते हैं। हवा भर जाने पर ये विलक्षण रूप से फूल जाते हैं।

प्रत्येक फेफड़े की बाहरी सतह पेरिटोनियम (peritoneum) से ढकी रहती है। इसकी भीतरी सतह पर अनेक विरूप आकार की पट्टियाँ (septa) होती हैं जो फेफड़े को अनेक वायु कोष्ठिकाओं या एल्व्योलाई (alveoli) में विभाजित कर देती हैं। इन एल्व्योलाई की उपस्थिति से फेफड़ों की भीतरी सतह का क्षेत्रफल कई गुना बढ़ जाता है। इन पट्टियों (septa) की बाहरी सतह सीलियेटेड तथा साधारण एपिथीलियम की बनी होती है तथा भीतर केशिकाओं (capillaries) और अरेखित पेशी तन्तुओं को साथे रखने के लिए संयोजी ऊतक होता है।

चित्र ४९—मेढक के फेफड़े का अनुप्रस्थ सेक्शन

फेफड़ों का संवातन (Ventilation of Lungs)

फेफड़ों में वायु के जाने और बाहर निकलने को **साँस लेना या फेफड़ों का संवातन** (ventilation of lungs) कहते हैं। साँस लेने या निःश्वास (inspiration) में मुख-गुहा एक **फोर्स-पम्प** (force pump) के समान कार्य करती है। मुखगुहा की भूमि (फर्श) बराबर विधिवत् ऊपर उठती तथा नीचे गिरती रहती है। इस गुहा की भूमि (floor) में ढाल (shield) के आकार की एक संरचना होती है जिसे **हाईओइड** (hyoid) कहते हैं। इससे जुड़ी दो पेशियाँ होती हैं—जो हाइओइड और स्टर्नम को जोड़ती हैं। उसे **स्टर्नो-हाइओइड** (sternohyoid) और जो खोपड़ी तथा हाइओइड के बीच में फैली रहती है उसे **पेट्रोहाइओइड** (petrohyoid) कहते हैं। मुखगुहा तथा फेफड़ों के संवातन (ventilation) में मेढक का मुँह बराबर बन्द रहता है और हवा केवल नासा-छिद्रों में होकर मुख-गुहा में तथा बाहर आती जाती है।

(अ) **मुखगुहा का संवातन**—स्टर्नोहाइओइड पेशी के कुंचन से मुख-गुहा का लचीला फर्श नीचे तथा कुछ पीछे खिंच जाता है। इस प्रकार मुखगुहा का आयतन (volume) बढ़ जाता है जिससे उसके भीतर भरी वायु फैल जाती है। इस प्रकार इस वायु का दाब कम हो जाता है जिससे बाहरी वायु नासा-छिद्रों में होती हुई मुखगुहा में खिंच आती है। इस प्रकार

मेढक की मुख्य गुहा सर्वप्रथम सक्शन-पम्प (suction pump) का काम करती है। इसके बाद पैट्रोहाइओइड (petrohyoid) पेशियो का कुचन होता है जिनसे मुखगुहा का फर्श ऊपर उठ जाता है और उसका आयतन कम हो जाता है। इस प्रकार मुख-गुहा में भरी हवा पर दबाव बढ जाता है और कुछ हवा नासा-छिद्रो में होती हुई बाहर निकल जाती है।

इस प्रकार मुख-गुहा की भूमि (फर्श) के बराबर ऊपर उठने और नीचे झुकने के कारण बाहरी वायु नासा छिद्रो में होती हुई मुखगुहा में आती है और मुखगुहा की वायु बाहर जाती रहती है। इस विधि से मुखगुहा में भरी वायु बराबर बदला करती है जिससे मुखगुहा नम तथा सवहनीय झिल्ली को हवा के लेन-देन (gaseous exchange) का अवसर मिलता रहता है। मुखगुहा की श्लेष्म झिल्ली या म्यूकस मेम्बरेन की सतह पर स्थित म्यूकस या श्लेष्मा में वायु की आक्सीजन घुलकर विसरण (diffusion) द्वारा रुधिर में पहुँच जाती है और कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकल आती है।

कुछ प्राणि-वैज्ञानिको के मतानुसार आमतौर पर मेढक की साधारण श्वसन-सम्बन्धी आवश्यकता नम त्वचा और मुखगुहा के म्यूकस मेम्बरेन द्वारा पूरी हो जाती है। फेफडो को तो मेढक उसी समय काम में लाता है जब आक्सीजन की आवश्यकता अधिक होती है।

(आ) **फुण्फुस श्वसन** (Pulmonary respiration)—मुखगुहा से फेफडो में वायु के प्रवेश करने पर मुखगुहा की भूमि (floor) और धड़ के अगले भाग की पार्श्व-भित्तियो में एक विशेष प्रकार की गति दिखलाई पडती है। ऊपरी जबडे के अगले सिरे में **प्रीमैक्सिली** हड्डियो का एक जोडा होता है। इसी के कुछ पीछे पृष्ठ सतह पर **वाह्य नासाछिद्र** (external nares) होते हैं। प्रीमैक्सिली गतिशील होती है जिससे आवश्यकतानुसार ये कुछ ऊपर उठकर वाह्य नासाछिद्रो को बन्द कर सकें।

स्टर्नोहाइओइड पेशी (sternohyoid muscles) के कुचन से मुखगुहा में भरी वायु पर दाब कम हो जाता है जिससे बाहर की हवा नासा-छिद्रो में होती हुई भीतर खिच आती है। अब पैट्राहाइओइड पेशी की बारी आती है। यह पेशी तथा सबमेन्टलिस पेशी (submentalis muscle) जो कि निचले जबडे या अधोहनु के सिरे पर स्थित मेन्टोमिकेलियन हड्डी के ठीक नीचे मिलती है, अब एक साथ ही कुचन करती हैं। सबमेन्टेलिस पेशी के सिकुडने से मेन्टोमिकेलियन थोडा ऊपर उठ जाती है। इनके ऊपर उठने से दोनो प्रीमैक्सिली भी ऊपर उठ जाती है जिससे दोनो ओर के वाह्य नासा-छिद्र बन्द हो जाते हैं। ऐसी दशा में मुख-गुहा के फर्श के ऊपर उठने से वायु
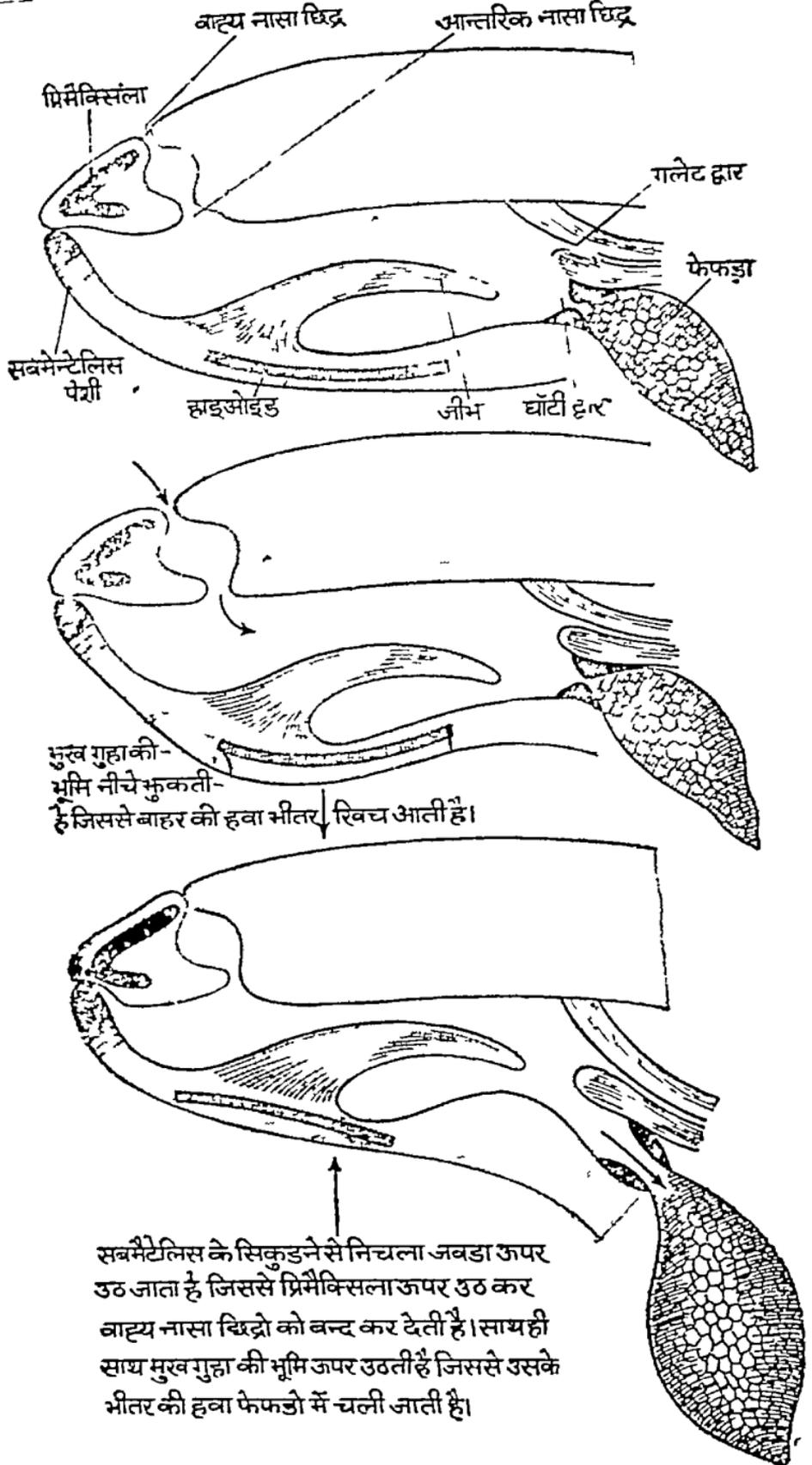
चित्र ५०—मेढक के फेफडो में हवा किस प्रकार प्रवेश करती है

पर दबाव बढ जाता है। इस दबाव से इस समय घांटी द्वार (glottis) खुल जाता है और हवा फेफडो में पहुँच जाती है। इस प्रकार हवा के फेफडों में पहुँचने को **नि·श्वास** या **इन्सपिरेशन** (inspiration) कहते हैं।

हवा के फेफडो के बाहर निकलने की क्रिया को उच्छ्वसन या एक्सपिरेशन (expiration) कहते हैं। इसमें भी वाह्य नासाछिद्र बन्द रहते हैं, मुख-गुहा की भूमि नीचे झुक जाती है जिससे उसमें भरी थोडी हवा पर दबाव बहुत कम हो जाता है जिससे फेफडो की हवा घांटी द्वार में होती हुई मुख-गुहा में खिंच आती है। इस तरह इन्सपिरेशन में मुखगुहा फोर्स पम्प का और एक्सपिरेशन में सक्शन-पम्प का कार्य करती है।

(ख) त्वचीय श्वसन
(Cutaneous respiration)

मेढक एक जल-स्थलचर जीव है जिससे उसका पानी में भी रहना स्वाभाविक है। इसके अलावा हाइबर्नेशन में तो यह नम मिट्टी में घुसा रहता है। ऐसी अवस्था में वह त्वचीय श्वसन पर ही निर्भर रहता है। इसकी त्वचा पतली तथा सवहनीय (vascular) होती है। हवा की आक्सीजन त्वचा के म्यूकस में घुल जाती है और फिर विसरण के फलस्वरूप त्वचीय धमनी द्वारा निर्मित केशिकाओ के रुधिर में पहुँच जाती है और कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकल आती है। त्वचा के नीचे स्थित लसीका पात्रो (lymph sinuses) की लिम्फ की कार्बन डाइ-आक्साइड भी बाहर निकलती रहती है। इसीलिए पलमोनरी श्वसन की अपेक्षा त्वचीय श्वसन द्वारा कार्बन डाइआक्साइड की अधिक मात्रा निकलती है।

श्वसन की कायिकी या फिजियालोजी

वरटिब्रेट्स में श्वसन-क्रिया में निम्नलिखित अवस्थाएँ मिलती हैं·—

(१) फेफडों का सवातन—(अ) इन्सपिरेशन तथा एक्सपिरेशन
(२) वाह्य श्वसन (external respiration)
(३) आन्तरिक श्वसन (internal respiration)

फेफडो के सवातन का मुख्य ध्येय सदैव नई वायु को श्वसन-सतह के निकटतम सम्पर्क में लाना है। वाह्य श्वसन में हवा की आक्सीजन श्वसन सतह (फेफडे, त्वचा, मुखगुहा के म्यूकस मेम्बरेन) पर स्थित म्यूकस में घुलकर विसरण द्वारा रुधिर में पहुँच

जाती है और रुधिर की कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकल आती है। वायु और रुधिर के बीच इस गैसियस लेन-देन (gaseous exchange) को बाह्य श्वसन कहते हैं। रुधिर में पहुँचने पर आक्सीजन लाल रुधिर कणिकाओ के हीमोग्लोविन से मिलकर अस्थायी आक्सीहीमोग्लोविन बनाती है। यह क्रिया केवल उन्ही अगो में हो सकती है जिनमें आक्सीजन का सकेन्द्रण (concentration) अधिक होता है। जब रुधिर शरीर के अन्य क्रियाशील अगो (active organs) में पहुँचता है जहाँ कार्बन डाइआक्साइड का सकेन्द्रण अधिक होता है तो अस्थाई आक्सीहीमोग्लोविन से आक्सीजन अलग हो जाती है —
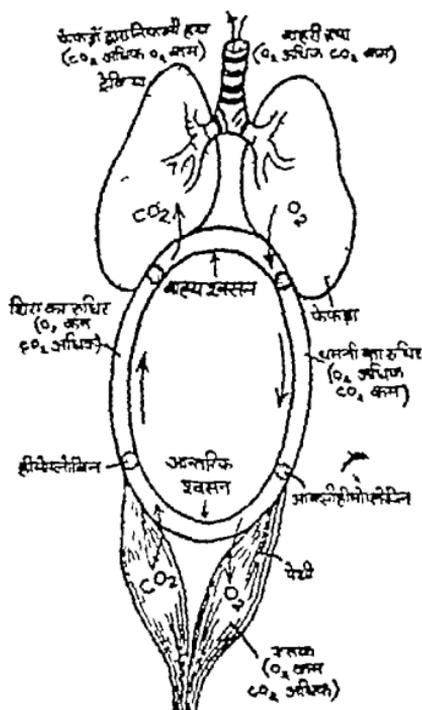
चित्र ५१—बाह्य तथा आन्तरिक श्वसन

हीमोग्लोविन + आक्सीजन	⟵	आक्सीहीमोग्लोविन
(फेफड़े तथा त्वचा में)	⟶	(ऊतको में)

इस प्रकार रुधिर आक्सीजन के वहन में सहायता देता है। कार्बन डाइ-आक्साइड का गैस के रूप में वहन नहीं होता बल्कि यह सोडियम और पुटैशियम कार्वोनेट के साथ मिलकर बाइकार्वोनेट्स बनाती है जो श्वसन अगो में पहुँचते ही कार्बन डाइआक्साइड, पानी और कार्वोनेट्स में टूट जाते हैं —

ऊतकों में

$$CO_2 + H_2O + Na_2\ CO_3 \rightleftharpoons 2NaHCO_3$$
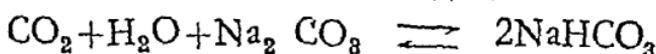
श्वसन अगों में

केशिकाओ के बाहर निकलकर आक्सीजन ऊतक द्रव (tissue fluid) में पहुँचती है और फिर वहाँ से ऊतको की कोशिकाओं में पहुँच जाती है। इसी प्रकार कार्बन डाइआक्साइड भी कोशिकाओ से निकलकर ऊतक द्रव में होती हुई केशिकाओं के रुधिर में पहुँचती है। रुधिर तथा ऊतक-कोशिकाओं के बीच होनेवाले गैसियस लेन-देन को आन्तरिक श्वसन कहते हैं।

यथार्थ श्वसन जिसके द्वारा गर्मी तथा एनर्जी उत्पन्न हुआ करती है, ऊतक-कोशिकाओं में होता है। इसीलिए इसे ऊतक-श्वसन (tissue respiration)

कहते हैं। एनर्जी की उत्पत्ति रासायनिक क्रियाओ की एक जटिल शृंखला (chain) का परिणाम है। प्रत्येक जीवित कोशिका का प्रोटोप्लाज्म कुछ एन्जाइम्स उत्पन्न करता है जो इन क्रियाओ को कैटेलाइज (catalyse) करते हैं। ऊतक-श्वसन की जटिल क्रिया में ग्लाइकोलेटिक साइकिल (glycolytic cycle) तथा ऑर्गेनिक एसिड साइकिल होती हैं।

ध्वन्योत्पादन (Sound Production)

ध्वनि-उत्पादन में लेरिंक्स या स्वर-यंत्र सहायता देता है। इसकी दीवारें दो जोडी कार्टिलेज द्वारा सधी रहती है। कार्टिलेज के एक जोडे को एरिटीनॉएड (arytenoid) कहते हैं। इन्ही दोनो के बीच घाँटी-द्वार एक पतली-सी खडी दरार के रूप में होता है। इससे लगी दो प्रकार की पेशियाँ होती हैं। एक प्रकार की पेशियाँ घाँटी-द्वार को चौडा कर देती हैं और दूसरे प्रकार की पेशियाँ छोटा या सँकरा बना देती हैं। एरिटीनॉएड कार्टिलेज के नीचे क्रिक्वाएड (cricoid) कार्टिलेज होते हैं। दोनो ओर के क्रिक्वाएड कार्टिलेज मिलकर एक छल्ला (ring) बनाते है। लेरिंक्स मे दो जोडी स्वर-रज्जु या वोकल कॉर्ड (vocal cords) होते हैं। जब हवा फेफडो में जाती है या फेफडो से मुख-गुहा में आती है तो असली (true) स्वर-रज्जुओ का कंपन होने लगता है जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। स्वर-यंत्र की पेशियाँ स्वर-रज्जुओ का तनाव घटा-बढाकर ध्वनि को तेज या धीमी कर सकती हैं।

कई स्पीशीज के नर-मेढको में मुखगुहा की प्रतिपृष्ठ सतह पर दोनो जबडो के जोड के पास एक-एक वोकल-सैक (vocal sac) होता है। हवा भर जाने पर ये फूलकर बहुत बडे हो जाते हैं जिसमे साफ-साफ दिखाई पडते हैं। प्रत्येक वोकल-सैक एक नन्हे से छेद द्वारा मुखगुहा में खुलता है। इनमें गूँजने के कारण ध्वनि तेज हो जाती है।

प्रश्न

१—निम्न बातो का क्या परिणाम होगा —

(अ) यदि मेढक के बाह्य नासाछिद्र बन्द कर दिये जायें ?

(आ) यदि मेढक-की मुखगुहा कृत्रिम-विधि से खुली रक्खी जाय ?

(इ) यदि मेढक को किसी सूखे स्थान में रक्खा जाय ?

(ई) यदि फेफडो में छेद कर दिया जाय ?

२—मेढक के श्वसन अंगो का संक्षेप में वर्णन करो।

३—चित्रसहित मेढक मे फेफडो के संवातन की विधि समझाओ।

४—निम्नलिखित पर संक्षेप मे टिप्पणी लिखो —

बाह्य-श्वसन, त्वचीय-श्वसन, ऊतक-श्वसन।

अध्याय ७

परिवहन तन्त्र

मेढक के अधिकतर अंग जैसे त्वचा, देह-भित्ति, मस्तिष्क जननेन्द्रियाँ इत्यादि आहार नाल से दूर होते हैं। इसी लिए इन सभी अंगो में पचे हुए भोजन को पहुँचाने के लिए परिवहन तंत्र (circulatory system) की आवश्यकता होती है। फेफड़ो और त्वचा में श्वसन क्रिया होती है। इसीलिए शरीर के अन्य सभी अंगो को आक्सीजन पहुँचाने के लिए भी परिवहन तंत्र का होना आवश्यक है। वरटिब्रेट्स के शरीर में दो प्रकार की फ्ल्यूड्स (fluids) का परिवहन होता है। इसी लिए परिवहन तंत्र निम्नलिखित दो प्रमुख भागो में बांटा जा सकता है —

(१) रुधिर परिवहन तंत्र (vascular system)
- (क) रुधिर
- (ख) हृदय
- (ग) रुधिर वाहिनियाँ

(२) लसीका तंत्र (lymphatic system)
- (अ) लसीका या लिम्फ
- (आ) लसीका वाहिनियाँ तथा लसीका पात्र
- (इ) लसीका हृदय (lymph hearts)

(१) रुधिर परिवहन तंत्र
(Vascular System)

इस परिवहन तंत्र में रुधिर के परिवहन के लिए रुधिर वाहिनियो का एक जाल बिछा रहता है। हृदय रूपी पम्प की सहायता से रुधिर बराबर इन वाहिनियों में चक्कर लगाया करता है।

(अ) रुधिर (Blood)

तुम पढ़ चुके हो कि रुधिर एक प्रकार का तरल संयोजी ऊतक है। इसे दो प्रमुख भागो में बांट सकते हैं—(१) प्लाज्मा तथा (२) रुधिर कणिकाएँ

(१) प्लाज्मा (plasma)—रुधिर का लगभग २/३ भाग प्लाज्मा होता है। इसमें पानी की मात्रा करीब ९०% होती है। इसका रासायनिक रूप सदैव बदला करता है और जटिल (complex) होता है। प्लाज्मा में कई प्रकार के अकार्बनिक लवण घोल तथा कौलाएडल (colloidal) अवस्था में मिलते हैं। इनमें सोडियम के क्लोराइड्स तथा बाइकार्बोनेट की सबसे अधिक मात्रा होती है। इनके अलावा पुटैशियम के बाइकार्बोनेट्स और क्लोराइड्स भी काफी मात्रा में होते हैं। सल्फेट और फौस्फेट्स सोडियम और पुटैशियम दोनो के मिलते हैं। ये सभी लवण प्लाज्मा का १% भाग बनाते हैं और इन्ही की उपस्थिति के कारण यह हल्का क्षारीय (alkaline) होता है। प्लाज्मा में पचा हुआ भोजन ग्लूकोज अमीनो एसिड्स तथा वसा के रूप में मिलता है। इसके अलावा प्लाज्मा में कुछ वर्ज्य पदार्थ (waste products) जैसे यूरिया (urea) मिलते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियो (endocrine glands) में उत्पन्न होनेवाले हारमोन्स (hormones) भी मिलते हैं।

प्लाज्मा में कुछ प्रोटीन्स जैसे फाइब्रिनोजेन (fibrinogen), एलब्युमिन्स (albumins), ग्लोब्युलिन्स (globulins) इत्यादि मिलते हैं। आवश्यकता पडने पर प्लाज्मा में एक विशेष प्रकार के प्रोटीन्स उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हे एन्टीबौडीज (antibodies) कहते हैं। इनकी उपस्थिति से रुधिर में प्रवेश करनेवाले बैक्टीरिया की सख्या कम हो जाती है। इसके अलावा प्लाज्मा में ऐन्टीटौक्सिन भी हो सकते हैं। ये बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न होनेवाले टौक्सिन्स (toxins) को नष्ट कर देते हैं।

(२) रुधिर कणिकाएँ—ये तीन प्रकार की होती हैं —

(क) लाल रुधिर कणिकाएँ या इरिथ्रोसाइट्स (Erythrocytes)

(ख) श्वेत रुधिर कणिकाएँ या ल्यूकोसाइट्स (Leucocytes)

(ग) थ्राम्बोसाइट्स या ब्लड प्लेटलेट्स (Thrombocytes)

(अ) लाल रुधिर कणिकाएँ (red blood corpuscles) या इरिथ्रोसाइट्स (erythrocytes)—ये कुछ चपटी, अडाकार, बाइ-कौन्वेक्स (biconvex) होती है। प्रत्येक लाल रुधिर कणिका के साइटो-प्लाज्म में एक न्यूक्लियस होता है जिससे इन्हे कोशिकाएँ (cells) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके साइटोप्लाज्म में हल्के पीले रग का हीमो-ग्लोबिन मिलता है जिसके महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्बन्ध मे तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हो।

मेढक में प्रत्येक लाल रुधिर कणिका की लम्बाई २२ ३ μ (म्यू) और चौडाई १५ ७ μ (म्यू) होती है। एक घन मिलीमीटर में इनकी सख्या लगभग ४ लाख होती है, न्यूक्लियस की उपस्थिति के कारण ये जल्दी मरती नही। पुरानी लाल रुधिर कणिकाओ को नष्ट करने में एक प्रकार की श्वेत रुधिर कणिकाएँ सहायता देती हैं। इन्हें फैगोसाइट्स (phagocytes) कहते हैं। इसके अलावा ये प्लीहा (spleen) तथा यकृत में भी फैगोसाइट्स द्वारा नष्ट की जाती हैं। यहाँ पर इनके हीमोग्लोबिन में मिलनेवाला लोहा रोक लिया जाता है और शेष भाग पित्त-रग (bile salts) वनाता है। स्तनवारियो की तरह मेढक की हड्डियो में लाल अस्थि-मज्जा (red bone marrow) नही होती। मेढक में नई लाल रुधिर कणिकाएँ वृक्क, यकृत और प्लीहा (spleen) में वनती हैं।

(आ) श्वेत रुधिर कणिकाएँ या ल्यूकोसाइट्स—ये लाल रुधिर कणिकाओ से वडी होती हैं। एक घन मिलीमीटर में इनकी सख्या लगभग ५३०० होती है। रुधिर में तो इनका आकार लगभग गोल होता है किन्तु किसी ठोस वस्तु या आवार के ऊपर छूट जाने पर इनका भी आकार अमीवा की तरह
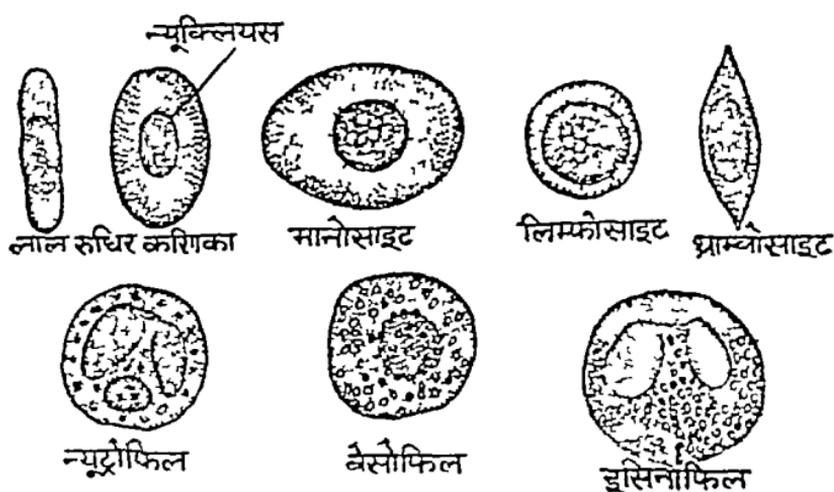
चित्र ५२—मेढक के रुधिर की सरचना

अनियमित (irregular) हो जाता है। प्रत्येक ल्यूकोसाइट में एक या एक से अधिक न्यूक्लियाई होते हैं। केशिकाओ की पतली दीवारो में ये अपने कूटपादो (pseudopodia) से छेद करके वाहर निकल आती है। इन कणिकाओ की सख्या प्राय शरीर के स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है। शरीर में रोगाणुओ (germs) के प्रवेश करने पर इनकी सख्या हमेशा वढ जाया करती है। रोग के वैक्टीरिया को चारो ओर से घेरकर ये एक प्रकार का

रासायनिक और मल्लयुद्ध आरंभ करती हैं। कुछ कणिकाएँ जिन्हें फैगोसाइट्स (phagocytes) कहते हैं आक्रामी बैक्टीरिया को अपने कूटपादों की सहायता से निगल जाती है। कुछ कणिकाएँ ऐसी एसिड्स उत्पन्न करती हैं जिससे बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार घाव में लाल रुधिर कणिकाओं, ऊतक द्रव (tissue fluid), जीवित तथा मृत जीवाणुओं का ढेर लग जाता है। इसी को मवाद (pus) कहते हैं। अपनी उपापचय क्रियाओं (metabolic activities) द्वारा बैक्टीरिया एक प्रकार का विष उत्पन्न करते हैं जिन्हें टौक्सिन्स (toxins) कहते हैं। ऐन्टीटौक्सिन बनाकर श्वेत रुधिर कणिकाएँ इन्हें नष्ट कर देती हैं।

ऊपर दिये कार्यों के अलावा श्वेत रुधिर कणिकाएँ और कई काम करती हैं। मृत ऊतक-कोशिकाओं तथा चर्बी के कणों को ये एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने में सहायता देती हैं। एक प्रकार की श्वेत कणिकाएँ जिन्हें लिम्फोसाइट्स कहते हैं घावों के पुरने (healing of wounds) में सहायता देती हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि श्वेत रुधिर कणिकाएँ (W B C) शरीर में चलते-फिरते और सजग चौकीदार हैं। साथ ही साथ ये शरीर में सफाई रखने में भी सहायता देती हैं। इनका जन्म आमतौर पर लसीका ग्रन्थियों में होता है।

(इ) रुधिर प्लेटलेट्स या थ्राम्बोसाइट्स (thrombocytes)—थ्राम्बोसाइट्स लाल और श्वेत रुधिर कणिकाओं की अपेक्षा संख्या में कम होते हैं। आमतौर पर रचना में ये लिम्फोसाइट्स से मिलते-जुलते हैं। इनमें अनेक नुकीले उभार होते हैं और इनका साइटोप्लाज्म कणिका-रहित होता है। इनमें बीच में एक न्यूक्लियस होता है। ये खून के जमने में सहायता देती हैं। कुछ प्राणि-वैज्ञानिकों के मतानुसार ये हीमोपोइटिक ऊतक (bone forming tissue) की कोशिकाओं के टूटने-फूटने से थ्राम्बोसाइट्स बनते हैं।
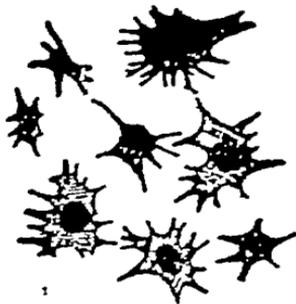
चित्र ५३—मेढक में थ्राम्बोसाइट्स

रुधिर के कार्य

(Functions of Blood)

(१) आक्सिजन का परिवहन—लाल रुधिर कणिकाओं के सम्बन्ध में तुम इस कार्य को विस्तारपूर्वक पढ चुके हो।

(२) कार्बन डाइऑक्साइड का परिवहन—ऊतक-कोशिकाओ में भोजन के आक्सीडेशन से कार्बन डाइऑक्साइड उत्पन्न होती है जो विसरण द्वारा रुधिर में पहुँच जाती है। इसका परिवहन प्लाज्मा में सोडियम बाइकार्बोनेट के रूप में लाल रुधिर कणिकाओ के भीतर पुटैशियम बाइकार्बोनेट के रूप में होता है। जब रुधिर फेफडो या अन्य श्वसनाग में पहुँचता है तो ये बाइकार्बोनेट्स टूटकर कार्बन डाइआक्साइड को अलग कर देते हैं जो आक्सीकरण द्वारा रुधिर के बाहर निकल जाती है।

(३) पोषक तत्त्वों का परिवहन—पाचन क्रिया के पश्चात् भोजन के पोषक तत्त्व रुधिर में पहुँचते हैं जो परिवहन द्वारा उन्हें शरीर के सभी भागो में बराबर पहुँचाता रहता है।

(४) वर्ज्य पदार्थों का परिवहन—शरीर के विभिन्न भागो से वर्ज्य पदार्थों को इकट्ठा करके रुधिर उन्हें यकृत में पहुँचाता है। यकृत अमोनिया को यूरिया (urea) में बदल देता है। जब परिवहन के फलस्वरूप रुधिर वृक्को में पहुँचता है तो यूरिया छन-छन कर बराबर बाहर निकला करता है।

(५) शारीरिक ताप का स्थायीकरण—रुधिर वाहिनियां एक व्यापक गरम जल-सिस्टम (hot water system) के समान कार्य करती हैं। शरीर के उन अगो में जहाँ अधिक उपापचय या मैटाबौलिज्म होता है जैसे पेशियां, यकृत इत्यादि, अधिक गर्मी उत्पन्न होती है। रुधिर इस गर्मी को लेकर परिवहन के फलस्वरूप उन सभी अगो में बाँटा करता है जहाँ कम गर्मी होती है। इस प्रकार सारे शरीर का एक ही सा ताप हो जाता है।

(६) रुधिर का थक्का बनाना या आतचन (clotting of blood)—लगने पर रुधिर-वाहिनियां फट जाती हैं और खून बहने लगता है किन्तु शीघ्र ही रुधिर-वाहिनियो के सिकुडने और खून जमने से रुधिर बहना बद हो जाता है। जमे हुए खून को माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर उसमें बहुत ही महीन तन्तुओं का एक जाल, जिसमें रुधिर कणिकाएं फँस जाती हैं, दिखाई देता है। तन्तुओं का यह जाल फाइब्रिन (fibrin) का बना होता है। इसके बनने की क्रिया वास्तव में बडी जटिल है। इस क्रिया में एन्जाइम्स भाग लेते हैं। एक एन्जाइम जिसे प्रोथ्राम्बिन (prothrombin) कहते हैं, अक्रिय रूप में, रुधिर में उपस्थित होता है। वाहिनियो में रुधिर को जमने से एन्टी-थ्रौम्बिन (antithrombin) या हिपैरिन (heparin) रोकता है। जब कभी रुधिर-वाहिनी फट जाती है तो वाहिनी की दीवारें तथा थ्राम्बोसाइट्स थ्राम्बोकाइनेज (thrombokinase) उत्पन्न करते हैं।

यह एण्टीथ्रौम्बिन को बेकार कर देता है और प्रो-थ्रौम्बिन को थ्रौम्बिन में बदल देता है जो फाइब्रिनोजेन को फाइब्रिन में बदल देता है। फाइब्रिन के तन्तुओ का एक घना जाल बन जाता है जिसमें रुधिर कणिकाएँ फँस जाती हैं। एक हल्का पीला-सा द्रव जिसे सीरम (serum) कहते हैं थक्के (clot) से अलग हो जाता है। सक्षेप में थक्का बनने की सभी क्रियाओ को निम्न प्रकार लिख सकते हैं —

(क) टूटी-फूटी थ्रौम्बोसाइट्स तथा रुधिर-वाहिनियो की दीवारें→ थ्रौम्बोकाइनेज

(ख) थ्रौम्बोकाइनेज + प्रोथ्रौम्बिन + कैलशियम आएन्स→थ्रौम्बिन

(ग) थ्रौम्बिन + फाइब्रिनोजेन→फाइब्रिन

(घ) फाइब्रिन + रुधिर कणिकाएँ→थक्का

(७) अन्य पदार्थों का परिवहन—हारमोन्स, ऐन्टीटौक्जिन इत्यादि रुधिर प्रवाह द्वारा शरीर के सभी भागो में पहुँचा करते हैं।

(८) रुधिर तथा रोग—(अ) अनेक रोग रुधिर में जीवाणुओ की उपस्थिति से हो जाते हैं। ये टौक्सिन उत्पन्न करते हैं। श्वेत-रुधिर कणिकाएँ इन्हे एन्टीटौक्सिन बनाकर बेकार कर देती हैं जिससे रोग होने की सभावना नही रहती।

(आ) फैगोसाइट्स रोग के बैक्टीरिया को खा जाते हैं।

(९) रूपान्तरण या मैटामार्फोसिस के समय फैगोसाइट्स टूट-फूट द्वारा अनावश्यक अगो, जैसे टैडपोल की पूँछ, को हटाने में सहायता देते हैं।

(१०) हाइड्रोजन आएन्स का नियमन—रुधिर अपने परिवहन के फलस्वरूप कोशिकाओ के चारो ओर सदैव एक-सा रासायनिक पर्यावरण (environment) बनाये रखता है। रुधिर में हाइड्रोजन आएन्स का सकेद्रण (concentration) एक ही सा बना रहता है। किसी द्रव में हाइड्रोजन आएन्स की सख्या को पी-एच (pH) कहते हैं, हाइड्रोजन आएन्स की सख्या जितनी अधिक होती है उतना ही वह द्रव अधिक अम्लीय (acidic) होता है। रुधिर में लैक्टिक एसिड या कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ जाने पर भी उसके pH सकेद्रण में कोई अन्तर नही आने पाता। इसमें वृक्क तथा कुछ रासायनिक पदार्थ जिन्हे बफर्स (buffers) कहते हैं सहायता देते हैं। बफर्स आमतौर पर फौस्फेट्स होते हैं।

हृदय की प्रतिपृष्ठ सतह पर गहरे लाल रंग की एक तिकोनी (∇) रचना होती है जिसे शिरा-पात्र (sinus venosus) कहते हैं। इसे ठीक से देखने के लिए हृदय को आगे की ओर उलटना आवश्यक होता है। यह तीनो महाशिराओं के मिलने से बनता है। आगे की दोनो को अग्र महाशिराएँ (anterior venae cavae) और पीछेवाली को पश्च महाशिरा
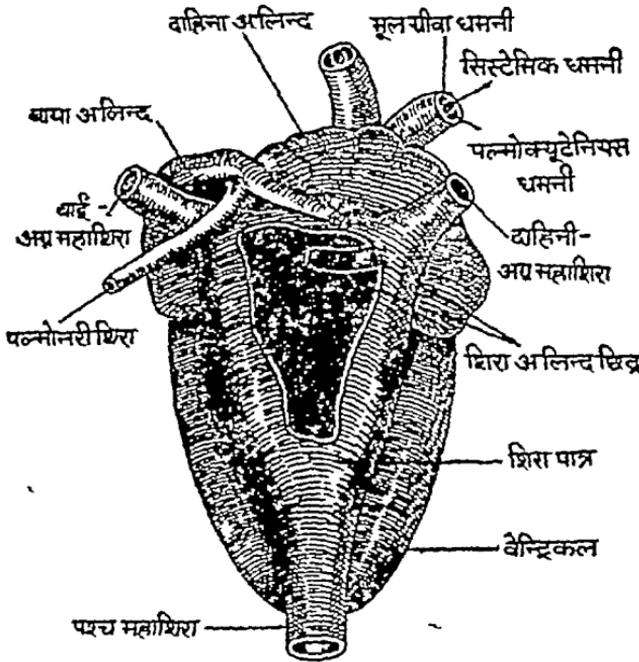
चित्र ५५—मेढक के हृदय का पृष्ठ दृश्य

(posterior vena cava) कहते हैं। शिरा पात्र के आगे पल्मोनरी शिरा बायें आरिकिल में खुलती है।

आन्तरिक संरचना

(Internal structure)

इन्टर आरिकुलर सेप्टम (inter auricular septum) द्वारा दाहिना अलिन्द बाये अलिन्द से अलग हो जाता है। दाहिना आलिन्द बाये की अपेक्षा बडा होता है। दाहिने में शिरा-अलिन्द छिद्र (sinu-auricular aperture) द्वारा खुलता है। इस छिद्र में वाल्व होते हैं जो रुधिर को केवल

शिरा पात्र या साइनस विनोशस से दाहिने अलिन्द में ही आने देते हैं। बायें अलिन्द में पल्मोनरी शिरा का छेद होता है। इसमें कोई वाल्व नहीं होता, फिर भी रुधिर का प्रवाह विमुख दिशा में नहीं होने पाता। क्यो ? इस छेद का कुछ भाग इन्टरआरिकुलर सेप्टम में धँसा रहता है जिससे आरिकिल्स के सिकुडने पर यह बन्द हो जाता है। दोनो अलिन्द एक ही अलिन्द निलय छिद्र (auriculo-venticulat aperture) द्वारा वेन्ट्रिकल में खुलते हैं। इस छिद्र को घेरे
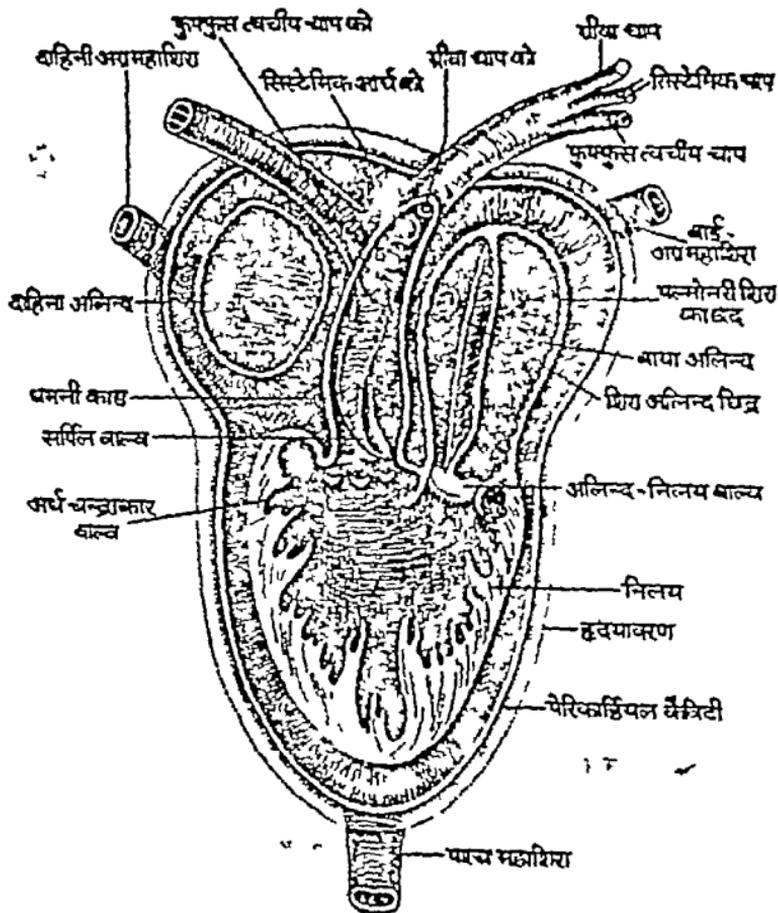
चित्र ५६—मेढक के हृदय की भीतरी सरचना

हुए चार फ्लैप्स (flaps) द्वारा निर्मित एक वाल्व होता है। पृष्ठ और प्रतिपृष्ठ फ्लैप हृदय-रज्जु या कोर्डी टेंडिनी (chordae tendinae) द्वारा निलय की मोटी भित्तियो से जुडे रहते हैं। इस प्रकार अलिन्द-निलय वाल्व रुधिर को केवल अलिन्दो से निलय या वेन्ट्रिकल में ही जाने देता है।

अलिन्दो की अपेक्षा वेन्ट्रिकल की दीवारें अधिक मोटी (पेशीय) होती हैं। इसकी भित्तियो की भीतरी सतह से अनेक मास-स्तम्भियाँ (columnae carnae) निकली रहतीं हैं जिससे यह अनेक लम्बी दरारों (fissures) में विभाजित हो जाती हैं।

दाहिने सिरे पर वेन्ट्रिकल की गुहा **धमनी-कांड** (truncus arteriosus) में खुलती है। यह छेद तीन **अर्धचन्द्राकार वाल्व** (semicircular valves) द्वारा घिरा रहता है। प्रत्येक वाल्व की गुहा (cavities) धमनी काड की ओर होती है जिससे रुधिर के वेन्ट्रिकल से धमनी काड में जाते समय तो ये पिचक जाते हैं किन्तु जब रुधिर का बहाव विपरीत दिशा में होता है तो रुधिर से भर जाने पर ये फूल जाते हैं और छेद को बन्द कर देते हैं। ट्रकस आर्टिरियोसस के जिस भाग में एक लम्बा **सर्पिल वाल्व** (spiral valve) होता है उसे **महाधमनी स्रोत या कोनस आर्टिरियोसस** (conus arteriosus) कहते हैं। सर्पिल वाल्व केवल अपनी पृष्ठ सतह पर महाधमनी स्रोत से जुडा रहता है।
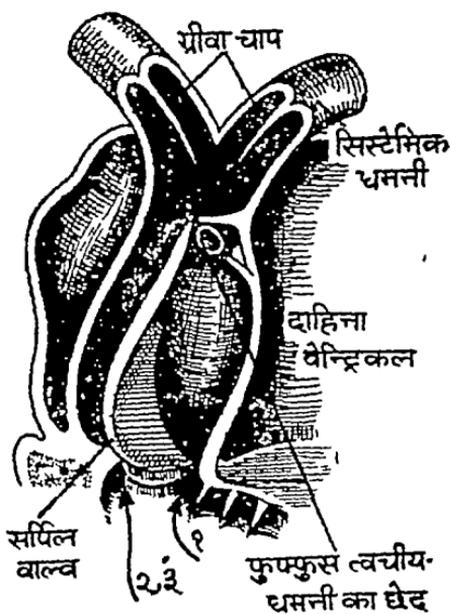
चित्र ५७—मेढक के धमनी काड की सरचना

इसकी प्रतिपृष्ठ सतह स्वतत्र होती है जिससे महाधमनी स्रोत की गुहा का अपूर्ण विभाजन दो भागो में हो जाता है। बाईं ओर की गुहा को **महाधमनी गुहा** (cavum aorticum) और दाहिनी ओर की गुहा को **फ्लोम-त्वचीय गुहा** (cavum pulmocutaneum) कहते हैं।

सर्पिल वाल्व या सेप्टम के ठीक आगे **फ्लोम-त्वचीय आर्च** (pulmocutaneous arch) का छेद होता है। इसी के कुछ आगे ट्रकस दो शाखाओ में विभाजित हो जाता है। विभाजन के आगे ही **सिस्टेमिक धमनियों** (systemic arteries) और इसके कुछ आगे **कैरोटिड आर्चेज** (carotid arches) के छेद होते हैं। इस प्रकार महाधमनी स्रोत के दोनो दूरस्थ भाग जो कि बाहर से देखने में एक ही दिखाई पडते हैं, वास्तव में तीन तीन वाहिनियो (vessels) के बने होते हैं। ये तीनो वाहिनियाँ एक दूसरे से अलग होकर प्रत्येक ओर तीन **आर्टीरियल आर्चेस** (arterial arches) बनाती हैं।

हृदय की क्रिया
(Working of Heart)

वैन्डरवील (*Vandervael*, 1933) तथा फॉक्सन (*Foxon*, 1951) की आधुनिक खोजो के अनुसार मेढक के हृदय की क्रिया बहुत ही सरल है।

हृदय एक सुन्दर पम्प के सदृश कार्य करता है। शिरा-पात्र (sinus venosus) के कुचन से डिआक्सीजिनेटेड रुधिर शिरा-अलिन्द छिद्र में होता हुआ दाहिने अलिन्द में पहुँच जाता है। इसी समय आक्सीजिनेटेड रुधिर प्लमोनरी शिरा द्वारा वायें अलिन्द में इकट्ठा होता है। अब दोनो अलिन्दो का कुचन एक साथ आरभ होता है जिससे रुधिर पर दाव वढ जाता है। शिरा-अलिन्द वाल्व (sinu-auricular valve) शिरा अलिन्द छिद्र को वन्द कर देते है। इन्टर आरिकुलर सेप्टम के सिकुडने से पल्मोनरी शिरा का छेद वन्द हो जाता है। इस प्रकार दोनो अलिन्दो से रुधिर वापस नही जाने पाता, अलिन्द-निलय छिद्र (auriculo ventricular aperture) में होकर रुधिर को वेन्ट्रिकल में जाना पडता है। यहां पर आक्सीजिनेटेड तथा डिआक्सीजिनेटेड रुधिर अच्छी तरह मिल जाते हैं।
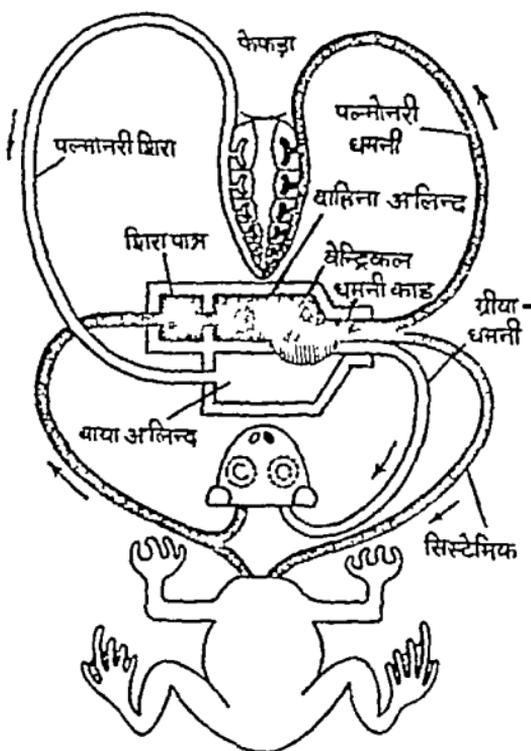
चित्र ५९—पुराने मत के अनुसार मेढक के हृदय की क्रिया तथा रुधिर का सचार

रुधिर से भर जाने पर वेन्ट्रिकल का कुचन होता है। वेन्ट्रिकल की दीवार अलिन्दो की अपेक्षा अधिक मोटी या पेशीय (muscular) होती है जिससे इसका कुचन अधिक प्रवल होता है। इसके कुचन से अलिन्द-निलय वाल्व (auriculo-ventricular valve) अलिन्द तथा वेन्ट्रिकल के बीच के छेद को वद करके रुधिर को वापस जाने से रोक लेता है। ऐसी दशा में वेन्ट्रिकल मे भरे रुधिर के लिए केवल एक ही रास्ता रहता है। वह पाइलैन्जियम (pylangium) में स्थित केवम एओरटिकम और केवम पल्मोक्यूटेनियम में भर जाता है। सर्पिल वाल्व केवल पाइलैन्जियम की दीवारो को पिचकने से रोकता है।

ट्रकस आर्टिरियोसस के कुचन से केवम पल्मोक्यूटेनियम का रुधिर पल्मोक्यूटेनियम आर्च में होता हुआ दोनो ओर की फुप्फुस त्वचीय धमनियो द्वारा फेफडो तथा त्वचा में पहुँच जाता है। केवम एओरटिकम का रुधिर आगे

वढकर सिस्टेमिक तथा कैरौटिड आर्चेस मे चला जाता है। इस प्रकार सभी धमनियो मे वहनेवाले रुधिर का रासायनिक निवन्ध एक ही-सा होता है।

ऊपर दी कार्य-विधि तुम्हारी समझ मे आ जायगी यदि तुम इस बात को ध्यान में रखो कि मेढक में सबसे महत्त्वपूर्ण श्वसन अग फेफडे नहीं वरन् त्वचा तथा मुखगुहा का म्यूकस मेम्ब्रेन है। जब मेढक पानी में होता है तो यह केवल त्वचा तथा मुखगुहा द्वारा साँस लेता है। ऐसी दशा मे पेशी-त्वचीय या मस्क्युलो क्यूटेनियस शिरा के रुधिर मे पल्मोनरी शिरा की अपेक्षा आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है। वास्तव मे हम इसे जल-स्थलीय जीवन (amphibious life) के लिए एक आवश्यक अनुकूलन (adaptation) कह सकते हैं। क्योकि पानी मे रहने पर जब यह केवल त्वचा तथा मुखगुहा द्वारा साँस लेता है तब मस्क्युलो क्यूटेनियस शिरा द्वारा आक्सीजिनेटेड रुधिर सीधा दाहिने अलिन्द में पहुँच जाता है।

रुधिर-वाहिनियाँ तथा उनका विवरण

(Blood vessels and their Distribution)

(१) **धमनियाँ** (arteries)—वे सभी वाहिनियाँ, जो हृदय से रुधिर लेकर शरीर के विभिन्न अगो मे पहुँचाती हैं **धमनियाँ** (arteries) कहलाती है। इनमे वहनेवाले रुधिर में अधिक दाव होता है जिससे इनकी दीवारें शिराओ की अपेक्षा अधिक मोटी किन्तु लचीली होती है। लचीले होने से रुधिर मे दाव इनको फैलाने मे ही नही नष्ट हो जाता वल्कि रुधिर को आगे ढकेलता है। इनमें प्राय वाल्व नही होते और इनका भीतरी व्यास शिराओ की अपेक्षा कम होता है।

धमनी की दीवार मे तीन पर्तें होते हैं —

(क) **आन्तरिक स्तर** (inner coat)

(ख) **मध्य स्तर** (middle coat)

(ग) **वाह्य स्तर** (outer coat)

आन्तरिक स्तर को **एण्डोथीलियम** (endothelium) भी कहते है। इस प्रकार के ऊतक की कोशिकाएँ चपटी होती है। **मध्य स्तर** अरेखित पेशियो का वना होता है।इसमें **वाहिनी-प्रेरक**(vaso-motor) तन्त्रिका तन्त्र होते हैं जिससे आवश्यकतानुसार इनका व्यास घटता-वढता रहता है। धमनियो मे इसकी मोटाई के अधिक होने से ये रक्तहीन अवस्था में भी पिचकती नही। **वाह्य-स्तर** में सयोजी ऊतक होता है। यही स्तर धमनियो को मजबूत और लचीला वनाता है।

शिराओं की अपेक्षा धमनियों में रुधिर अधिक तेजी से बहता है। ये अधिक गहराई में मिलती हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में प्रवेश करने पर प्रत्येक धमनी धमनिकाओं (arterioles), आर्टीरियल केशिकाओं (arterial capillaries) और अन्त में केशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं।
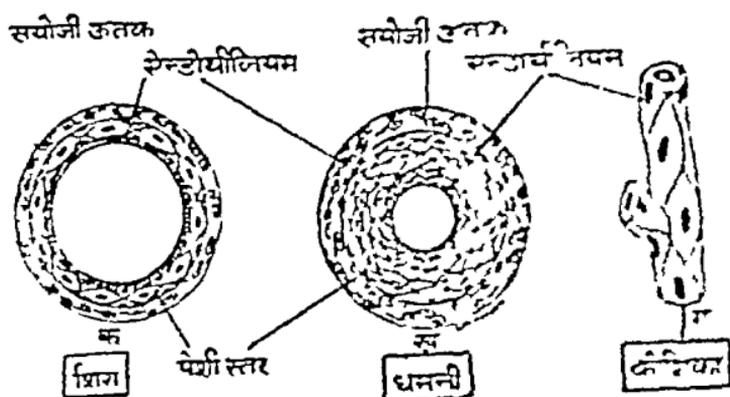
चित्र ६०—शिरा, धमनी तथा केशिकाओं की रचना क, शिरा की अनुप्रस्थ काट, ख, धमनी की अनुप्रस्थ काट, ग, केशिका का बाह्य दृश्य।

(२) केशिकाएँ—इनकी बनावट इनके कार्य के अनुरूप होती है। इनकी दीवारें केवल आन्तरिक स्तर की बनी होती हैं जिनसे ये इतनी पतली होती हैं कि इनमें बहनेवाले रुधिर का प्लाज्मा छन-छनकर बराबर इनसे बाहर निकला करता है। जहाँ तक कायिकी का सम्बन्ध है केशिकाएँ परिवहन तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग बनाती हैं क्योंकि इनकी ही पतली दीवारों में होकर रुधिर की वस्तुएँ ऊतक-कोशिकाओं में पहुँच सकती हैं और कोशिकाओं की वस्तुएँ बाहर निकलकर रुधिर-प्रवाह में पहुँच सकती हैं। धमनियों और शिराओं की दीवारें इतनी मोटी होती हैं कि उनमें होकर रुधिर-प्रवाह से न तो कोई वस्तु बाहर ही निकल सकती है और न भीतर ही प्रवेश कर सकती है। तुम ऊपर पढ चुके हो कि धमनियों के विभाजन से धमनिकाएँ (arterioles) बनती हैं और धमनिकाओं के विभाजन से बालों या केशों (hair) से कहीं महीन शाखाएँ बन जाती हैं जिन्हें केशिकाएँ कहते हैं। इनके मेल से वेन्यूल्स (venules) और वेन्यूल्स के मेल से वेन्स या शिराएँ (veins) बनती हैं।

आमतौर पर केशिकाओं का व्यास लगभग १५ म्यू होता है। कुछ स्थानों पर तो ये इतनी पतली होती हैं कि लाल रुधिर कणिकाओं को एक कतार में होकर भी आगे बढ़ने के लिए अपना आकार बदलना पडता है। केशिकाओं में बहते समय रुधिर की सतह का क्षेत्रफल हजारों गुना बढ़ जाता है जिससे रुधिर तथा कोशिकाओं के बीच होनेवाला लेन-देन कई गुना बढ जाता है।
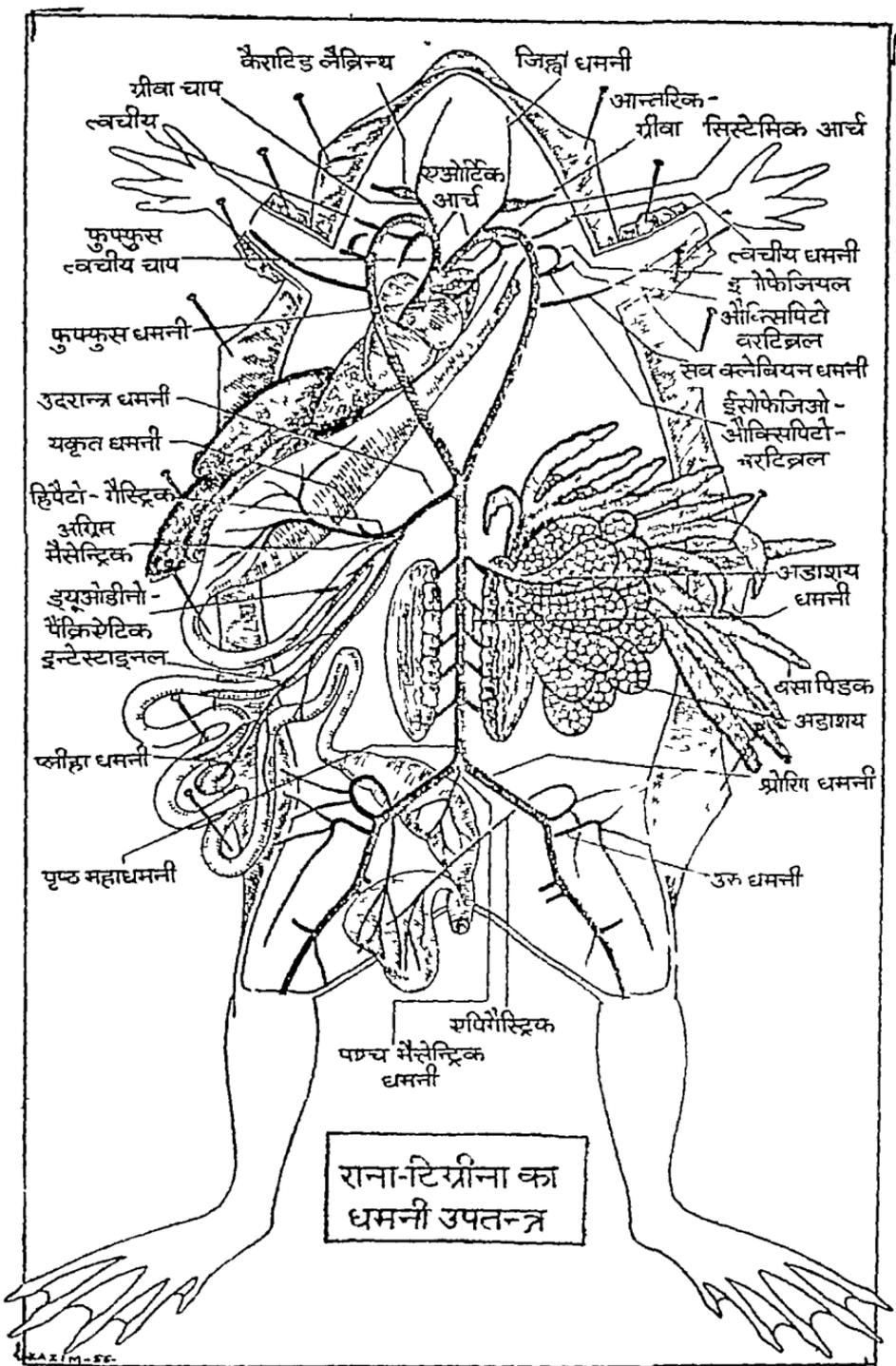
चित्र ६१—राना टिग्रीना में धमनी उपतंत्र

(३) शिराएँ (veins)—शिराएँ शरीर के विभिन्न अगो से रुधिर इकट्ठा करके हृदय में या हृदय की ओर ले जाती हैं। इनकी दीवारो में भी तीन स्तर होते हैं। मध्य स्तर, जिसमें अरेखित पेशी तन्तु होते हैं। धमनी की अपेक्षा कम मोटा होता है जिससे रुधिर न होने पर ये शिराएँ आसानी से पिचक जाती हैं। रुधिर का विपरीत दिशा में वहाव रोकने के लिए इनकी भीतरी दीवारो से जुडे अर्धचन्द्राकार वाल्व होते हैं। इनमें रुधिर का वहाव समानगति से होता है। और ये अधिकतर शरीर की सतह के पास ही होती हैं।

चित्र ६२—शिरा में किस प्रकार वाल्व कार्य करते हैं।

मेढक का धमनी उपतंत्र

(Arterial System of Frog)

धमनी काण्ड (truncus arteriosus) आगे बढकर दाहिनी और बाईं आर्टीरियल आर्चेस (arterial arches) में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक शाखा वास्तव में तीन **धमनी चापों** (aortic arches) की बनी होती हैं —

(अ) **ग्रीवा या कैरोटिड चाप** (carotid arch)

(आ) **सिस्टेमिक चाप** (systemic arch)

(इ) **फ्लोम-त्वचीय चाप** (pulmocutaneous arch)

(अ) दोनो ओर की **ग्रीवा-चापें** सबसे आगे तथा ईसोफेगस को दोनो ओर से घेरती हुई दो-दो शाखाओ में बँट जाती हैं।

(१) **लिंगुअल** (lingual) या **बाह्य कैरोटिड धमनी** (external carotid artery)—यह जीभ तथा हाइओइड (hyoid) की पेशियो को रुधिर पहुँचाती है।

(२) **आन्तरिक ग्रीवा या इन्टर्नल कैरोटिड धमनी**—जहाँ पर यह लिंगुअल धमनी से अलग होती है एक स्पजी सरचना होती है जिसे **कैरोटिड लैंबरिन्थ** (carotid labyrinth)

कहते हैं। आधुनिक मत के अनुसार यह एक संवेदक अंग का काम करती है। इसके द्वारा मस्तिष्क में जानेवाले रुधिर के दाव (pressure) में होनेवाले परिवर्तन का आसानी से पता चल जाता है। इसकी शाखाएँ मस्तिष्क नेत्र-गोलक की पेशियो तथा मुखगुहा की छत की श्लेष्मिक-झिल्ली या म्यूकस मेम्वरेन को रुधिर पहुँचाती है।

(आ) सिस्टेमिक धमनी चाप (Systemic arch)—यह बीचवाली चाप है। दोनो ओर सिस्टेमिक चापें ईसोफेगस को घेरते हुए अगली टाँगों की सीध में पीछे और नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। छठे वरटिब्रा की प्रतिपृष्ठ सतह पर दोनो ओर की चापें मिलकर डौरसल एओर्टा या पृष्ठ महाधमनी बनाती है। डौरसल एओरटा वनाने के पूर्व प्रत्येक ओर की सिस्टेमिक धमनी से निम्नलिखित शाखायें निकलती हैं —

(१) ईसोफेजियो-औक्सीपिटो-वरटिब्रल (Oesophageo-occipitovertebral)—भारतीय मेढक राना टिग्रीना में ईसोफेजियल (oesophageal) तथा औक्सीपिटो-वरटिब्रल धमनियाँ अलग-अलग स्थानो से नही निकलती, दोनो मिल जाती हैं। कुछ दूर वाहर जाने के वाद ईसोफेजियो औक्सीपिटो-वरटिब्रल धमनी दो शाखाओ में बँट जाती है। अगली शाखा जिसे ईसोफेजियल धमनी (oesophageal artery) कहते हैं भीतर की ओर मुड़कर ईसोफेगस को रुधिर पहुँचाती है। पिछली शाखा जिसे औक्सीपिटोवरटिब्रल धमनी (occipito-vertebral artey) कहते हैं कशेरुक धमनी (vertebral artery) द्वारा वरटिब्रल धमनी तथा रीढ रज्जु (spinal cord) को और औक्सीपीटल धमनी द्वारा सिर और जबडो में रुधिर पहुँचाती है।

(२) सव-क्लेवियन या अधोअक्षक धमनी (Subclavian artery)—यह ईसोफेजियो-औक्सीपिटो-वरटिब्रल के कुछ पीछे निकलती है। कुछ दूर वाहर की ओर जाकर यह कंधो के पास ब्रेकियल धमनी के रूप में अगली टाँग में घुस जाती है।

डौरसल एओरटा ठीक वरटिब्रल कॉलम के नीचे स्थित होता है और दोनो वृक्को के बीच से होता हुआ देह-गुहा के पिछले सिरे तक जाता है। इससे निम्नलिखित धमनियाँ निकलती हैं.—

(१) उदरान्त्र धमनी (Coeliaco mesenteric artery)—यह ठीक उस स्थान से निकलती है जहाँ पर दोनो ओर की सिस्टेमिक

धमनियाँ मिलती हैं। कुछ दूर आगे बढने पर यह दो प्रमुख शाखाओ में बँट जाती है —

(अ) सीलियक धमनी (coeliac artery)—यह स्वय दो शाखाओ मे विभाजित हो जाती है, जठर धमनी (gastric artery) आमाशय को रुधिर पहुँचाती है और याकृत या हिपैटिक धमनी यकृत में रुधिर पहुँचाती है।

(आ) अग्र मैसेन्टरिक धमनी (anterior mesenteric artery)—इसकी डचूओडीनल शाखा ड्यूओडीनम को रुधिर पहुँचाती है। दूसरी शाखा जिसे प्लीहा धमनी (splenic artery) कहते हैं। प्लीहा (spleen) को रुधिर पहुँचाती है और तीसरी शाखा जिसे आत्र धमनी (intestinal artery) कहते है छोटी आँत में रुधिर पहुँचाती है।

(२) वृक्क या रीनल धमनियाँ—इनके ५-७ जोडे दोनो वृक्को को रुधिर पहुँचाते हैं।

(३) जनन-धमनियाँ (gonadial arteries)—इनका एक ही जोडा होता है। मादा में अडाशय धमनियाँ (ovarian arteries) अडाशय में और नर में वृषण-धमनियाँ वृषण (testes) में रुधिर पहुँचाती हैं।

(४) पश्च मैसेण्टेरिक धमनी (posterior mesenteric artery) डौरसल एओरटा के ठीक पिछले सिरे से यह निकलती है और बडी आँत तथा मादा मेढक के ओवीसैक (ovisac) में रुधिर पहुँचाती हैं।

इसके पीछे डौरसल एओरटा स्वय दो शाखाओ में विभाजित हो जाता है। इन्हे श्रोणि या इलियक धमनियाँ (iliac arteries) कहते हैं। प्रत्येक इलियक अपनी ओर की पिछली टाँग में जाती है और स्वय दो धमनियो में विभाजित हो जाती हैं —

(अ) उपरिजठर या एपिगैस्ट्रिक (epigastric) जिसकी शाखाएँ प्रतिपृष्ठ काय-भित्ति, बडी आँत और मूत्राशय में रुधिर पहुँचाती हैं।

(आ) ऊरु या फेमोरल धमनी (femoral artery)—जो ऊरु की पेशियो और त्वचा को रुधिर पहुँचाती है।

(इ) ऊपर लिखी दोनो धमनियो के निकलने के पश्चात् इलियक स्वय सिएटिक या नितम्ब धमनी के रूप में साइएटिक तन्त्रिका के साथ-साथ पीछे चली जाती है। यह पिछली टाँग के शेष भाग को रुधिर पहुँचाती है।

(ई) पलोम-त्वचीय चाप (pulmocutaneous arch)—धमनी काण्ड से निकलने के बाद यह दो शाखाओं में बँट जाती है। एक शाखा, जिसे पल्मोनरी धमनी कहते हैं, फेफडो में रुधिर पहुँचाती है और दूसरी जिसे त्वचीय धमनी (cutaneous artery) कहते हैं त्वचा में रुधिर पहुँचाती है।

शिरा उपतंत्र
(Venous System)

सुविधा के लिए हम शिरा उपतत्र को भी (१) अग्र-शिराओं (anterior veins) तथा (२) पश्च-शिराओं (posterior veins) में विभाजित कर सकते हैं।

अग्र शिराएँ
(Anterior veins)

पल्मोनरी शिराएँ (pulmonary veins)—दाहिनी तथा बाईं पल्मोनरी शिराएँ मिलकर एक शिरा बनाती हैं जो एक छेद द्वारा बाएँ अलिन्द (left auricle) में खुलती हैं।

शरीर के अगले भाग से दोनों ओर की अग्र महाशिराएँ (anterior venae cavae) रुधिर इकट्ठा करके शिरा-पात्र (sinus venosus) में पहुँचाती हैं। प्रत्येक ओर की अग्र महाशिरा में निम्नलिखित तीन शिराएँ खुलती हैं —

(१) एक्सटर्नल जुगलर या आन्तरिक ग्रीवा शिरा—यह सबसे ऊपर होती है और स्वय दो शिराओं के मेल से बनती है —

(i) लिगुअल या जिह्वा शिरा (lingual vein)—यह मुख-गुहा की छत तथा जीभ से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(ii) मैंडिब्युलर या अधोहनु शिरा निचले जबडे से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(२) इननोमिनेट या अनामक शिरा (innominate vein)—यह भी निम्नलिखित दो शाखाओ के मेल से बनती है —

(i) आन्तरिक ग्रीवा या इन्टर्नल जुगलर शिरा (internal jugular vein) मस्तिष्क, नेत्र और खोपड़ी से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(ii) अधोसफलक या सबस्कैप्यूलर शिरा (subscapular vein)—यह अगली टाँग के पिछले भाग की पेशियो, त्वचा तथा कधो से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।
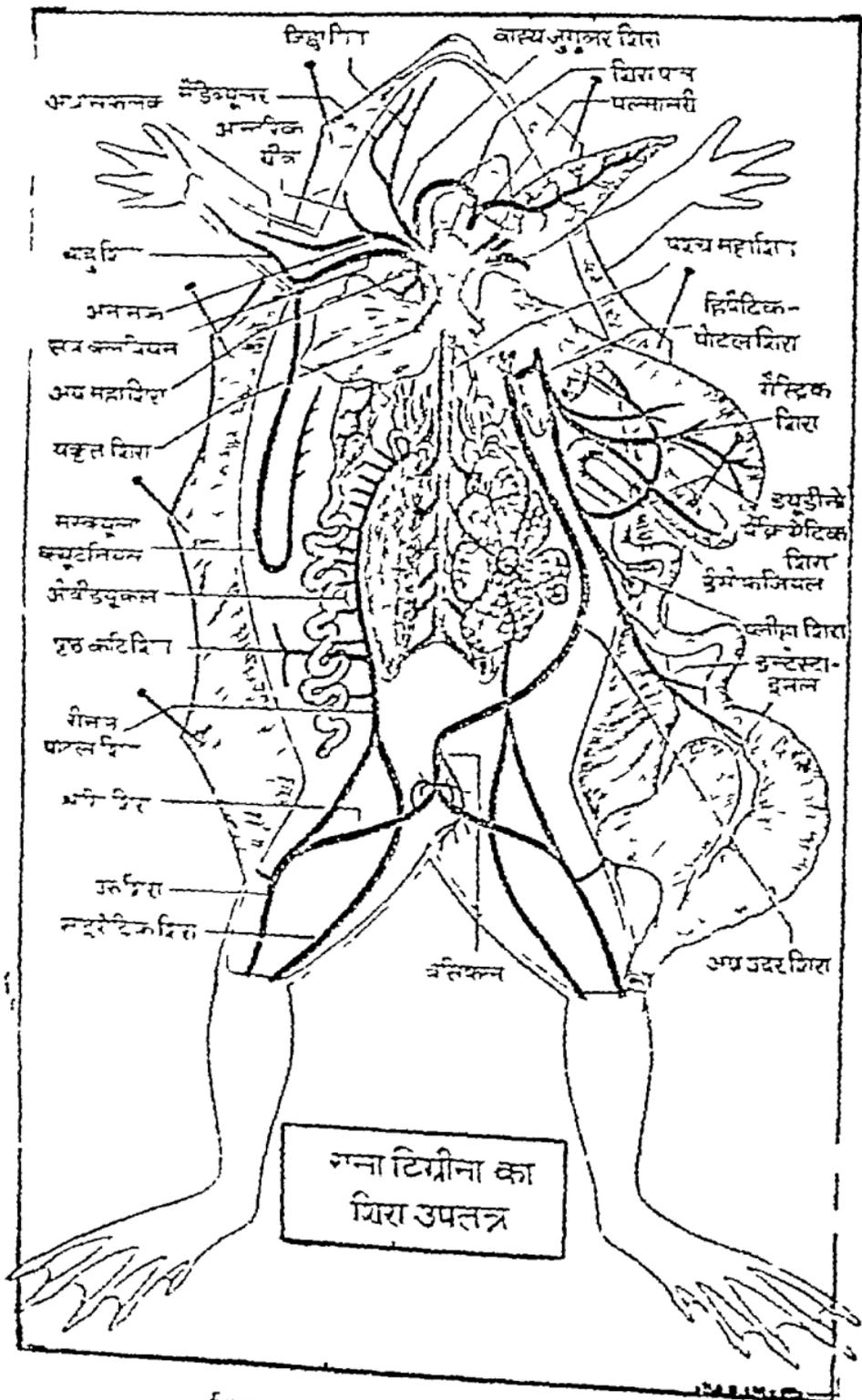
चित्र ३३—रना टिग्रीना में शिरा उपतन्त्र

(३) अधोअक्षक या सबक्लेवियन (subclavian)—यह तीनों में सबसे बडी होती है और अन्य दो शिराओ के समान यह भी दो छोटी-छोटी शिराओ के मेल से बनती है —

(i) बाहु शिरा (brachial vein)—यह अपनी ओर की अगली टाँग से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(ii) पेशी-त्वचीय शिरा (musculo-cutaneous vein)—कधे के पास पीछे की ओर घूमकर यह पृष्ठभाग की देह-भित्ति की ओर पेशियो से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

पश्च-शिराएँ

(Posterior Veins)

शरीर के पूरे पिछले भाग का रुधिर पश्च-महाशिरा द्वारा शिरा-पात्र (sinus venosus) मे इकट्ठा होता है। पश्च महाशिरा दोनो वृक्को के पिछले सटो पर आरभ होती है और दोनो वृक्को के बीच आगे बढती है। दाहिने यकृत पिंडक (liver lobe) के भीतर से होती हुई यह आगे बढती है और अन्त में शिरा-पात्र मे खुलती है। इसमें निम्नलिखित शिराएँ खुलती हैं —

(i) वृक्क शिराएँ (renal veins)—इनके ५-६ शाखान्वित (branched) जोडे इसमें खुलते हैं।

(ii) जनन शिराएँ (goandial veins)—इनका आमतौर पर एक जोडा नर में वृषण और मादा में अडाशय (ovary) से निकल कर प्राय प्रथम वृक्क शिरा के जोडे में खुलता है।

(iii) याकृत शिराएँ (hepatic veins)—ये बहुत छोटी किन्तु मोटी होती हैं और यकृत पिंडो (lobes) से रुधिर इकट्ठा करके पश्च महा-शिरा मे उँडेलती हैं।

पिछली टाँगो और आहार-नाल के विभिन्न भागो से रुधिर इकट्ठा करके लानेवाली शिरायें पोर्टल या निर्वाहिका उपतन्त्र बनाती हैं।

कुछ शिरायें शरीर के विभिन्न भागो से रुधिर इकट्ठा करके सीधे हृदय में ले जाती हैं किन्तु कुछ ऐसी भी शिरायें होती हैं जो हृदय में न जाकर किसी दूसरे अग में प्रवेश करती हैं और वहाँ नये सिरे से केशिकाओ का

एक जाल बनाती हैं। ऐसी ही शिराओं को निवाहिका या पोर्टल शिराएं (portal veins) कहते हैं। इनका आरंभ और अन्त दोनों ही केशिकाओं के जाल में होता है। जिस अंग में केशिकाओं का दूसरा जाल बनता है उसी अंग के नाम से पोर्टल शिरा का नाम होता है। यदि केशिकाओं का दूसरा जाल यकृत में बनता है तो इसे यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) और जब ऐसी कोई शिरा वृक्क में केशिकाओं का दूसरा जाल बनाती है तो उसे वृक्क निवाहिका शिरा (renal portal vein) कहते हैं। इन शिराओं के दूसरे सिरे पर स्थित केशिकाओं के जाल को निवाहिका उपतंत्र (portal system) कहते हैं। मेढक में निम्नलिखित दो निवाहिका शिरा उपतंत्र होते हैं —

(अ) वृक्क निवाहिका उपतंत्र
(Renal portal system)

पिछली टाँगों के बाहरी भाग से फेमोरल (femoral) शिरा और भीतरी भाग से साइऐटिक शिरा रुधिर इकट्ठा करके ले जाती हैं। देहगुहा में पहुँचते ही प्रत्येक ओर की फेमोरल दो भागों में बँट जाती है। इनमें से एक को वृक्क निवाहिका शिरा (renal portal vein) और दूसरी को श्रोणि या पेल्विक शिरा कहते हैं। प्रत्येक ओर की वृक्क निवाहिका शिरा थोड़ा आगे बढ़ने पर अपनी ओर की साइऐटिक शिरा (sciatic vein) से मिलती है और इसके बाद अपनी ओर के वृक्क के बाहरी तट को छूती हुई आगे बढ़ती है। वृक्कों में घुसने के पहले इसमें पृष्ठ-कटि या डौर्सोलम्बर शिरा (dorsolumbar vein) खुलती है। यह शिरा पीठ की पेशियों से रुधिर इकट्ठा करके लाती हैं।

दोनों ओर की श्रोणि या पेल्विक शिरायें कुछ ऊपर उठकर प्रतिपृष्ठ सतह पर मिल जाती हैं और एक उदर-अग्र शिरा (anterior abdominal vein) बनाती है जो देहगुहा की प्रतिपृष्ठ (ventral) दीवार से चिपककर बीचोबीच में आगे की ओर बढ़ती है। यकृत के समीप पहुँचकर यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इसकी एक छोटी सी शाखा आहार-नाल के विभिन्न भागों से रुधिर लानेवाली यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) से मिल जाती है। दूसरी शाखा यकृत के बायें पिंडक में घुसकर केशिकाओं का एक जाल बनाती है।

रीनल पोर्टल सिस्टम की क्या उपयोगिता है? इसकी उपस्थिति से वृक्कों को वृक्क-धमनियों तथा वृक्क-निवाहिका शिराओं द्वारा लाये गये रुधिर के वर्ज्य पदार्थों को बाहर निकालने का अवसर मिल जाता है।

(आ) याकृत निवाहिका उपतंत्र

(Hepatic portal system)

आमाशय की भित्ति में स्थित केशिकाएँ मिलकर जठर शिरा (gastric vein) का निर्माण करती हैं। इसी प्रकार ईसोफेगस से ईसोफेजियल शिरा, ड्यूओडीनम और अग्न्याशय से ड्यूओडीनो - पेंक्रीएटिक शिरा (duodeno-pancreatic vein), छोटी और वडी आँत से इन्टेस्टाइनल (intestinal) तथा प्लीहा से प्लीहा शिरा (splenic vein) निकलती हैं। इन सब शिराओ के परस्पर मिलने से हिपैटिक पोर्टल वेन (hepatic portal vein) वनती है। उदर - अग्र शिरा (anterior abdominal vein) की एक शाखा मिल जाती है और तव फिर यह यकृत में घुस जाती है और वहाँ केशिकाओ का एक विस्तृत जाल वनाती है। हिपैटिक पोर्टल उपतंत्र की उपस्थिति से यकृत आहार-नाल से आनेवाले रुधिर में अनेक परिवर्तन करने में समर्थ होता है। इसके पूर्व कि आहार-नाल के विभिन्न भागो से आनेवाला रुधिर हृदय में पहुँचे और हृदय उसे शरीर के विभिन्न भागो को वाँटे उसका यकृत में पहुँचना आवश्यक होता है। इसीलिए हिपैटिक पोर्टल सिस्टम सभी वरटिब्रेट्स में मिलता है। इस उपतंत्र की उपस्थिति से यकृत की केशिकाएँ रुधिर में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करती रहती हैं।
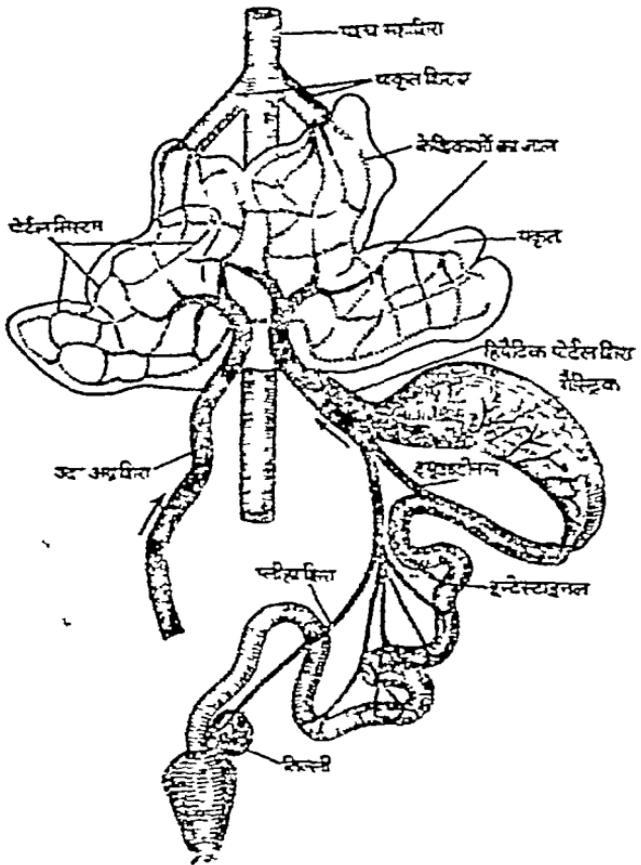
चित्र ६४—मेढक का हिपैटिक पोर्टल सिस्टम

लसीका तंत्र या लिम्फैटिक सिस्टम

(Lymphatic System)

धमनियों में बहनेवाले रुधिर पर अधिक दबाव होता है किन्तु जैसे-जैसे रुधिर केशिकाओं में पहुँचता है दबाव भी कम होता जाता है। इसी दबाव के कारण केशिकाओं की अत्यन्त पतली दीवारों से प्लाज्मा कुछ तो छन छनकर और कुछ विसरण (diffusion) के फलस्वरूप ऊतक-कोशिकाओं के बीच-बीच में पहुँच जाता है। इस द्रव को ऊतक द्रव (tissue fluid) कहते हैं। लाल रुधिर कणिकाएँ अवश्य केशिकाओं के बाहर नहीं निकल पातीं, किन्तु श्वेत रुधिर कणिकाएँ कूटपादों या स्यूडोपोडिया (pseudopodia) की सहायता से केशिकाओं की दीवारों में छेद करके ऊतक-द्रव में पहुँच जाती हैं।
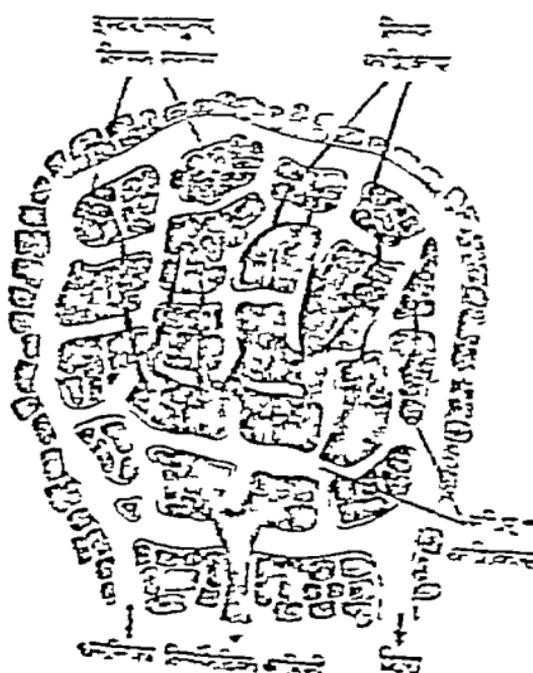
चित्र ६५—लिम्फ केशिकाओं का निर्माण

ऊतक द्रव (tissue fluid) ऊतक-कोशिकाओं और रुधिर के बीच एक प्रकार के मध्यग (intermediary) का कार्य करता है। रुधिर से पोषक-तत्त्व और आक्सीजन ऊतक-द्रव में पहुँचते हैं जिन्हें यह ऊतक कोशिकाओं में पहुँचाता है। इसी प्रकार वर्ज्य-पदार्थ विशेषतया से कार्बन डाइआक्साइड और यूरिया कोशिकाओं से निकलकर पहले ऊतक द्रव में आते हैं और फिर वहाँ से रुधिर-केशिकाओं या लिम्फ केशिकाओं में चले जाते हैं। जो ऊतक द्रव लसीका-केशिकाओं या लसीका-पात्रों (lymph sinuses) में इकट्ठा हो जाता है उसे लिम्फ या लसीका (lymph) कहते हैं। इस प्रकार लसीका ऊतक द्रव का ही एक रूप है।

लाल रुधिर कणिकाओं के अभाव से लिम्फ रुधिर की तरह लाल नहीं होता। रुधिर की अपेक्षा इसमें प्रोटीन की भी मात्रा कम होती है। किन्तु वर्ज्य पदार्थ और भोजन की मात्रा अधिक होती है। इसमें श्वेत रुधिर कणिकाओं

विशेषरूप से लिम्फोसाइट्स (lymphocytes) की सख्या अधिक होती है। यद्यपि लिम्फ में रुधिर की अपेक्षा फाइब्रिनोजिन की मात्रा कम होती है फिर भी इसमें थक्का बनाने की ताकत होती है। अत यह स्पष्ट है कि यह रुधिर से किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नही होता।

मेढक में लिम्फ-केशिकायें लसीका-पात्रों (sinuses) में खुलती है। लसीका पात्र विशेषरूप से त्वचा के नीचे तथा वरटिब्रल कॉलम के नीचे स्थित
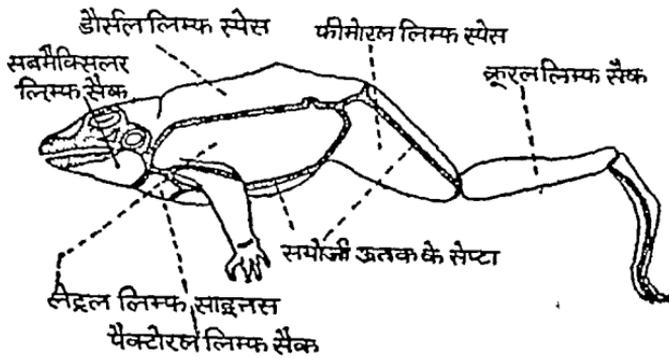
चित्र ६६—मेढक में त्वचा के नीचे मिलनेवाले लसीकापात्र

होते हैं। देहगुहा स्वय एक विशाल लसीका-पात्र है। लसीका पात्रो का सम्बन्ध लसीका हृदय (lymph hearts) से होता है। लिम्फहार्ट के दो जोडे होते हैं लसीका हृदय का अगला जोडा तीसरी वरटिब्रा के इधर-उधर होता है। ये दोनो
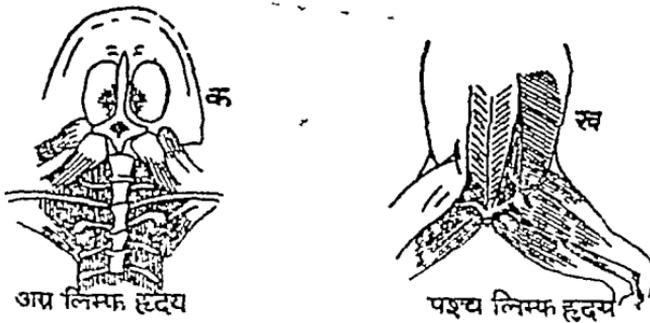
चित्र ६७—मेढक में लिम्फ-हृदय एण्टीरियर
क, लिम्फ हार्ट, ख, पोस्टोरियर लिम्फ हार्ट।

सबस्कैप्युलर शिराओ में खुलते हैं। लसीका हृदयो का पिछला जोडा यूरोस्टाइल (urostyle) के अगले सिरे के इधर-उधर होता है। ये दोनो फीमोरल शिराओ मे खुलते है।

देह-गुहा की सीलोमिक फ्ल्यूड सीलियेटेड नैफ्रोस्टोम्स (nephrostome) द्वारा रीनल-शिराओ में पहुँच जाता है।

प्रश्न

१—रुधिर की सरचना तथा कार्य समझाओ।

२—मेढक के हृदय की सरचना और कार्य समझाओ।

३—शिरा तथा धमनी की सरचना में क्या अन्तर होता है? हिपैटिक और रीनल पोर्टल उपतत्र के चित्र वनाओ तथा उनके कार्य समझाओ।

४—रुधिर तथा लसीका की रचना में क्या अन्तर होता है? लसीका के कार्यों का वर्णन करो।

५—विस्तारपूर्वक समझाओ कि रुधिर (अ) श्वसन (आ) उत्सर्जन तथा (इ) पोषण मे किस प्रकार सहायता देता है।

६—मेढक के धमनी उपतत्र का चित्र बनाओ और मुख्य धमनियो के नाम लिखो। फेफडे, वृक्क, छोटी आँत और यकृत के रुधिर प्रवाह में क्या और क्यों अन्तर हो जाते हैं?

७—परिवहन तत्र में वाल्व (valves) का क्या कार्य है? हृदय तथा शिराओं में मिलनेवाले वाल्व (valves) का कार्य विस्तारपूर्वक समझाओ।

८—पोर्टल सिस्टम (portal system) क्या है? हिपैटिक पोर्टल सिस्टम में वहते समय रुधिर की रचना में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते है?

९—लाल रुधिर कणिकाएँ (R B C) तथा श्वेत रुधिर कणिकाएँ कहाँ पर वनती हैं और क्या कार्य करती है? प्लाजमा कैसे वनता है तथा क्या कार्य करता है?

१०—केशिकाओ की रचना, स्थिति तथा कार्यों का सविस्तर वर्णन करो।

११—निम्न विषयो पर सक्षेप में टिप्पणी लिखो —

(क) अलिन्दो (auricles) की अपेक्षा वैन्ट्रिकल की भित्तियाँ अधिक मोटी होती हैं। क्यो?

(ख) शिराओं की अपेक्षा धमनियो की दीवार अधिक मोटी होती हैं। क्यो?

(ग) शिराओ में वाल्व होते हैं किन्तु धमनियो में इनका अभाव होता है। क्यो?

अध्याय ८

उत्सर्जन तंत्र

तुम पढ चुके हो कि पचा हुआ भोजन आहार नाल की दीवारो द्वारा सोखे जाने के बाद रुधिर में पहुँचता है जो उसे परिवहन के फलस्वरूप सभी अगो में पहुँचा देता है।

ऊतक-कोशिकाओ मे प्रोटीन्स के उपापचय (metabolism) द्वारा अमोनिया तथा कार्वन डाइआक्साइड की उत्पत्ति होती है। अमोनिया गैस हानिकारक होती है जिससे यकृत इसे यूरिया में वदल देता है जो अमोनिया की अपेक्षा कम हानिकारक होता है। फिर भी यूरिया शरीर में इकट्ठा नही होने पाती। इसका शरीर के वाहर वरावर निकलते रहना वहुत आवश्यक होता है।
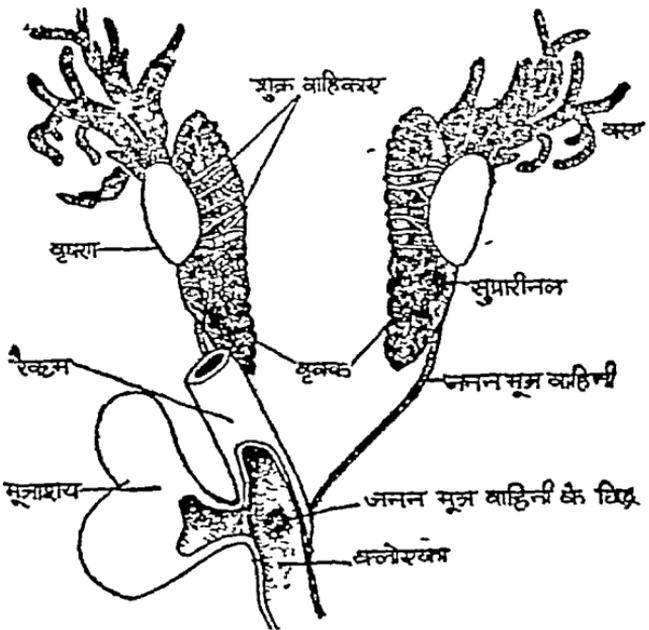
चित्र ६८—नर मेढक के उत्सर्जी अग

अत इस प्रकार के सभी वर्ज्य पदार्थ ऊतक-कोशिकाओ के वाहर निकल कर रुधिर-प्रवाह में पहुँच जाते हैं और अन्त में वाहर निकल जाते हैं। श्वसन क्रिया के फलस्वरूप कार्वन डाइआक्साइड निकला करती है और यूरिया (urea) मूत्र के रूप में वृक्को की सहायता से रुधिर के वाहर निकला करता है।

उत्सर्जी अङ्ग—वृक्क

दोनो वृक्को का रग गहरा लाल और आकार लम्वा तथा चपटा होता है। प्रत्येक वृक्क का वाहरी तट चिकना होता है किन्तु भीतरी तट अनेक विश्रृंखल

पिंडको (lobes) का बना होता है। दोनो वृक्क कशेरुक दंड (vertebral column) के नीचे, पृष्ठ महाधमनी के इधर उधर सबवरटिब्रल लिम्फ स्पेस (subvertebral lymph space) में मिलते हैं। इस प्रकार वृक्को की केवल प्रतिपृष्ठ सतह ही पेरिटोनियम (peritoneum) से ढकी रहती है।

प्रत्येक वृक्क के वाहरी तट के पिछले चौथाई भाग से मूत्र-वाहिनी (ureter) निकलती है। अगले तीन-चौथाई भाग में यह वृक्क के भीतर स्थित होती है। दोनो वृक्को से निकलने के वाद मूत्र-वाहिनियाँ पीछे जाकर क्लोएका (cloaca) की पृष्ठ सतह पर खुलती हैं। प्रत्येक वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर एक हल्के पीले रंग और अनियमित आकार की सुप्रारीनल ग्रन्थि (suprarenal gland) होती है।

वृक्क के पतले सेक्शन में इनकी हिस्टोलोजिकल संरचना देखी जा सकती है। प्रत्येक वृक्क असंख्य कुंडलित (coiled) वृक्क-नलिकाओ या यूरीनिफेरस टिब्यूल्स (uriniferous tubules) का बना होता है। इस प्रकार वृक्क नलिका ही उत्सर्जन की संरचनात्मक (structural) और फिजियालोजिकल (physiological) इकाई होती है। प्रत्येक वृक्क नलिका वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर
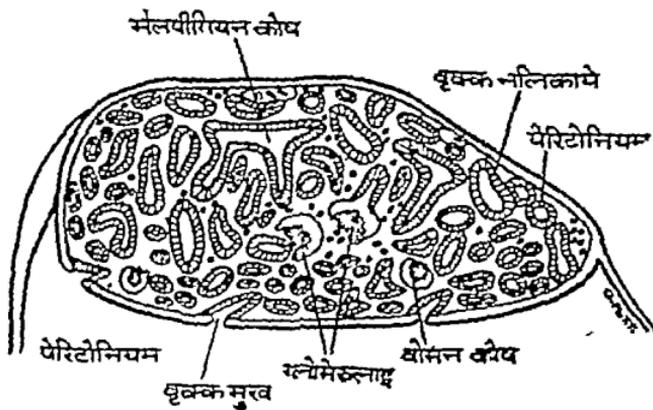
चित्र ६९—मेढक के वृक्क का ट्रांसवर्स सेक्शन

वोमनीय कैप्स्यूल (Bowman's capsule) में आरम्भ होती है। यह कैप्स्यूल एक दोहरी दीवार के प्याले के समान होता है। इसके भीतर रुधिर-केशिकाओ का एक घना गुच्छा होता है जिसे केशिका-गुच्छ या ग्लोमेर्यूलस (glomerulus) कहते हैं। वोमनीय कैप्स्यूल और ग्लोमेर्यूलस दोनो मिलकर मैलपिगियन कैप्स्यूल (malpighian capsule) कहलाते हैं। अभिवाही वृक्क धमनिका (afferent renal arteriole) वोमनीय कैप्स्यूल में प्रवेश करने के वाद अनेक केशिकाओ में विभाजित होकर केशिका-गुच्छ वनाती है। अन्त में ये केशिकाएँ फिर मिलकर इफरेंट रीनल आर्टिरिओल (efferent renal arteriole) वनाती है जो वोमनीय कैप्स्यूल के वाहर निकल आता है।

वृक्क नलिका का वह सँकरा भाग जो बोमनीय कैप्स्यूल के ठीक नीचे होता है ग्रीवा (neck) कहलाता है। इस भाग में आमतौर पर सीलिएटेड एपिथीलियम होता है। शेष भाग ग्रन्थिल एपथीलियम होता है। प्रयेक वृक्क-नलिका प्रतिपृष्ठ सतह से पृष्ठ सतह की ओर जाती है और फिर प्रतिपृष्ठ सतह की ओर लौटती है। यहाँ से यह फिर पृष्ठ सतह की ओर जाती है और वहाँ **अनुप्रस्य सग्रह नलिका** (transverse collecting duct) में खुलती है। इस तमाम रास्ते में यह अनेक कुडल (coils) बनाती है।

प्रत्येक वृक्क के बाहरी तट पर मूत्र-वाहिनी या **यूरेटर** (ureter) और भीतरी किनारे पर **बिडर्स नली** (Bidder's canal) होती है। इन दोनो को जोडती हुई अनेक अनुप्रस्थ सग्रह नलिकाएँ होती हैं जिनमें असख्य वृक्क नलिकाएँ खुलती हैं। इन्हे तथा रुधिर-वाहिनियो को साथे रखने के लिए सयोजी ऊतक होता है।

प्रत्येक वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर अनेक **वृक्क मुख** या **नैफ्रोस्टोम** (nephrostomes) होते हैं जो आकार में कीप (funnel) के समान होते हैं। इनके चौडे सिरे तो देह-गुहा या सीलोम में खुलते हैं किन्तु सकरे सिरेवृक्क
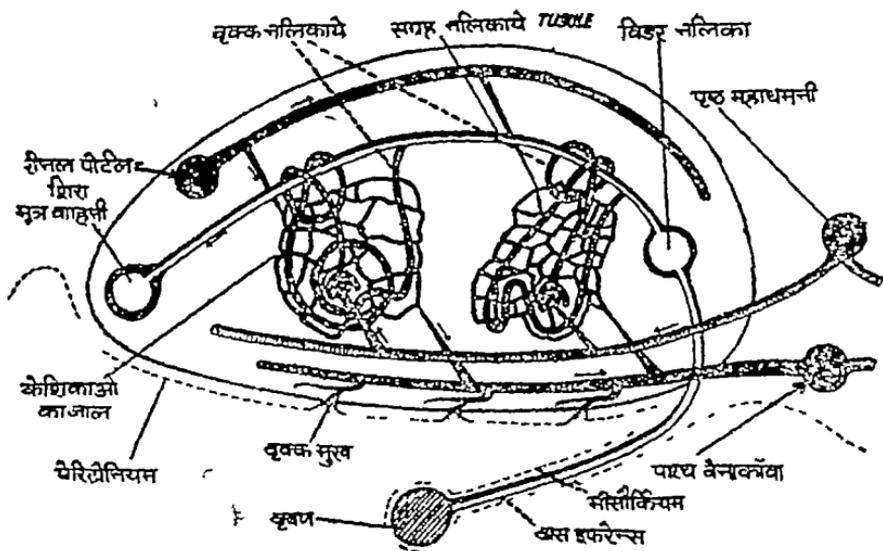
चित्र ७०—मेढक में वृक्क-नलिकाओ की कार्यिकी या फिजियालोजी

शिराओ की शाखाओ में खुलते हैं। इनकी दीवारो में असख्य सीलिया (cilia) होती है जिनकी गति के फलस्वरूप सीलोमिक-फ्ल्यूड वृक्क मुख में होता हुआ वृक्क शिराओं में पहुँचा करता है। इस प्रकार सीलोमिक फ्ल्यूड में जो वर्ज्य पदार्थ होते हैं वे वृक्क शिराओं में पहुँच जाते हैं।

तुम पढ़ चुके हो कि वृक्क धमनियो तथा वृक्क निवाहिका शिरा (renal portal vein) द्वारा रुधिर वृक्क में पहुँचता है और वृक्क शिराओ द्वारा वाहर निकल जाता है।

वृक्क की कार्यिकी

वृक्को का मुख्य कार्य यूरिया, यूरिक एसिड जल, कुछ लवण आदि वर्ज्य पदार्थ को रुधिर के वाहर निकालना है। ये सब पदार्थ घोल के रूप में शरीर के वाहर निकलते हैं। वृक्को में मूत्र वनने में वास्तव में दो अलग-अलग क्रियाएँ होती हैं—एक तो मैलपीगियन कोष में होती है और दूसरी वृक्क नलिकाओ में। वृक्क अभिवाही धमनिका (renal afferent arteriloe) का व्यास अपवाही धमनिका (efferent arteriole) से कम चौडा होता है जिससे केशिका-गुच्छ में रुधिर के इकट्ठे होने से दाव (pressure) वढ जाता है। इस दाव के कारण वृक्क-नलिका के इस भाग में अल्ट्राफिलट्रेशन (ultrafiltration) अर्थात् दाव के कारण छनने की क्रिया होती है जिससे रुधिर कणिकाओ, कुछ कोलीएड्स तथा प्रोटीन्स को छोड पूरा प्लाज्मा केशिका-गुच्छ की पतली दीवारो से छन छनकर वोमनीय कैंस्प्यूल के भीतर पहुँच जाता है। इस प्रकार मैलपीगियन कोष एक छन्ने (filter) का कार्य करता है।

यूरिया के अलावा प्लाजमा में कई उपयोगी घुलनशील पदार्थ होते हैं जैसे ग्लूकोज, पानी, लवण इत्यादि। दाव के कारण ये भी छन-छनकर फिलट्रेट में पहुँच जाते हैं। इस फिलट्रेट को प्रोटीनरहित प्लाज्मा (deproteinised plasma) कहते हैं। यह जव धीरे धीरे यूरोनेफरस टिव्यूल्स के कुडलित तथा ग्रन्थिल भाग में पहुँचता है तो यहाँ जल का अधिकांश भाग, ग्लूकोज (glucose) तथा अन्य उपयोगी लवण जो केशिका गुच्छ में रुधिर के दाव के फलस्वरूप छन-छनकर वाहर निकल आते हैं फिर से वृक्क नलिकाओ की दीवारो द्वारा सोख लिये जाते हैं। इस प्रकार सभी उपयोगी पदार्थ केशिकाओ के रुधिर में वापस पहुँच जाते है और केशिकाओ के रुधिर में जो वर्ज्य पदार्थ शेष रह जाते हैं वे सभी विसरण (diffusion) द्वारा वृक्क-नलिकाओ में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार फिल्ट्रेट गाढ़ा हो जाता है। इसी को अव मूत्र (urine) कहते हैं।

मूत्र-वाहिनियाँ दोनो वृक्कों से निकलकर कुछ दूर पीछे जाने के वाद क्लोएका के पृष्ठ भाग में खुलती हैं। क्लोएका की प्रतिपृष्ठ सतह से पतली लचीली और पारदर्श झिल्लियो वाला मूत्राशय निकलता है। जव मूत्राशय

मूत्र से भर जाता है तो इसकी पेशीय दीवारो के कुचन से यह क्लोएका छेद में होकर बाहर निकल जाता है।

अन्य उत्सर्जन अंग

(Other Excretory organs)

(१) यकृत (liver)—पाचन-तत्र के सम्बन्ध में तुम पढ चुके हो कि वरटिब्रेट्स में यकृत उत्सर्जन में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

(क) यकृत-कोशिकाएँ अमोनिया को यूरिया में बदल देती हैं जिसे वृक्क सरलता से रुधिर के बाहर निकाल देते हैं।

(ख) पुरानी लाल रुधिर कणिकाओ के हीमोग्लोबिन के नष्ट होने से **पित्त-रग** (bile pigments) बन जाते हैं जो पित्त के साथ ड्यूओडीनम में पहुँचते हैं और अन्त में मल के साथ बाहर निकल जाते हैं।

(ग) **कोलेस्ट्रौल** (cholesterol) नाम का वर्ज्य पदार्थ भी पित्त (bile) के साथ बाहर निकल जाता है।

(घ) बडी आँत (large intestine)—बडी आँत भी कुछ एक्सक्रीटरी पदार्थों के बाहर निकलने में सहायता देती है। मैटा बौलिज्म के फलस्वरूप कैलशियम, पुटैशियम और लोहे के फौस्फेट्स बन जाते हैं। ये सभी अघुलनशील होते हैं जिससे बडी आँत की भित्तियो में स्थित केशिकाएँ इन्हे निकालने में सहायता देती हैं।

प्रश्न

१—मेढक के वृक्को से सम्बद्ध कौन-कौन सी वाहिनियाँ मिलती हैं। वृक्क धमनी और शिरा के रुधिर में क्या और किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है?

२—मेढक के एक्सक्रीटरी अगो की स्थिति तथा हिस्टौलोजिकल सरचना विस्तारपूर्वक समझाओ। वर्ज्य पदार्थों का किस प्रकार निष्कासन होता है?

३—निम्नलिखित पर सक्षेप में टिप्पणी लिखो —

वृक्क-मुख (nephrostome), केशिका-गुच्छ, मूत्रवाहिनी, वृक्क नलिका या यूरेनिफेरस टिब्यूल।

(४) उत्सर्जन में निम्नलिखित अग किस प्रकार सहायता देते है — यकृत, बडी आँत, नेफ्रोस्टोम।

अध्याय ६

त्वचा

त्वचा—यह शरीर का सबसे बाहरी आवरण बनाती है। मेढक की त्वचा कोमल, चिकनी तथा नम होती है और सयोजी ऊतक की पतली-पतली पट्टियो द्वारा पेशियो से बँधी रहती है। इसीलिए इसका शरीर से ढीला-ढाला लगाव होता है। शरीर के सभी भागो की त्वचा एक समान पतली नही होती, प्रतिपृष्ठ भाग की अपेक्षा पृष्ठ भाग की त्वचा अधिक मोटी होती है। अगली और पिछली टाँगो की अँगुलियो में जोडो के नीचे स्थित **सब-आर्टिकुलर गद्दियों** (pads) की त्वचा विशेषरूप से मोटी होती है।

त्वचा में दो स्तर होते हैं। ऊपर के पतले स्तर को (क) **एपिडर्मिस** (epidermis) और (ख) नीचे के **मोटे स्तर** को **डर्मिस** (dermis) कहते हैं। एपिडर्मिस **स्ट्रैटीफाएड एपीथीलियम** के रूप में होता है अर्थात् इसमें कोशिकाओ की कई पर्तें होती हैं। सबसे निचली पर्त को, जो कि **स्तंभी कोशिकाओं** (columnor cells) की बनी होती है, **मैलपीगियन स्तर** (malpighian layer) या **स्ट्रेटम जर्मिनेटाइवम** कहते हैं। इसकी कोशिकाओ में निरन्तर विभाजन हुआ करता है। इस प्रकार जो नई-नई कोशिकाएँ बनती हैं वे सभी धीरे-धीरे ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं जिससे ये चपटी होने लगती हैं और सतह तक पहुँचते-पहुँचते ये बिल्कुल चपटी और मृत हो जाती हैं। और **स्ट्रेटम कॉर्नियम** (stratum corneum) बनाती हैं। नित्य प्रति की रगड से त्वचा का यह भाग छोटे-छोटे टुकडों के रूप में झडता रहता है। इसी को **निर्मोचन** (moulting) या **कास्टिंग** (casting) कहते हैं। जो एपिडर्मिस नेत्रों को ढके रहता है वह बहुत पतला, तथा पारदर्श (transparent) हो जाता है। इसी को **नेत्र-श्लेष्मिका** या **कनजक्टाइवा** (conjunctiva) कहते हैं। एपिडर्मिस की कोशिकाएँ नेत्र, कान और अन्य ग्राहक अगो (receptor organs) में सवेदक कोशिकाएँ बनाती हैं।

चर्म या **डर्मिस** (dermis) दो पर्तों या स्तरों में बाँटा जा सकता है। ढीले ढाले या स्पन्जी ऊपरी भाग को **स्ट्रेटम स्पौन्जियोसम** (stratum spongiosum) और नीचे के घने स्तर को **स्ट्रेटम कॉम्पैक्टम** (stratum compactum) कहते हैं। स्ट्रेटम स्पौन्जियोसम में अनेक गोल-गोल

एलव्योलर ग्रन्थियाँ होती है। ये त्वचीय ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं—**श्लेष्म या म्यूकस ग्लैण्ड्स** तथा **विष-ग्रन्थियाँ**। म्यूकस ग्लैण्ड्स विष ग्रन्थियों की अपेक्षा कुछ छोटी किन्तु सख्या में अधिक होती हैं और त्वचा के सभी भागो में एक समान छितरी हुई मिलती हैं। विष ग्रन्थियो की सख्या पृष्ठ भाग की तथा पिछली टाँगो की त्वचा में अधिक होती है। इन ग्रन्थियो की सँकरी वाहिनियाँ एपिडर्मिस में होती हुई त्वचा की सतह पर खुलती हैं।

सघन स्तर या **स्ट्रेटम कौम्पैक्टम** का अधिकाश भाग सयोजी ऊतक की घनी पर्तों का वना होता है। ये पर्तें एपिडर्मिस की सतह के समान्तर फैली होती हैं।
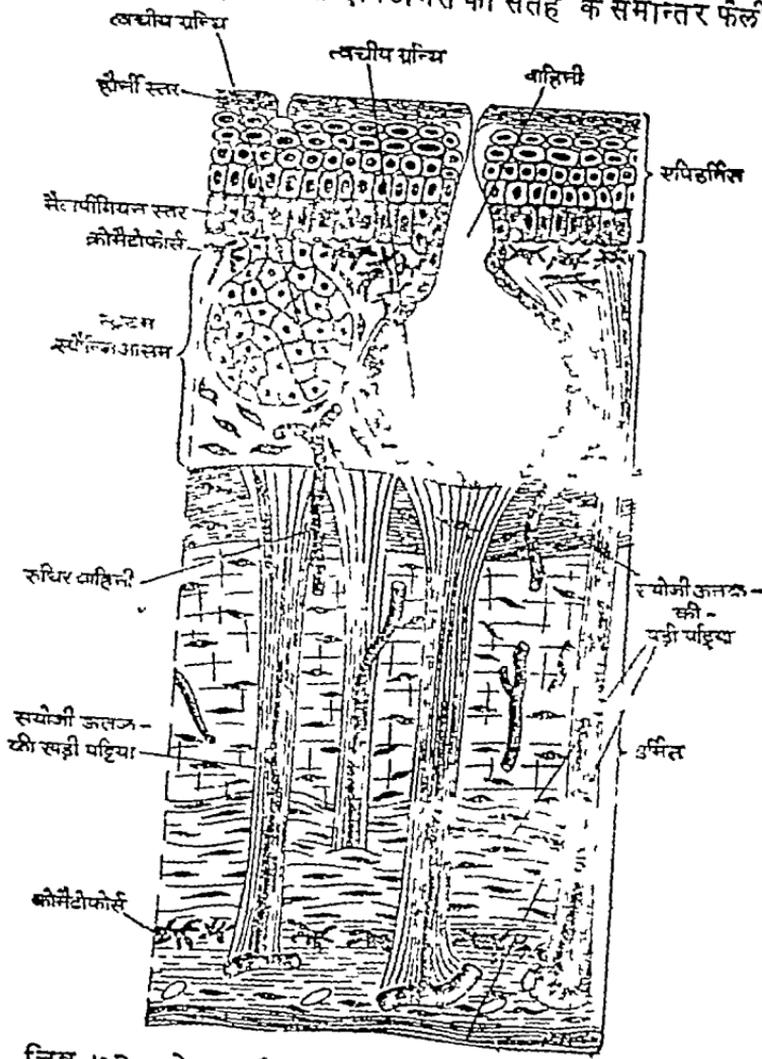
चित्र ७२—मेढक की त्वचा के थोडे से भाग का सेक्शन

कही-कही पेशी ऊतक की खडी पट्टियाँ (vertical strands) होती हैं। इसके अलावा डर्मिस में तन्त्रिका तन्तु और रुधिर वाहिनियाँ होती हैं। इन्ही **रुधिर वाहिनियो** से एपिडर्मिस की कोशिकाओ को

भी पोषाहार मिलता है। डर्मिस में फैला केशिकाओं का जाल **त्वचीय-श्वसन** मे विशेषरूप से सहायता देता है।

एपिडर्मिस के ठीक नीचे अनियमित आकार की **रग कोशिकाएँ** (pigment cells) या **क्रोमैटोफोर्स** (chromatophores) होती हैं। ये कुचनशील होती हैं। जिस समय रग-कणिकाएँ न्यूक्लियस के चारों ओर इकट्ठी हो जाती हैं, पृष्ठ त्वचा का रग गहरा हो जाता है और जब कोशिकाएँ फैल जाती हैं तो त्वचा का रग हल्का पड जाता है। मेढक की त्वचा के रग परिवर्तन में गर्मी और नमी का विशेषरूप से प्रभाव पडता है किन्तु रग की कणिकाओं के फैलने या एक ही स्थान पर इकट्ठे हो जाने पर हारमोन्स द्वारा नियन्त्रण होता है।

चित्र ७३—मेढक में रग कोशिकाएँ

मेढक की त्वचा के कार्य

(Functions of skin)

(१) यह एक सफल **रक्षण आवरण** का कार्य करती है —

(अ) यह इतनी मजबूत और साथ ही साथ इतनी लचीली होती है कि दवाव पडने पर फैल तो जाती है किन्तु फटती नहीं।

(आ) यह रोग उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओं तथा अन्य हानिकारक पदार्थों को शरीर में घुसने से रोकती है।

(इ) रग परिवर्तन के फलस्वरूप यह इन प्राणियों की रक्षा करने में सहायता देती है।

(ई) श्लेष्म-ग्रन्थियों से निकलनेवाला म्यूकस त्वचा को नम चिकनी तथा फिसलाऊ बना देता है जिससे शत्रु की पकड में आ जाने पर भी मेंढक कभी-कभी निकल भागता है। इसके अलावा म्यूकस के लसलसे और बुरे स्वाद के कारण भी अनेक शत्रु इसे निगलना पसन्द नहीं करते।

(२) स्वेद ग्रन्थियों (sweat glands) के होने पर स्तन-धारियों की अपेक्षा इसकी त्वचा उत्सर्जन में कम सहायता देती है फिर भी एपिडर्मिस

की ऊपरी सतह से छोटे छोटे टुकडो के रूप में बराबर झडते रहते हैं। इस प्रकार उत्सर्जन में थोडी सहायता मिलती है।

(३) इसकी नम त्वचा श्वसन में भी सहायता देती है।

(४) पिछली टाँगो की जालदार अँगुलियो के बीच बीच मढ़ी त्वचा इन्हे **पतवार** (paddle) बनाकर **पानी** में तैरने में सहायता देती है।

(५) मेढक अपनी त्वचा द्वारा पानी सोखकर अपनी आवश्यकता पूरी करता है। यह मुँह से पानी नही पीता।

(६) कुछ लोगो के मतानुसार मेढक की त्वचा डाइस्टेस (diastase) नाम का एन्जाइम उत्पन्न करके कार्बोहाइड्रेट्स के पाचन में सहायता देती है।

(७) यह एक स्पर्शेन्द्रिय (sense of touch) का भी कार्य करती है।

(८) त्वचा के डर्मिस में कलाजात अस्थियो या मेम्बरेन बोन्स (membrane bones) का निर्माण होता है।

प्रश्न

१—मेढक की त्वचा के सेक्शन का एक नामांकित चित्र बनाओ और सभी भागो के कार्य समझाओ।

२—मेढक की त्वचा चलन, श्वसन तथा आत्म-रक्षा में किस प्रकार सहायता देती है, इसे विस्तारपूर्वक समझाओ।

३—मेढक की त्वचा के सभी कार्य समझाओ।

४—रग-कोशिकाऍ या क्रोमैटोफोर्स (chromatophores) क्या हैं ? ये त्वचा के रग बदलने में किस प्रकार सहायता देते हैं ?

५—मेढक की त्वचा की माइक्रोसकोपिक रचना विस्तारपूर्वक समझाओ। त्वचा के विभिन्न कार्यों को करने के लिए यह किस प्रकार अनुकूलित (adapted) होती है ?

६—निम्न विषयो पर सक्षेप में टिप्पणियाँ लिखो —

रग-कोशिकाऍ (pigment cells), त्वचीय ग्रन्थियाँ, रक्षार्थ रंग परिवर्तन (protective colouration), मैल्पीगियन स्तर (malpighian layer)।

अध्याय १०

कंकाल-तन्त्र

जेली-मछली के समान समुद्री-जन्तु पानी में सक्रिय अवस्था में मिलते हैं किन्तु यदि उन्हे पानी के वाहर निकाल लिया जाय तो वे असहाय और आकार-हीन हो जाते हैं। क्यो ? जलीय प्राणियो के शरीर और पानी का घनत्व लगभग एक ही होता है जिससे उत्प्लावता (buoyancy) के कारण इनका शरीर जल में सधा रहता है। मेढक, खरगोश इत्यादि स्थलीय प्राणियो में शरीर को साधने के लिए एक ढांचे का होना आवश्यक होता है। इसी ढांचे को ककाल (skeleton) कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है —

(१) अत ककाल या एन्डोस्कैलिटन (endoskeleton)

(२) वाह्यककाल या एक्सोस्कैलिटन (exoskeleton)

यदि ककाल या ढांचा वाहर होता है और समस्त कोमल अगो को ढके रहता है तो उसे वाह्यककाल (exoskeleton) या त्वचीय-ककाल (skin skeleton) कहते हैं। कीट-वर्ग (insects) के प्राणियों में यह मृत होता है और काइटिन (chitin) का वना होता है। इसमें किसी प्रकार की वृद्धि (growth) नही होती जिससे कीडो की शारीरिक वाढ़ के लिए इसका कई वार त्वक् पतन (moulting) होता है।

शरीर के भीतरी भाग में पाये जानेवाले मास तथा अन्य कोमल ऊतको से ढके ककाल को अन्त ककाल या एण्डोस्कैलिटन (endoskeleton) कहते हैं। यह जीवित हड्डियो और कार्टिलेज का वना होता है और सभी वरटिब्रेट्स में मिलता है। यह वरावर वढता है। वरटिब्रेट्स में आमतौर पर वाह्य-ककाल और अन्त ककाल दोनो ही मिलते हैं। वाह्यककाल स्केल्स (scales), पख (feathers), खुर, वाल (hair), नखर, सीग और नाखून (nails) के रूप में मिलता है।

एण्डोस्कैलिटन की उपयोगिता (uses of endoskeleton) —

(१) यह मस्तिष्क, रीढ-रज्जु, या स्पाइनल कौर्ड, फेफडे, हृदय आदि कोमल अगो की रक्षा करता है।

(२) यह शरीर के अनेक अगो को सहारा या आलम्बन देता है। उदाहरण के लिए हाईऔइड (hyoid) जीभ को सहारा देता है।

(३) यह शरीर का एक निश्चित आकार वनाये रखने में सहायता देता है।

(४) पेशियो को जोड़ने के लिए ककाल की अनेक हड्डियाँ दृढ़ और उपयुक्त सतह देती हैं।

(५) हड्डियाँ लीवर्स (levers) का काम करती हैं और पेशियाँ अपने कुचन द्वारा उन्हें हिला डुला कर शरीर के विभिन्न अंगो में गति तथा पूरे शरीर के चलने फिरने में सहायता देती हैं।

(६) लम्बी हड्डियो की मज्जा (marrow) चर्बी इकट्ठा करने में सहायता देती है। स्तनधारियो में लाल अस्थि मज्जा (red bone marrow) लाल रुधिर कणिकाओ तथा कुछ श्वेत रुधिर कणिकाओ (ग्रैन्यूलोसाइट्स) के निर्माण का केन्द्र होती हैं।
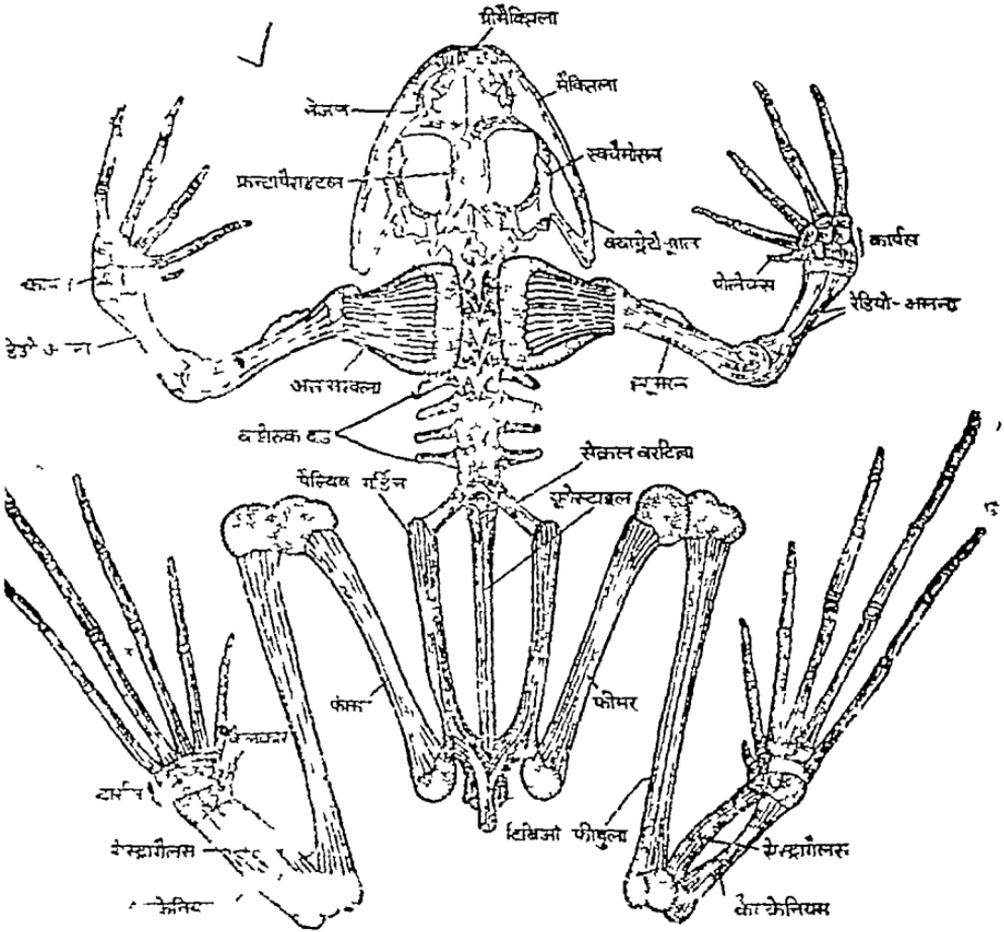
चित्र ७४—मेढक का सम्पूर्ण ककाल

(७) मध्य कर्ण की हड्डी जिसे कालूमेला (columella) कहते हैं ध्वनि कपन को टिम्पैनम से आन्तरिक कर्ण में पहुँचाने में सहायता देती है।

मेढक का एण्डोस्केलिटन

सुविधा के लिए मेढक का कंकाल निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है —

(अ) अक्ष कंकाल (axial skeleton)—इसमें कशेरुक दंड या वरटिब्रल कॉलम तथा खोपड़ी (skull) होते हैं।

(आ) उपांग-कंकाल (appendicular skeleton)—इसमें अगली और पिछली टाँगों की हड्डियाँ और उन्हें सहारा देने वाली दोनों मेखलाएँ (girdles) होती हैं।

(क) मेढक का कशेरुक दंड

(Vertebral column)

मेढक के कशेरुक दंड में १० कशेरुक (vertebrae) होते हैं। दूसरी से आठवीं कशेरुक संरचना और आकार में एक ही-सी होती हैं। इनमें से किसी एक प्रारूपिक या टिपिकल वरटिब्रा की बनावट समझ लेने पर अन्य कशेरुक की संरचना समझना आसान होगा।
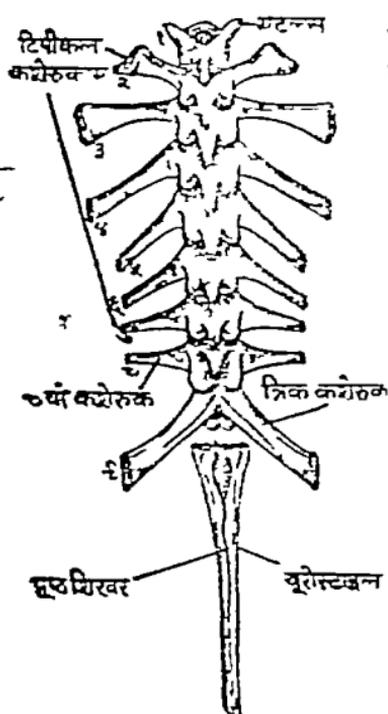
चित्र ७५—मेढक का वरटिब्रल कालम

(अ) टिपिकल वरटिब्रा (typical vertebra)—आकार में यह अँगूठी से मिलता जुलता है। इसकी प्रतिपृष्ठ (ventral) सतह पर एक मोटा ठोस भाग होता है जिसे सेण्ट्रम (centrum) कहते हैं। इसका अगला सिरा नतोदर (concave) और पिछला उन्नतोदर (convex) होता है। इस प्रकार के सेण्ट्रम को उत्तलकाय या प्रोसीलस (procoelous) कहते हैं। आगे पीछे की टिपिकल वरटिब्री के सेण्ट्रम मिलकर कन्दुक उलूखल संधियाँ (ball and socket joints) बनाते हैं। इस प्रकार के जोड़ों की सहायता से वरटिब्रल कॉलम सभी दिशाओं में आसानी से घुमाया और झुकाया जा सकता है।

सेण्ट्रम से जुड़ा हुआ एक घेरा होता है जिसे तंत्रिका चाप या न्यूरल आर्च (neural arch) कहते हैं। तंत्रिका चाप और सेण्ट्रम से घिरी न्यूरल या तंत्रिका-नाल (neural canal) होती है। न्यूरल आर्च से तीन प्रकार के प्रोसेस

(processes) निकले होते है जिससे पेशियो और स्नायुओ (ligaments)
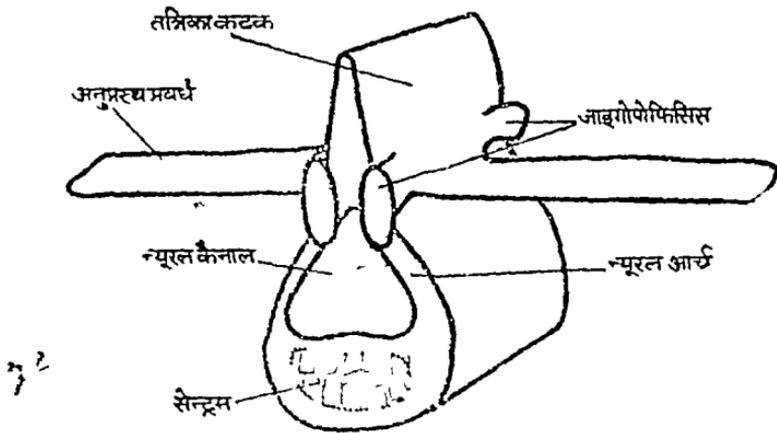
चित्र ७६—एक प्रारूपिक कशेरुका की रचना

के लगाव में बडी सहायता मिलती है। दाहिने और बाईं ओर के लम्बे प्रवर्धों को **अनुप्रस्थ प्रवर्ध** या **ट्रांसवर्स प्रोसेस** (transverse processes)
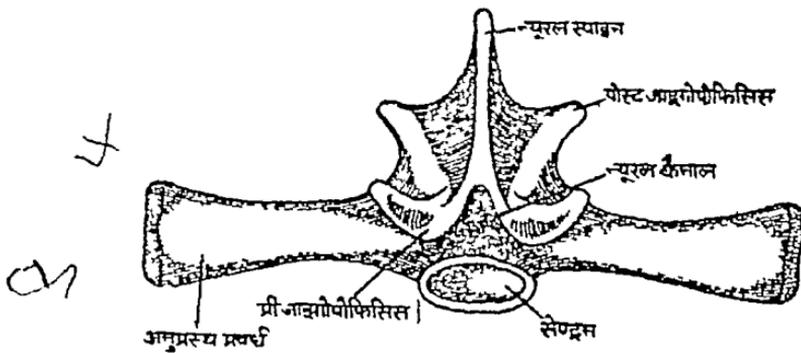
चित्र ७७—मेढक की टिपीकल वरटिब्रा

कहते है। तन्त्रिका चाप की पृष्ठ सतह को **तन्त्रिका-कटक** या **न्यूरल स्पाइन** (neural spine) कहते है। अनुप्रस्थ प्रवर्धों के कुछ ऊपर तन्त्रिका चाप के अगले सिरे से नन्हे नन्हे प्रवर्धों का एक जोडा निकलता है। इन सधि मुखिकाओ (articular facets) को **अग्रयोजिवर्ध** या **प्रीजाइगापोफिसिस** (prezygapophyses) कहते है। ये तन्त्रिका चाप की ऊपरी सतह पर होते है और भीतर की ओर झुके रहते है। इसके विपरीत **पश्च योजिवर्ध** या **पोस्टीरियर जाइगापोफिसिस** (posterior zygapophyses) निचली सतह पर होते हैं और बाहर की ओर झुके रहते हैं। जब वरटिब्री परस्पर जुडी रहती हैं तो अग्र और पश्च योजिवर्ध मिलकर ऐसे जोड बनाते हैं जिनके कारण कशेरुक दड में झुकाव (bending) की शक्ति सीमित हो जाती है। इस प्रकार तन्त्रिका-नाल में स्थित रीढ रज्जु या स्पाइनल कोर्ड

को किसी प्रकार की हानि नही पहुँचने पाती। दो कशेरुक के बीच प्रत्येक ओर एक अन्तर्कशेरुक या इन्टरवरटिब्रल छेद होता है। इन्ही छेदो में होकर स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (spinal nerves) बाहर निकलती हैं।

सभी टिपिकल वरटिब्री की सरचना लगभग एक ही-सी होती है। दूसरी, तीसरी तथा चौथी वरटिब्री के ट्रांसवर्स प्रोसेस पृष्ठ भाग की पेशियो को आलम्बन देते हैं। इसीलिए इनके अनुप्रस्थ प्रवर्ध भी विशेषरूप से लम्बे होते है।

(आ) **शीर्षधरा या ऐटलस वरटिब्रा**—यह खोपडी को साधे रहता है इसका आकार बिलकुल अँगूठी-सा होता है। इसमें से सेण्ट्रम और तन्त्रिका कटक (neural spine) का पूर्ण अभाव होता है। इसमें प्री-जाइगापोफिसिस भी नही होते किन्तु अगले सिरे पर दो छिछले गढ़े होते हैं जिससे खोपडी के दोनों **ऑक्सिपिटल कौंडायल** या **अनुकपाल मुडिकाएँ** सटी रहती हैं। इसी जोड के कारण सिर थोड़ा बहुत ऊपर नीचे झुक सकता है। इसमें पश्चयोजिवर्ध होते हैं। सेण्ट्रम के न होने से ऐटलस वरटिब्रा को कुछ लोग **एसेन्ट्रस** भी कहते हैं।
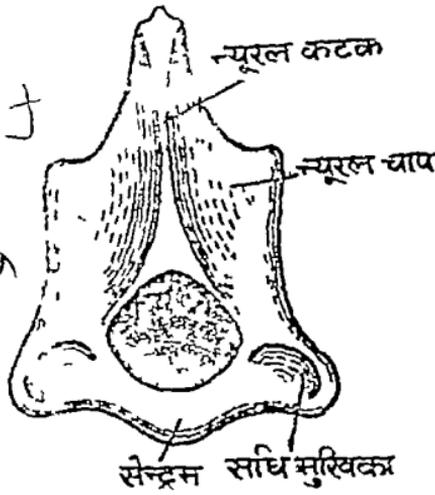
चित्र ७८—मेढक का ऐटलस वरटिब्रा

(इ) **नवीं कशेरुका**—नवी या सेक्रल कशेरुका **अग्रगुहीय** या **एसीलस** होती है। इसका सेण्ट्रम अन्य सभी वरटिब्री से अधिक मजबूत और दोनो सिरो पर उभरा हुआ होता है और इसका पिछला उभार दो छोटे-छोटे उभारो में बँटा होता है। इसके दोनो **ट्रांसवर्स प्रोसेस** (transverse processes) अधिक मोटे मजबूत तथा पीछे की ओर झुके रहते हैं और अन्त में श्रोणि-मेखला (pelvic girdle) की इलिया (ilia) से कार्टिलेज द्वारा जुडे रहते हैं। यह जोड लचीला होता है।

(ई) **आठवीं कशेरुका** (eighth vertebra)—नवी कशेरुका का सेण्ट्रम एसीलस होता है जिससे आठवीं में सेन्ट्रम को उभय अवतल या **एम्फीसीलस** (amphicoelous)

अनुप्रस्थ प्रवर्ध
प्री-जाइगोपोफिसिस
उभय अवतल सेण्ट्रम
पोस्ट जाइगोपोफिसिस
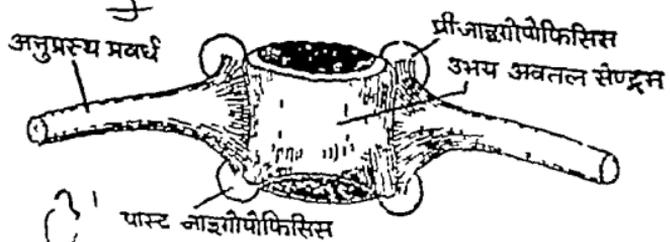
चित्र ७९—मेढक की आठवी कशेरुका

होना पडता है। अर्थात् इसके सेण्ट्रम के अगले तथा पिछले सिरो पर छिछले गढे होते हैं।

(उ) **दसवीं कशेरुका**--इसे **यूरोस्टाइल** या **पुच्छ दड** (urostyle) भी कहते हैं। यह लम्बी और चपटी होती है और इसके सिरे पर दो गढे मिलते हैं जिनमें नवी कशेरुका के सेण्ट्रम के पिछले सिरे पर स्थित दोनो उभार सटे रहते हैं। इसके सेण्ट्रम के ठीक ऊपर एक
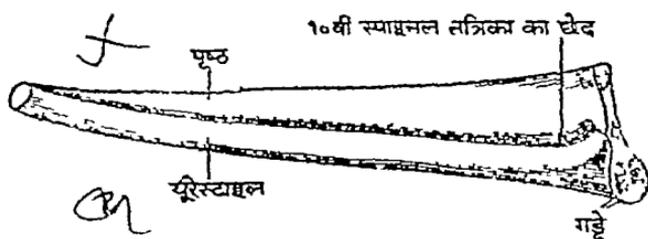
चित्र ८०--मेढक की दसवी कशेरुक

तंत्रिका-नाल (neural canal) होती है जिसमें स्पाइनल कौर्ड का डोरे के समान पतला अन्तिम भाग होता है। इसके ऊपर **पृष्ठ शिखर** (dorsal crest) होता है जो पीछे की ओर क्रमश पतला होता जाता है। वास्तव में पुच्छ दण्ड कई कशेरुक के मिलने से वन जाता है।

खोपड़ी या करोटि
(Skull)

खोपडी सिर का ककाल वनाती है। मेढक में यह चपटी होती है और इसे दो प्रमुख भागो मे बाँट सकते है —

(अ) **कपाल या क्रेनियम** (cranium) तथा साथ मे जुडे तीन जोडी **सेन्स कैपस्यूल्स** (sense capsules) ।

(आ) **हनु-ककाल** (visceral skeleton)--इसमें जबडे तथा हाइऔएड (hyoid) होते हैं।

(अ) **कपाल या क्रेनियम** (cranium)--यह लम्बा तथा सकरा होता है। वास्तव में खोपडी का यही प्रमुख भाग होता है क्योकि इसी में मस्तिष्क सुरक्षित रहता है। यह कशेरुक दड की सीव में और उसके ठीक आगे होता है। इसके पिछले सिरे पर एक वडा छेद होता है जिसे **महारध्र** या **फोरामेन मैगनम** कहते हैं। इसी छेद में होकर स्पाइनल कौर्ड मस्तिष्क से जुडा रहता है। फोरामेन मैगनम (foramen magnum) के दोनो ओर एक एक **पार्श्व-अनुकपाल** या **एक्स-ऑक्सिपिटल** (exoccipital) होती है। प्रत्येक में एक गोल उभार होता है जिसे **अनुकपाल मुण्डिका** (occipital condyle) या **ऑक्सिपिटल कौंडाइल** कहते हैं। दोनो कौडाइल्स ऐटलस वरटिब्रा के अगले भाग पर स्थित दोनो गड्ढो में सटे रहते हैं और कन्दुक-उलूखल सधि (ball and socket joint) वनाते हैं जिसकी सहायता से खोपडी ऊपर और नीचे

झुकाई जा सकती है। क्रेनियम के अगले भाग में एक छोटी सी नली (tube) के आकार की हड्डी होती है जिसे **स्फनेयमोइड** (sphenethmoid) कहते

चित्र ८१—मेढक की खोपडी का पृष्ठ दृश्य (dorsal view)

हैं। यह दो भागो में बाँटी जा सकती है। इसके अगले भाग को **इथमोएडल** (ethmoidal) और पिछले को **स्फेनीएडल** (sphenoidal) भाग कहते

चित्र ८२—मेढक की खोपडी का प्रतिपृष्ठ दृश्य (ventral view)

हैं। स्फेनीएडल भाग में मस्तिष्क का अगला भाग सुरक्षित रहता है। क्रेनियम के इस भाग की छत को और अधिक दृढता देने के लिए दो पतली और चपटी हड्डियाँ ऊपर से चिपकी रहती हैं। इन्हें **ललाट-मध्यका** या **फ्रण्टोपैराईटल** (frontoparietal) कहते हैं। ये दोनों भीतरी तट पर जुडी रहती हैं। मेढक की शैशव अवस्था में इन हड्डियों के दो अलग-अलग जोड होते हैं।

फ्रन्टल्स (frontals) का जोडा आगे और पैराइटल्स का जोडा पीछे। फण्टोपैराईटल स्फेनेथमीएड के अगले सिरे से लेकर एक्सऔक्सिपिटल और प्रोऔटिक (pro-otic) या प्रकर्णिका तक फैली होती है। क्रैनियम की प्रति-पृष्ठ सतह को मजबूती देने के लिए T के आकार की एक हड्डी होती है। जिसे पैरास्फीनोएड (parasphenoid) कहते है। इसका लम्बा भाग क्रैनियम की प्रतिपृष्ठ सतह से जुडा रहता है और अनुप्रस्थ भाग प्रत्येक ओर के श्रवण-कोष या आडेटरी कैप्स्यूल्स (auditory capsule) को सहारा और मजबूती देता है। स्फनेथमोइड और एक्स-औक्सिपिटल के बीच का भाग कार्टिलेज का बना होता है। तन्त्रिकाओ के बाहर निकलने के लिए क्रैनियम में जगह जगह छेद होते हैं।
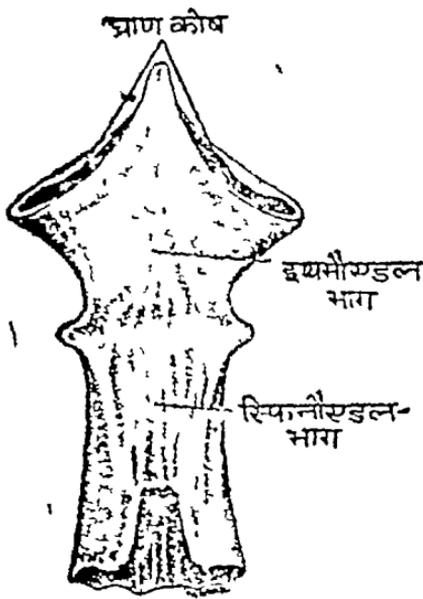
चित्र ८३—मेढक की स्फेनेथमोयड

सेन्स कैपस्यूल्स (sense capsules)ः—क्रैनियम से जुडे सेन्स कैप-स्यूल्स के तीन जोडे होते हैं—घ्राणकोष (olfactory capsules) क्रैनियम के अगले सिरे से, श्रवण-कोष (auditory capsules) क्रैनियम के पाश्र्वो-लेट्रल हिस्सो से जुडे रहते हैं किन्तु औप्टिक कैपस्यूल (optic capsules), क्रैनियम के पार्श्व भागो मे होते है किन्तु किसी प्रकार क्रैनियम से नही जुडे होते।

स्फेनेथमोइड का एथमीएडल भाग (ethmoidal portion) दो हिस्सो में विभाजित होकर प्रत्येक घ्राण कोप का अधिकाश हिस्सा बनाता है। इसकी पृष्ठ सीमा (boundary) को पूरा करने के लिए डौर्सोलेट्रल कार्टिलेज (dorsolateral cartilage) तथा नेजल या नास्या (nasal) होती हैं नेजल के आगे एक बहुत ही छोटी हड्डी होती है जिसे सेप्टोमैक्सिलरी (septomaxillary) कहते हैं। इस हड्डी का एक भाग बाह्य-नासा छिद्र (external nares) को सहारा देता है। प्रत्येक नेजल चपटी तथा तिकोनी होती है और औलफैक्टरी कैपस्यूल की प्रतिपृष्ठ को मजबूती देने के लिए बेसल कार्टिलेज (basal cartilage) तथा वोमर (vomer) होती हैं। प्रत्येक वोमर के पिछले किनारे पर वोमरिन दाँत होते है।

क्रैनियम के प्रत्येक पोस्ट्रोलेट्रल भाग से जुडा हुआ एक श्रवण-कोष (aud-itory capsule) होता है। इसका अधिकाश भाग कार्टिलेज का बना होता

है। कार्टिलेज के इस भाग को कार्टिलेजिनस लेबरिन्थ (cartilaginous labyrinth) कहते हैं। इसी के भीतर आन्तरिक कर्ण (internal ear) होता है। श्रवण-कोष का अगला भाग प्रकर्णिका (pro-otic) का बना होता है। इस कोष को सहारा तथा मजबूती देने के लिए भीतरी ओर एक्स ऑक्सि-पिटल और फ्रन्टोपेराइटल और बाहरी ओर स्क्वेमोसल (squamosal) होती है। बाहर से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए ये कार्टिलेजिनस लेबिरिन्थ में एक छेद होता है जिसे फीनेस्ट्रा ओवेलिस (fenestra ovalis) कहते हैं। जीवित अवस्था में इस छद के ऊपर एक झिल्ली मढ़ी होती है जिसके बाहरी ओर मध्य कर्ण (middle ear) होता है। कर्णपटह (tympanum) और फीनेस्ट्रा ओवेलिस को जोड़ने के लिए कालूमेला या कर्ण-दंडिका (columella) होता है।

मेढक के दोनों नेत्र गोलक (eye balls) नेत्र कोटरों (orbits) में स्थित होते हैं किन्तु ये हड्डियों द्वारा मुखगुहा से अलग नहीं होते।

हनु कंकाल या विसरल स्कैलिटन (Visceral skeleton)

ऊपरी जबड़ा—मेढक में ऊपरी जबड़ा (upper jaw) क्रेनियम से इस प्रकार जुड़ा रहता है कि यह हिल-डुल नहीं सकता किन्तु अधोहनु या निचला जबड़ा स्वतंत्र होता है और ऊपर-नीचे हिलाया जा सकता है। प्रत्येक ओर का ऊपरी जबड़ा दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रत्येक भाग में तीन-तीन हड्डियाँ होती हैं। बाहरी भाग की तीनों हड्डियाँ ऊपरी जबड़े की अर्धवृत्ताकार (semicircular) बाहरी सीमा बनाती हैं और भीतरी भाग की तीनों हड्डियाँ बाहरी भाग को सहारा देती हैं तथा क्रेनियम से जोड़ती हैं।

ऊपरी जबड़े के बाहरी भाग में प्रीमैक्सिला (premaxilla), मैक्सिला (maxilla) तथा क्वाड्रेटोजूगल (quadratojugal) होती हैं। दोनों ओर की प्रीमैक्सिला भीतरी किनारों पर जुड़ी रहती हैं और घ्राण कोषों के अगले सिरों पर स्थित होती हैं। प्रत्येक प्रीमैक्सिला के पीछे एक लम्बी तथा थोड़ी घुमावदार मैक्सिला होती है। इसके अगले भाग की भीतरी सतह से एक तिकोना प्रवर्ध निकला रहता है जो घ्राण कोष को भी सहारा देता है। इसके पिछले सिरे से अर्धविराम या कौमा (,) के आकार की एक छोटी सी क्वाड्रेटोजूगल होती है। प्रीमैक्सिला और मैक्सिला की प्रतिपृष्ठ सतह पर असंख्य नुकीले दाँत होते हैं किन्तु क्वाड्रेटोजूगल दंतविहीन होती है। इसके ठीक पीछे एक छोटा-सा क्वाड्रेट कार्टिलेज (quadrate cartilage) होता है।

ऊपरी जबड़े के भीतरी भाग में प्रत्येक ओर तीन हड्डियाँ होती हैं—

पैलाटाइन या तालुकीया (palatine), **टेरीगोइड** या **त्रि-अगिका** (ptery goid) तथा **स्क्वैमोसल** (squamosal)। इनमें से पैलाटाइन (palatine), जो कि प्रतिपृष्ठ सतह पर एक कोमल और चपटी शलाका के रूप में होती है, मैक्सिला को स्फैनेथमोइड के अगले भाग से मिलाती है। **टेरीगोइड** भी प्रतिपृष्ठ सतह पर होती है। इसमें तीन भुजाएँ (arms) होती हैं। अगली भुजा मैक्सिला से जुडी रहती है। पिछली दो भुजाओ में से बाहरी तो क्वाड्रेट कार्टिलेज से और भीतरी श्रवण-कोष (auditory capsule) से जुडी रहती हैं। **स्क्वैमोसल या छदिका** (spuamosal) पृष्ठ भाग मे और हथौडे के आकार
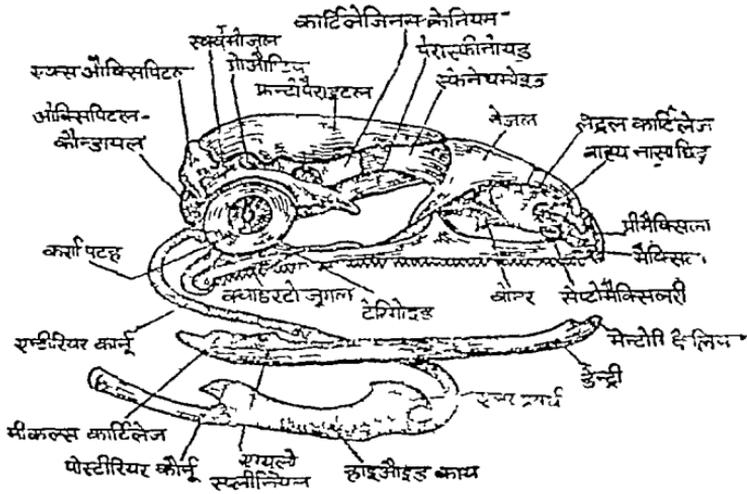
चित्र ८४—मेढक की खोपडी का पार्श्व दृश्य

की होती है। इसमें भी तीन **प्रोसेस** (processes) होते हैं। इसका अगला प्रोसेस स्वतत्र होता है और अपनी ओर के नेत्र-कोटर में झुका रहता है। दोनो पिछले प्रवर्धों में से एक तो क्वाड्रेट कार्टिलेज द्वारा निर्मित **ससपेन्सोरियम** (suspensorium) को मजबूत बनाता है और दूसरा श्रवण-कोष के पृष्ठ भाग से जुड जाता है।

निचला जंबड़ा (Lower jaw)—निचला जबडा भी दो समान भागो का बना होता है। ये दोनो भाग आगे की ओर स्नायु (ligament) द्वारा जुडे रहते है। प्रत्येक भाग या **रेमस** (ramus) धनुषाकार होता है और इसके बीच का भाग **मेकल्स कार्टिलेज** (Meckel's cartilage) का बना होता है। यह अगले सिरे पर हड्डी में बदलकर **मैन्टोमिकेलियन** (mento-meckelian) हड्डी बनाता है। रेमस का शेष भाग लगभग पूरी तौर पर दो हड्डियो से ढका रहता है—इनमें से **दन्तिका** (dentary) आगे और **एंग्यूलो-स्प्लीनियल** (angulosplenial) पीछे होती है। निचले जबडे में पिछले सिरे पर दो कौण्डाइल (condyles) होते है जो क्वाड्रेट कार्टिलेज
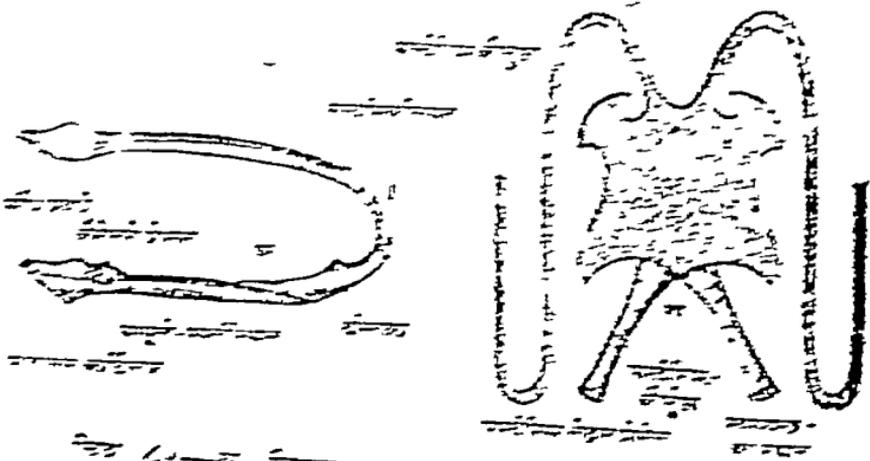
वे सभी हड्डियाँ जो ठीक उन स्थानो पर बन जाती हैं जहाँ टेडपोल अवस्था में कार्टिलेज होता है, उपास्थि जाति या कार्टिलेज बोन्स (cartilage bones) कहलाती हैं। चूंकि ये कार्टिलेज को हटाकर बनती है इन्हे प्रतिस्थापक या रिप्लेसिंग हड्डियाँ (replacing bones) भी कहते हैं। खोपडी में
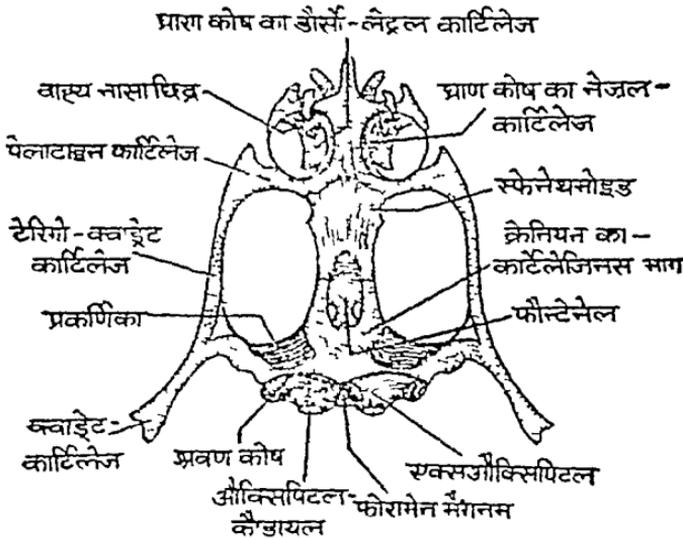
चित्र ८६—मेढक की मेम्ब्रेन बोन्स को हटाने के बाद खोपडी का शेष भाग जिसमें कार्टिलेज तथा कार्टिलेज बोन्स यथास्थान है।

केवल स्फेनेथमोइड, एक्स-औक्सिपिटल, प्रो-औटिक (pro-otic), एँग्यूलोस्प्लीनियल तथा हाइऑएड के पश्च कारनुआ उपास्थिजात हड्डियाँ होती हैं। किन्तु धड तथा टाँगो की सभी हड्डियाँ (अधोअक्षक या क्लैविकल के अतिरिक्त) इसी प्रकार की होती हैं।

इसके विपरीत वे सभी हड्डियाँ जो त्वचा के नीचे स्थित सयोजी-ऊतक में स्वतन्त्ररूप से बनती हैं मेम्ब्रेन बोन्स (membrane bones) कहलाती हैं। धीरे-धीरे अपने जन्म स्थान से खिसककर ये पतली और चपटी हड्डियाँ आमतौर पर खोपडी के विभिन्न भागो से चिपक जाती हैं और इस प्रकार उन सभी स्थानो को और अधिक मजबूत बना देती है। पतली और चपटी होने के कारण इन्हे मेम्ब्रेन बोन्स (membrane bone) कहते हैं। इस प्रकार इनका पूर्वस्थित कार्टिलेज से कोई भी सम्बन्ध नही होता। इस प्रकार मेढक की खोपडी में प्रीमैक्सिला, मैक्सिला, क्वाड्रेटोजूगल, स्क्वैमोसल, टेरीगोइड पैलाटाइन, फ्रन्टोपैराईटल, पैरास्फीनोयड इत्यादि हड्डियाँ इसी प्रकार की होती है। साथ में दिये टेबिल (table) में खोपडी की हड्डियो का सक्षिप्त विवरण दिया है।

क्रम स०	प्रदेश	हड्डी का नाम	स्थिति	स्वभाव	क्रम स०
१	क्रेनियम	फ्रण्टोपैराइटल	क्रेनियम के पृष्ठ भाग मे	मेम्ब्रेन	२
		पैरास्फीनोयड	क्रेनियम की प्रतिपृष्ठ सतह पर	,,	१
		स्फेनेथमोइड	क्रेनियम के अगले भाग की दीवार में	कार्टिलेज बोन	१
		एक्स-ऑक्सीपिटल	फोरामेन मैगनम के इधर उधर	,,	२
२	श्रवणकोष	श्रवण कैप्स्यूल	अन्त कर्ण के चारो ओर	कार्टिलेज	२
		प्रोऑटिक	पृष्ठ तथा आगे	कार्टिलेजबोन	२
३	घ्राणकोष	घ्राण कैप्स्यूल	घ्राण अग के चारों ओर	कार्टिलेजीनस	२
		नेजल्स	पृष्ठ सतह पर	मेम्ब्रेन बोन	२
		वोमर्स	प्रतिपृष्ठ सतह पर	,,	
		सैप्टोमैक्सिलरीज	वाह्य नासा छिद्र के पास	,,	
४	ऊपरी जबड़ा	प्रीमैक्सिला	जबड़े के अगले सिरे पर	मेम्ब्रेन बोन	२
		मैक्सिला	प्रीमैक्सिला और क्वाड्रेटोजूगल के बीच में	,,	२
		क्वाड्रेटोजूगल	क्वाड्रेट कार्टिलेज तथा मैक्सिला के बीच में	,,	२
		क्वाड्रेट कार्टिलेज	जबड़े के पिछले सिरे पर	कार्टिलेज	२
		पैलाटाइन	मैक्सिला और क्रेनियम के बीच में	मेम्ब्रेन बोन	२
		स्क्वैमोसल	क्वाड्रेट तथा प्रोऑटिक के बीच में	,,	२
		टेरीगोइड	मैक्सिला, क्वाड्रेटोजूगल और श्रवण कोष के बीच	मेम्ब्रेन बोन	२
५	अधोहनु	मेकल्स कार्टिलेज	पिछले भाग में	कार्टिलेज	२
		डेण्ट्री	अगले भाग में	मेम्ब्रेन बोन	२
		ऐंग्यूलोस्प्लीनियल	पिछले भाग में	,,	
		मैन्टोमिकेलियन	सिरे पर	कार्टिलेज बोन	२
६	हाइऑइड अपरेटस	हाइऑइड का बोडी	जीभ के नीचे	कार्टिलेज	१
		अग्र कारनूआ	बोडी और श्रवण कोष के बीच	,,	२
		पश्च कारनूआ	स्वर-यन्त्र के इधर उधर	कार्टिलेज बोन	२

उपांग कंकाल
(Appendicular Skeleton)

इसमें अगली तथा पिछली टाँगो की हड्डियाँ तथा उनको सहारा देने वाली गर्डिल्स या मेखलाएँ (girdles) होती हैं। एम्फीबिया तथा अन्य सभी वरटिब्रेट प्राणियो मे अगली तथा पिछली टाँगो और दोनो मेखलाओ के ककाल की आधारभूत सरचना एक ही होती है।

प्रत्येक टांग पचागुलीय (pentadactyle) होती है। साथ के चित्र की सहायता से अगली और पिछली टाँगो की रचना में समानता आसानी से समझी जा सकती है। ऊपर बाहु (upper arm) तथा ऊरु (thigh) में एक लम्बी हड्डी होती है। उत्तर बाहु मे इसे ह्यमरस या प्रगडिका (humerus) और
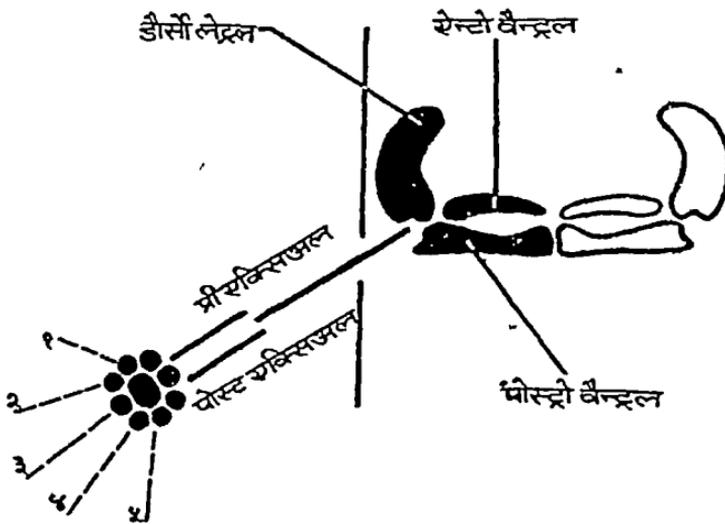
चित्र ८७—मेढक के उपाग-ककाल की आधारभूत रूपरेखा

पिछली टाँग मे इसे फीमर या ऊर्विका (femur) कहते हैं। अग्रबाहु में रेडियस और अल्ना और जघा में टीबिया और फीब्युला मिलती हैं। कलाई तथा गुल्फ में १० छोटी-छोटी हड्डियाँ तीन पक्तियो में होती हैं। कलाई में इन्हे कार्पल्स (carpals) और गुल्फ में टार्सल्स (tarsals) कहते हैं। पहली पक्ति में तीन समीपस्थ (proximal) कार्पल्स या टार्सल्स, बीच में दो सेन्ट्रेलिया (centralia) और तीसरी पक्ति में पाँच दूरस्थ या डिस्टल कार्पल्स या टार्सल्स होती हैं। हथेली और तलुवे में ५ लम्बी हड्डियाँ होती हैं जिन्हे मेटाटार्सल (metatarsal) या मेटाकार्पल (metacarpal) कहते हैं। अंगुलियो (fingers or toes) में अंगुलास्थियाँ या फैलेन्जेस (phalanges) होती हैं।

इसी प्रकार दोनों मेखलाओं की आधारभूत संरचना भी एक-सी होती है। इसमें जो परिवर्तन होते हैं वे केवल कूदने, चढ़ने, भागने, उड़ने तथा अन्य प्रकार के चलने की आवश्यकता के अनुसार हो जाते हैं। प्रत्येक गर्डिल या मेखला दो समान भागों के मेल से बनती हैं। ये दोनों समान भाग मध्य प्रतिपृष्ठ रेखा (mid-ventral line) पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं किन्तु इनके पृष्ठ भाग स्वतन्त्र होते हैं। प्रत्येक अर्ध भाग में अगली या पिछली टाँग के जोड़ के लिए एक गुहा होती है जिसे पैक्टोरल गर्डिल या अंस-मेखला में ग्लीनोएड कैविटी (glenoid cavity) और श्रोणि-मेखला या पैल्विक गर्डिल (pelvic girdle) में ऐसिटैबुलम (acetabulum) कहते हैं। इस गुहा द्वारा दोनों मेखलाओं का अर्ध भाग डार्सो-लैटरल (dorso-lateral) और
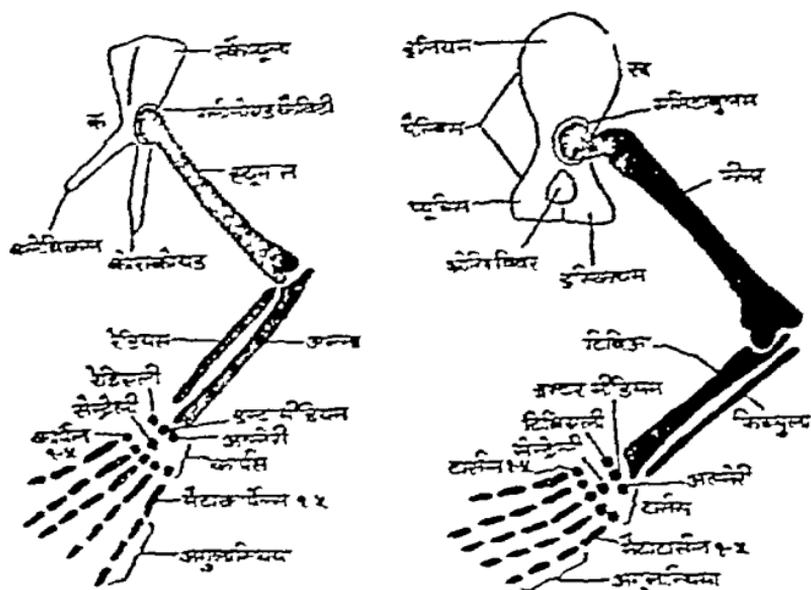
चित्र ८८—वर्टिब्रेट्स की अगली और पिछली टाँगों की आधारभूत संरचना

प्रतिपृष्ठ (ventral) भागों में बाँटा जा सकता है। डार्सो-लैटरल भाग में केवल एक हड्डी होती है जिसे पैक्टोरल गर्डिल में स्कैप्युला (scapula) और पैल्विक गर्डिल में इलियम कहते हैं। वैन्ट्रल भाग में दो हड्डियाँ होती हैं। पैक्टोरल गर्डिल में एन्ट्रो-वैन्ट्रल हड्डी को प्रीकोराकौएड (precoracoid) और पैल्विक गर्डिल में इसे प्यूबिस (pubis) कहते हैं। अंस मेखला में पोस्ट्रो-वैन्ट्रल भाग की हड्डी को कोराकोएड (coracoid) और श्रोणि मेखला में इसे इस्कियम या आसनास्थिका (ischium) कहते हैं। अंस-मेखला पेशियों तथा स्नायुओं (ligaments) द्वारा वर्टिब्रल कॉलम से जुड़ी रहती है। इसके विपरीत श्रोणि मेखला की दोनों इलिया (ilia) स्वयं सेक्रल वर्टिब्रा के अनुप्रस्थ ... जुड़ी रहती हैं।

अंस-मेखला या पैक्टोरल गर्डिल

(Pectoral Girdle)

दोनो ओर के अर्व भाग मिलकर एक उल्टी चाप (inverted arch) वनाते हैं जो कि कधे की पेशियो में स्थित होती हैं। प्रत्येक अर्व भाग मे ग्लीनोएड कैविटी (glenoid cavity) के ऊपर स्कैप्युला (scapula) होती है। यह चपटी तथा चौकोर होती है। इसका पृष्ठ भाग कुछ अधिक चौडा होता है और इससे जुडी कैलसीफाएड कार्टिलेज की एक चौडी पट्टी होती है जिसे सुप्रास्कैप्युला (suprascapula) कहते हैं। इसका दूरस्थ भाग दूसरी से चौथी वरटिब्री को ढके रहता है। स्कैप्युला के भीतरी अगले सिरे पर एक्रोमियन प्रोसेस (acromion-process) होता है।
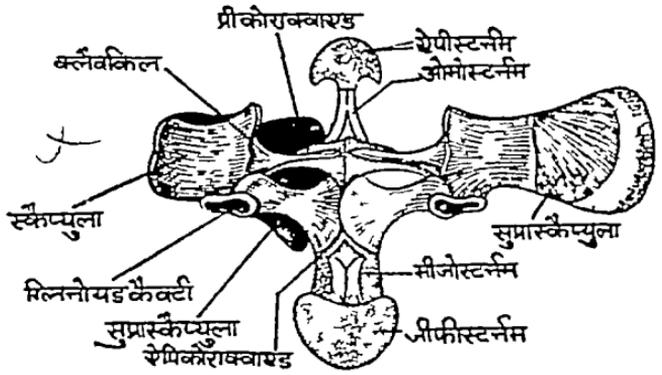
चित्र ८९—मेढक की अस-मेखला का प्रतिपृष्ठ दृश्य

प्रतिपृष्ठ भाग में दो भाग होते हैं। एन्ट्रो-वैन्ट्रल भाग में कैलसीफाएड कार्टिलेज की एक पट्टी होती है जिसे प्री-कोराकौयड (pre-coracoid) कहते हैं। इसकी प्रतिपृष्ठ सतह से जुडी एक पतली तथा कोमल हड्डी होती है जिसे क्लेविकल या अक्षक (clavicle) कहते हैं। वाहरी सिरे पर यह अधिक चौडी होती है। पोस्ट्रो-वैन्ट्रल भाग में एक मोटी कोराकौयड (coracoid) होती है। प्री-कोराकौएड तथा कोराकौएड के वीच में एक छेद होता है जिसे कोरैको-क्लेविकुलर छेद (coraco-clavicular aperture) कहते हैं।

अधिकाश मेढको में मध्य-प्रतिपृष्ठ भाग में कार्टिलेज की दो सॅकरी पट्टियाँ होती हैं जिन्हें ऐपीकोराकौयड (epicoracoid) कहते हैं। ये दोनो ओर की प्री-कोराकौयड को मिलाती हैं किन्तु राना टिग्रीना में वाईं कोराकौयड प्राय. दाहिनी को ढके रहती है। कभी-कभी इसका उल्टा भी होता है। इसलिए राना टिग्रीना में एपीकोराकौयड केवल इस भाग के ट्रासवर्स सेक्शन में ही साफ-साफ दिखाई देती है।

उरोस्थि या स्टर्नम (sternum)—पैक्टोरल गर्डिल का मध्य-प्रतिपृष्ठ भाग आगे तथा पीछे फैलकर स्टर्नम (sternum) बनाता है। इसके अगले भाग को प्री-स्टर्नम (presternum) और पिछले भाग को स्टर्नम कहते हैं। प्री-स्टर्नम में उलटे 'Y' के आकार की छोटी-सी हड्डी होती है जिसे **ओमोस्टर्नम** (omosternum) कहते हैं। इसके ऊपरी सिरे पर कार्टिलेज की एक चौडी और चपटी पट्टी होती है जिसे **एपीस्टर्नम** (episternum) कहते हैं। इसी प्रकार मीजोस्टर्नम नाम की चौडी तथा छोटी हड्डी, जो कि कोराकोयड्स के पिछले सिरे से निकलती है, के सिरे पर **जीफोस्टर्नम** की चौडी और चपटी कार्टिलेज की पट्टी होती है।

पैक्टोरल गर्डिल की उपयोगिता

(१) यह दोनो अगली टाँगो के जुडने के लिए स्थान देती है।

(२) साथ ही साथ यह उन पेशियो के लगाव के लिए भी स्थान देती है जिनकी सहायता से कूदने के बाद भूमि पर गिरते समय सर्वप्रथम अगली टाँगो से शरीर को साधती है।

(३) यह कोमल अगो जैसे हृदय तथा फेफडो की रक्षा करती है।

(४) यह शरीर के अगले भाग का सामान्य आकार बनाये रखने में सहायता देती है।

(५) यह पसलियों की कमी को पूरा करती है।

(६) यह स्टर्नोहाइओएड पेशियो के लगाव के लिए स्थान देती है।

अग्रपाद या फोर-लिम्ब्स
(Fore Limbs)

अगली टाँगो की उत्तर-बाहु (upper arm) में एक छोटी किन्तु मजबूत हड्डी होती है जिसे **प्रगण्डिका या ह्यूमरस** (humerus) कहते हैं। यह बेलनाकार होती है किन्तु इसका मध्य भाग कुछ सँकरा होता है। इसकी प्रतिपृष्ठ सतह पर एक तिकोना उभार होता है जिसे **डेल्टाकार उभार** (deltoid ridge) कहते हैं। यह उभार इसके समीपस्थ सिरे से लेकर मध्य भाग तक फैला होता है। इसके अगले सिरे पर एक गोल गेंद जैसा सिर (head) होता है जो पैक्टोरल गर्डिल की ग्लीनोयड कैविटी में सटा रहता है। ह्यमरस के दूरस्थ सिरे पर एक गेंद जैसा गोल कौण्डाइल (condyle) होता है। इसी को **कैपीटुलम** (capitulum) कहते हैं। इसी के पास एक छोटा-सा उभार होता है जिसे **ट्रौक्लिया** (trochlea) कहते हैं।

पूर्वबाहु (fore arm) में दो हड्डियाँ होती हैं—बाहरी और अल्ना

(ulna) और भीतरी ओर **रेडियस** (radius) किंतु ये परस्पर मिलकर एक सयुक्त हड्डी जिसे **रेडियो-अल्ना** (radio-ulna) कहते हैं बनाते हैं। इसकी सतह पर स्थित छिछली खाँई (groove) इसके सयुक्त होने का प्रमाण है। इसके अलावा ट्रांस्वर्स सेक्शन में दो अस्थि-मज्जा (bone marrow) गुहाएँ दिखाई देती हैं। ह्यूमरस के पिछले सिरे पर स्थित कौण्डाइल को ग्रहण करने के लिए रेडियो-अल्ना के अगले सिरे पर एक छिछला गढा होता है जिसे **ग्लीनोयड-कैविटी** (glenoid cavity) कहते हैं। इसी सिरे पर अल्ना से एक छोटा किन्तु मोटा उभार निकलता है जिसे **औलेक्रेनन प्रोसेस** (olecranon process) कहते हैं। **सिग्मौएड नौच** (sigmoid notch) ओलेक्रेनन प्रोसेस तथा ह्यूमरस का कॉण्डाइल मिलकर कोहनी का जोड़ (elbow joint) बनाते हैं। यह जोड पूर्व-वाहु को भीतर की ओर तो मुडने देता है किन्तु सीधा करने पर इसे वाहर की ओर मुडने से रोकती है।

चित्र ९०—मेढक की अगले टाँग की हड्डियाँ
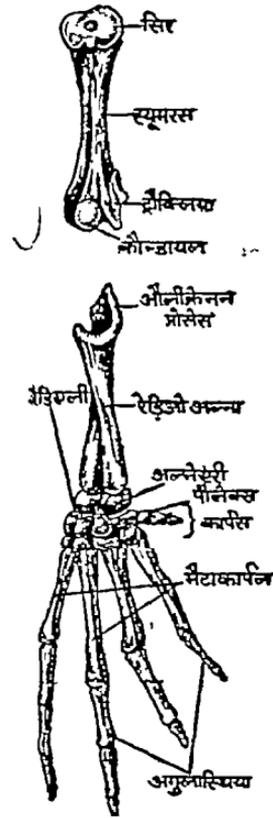
कलाई में छोटे-छोटे ६ कार्पल्स (carpals) दो कतार में होते हैं। समीपस्थ पक्ति में रेडियस के नीचे रेडिएली (radiale), अल्ना के नीचे **अल्नेएरी** (ulnare) और इन दोनो के बीच मे **इण्टरमीडियम** (intermedium)। शिशु मेढक में दूरस्थ पक्ति में **पांच कार्पेल्स** होते हैं किन्तु **प्रौढ़** (adult) में **दूसरी, तीसरी** और **चौथी** मिलकर एक हो जाती हैं और **सेण्ट्रेली** (centrale) भी इन्ही की कतार में आ जाती है। इस प्रकार कलाई मजबूत हो जाती है। हथेली (palm) में पाँच लम्वे **मैटाकार्पेल्स** (metacarpals) होते हैं किंतु इनमें प्रथम सवसे छोटी होती है और इससे केवल एक **अगुलास्थि** (phalanx) जुडी होती है। यह वाहर से दिखाई नही पडती और इसे **पौलेक्स** (pollex) कहते हैं। शेष चार **मैटाकार्पेल्स** लम्वे होते है। पहली व दूसरी अँगुली में २-२ **अगुलास्थियाँ** और तीसरी और चौथी में तीन-तीन होती हैं।

श्रोणि-मेखला या पैल्विक गर्डिल

(Pelvic Girdle)

धड के पिछले भाग में दोनो पिछली टाँगो से जुडी श्रोणि-मेखला या

पैल्विक गर्डिल मिलती है। यह एक प्रकार से कशेरुक दड के समान्तर स्थित होती है। इसके प्रत्येक अर्ध भाग मे दो हड्डियाँ और एक कैलसीफाएड कार्टिलेज होता है। दोनो अर्ध भाग मिलकर चिमटी के समान एक सरचना वनाते हैं।

प्रत्येक अर्ध भाग के पिछले चौडे भाग के वीचोवीच में **श्रोणि-उलूखल या एसिटेवुलम** (acetabulum) होता है। यह तीनो हड्डियो के सगम पर मिलता है और इसी में फीमर (femur) का सिर जुडा रहता है। श्रोणि-उलूखल के आगे फैला लम्वा और चपटा भाग इलियम (ilium) कहलाता है। इसके पृष्ठ भाग में एक लम्वा खडा किन्तु चपटा पृष्ठ-शिखर (dorsal crest) होता है। सैक्रल या नवीं वरटिब्रा के मजवूत तथा पीछे झुके हुए अनुप्रस्थ प्रवर्धों से दोनो ओर की इलिया के स्वतत्र सिरे कार्टिलेज द्वारा मजवूती से जुडे रहते हैं। दोनो ओर की इलिया के पिछले चौडे भाग परस्पर मिलकर एक गोल डिस्क (disc) का डौर्सो-लेट्रल भाग वनाते हैं।

डिस्क का एण्ट्रो-वैन्ट्रल भाग दोनो ओर की प्यूब्स (pubes) वनाती है। प्रत्येक ओर की अग्र-श्रोणिका या प्यूबिस (pubis) कैलसीफाएड
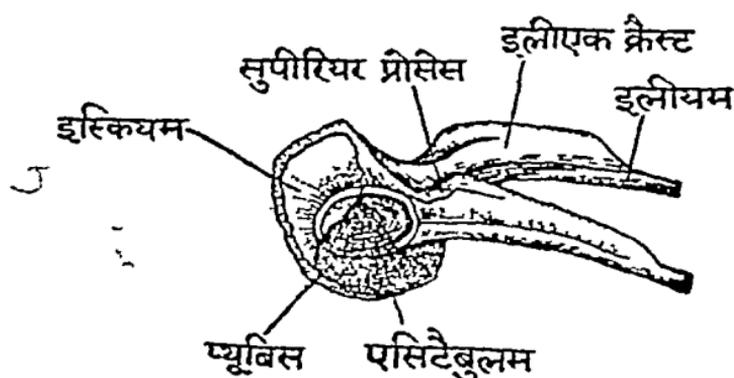
चित्र ९१—मेढक की पैल्विक गर्डिल का पार्श्व दृश्य (lateral view)

कार्टिलेज की एक तिकोनी पट्टी होती है। दोनो ओर की इस्किया (ischia) या आसनास्थिकाएँ परस्पर जुडी रहती हैं और एसिटवुलम का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग वनाती हैं। ये भी तिकोनी होती है और डिस्क की पिछली सीमा वनाती है।

पैल्विक गर्डिल की यान्त्रिक उपयोगिता (mechanical utility)—तैरने तथा कूदने की क्रियाओ को सफल वनाने के लिए मेढक की पैल्विक गर्डिल में कई विशेषताएँ मिलती हैं —

(१) इलिया का वहुत ज्यादा लम्वा होना।

(२) इस्किया, प्यूब्स तथा इलिया के पिछले भागो के मेल से एक सघन डिस्क का वनना।

(३) पूरी गर्डिल का कुछ पीछे की ओर खिसक जाना।

(४) एसिटैवुलम का काफी पीछे की ओर खिसका होना।

इलिया के बहुत ज्यादा लम्वा होने से एसिटैबुलम काफी पीछे खिसक जाते हैं जिससे पिछली टाँगो की लम्वाई वढ जाती है। पिछली टाँगो की लम्वाई वढने से कूदने तथा तैरने में विशेष रूप से सहायता मिलती है। कूदने मे जो धक्के लगते हैं उनका प्रभाव इलिया के लम्बे होने से वरटिब्रल कॉलम अर्थात् रीढ रज्जु या स्पाइनल कौर्ड तक नही पहुँचने पाता। सघन डिस्क के वीचोवीच में एसिटैवुलम के स्थित होने से फीमर का सिर एक ऐसा फलक्रम (fulcrum) वनाता है जिसके सहारे कूदने तथा तैरने मे पिछली टाँगें आसानी से आगे पीछे हिल सकती हैं।

पिछली टाँगें या पश्च पाद (Hind Limbs)

पिछली टाँगो की ही सहायता से कूदने और तैरने की क्रियाएँ होती हैं। इसके लिए इनमें कुछ विशेष परिवर्तन हो जाते हैं।

मेढक के ऊरु (thigh) में एक लम्वी वेलनाकार तथा थोडी घुमावदार हड्डी होती है जिसे फीमर या ऊर्विका (femur) कहते हैं। इसके दोनो सिरे कैलसीफाएड कार्टिलेज के वने होते हैं। समीपस्थ सिरा गोल सिर (head) वनाता है जो श्रोणि मेखला के एसिटैवुलम में धँसा रहता है। दूरस्थ सिरे पर एक फूला हुआ किन्तु कुछ चपटा कौण्डाइल (condyle) होता है। जघा में टिविओ-फीव्युला (tibio-fibula) होती है जो वास्तव में भीतरी हड्डी अतर्जंघिका या टीविया तथा वाहरी हड्डी वहिर्जंघिका या फीव्यूला के मिलने से वनती है। इसका अगला सिरा फीमर के कौण्डाइल से मिलकर घुटने का जोड़ (knee-joint) वनाता है। इसके पिछले सिरे पर भी कैलसीफाएड कार्टिलेज की एक सधि मुखिका (articular facet) होती है जो गुल्फ (ankle) से जुडी रहती है।

चित्र ९२—मेढक की पिछली टाँग का ककाल

गुल्फ तथा पाद (foot) की हड्डियो में मिलनेवाले सभी परिवर्तन इन दोनो टाँगों की लम्वाई तथा क्षेत्रफल वढा देते हैं। मेढक के गुल्फ की हड्डियाँ वहुत लम्वी हो जाती हैं। आमतौर पर इस भाग मे मेटाकार्पल्स की दो पक्तियाँ होती हैं किन्तु
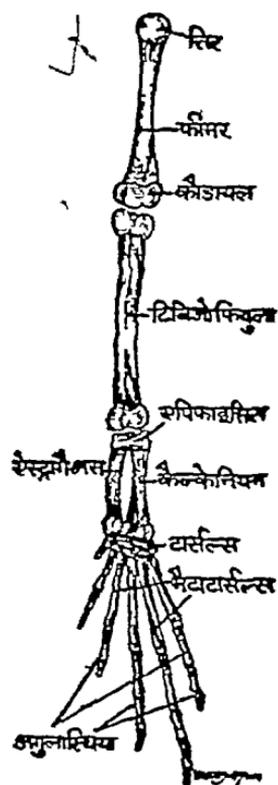
मेढक में समीपस्थ भाग की दोनो हड्डियाँ बहुत ज्यादा लम्बी हो जाती हैं। इनमें से एक को एस्ट्रागेलस (astragalus) या अनुगुल्फिका कहते है। यह वास्तव मे टिबिएली (tibiale) है। दूसरी को कैल्केनियम (calcaneum) कहते हैं। ये दोनो हड्डियाँ केवल समीपस्थ (proximal) और दूरस्थ (distal) सिरो पर कॉमन एपिफाइसेस द्वारा जुडी रहती हैं। कैल्केनियम वास्तव में फिब्युलेरी (fibulare) है। इन दोनो में एस्ट्रागेलस पतली और बाहरी तट पर घुमावदार (curved) और कैल्केनियम अधिक मोटी और बाहरी तट पर करीब-करीब सीधी होती है। इस प्रकार इन्हे आसानी से पहचाना जा सकता है। सेण्ट्रेली और दूरस्थ टार्सेल्स एक सीध में होते हैं और दूसरी, तीसरी और चौथी टार्सेल्स मिल जाती हैं। एस्ट्रागेलस की ओर एक छोटी हड्डी होती है जिसे कैलकार (calcar) कहते हैं।

तलुए (sole) मे पाँच लम्बी मैटाटार्सेल्स (metatarsals) होती है। सभी मैटाटार्सेल्स से अगुलास्थियाँ (phalanges) जुडी रहती हैं। पहली और दूसरी अँगुलियो में दो-दो, तीसरी में ३, और चौथी में ४ अगुलास्थियाँ होती हैं।

समजात (Homologous) तथा समवृत्ति (Analogous) अंग

जब दो सरचनाएँ उद्गम (origin) तथा परिवर्धन (development) में एक-सी होती है तो उन्हें समजात (homologous) कहते हैं। ऐसे अगो के उदाहरण वरटिब्रेट्स की टाँगो और मेखलाओ में मिलते हैं। अगली टाँगो की वाह्य आकृति विशेषरूप से मेढक, चिड़िया, घोड़ा, चमगादड तथा मनुष्य में बिलकुल भिन्न होती हैं और इन सभी के कार्य भी अलग अलग होते हैं किन्तु इन सभी की आधारभूत सरचना एक ही-सी होती है, इन सभी में एक ही-सी हड्डियाँ, पेशियाँ, तन्त्रिकाएँ (nerves), रुधिर-वाहिनियाँ इत्यादि मिलती हैं।

जन्तुओं में बहुत-सी रचनाएँ ऐसी भी मिलती हैं जिनके कार्यों में अवश्य समानता होती है किन्तु रचना बिल्कुल भिन्न होती है जैसे चिड़ियो और तितलियों के पक्ष (wings)। ऐसे अगो को समवृत्ति या एनॉलोगस (analogous) कहते हैं।

जोड़ या संधियाँ
(Joints)

शरीर के विभिन्न अगो की गतिशीलता और चलन (locomotion) के लिए यह आवश्यक है कि वरटिब्रेट्स का ककाल अनेक छोटी-बडी हड्डियो से मिलकर बना हो। मेढक में लगभग १२० छोटी-बडी हड्डियाँ होती हैं।

यह भी आवश्यक है कि ये हड्डियाँ उपयुक्त आकार की हो और इस प्रकार जुडी हो कि वे सरलतापूर्वक घुमाई जा सके।

वे सभी स्थान जहाँ पर दो या दो से अधिक हड्डियाँ परस्पर जुडी रहती हैं, **जोड़ या संधि** कहलाते हैं। वरटिब्रेट्स में तीन प्रकार के जोड होते हैं —

(१) पूर्ण संधियाँ (perfect joint)

(२) अपूर्ण संधियाँ (imperfect joint)

(३) अचल सधियाँ (immovable joint)

(१) **पूर्ण सधियाँ**—इस प्रकार के जोड पर हड्डियाँ लगभग सभी दिशाओ मे हिलाई-डुलाई जा सकती है। इस प्रकार के जोड की रचना समझने के लिए कोहनी का जोड लो। यदि दो हड्डियाँ ऐसी ही जुडी हो तो दोनो के सिरो का परस्पर रगडना आवश्यक हो जाता है। इस लिए जोड पर हड्डियो के दोनो सिरे कार्टिलेज की पतली पर्तो से ढके रहते हैं। इस प्रकार ये चिकने बने रहते हैं। जैसे-जैसे कार्टिलेज कोशिकाएँ नष्ट होती जाती हैं, इनकी जगह लेने के लिए नई नई कोशिकाएँ बनती रहती हैं। दोनो हड्डियो के सिरो के बीच की जगह को सधि-गुहा या साइनोवियल कैविटी (syncvial cavity) कहते हैं। इसमें भरे द्रव को साइनोविया या साइनोवियल द्रव (syncvial fluid) कहते हैं। इस गुहा के चारो ओर साइनोवियल झिल्ली (synovial membrane) होती हैं। इस द्रव से भरी थैली को साइनोवियल कैपस्यूल कहते है। कैपस्यूल के बाहरी खुले भाग को लचीले स्नायु (ligaments) ढके रहते हैं। ये हड्डियो के दोनो सिरो को दृढता से बाँध देते हैं जिससे हड्डियाँ आसानी से उखडने (dislocate) नही पाती। स्नायुओ के टूटने या अधिक फैलने (खिच जाने) पर मोच (sprain) आ जाती है। पूर्ण सधियाँ निम्न प्रकार की होती है—
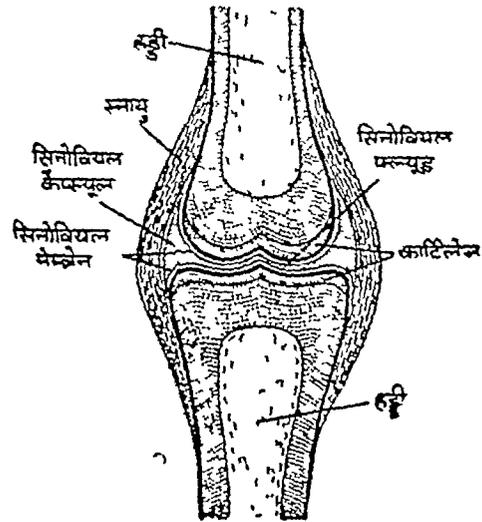
चित्र ९३—पूर्ण-सधि (Perfect joint) का सेक्शन

(अ) कन्दुक उलूखल सधि (ball and socket joint)

(आ) कोर-सन्धि या हिन्ज ज्वाएन्ट (hinge joint)

(इ) पिवट-सधि (pivot joint)

(ई) प्रसर या ग्लाइडिंग सधि (gliding joint)

(उ) सैडिल सधि (saddle joint)

(अ) कन्दुक उलूखल संधि—इस प्रकार के जोड में एक हड्डी का सिरा गोल गेंद के समान होता है और प्यालेनुमा एक कैविटी मे सटा रहता है। ये जोड हड्डियो को लगभग सभी दशाओ में हिलने-डुलने की स्वतन्त्रता देते हैं। कूल्हे और कंधे के जोड (hip and shoulder joints) इसी प्रकार के होते हैं।

चित्र ९४—मनुष्य में कूल्हे का जोड
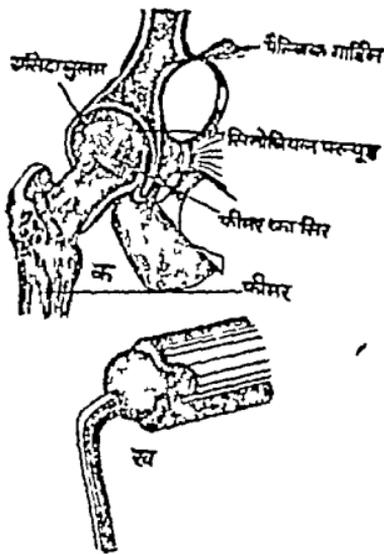
(आ) हिंज ज्वाएट (hinge joint) इस प्रकार के जोड हड्डियो को केवल एक ही दिशा में मुडने की स्वतन्त्रता देते हैं। इनके सबसे अच्छे उदाहरण कोहनी, घुटने तथा जबडों के जोड हैं। अँगुलियों के पोरो के बीच-बीच में भी ऐसे जोड होते हैं।

(इ) पिवट-संधि (pivot joint)—इस प्रकार के जोड अगो को दाहिने और बाएँ घूमने में सहायता देते हैं। स्तनधारियो में दूसरी सर्वाइकल वरटिब्री के अगले सिरे पर धुरी के समान एक उभार होता है जिसके चारा ओर एटलस वरटिब्रा सिर के साथ घूम सकता है।

(ई) ग्लाइडिंग संधि (gliding joint)—इस प्रकार के जोड में हड्डियाँ एक दूसरे पर फिसल सकती हैं। मेढक तथा अन्य वरटिब्रेट्स में कशेरुक के प्री-जाइगापोफिसिस और पोस्ट-जाइगोपोफिसिस के बीच इसी प्रकार के जोड मिलते हैं। कलाई और रेडियस तथा अल्ना के बीच भी इसी प्रकार का जोड मिलता है।

(उ) सैडिल संधि (saddle joint)—इस प्रकार के जोड द्वारा हड्डियाँ इधर-उधर घुमायी जा सकती हैं।

(२) अपूर्ण संधियाँ (imperfect joints)—इस प्रकार के जोड में हड्डियाँ एक दूसरे से कार्टिलेज की पतली पर्तो द्वारा जुडी रहती हैं जिससे लचीले कार्टिलेज द्वारा ही थोडी बहुत गति होती है। इस प्रकार के जोड पैक्टोरल तथा पैल्विक गर्डिल्स की हड्डियो के बीच-बीच में मिलते हैं।

(३) अचल संधि (immovable joints)—इस प्रकार के जोड स्तनधारियो की खोपडी की हड्डियो के बीच-बीच में मिलते हैं। ये हड्डियाँ अपने आरावत तटों (serrated margins) द्वारा एक दूसरे से इस प्रकार सटकर मिल जाती हैं कि किसी प्रकार की गतिशीलता नही रहती। इस प्रकार के जोडो को सीवन (suture) संधियाँ भी कहते हैं।

पेशियाँ
(Muscles)

वरटिब्रेट्स मे दो मुख्य प्रकार की पेशियाँ मिलती हैं—रेखित या ऐच्छिक तथा अरेखित तथा अनैच्छिक (involuntary)। रेखित पेशियाँ कूदने, तैरने, टर्र-टाँ टर्र-टाँ करने, जीभ निकालने, भोजन को निगलने इत्यादि इच्छाधीन कार्य करती हैं। अरेखित पेशियाँ आहार-नाल की दीवारो, मूत्र-वाहिनी, मूत्राशय, रुधिर वाहिनियो, पाचक ग्रन्थियो की वाहिनियो, आँख के आइरिस इत्यादि में मिलती हैं। रेखित पेशियाँ शीघ्र तथा अस्थायी क्रिया के लिए और अरेखित पेशियाँ मद (slow) किन्तु स्थायी क्रिया के लिए उपयुक्त होती हैं। कार्य के अनुसार पेशियाँ निम्न प्रकार की होती हैं —

(१) प्रसारक (extensor)—वे पेशियाँ जो अपने कुचन के फलस्वरूप किसी भाग को सीधा करती हैं या फैलाती हैं। उदाहरण के लिए हमारी उत्तर-बाहु में ट्राइसेप्स पेशियों (triceps) को ले लो। इनके कुचन से अग्रबाहु उत्तर-बाहु से दूर हट जाती है।

(२) आकोचक या फ्लेक्सर (flexor)—वे पेशियाँ जो किसी भाग को मोडती या झुकाती हैं। उदाहरण के लिए बाइसेप्स (biceps) पेशियो के कुचन से अग्रबाहु खिचकर उत्तर-बाहु के निकट आ जाती है।

(३) उपचालक या एडक्टर पेशियाँ (adductor)—वे पेशियाँ जो अपने कुचन के फलस्वरूप किसी अग को शरीर के निकट खीच लाती हैं।

(४) अपचालक या एबडक्टर (abductor)—वे पेशियाँ जो अपने कुचन के फलस्वरूप किसी अग को शरीर से दूर हटाती हैं।

(५) उन्नत पेशियाँ या लिवेटर (levator)—वे पेशियाँ जो किसी अग को ऊपर उठाती हैं।

(६) आवर्त या रोटेटर (rotator)—वे पेशियाँ जो किसी अग को घुमाती हैं।

(७) डिप्रेशर (depressor)—वे पेशियाँ जो किसी अग को नीचे झुकाती हैं।

(८) स्फिक्टर (sphincter)—वे पेशियाँ जो छेदो को छोटा करती हैं।

प्रश्न

१—वरटिब्रेट्स मे ककाल कितने प्रकार के होते हैं? ऐण्डोस्कैलिटन तथा एक्सोस्कैलिटन में क्या अन्तर होता है? ऐण्डोस्कैलिटन की क्या उपयोगिता है?

२—क्रेनियम, सेन्स कैपस्यूल्स तथा निचले जवडे की सभी हड्डियो के नाम लिखो। सेन्स कैपस्यूल्स क्रेनियम से क्यो जुडे रहते हैं?

३—मेढक की खोपडी के प्रतिपृष्ठ दृश्य का चित्र वनाकर सभी हड्डियो के नाम लिखो।

४—मेढक की पैक्टोरल गर्डिल की रचना का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। चित्र में कोराकोयड, एपीकोराकोयड तथा स्टरनम का सम्बन्ध स्पष्टरूप से दिखाओ।

५—मेढक की पैल्विक गर्डिल की रचना का विस्तारपूर्वक वर्णन करो और उसकी यान्त्रिक उपयोगिता (mechanical utility) समझाओ।

६—मेढक की पिछली टाँगों की हड्डियो का चित्र सहित वर्णन करो, पिछली टाँगो के ककाल की रचना में चलन (locomotion) के लिए कौन कौन से अनुकूलन (adaptation) मिलते हैं?

७—निम्नाकित विपयो पर सचित्र और विस्तारपूर्वक टिप्पणियाँ लिखो —
वहिर्कंकाल (exoskeleton), उपास्थिजात (cartilage bone) तथा कलाजात (membrane) हड्डियाँ, डेल्टाकार उभार, कौन्ड्रोक्रेनियम (chondrocranium), स्फेनेथमोयड (sphenethmoid) टेरीगॉएड, स्क्वैमोजल, समजात (homologous) अग, शीर्षवरा कशेरुका (atlas) तथा कोहनी का जोड।

८—अस्थि-ककाल के कौन से भाग मस्तिष्क, स्पाइनल कौर्ड, हृदय और कान की रक्षा करते हैं?

९—(क) औक्सीपिटल कौंडाइल, सेक्रल वरटिब्रा के अनुप्रस्थ प्रवर्ध, और हाइऔएड के अग्र शृग किन भागो से जुड रहते हैं?
(ख) वरटिब्रल कॉलम के सीमित लचीलेपन का क्या कारण है?

१०—मेढक की खोपडी की रचना का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। मेढक की खोपडी में कौन-कौन-सी उपास्थिजात तथा कलाजात हड्डियाँ होती हैं?

११—मेढक की खोपडी में मिलनेवाली कलाजात, और उपास्थिजात हड्डियो तथा कार्टिलेज (cartilage) की सारिणी (table) वनाओ। खोपडी के विभिन्न भागो में कौन-कौन-सी कलाजात हड्डियाँ मिलती हैं?

अध्याय ११

तंत्रिका-तंत्र

तुम पढ चुके हो कि मेंढक का शरीर असख्य कोशिकाओं या सेल्स का बना होता है। कोशिकाएँ आकार और सरचना में इसी लिए भिन्न होती हैं जिससे कि वे अनेक प्रकार के ऊतक बना सकें। ये ऊतक कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओ को करने की क्षमता रखते है। अत हम किसी ऊतक को **कोशिकाओं का परिवार** (community of cells) कह सकते हैं। सम्पूर्ण शरीर की तुलना एक विशाल देश से दी जा सकती है जिसमे अनेक प्रकार के कोशिका परिवार (टिशूज) मिलते हैं। तन्त्रिका-तन्त्र इन परिवारो का **प्रबन्धक** है। यह शरीर के समस्त अगों की क्रियाओ पर नियत्रण और नियमन (regulation) रखता है जिससे ये मिलकर सभी कार्य ठीक-ठीक कर सकें।

तन्त्रिका-तन्त्र को निम्नलिखित दो भागो में बाँटा जा सकता है —

(क) **सेरिब्रो-स्पाइनल सिस्टम** (Cerebro-spinal system)

(ख) **सिम्पाथेटिक तन्त्रिका-तन्त्र** (Sympathetic nervous system)

(क) सेरिब्रो-स्पाइनल सिस्टम

(Cerebro-spinal system)

इसे दो निम्नलिखित भागो में बाँटा जा सकता है —

(१) **केन्द्रीय तन्त्रिका-तंत्र** (central nervous system)—इसमें **मस्तिष्क** तथा **रीढ रज्जु** या **स्पाइनल कौर्ड** (spinal cord) सम्मिलित हैं।

(२) **पेरीफरल या परिधीय तन्त्रिका-तन्त्र** (peripheral nervous system)—इसमें **कपाल** (cranial) तथा **रीढ** (spinal तन्त्रिकाएँ होती हैं।

मस्तिष्क

(Brain)

यह क्रेनियम में सुरक्षित रहता है। इसके चारो ओर रक्षक **झिल्लियाँ** होती हैं जिन्हें **मेनेनजीज** (meninges) कहते हैं। बाहरी मोटी तथा मजबूत

झिल्ली को जो कि क्रेनियम की भीतरी सतह से सटी रहती है। **ड्यूरामेटर** (duramater) कहते हैं। यह तन्तुमय (fibrous) होती है। इसके भीतर मस्तिष्क की सतह से सटा हुआ **पाइआमेटर** (pia-mater) होता है। पाइआमेटर चपटी कोशिकाओ की वनी हुई सवहनीय झिल्ली होती है। ड्यूरामेटर तथा पाइआमेटर के वीच **सेरिब्रो-स्पाइनल फ्ल्युड** (cerebro-spinal fluid) मिलती है जो मस्तिष्क के वेन्ट्रिकलस में उत्पन्न होती है और अन्त में शिराओ मे होकर रुधिर में पहुँच जाती है। सेरिब्रो-स्पाइनल फ्ल्युड मस्तिष्क के कोमल अगो को वाहरी धक्को से
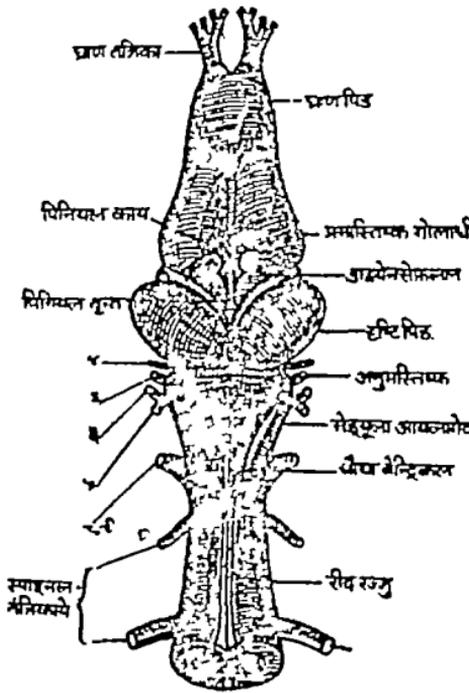
चित्र ९५—मेढक के मस्तिष्क का पृष्ठ दृश्य

वचाती है और मस्तिष्क के विभिन्न भागो को पोषाहार पहुँचाती है। ये ही मैंनेनजीज स्पाइनल कोर्ड को भी घेरे रहते हैं।

झिल्लियो को हटाने पर मस्तिष्क के विभिन्न भाग सरलतापूर्वक देखे जा सकते हैं। मस्तिष्क को तीन प्रमुख भागो में वाँट सकते हैं —

(क) **पश्च मस्तिष्क** (hind brain)
(ख) **मध्य मस्तिष्क** (mid brain)
(ग) **अग्र मस्तिष्क** (fore brain)

(क) **पश्च मस्तिष्क**—इसमें दो भाग होते हैं—मेड्यूला आवलगेटा (medulla oblongata) और अनुमस्तिष्क या सेरिवलम (cerebellum)। मेड्युला स्पाइनल कोर्ड से जुडा रहता है। यह स्पाइनल कोर्ड से थोडा अधिक चौडा होता है। इसके अन्दर एक चौडी तिकोनी कैविटी या गुहा होती है जिसे **चौथा वेन्ट्रिकल** कहते हैं। इसके
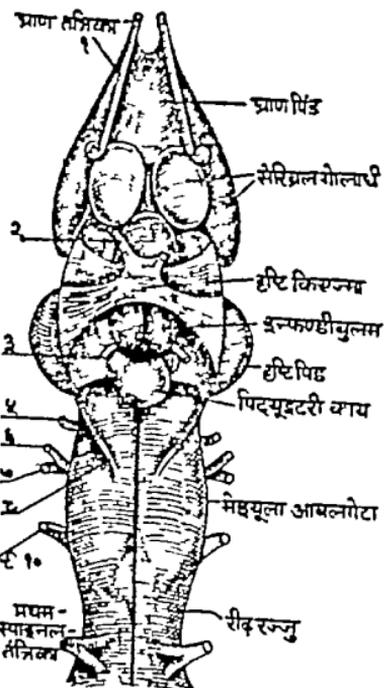
चित्र ९६—मेढक के मस्तिष्क का प्रतिपृष्ठ दृश्य

पृष्ठ भाग में पाइआमेटर के सवहनीय तथा मोटे हो जाने से एक ढक्कन-सी रचना वन जाती है। इसे **पश्च कोराइड प्लेक्सस** (posterior choroid plexus) कहते हैं। इसकी भीतरी सतह से अनेक उभार या प्रोसेस निकलकर चौथे वेन्ट्रिकल मे भरे सेरिब्रो-स्पाइनल फ्ल्युड में लटके रहते है। इनकी केशिकाओ से पोषाहार निकलकर इस द्रव मे मिल जाता है।

अनुमस्तिष्क या **सेरिबलम** (cerebellum)—चौथे वेन्ट्रिकल के अगले भाग की छत पर एक छोटे, सँकरे तथा ठोस ट्रासवर्स फोल्ड (transverse fold) के रूप मे मिलता है। वरटिब्रेटस में इसका प्रमुख कार्य शरीर का सतुलन बनाये रखना है। मेढक का शरीर कम ऊँचा किन्तु अधिक चौडा होता है। जिससे यह यो ही सतुलित रहता है। इसीलिए सेरिबलम के अधिक वडे होने की आवश्यकता नही होती।

(ख) **मिड ब्रेन या मध्य मस्तिष्क**—इस भाग मे दो दृष्टि पिंड (optic-lobes) होते है। इसकी पृष्ठ सतह में दो अडाकार उभार होते हैं। प्रत्येक दृष्टि पिंड मे एक गुहा होती है जिसे **ऑप्टोसील** (optocoel) कहते हैं। दोनो ऑप्टोसील या ऑप्टिक-वेन्ट्रिकल्स की भूमि (floor) पर दो मोटी-मोटी पट्टियाँ होती है जिन्हे **क्रूरा सेरिब्री** (crura cerebri) कहते हैं। दोनो आप्टोसील्स के वीच तथा चौथे वेन्ट्रिकल और डाइयेनसफलौन (diencephalon) के तृतीय वेन्ट्रिकल में सम्बन्ध बनाये रखने के लिए एक संकरी गुहा होती है जिसे **आइटर** (iter) कहते हैं। मध्य मस्तिष्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर X के आकार की सरचना होती है जिसे **ऑप्टिक-किएज़्मा**
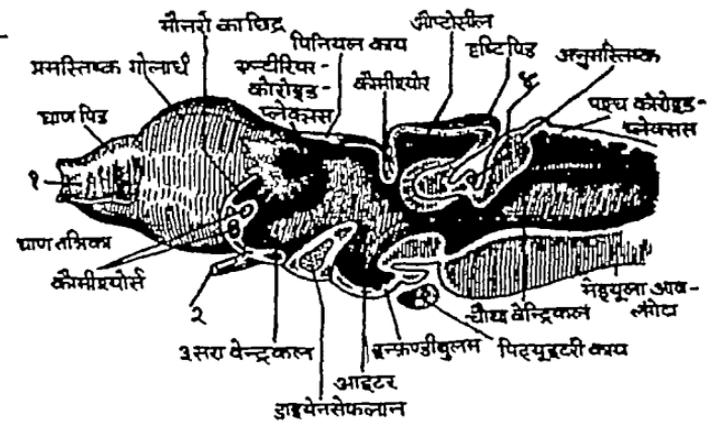
चित्र ९७—मेढक के मस्तिष्क का लौंगिट्यूडिनल सेक्शन

चित्र ९८—मध्य मस्तिष्क की अनुप्रस्थ काट

(optic-chaisma) कहते हैं। दाहिनी ओर की दृष्टि तंत्रिका (optic nerve) के बाईं ओर तथा बाईं ओर की दृष्टि तंत्रिका के दाहिनी ओर जाने से यह रचना बन जाती है।

(इ) अग्र मस्तिष्क (fore brain)—ऑप्टिक लोब्स के आगे अग्र मस्तिष्क होता है जिसमें डाइयेनसेफलोन (diencephalon), सेरिब्रम (cerebrum) या प्रमस्तिष्क और घ्राण पिंड (olfactory lobes) होते हैं।

दृष्टि पिण्डको के आगे डाइयेनसेफलोन (diencephalon) होता है जो मस्तिष्क के पृष्ठ दृश्य में आयताकार दिखाई देता है। इसकी मोटी पार्श्वभित्तियों को ऑप्टिक थैलमाई (optic thalami) कहते हैं। इनके बीच में सँकरी गुहा होती है जिसे तृतीय वेन्ट्रिकल (third ventricle) या डाओसील (diocoel) कहते हैं। इसी के पृष्ठभाग से एक डंठल के समान रचना निकलती है जिसे पीनियल स्टॉक (pineal stalk) कहते हैं। इसके सिरे के निकट एक गोल घुंडी होती है जिसे पीनियल बॉडी (pineal body) कहते हैं। यह खोपडी तथा त्वचा के बीच मिलता है। इसे तृतीय-नेत्र का अवशेष मात्र मानते हैं। इसके आगे एन्टीरियर कोराएड प्लेक्सस (anterior choroid plexus) होता है।
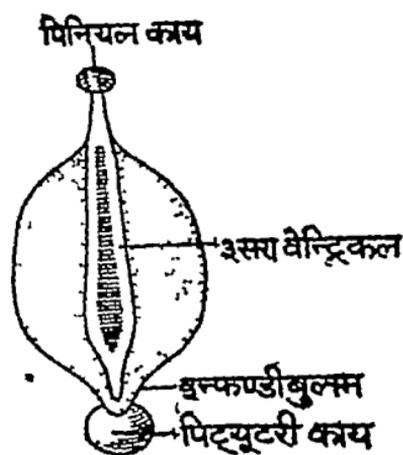
चित्र ९९—डाइयेनसेफलोन की अनुप्रस्थ काट

डाइयेनसेफलोन की प्रतिपृष्ठ सतह से एक कीप के आकार की रचना निकलती है जिसे इन्फण्डीबुलम (infundibulum) कहते हैं। यह ऑप्टिक-किएज्मा के ठीक पीछे स्थित होता है। इसके पास एक गोल पिण्ड होता है जिसे पिट्यूइटरी-बॉडी (pituitary body) कहते हैं। यह एक अन्तःस्रावी ग्रन्थि (endocrine gland) है। डाइयेनसेफलोन के आगे दो सेरिब्रल गोलार्ध (cerebral hemisphere) होते हैं। प्रत्येक सेरीब्रल हेमीस्फीयर अंडाकार होता है। दोनों के बीच एक छिछली-सी दरार होती है। प्रत्येक सेरिब्रल गोलार्ध की गुहा को लेट्रल-वेन्ट्रिकल (lateral ventricle) या प्रथम तथा द्वितीय वेन्ट्रिकल कहते हैं। प्रत्येक लेट्रल वेन्ट्रिकल आगे की ओर घ्राण-गुहा (olfactory ventricle) से मिला रहता है किन्तु पीछे दोनों वेन्ट्रिकल्स एक ही छोटे से छेद द्वारा तृतीय वेन्ट्रिकल से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस इन्टर-वेन्ट्रिकुलर छेद को मौनरो छिद्र (foramen of Monro) कहते हैं।

आगे की ओर प्रत्येक सेरिब्रल गोलार्ध अपनी ओर के **घ्राण पिंड** (olfactory lobe) से जुडा रहता है। दोनो घ्राण पिंड या औलफैक्ट्री लोब्स भीतरी तटो पर मिले रहते हैं। प्रत्येक घ्राण पिंड के अगले सिरे से **घ्राण तन्त्रिकाएँ** (olfactory nerves) निकलती है।

मस्तिष्क के विभिन्न भागों के कार्य

मस्तिष्क के विभिन्न भागो के कार्यों को समझने के लिए इन भागो को एक-एक कर के निकाल देते हैं और फिर उस निकाले हुए भाग के अभाव से मेढक या अन्य प्राणी के व्यवहार में क्या अन्तर हो जाता है, इसको देखते हैं।

घ्राण-पिंड (olfactory lobe) गंध ज्ञान के केन्द्र होते है। सेरिब्रल हेमीस्फीयर्स **बुद्धि** (intelligence) **स्मरण-शक्ति** तथा **स्वतोगति** (spontaneous movement) का केन्द्र होते है। हृदय-गति (heart beat), फेफडो की श्वसन-क्रिया तथा मुंह में डाले हुए भोजन को निगलने की क्रियाएँ यंत्र की भाँति होती रहती हैं किन्तु मेढक स्वयं अपनी इच्छानुसार कोई क्रिया करे ऐसा नही होता। जिस स्थिति में मेढक को बैठा दीजिये उसी प्रकार बैठा रहता है, भोजन मुंह में डाल दीजिये तो अवश्य निगल लेगा किन्तु स्वयं शिकार पकडने की चेष्टा नही कर सकता। यह मस्तिष्क के अन्य भागो के कार्यों पर भी नियंत्रण रखता है।
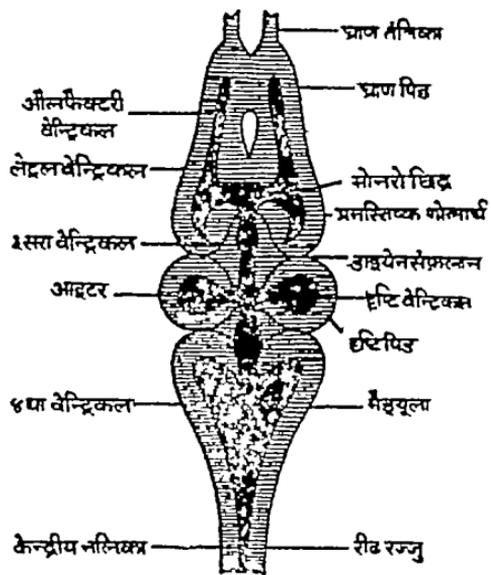
चित्र १००—मेढक के मस्तिष्क का हौरिजोन्टल सेक्शन

दृष्टि-पिंड (optic lobes) को अलग कर देने पर मेढक की स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (spinal nerves) द्वारा होने वाली प्रतिवर्ती-क्रियाओ (reflex actions) पर नियंत्रण नही होने पाता। कुछ वैज्ञानिको के अनुसार ये नेत्र-गोलक की पेशियो की गति पर भी नियंत्रण रखते हैं।

सेरिबलम (cerebellum) सेरिब्रम के आदेशानुसार कार्य करता है। इसका प्रमुख कार्य शरीर का संतुलन बनाये रखना है। मैड्यूला या अनुमस्तिष्क अनैच्छिक क्रियाओ का केन्द्र है। अपनी तन्त्रिकाओ द्वारा यह निग-

लना, सांस लेना, टर्र टर्र की आवाज पैदा करना, हृदय-गति, आहार-नाल के क्रमाकुंचन (peristalsis) पर नियंत्रण रखता है।

रीढ़-रज्जु या स्पाइनल कॉर्ड
(Spinal cord)

चित्र १०१—मेढक का केन्द्रीय-तन्त्रिका तन्त्र
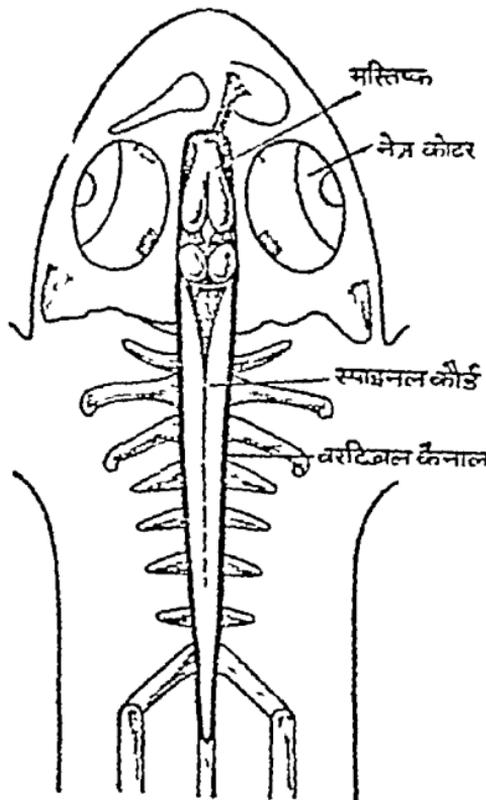
रीढ़ रज्जु खोपड़ी के फोरामेन मैगनम या महारंध्र में आरम्भ होकर तंत्रिका नाल (neural canal) में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला होता है। यह एक बेलनाकार संरचना है। इसकी पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ सतह कुछ चपटी होती हैं और इसका व्यास एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सा नहीं होता बल्कि अगली और पिछली टांगों के बीच में अधिक फैला होता है। इसका पिछला सिरा, जो कि पुच्छ-दंड या युरोस्टाइल में रहता है बहुत पतला होता है। इसे अवसान सूत्र या फाइलम टर्मिनेल (filum terminale) कहते हैं।
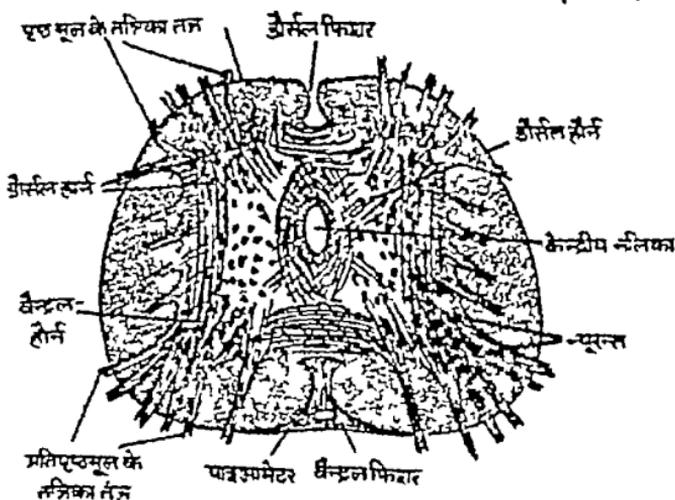
चित्र १०२—मेढक के रीढ़-रज्जु की अनुप्रस्थ काट

रीढ-रज्जु के उस उभार को जो कि अगली टाँगो की सीध में होता है **बाहु-गंड** (brachial swelling) और जो **फाइलम टर्मिनेल** के ठीक आगे होता है उसे **नितम्ब-गड** (sciatic swelling) कहते हैं। रीढ़-रज्जु की पृष्ठ सतह पर **पृष्ठ विदर** (dorsal fissure) और वैण्ट्रल या प्रतिपृष्ठ सतह पर **प्रतिपृष्ठ विदर** होते है। प्रतिपृष्ठ विदर अधिक गहरा और स्पष्ट होता है। मस्तिष्क की तरह रीढ-रज्जु भी रक्षक **मैनेनजीज** या झिल्लियो से ढँका रहता है।

रीढ-रज्जु के ट्रासवर्स सेक्शन को (चित्र९९) देखने से पता चलता है कि उसके वीच वीच में एक सँकरी **केन्द्रीय-नाल** या **सेण्ट्रल कैनाल** होती है जो मस्तिष्क के चतुर्थ वेन्ट्रिकल से मिली रहती है। इसमें **सेरिब्रोस्पाइनल** फ्लूड भरी रहती है। इस नाल की वाहरी सतह पर सीलियेटेड एपिथीलियम होता है। इसके चारो ओर **ग्रै-मैटर** (grey matter) होता है जो ट्रासवर्स सेक्शन में H के आकार का
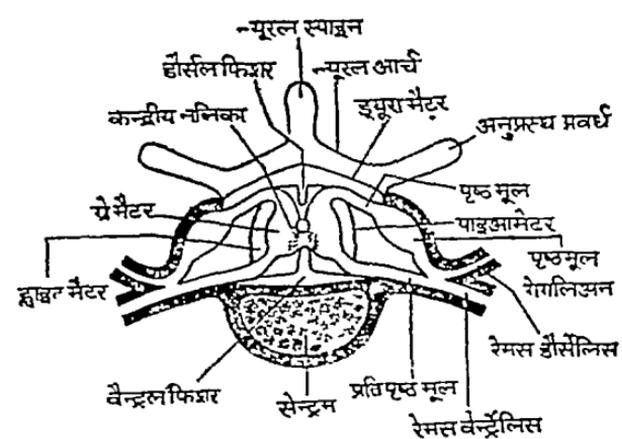
चित्र १०३—रीढ-रज्जु से तन्त्रिकाओ का उद्गम

दीखता है। इसके पृष्ठ और प्रतिपृष्ठ भागो में प्रत्येक ओर एक-एक उभार-सा होता है। ऊपर वाले उभारो को **डौर्सल हौर्न** (dorsal horn) और नीचे वालो को **वैण्ट्रल हौर्न** (ventral horn) कहते हैं। ग्रै-मैटर में **मोटर न्यूरन्स** (motor neurons) या **तन्त्रिका कोणिकाएँ, एडजस्टर न्यूरन्स** (adjustor neurons), साइनैप्स (synapse) तथा नॉन-मैड्युलेटेड तन्त्रिका तन्तु मिलते हैं। इसीलिए ग्रै-मैटर का रग भरा दिखाई देता है।

ग्रै-मैटर के चारो ओर **वाइट मैटर** या **श्वेत द्रव्य** मिलता है। इसमें मैड्यूलेटेड तन्त्रिका तन्तु (medullated nerve fibres) होते हैं। इस प्रकार के तन्तुओ की **मेडुलरी शीथ** (medullary sheath) सफेद चर्वी की वनी होती है जिससे इस भाग का रग श्वेत होता है। इसी लिए इसे **वाइट मैटर** (white matter) कहते हैं।

स्पाइन कौर्ड के दो मुख्य काम हैं—एक तो मस्तिष्क से आने-जानेवाले उद्दीपन (stimuli) के लिए रास्ता वनाता है तथा स्पाइनल रिफ्लेक्स-क्रियाओ का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

(ख) पेरीफरल तन्त्रिका तन्त्र
(Peripheral Nervous System)

इसमें कपाल तन्त्रिकाएँ (cranial nerves) तथा रीढ-तन्त्रिकाएँ (spinal nerves) होती हैं। कपाल तन्त्रिकाओ का सम्बन्ध मस्तिष्क के विभिन्न भागो से और रीढ-तन्त्रिकाओ का सम्बन्ध रीढ-रज्जु या स्पाइनल कॉर्ड से होता है।

(१) कपाल तन्त्रिकाएँ

ये मस्तिष्क के विभिन्न भागो से निकलती हैं। आमतौर पर इन तन्त्रिकाओ के तन्तु ज्ञानेन्द्रियो (sense organs) और सिर, गर्दन और आतरगो (viscera) में फैले होते हैं। ये सभी मेड्युलेटेड (medullated) होती हैं। कार्य के अनुसार कपाल तन्त्रिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं —

(अ) **सवेदक या सेन्सरी** (sensory)—वे तन्त्रिकाएँ जो ज्ञानेन्द्रियो से जुडी रहती हैं सवेदक कहलाती हैं। ये उद्दीपन मस्तिष्क में पहुँचाती हैं। मेढक की पहली, दूसरी और आठवीं तन्त्रिकाएँ इसी प्रकार की होती हैं।
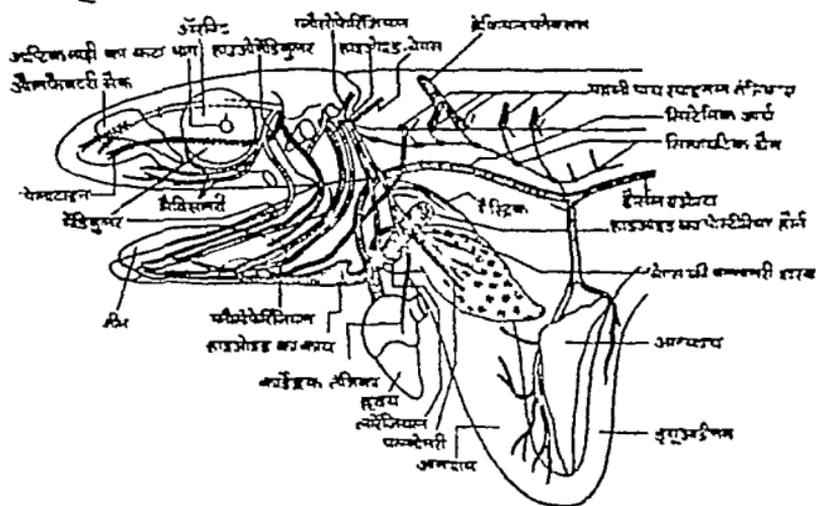
चित्र १०४—मेढक की कपाल तन्त्रिकाएँ

(आ) **प्रेरक या मोटर** (motor)—इनके तन्तु मस्तिष्क से उद्दीपन लेकर नेत्र-गोलक की पेशियो को पहुँचाते हैं। तीसरी, चौथी तथा छठी तन्त्रिकाएँ इसी प्रकार की होती हैं।

(इ) **मिश्रित** (mixed)—इनमें सेन्सरी तथा मोटर दोनो प्रकार के तन्तु मिलते हैं। ५, ७, ९ और १०वी तन्त्रिकाएँ इसी प्रकार की होती हैं। नीचे दिये टेबिल में कपाल तन्त्रिकाओ का उद्गम (origin), स्वभाव (nature) तथा वितरण दिया है।

मेढक की कपाल-तन्त्रिकाएं

क्रम	नाम तथा स्वभाव	उद्गम	वितरण
१	ऑलफैक्टरी तन्त्रिका (सेन्सर)	घ्राण पिट	घ्राण झिल्ली (olfactory epithelium)
२	ऑप्टिक तन्त्रिका (सेन्सरी)	दृष्टि पिंड	ऑप्टिक किएज्मा बनाने के बाद रैटिना में
३	ऑक्यूलोमोटर (मोटर)	कूगा नेरेब्री	नेत्र गोलक को घुमानेवाली चार पेशियो में
४	ट्रॉक्लियर (trochlear) (मोटर)	ऑप्टिक लोन्स और सेरिबलम के बीच से	नेत्र गोलक की एक पेशी को
५	ट्राइजेमिनल (trigeminal)—मिश्रित	मेड्युला मे	
	(अ) ऑफथैल्मिक (सवेदक)		तुंड (snout) के पास-पडोस की त्वचा में
	(आ) मैक्सिलेरिस (सवेदक)		ऊपरी जबडे, होठ, निचली पलक, तथा ऊपरी जबडे की त्वचा में
	(इ) मॅडिबुलेरिस (मिश्रित)		निचले जबडे की त्वचा, जीभ की पेशियाँ, निचले होठ में।
६	एब्ड्युसेन्स (प्रेरक)	मेड्युला की प्रतिपृष्ठ सतह से	नेत्र गोलक की पेशियो तथा निक्टिटेटिंग झिल्ली में।
७	फेशियल (मिश्रित)	५वी कपाल तन्त्रिका के पीछे मेड्युला से।	
	(अ) पैलाटाइन	"	मुख गुहा की छत में।
	(आ) हाइओमॅडिबुलेरिस		निचले जबडे की त्वचा तथा जीभ की पेशियो में।
८	ऑडिटरी (सवेदक)	मेड्युला की पार्श्व भित्तियो से फेशियल के पीछे	आन्तरिक कान में।
९	ग्लॉसोफैरिन्जियल (मिश्रित)	मेड्युला से	जीभ और फैरिक्स में
१०	वेगस तन्त्रिका (मिश्रित)	९वी के साथ	फैरिक्स, फेफडे, हृदय, आमाशय में

५वी और ७वी कपाल तन्त्रिकाओ के आधार पर कपाल के बाहर निकलने के पहले एक गैंगलियन (ganglion) मिलता है। इसमें न्यूरन्स (neurons) का एक समूह होता है। इसे गैसेरियन गैंगलियन (Gasserian ganglion) कहते हैं। ठीक इसी प्रकार ९वीं और १०वीं कपाल तन्त्रिकाओं के आधार (base) पर वेगस गैंगलियन (Vagus ganglion) होता है। इन गुच्छकों में ये तन्त्रिकाएं मिल जाती हैं और फिर अलग हो जाती हैं।

(२) रीढ या स्पाइनल तन्त्रिकाएं (Spinal nerves)

प्रत्येक रीढ तन्त्रिका पृष्ठ (dorsal) और प्रतिपृष्ठ मूल (ventral root) द्वारा रीढ-रज्जु से जुडी रहती है। पृष्ठ मूल में केवल **अभिवाही** (afferent) या सवेदक और प्रतिपृष्ठ मूल मे केवल **अपवाही** (efferent) तन्त्रिका तन्तु होते हैं। ये दोनो मूल इन्टरवरटिब्रल छेदो के बाहर निकलने के पूर्व ही जुड जाते हैं। पृष्ठ मूल में एक फूला हुआ भाग होता है जिसे **पृष्ठ मूल-गैंगलियन** (dorsal root ganglion) कहते है। इनमें **एक ध्रुवीय तन्त्रिका कोणिकाएं** (unipolar neurons) मिलती है। पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ मूलो के परस्पर मिलने के बाद तीन शाखाएं निकलती हैं। ऊपर पेशियो में जानेवाली शाखा को **पृष्ठशाखा** (dorsal ramus) नीचे वाली को **प्रतिपृष्ठ शाखा** (ventral ramus) और उस छोटी सी शाखा को **सिम्पाथेटिक** गुच्छक से मिली रहती है **योजि तन्त्रिका पूल** (ramus communicans) कहते हैं। इन्टरवरटिब्रल छेदो के पास सफेद केलकेरियस **पेरीगैंगलिओनिक** (periganglionic) या **स्वमरडैम की ग्रन्थियां** (glands of Sammerdam) होती हैं। इनका काय ठीक से नही मालूम है।

किसी भी जन्तु में **रीढ़ तन्त्रिकाओं** की सख्या वरटिब्रो की सख्या के अनुसार होती है। मेढक में इनके १० जोडे होते हैं किन्तु भारतीय मेढक **राना टिग्रीना** में आमतौर पर रीढ तन्त्रिकाओ के नौ जोडे होते है।

(१) **प्रथम** या **हाइपोग्लोसल** (hypoglossal)—यह पहली और दूसरी वरटिब्रो के बीच स्थित इन्टरवरटिब्रल छेद में होकर निकलती है और मुखगुहा मे जीभ की पेशियो में जाती है।

(२) **दूसरी तथा तीसरी तन्त्रिकाएं**—ये दोनो निकलती तो अलग अलग हैं किन्तु कुछ दूर अगली टांगो की सीध में जाकर फिर मिल जाती हैं और इस प्रकार **ब्रेकियल प्लेक्सस** (brachial plexus) बनाती हैं। इस जालक या प्लेकसस के आगे ये फिर अलग हो जाती हैं। इसकी वह शाखा जो अगली टांगो की पेशियो को जाती है **बाहु तन्त्रिका** (brachial nerve) कहलाती है।

(३) **चौथी, पाँचवीं और छठी रीढ तन्त्रिकाएँ**—ये इन्टरवरटिब्रल छेदो के वाहर निकलने के वाद कुछ दूर पीछे जाकर पृष्ठ भाग की पेशियो मे चली जाती हैं।

(४) **७वीं, ८वीं और ९वीं रीढ तन्त्रिकाएँ**—ये तन्त्रिकाएँ अपेक्षाकृत मोटी होती हैं और देहगुहा की पृष्ठ त्वचा से सटी हुई पीछे जाती हैं। इनकी शाखाओ के मिलने से **साइएटिक प्लेक्सस** (sciatic plexus) वन जाता है ८वी और ९वी तन्त्रिका मिलकर साइऐटिक तन्त्रिका का निर्माण करती हैं। इसकी शाखाएँ पिछली टाँगो की पेशियो को जाती हैं। प्लेक्सस की कुछ शाखाएँ वडी आँत, ओवीडक्ट, मूत्राशय, क्लोएका में जाती हैं।

(५) **१०वीं रीढ़ तन्त्रिका**—राना टिग्रीना में यह आमतौर पर मिलती ही नही। अन्य मेढको में यह यूरोस्टाइल की पार्श्व भित्ति में छेद करके वाहर निकलती है और मूत्राशय तथा क्लोएका को जाती है।

सिम्पाथेटिक नर्वस सिस्टम

(Sympathetic Nervous system)

वरटिब्रेट्स में यह तन्त्र ऐसे अनेक अगो के कार्यो पर नियन्त्रण रखता है जिनका कार्य जन्तुओ की इच्छा के अधीन नही होता। इसकी क्रियाएँ स्वत हुआ करती हैं और इनके कार्य का उनको पता भी नही चलता। इस तन्त्र के तन्तु ग्रन्थियो, आहार-नाल के विभिन्न भागो तथा अरेखित पेशियों में फैले होते हैं। इस प्रकार इन तन्त्रो के ततु जीवन की सामान्य दैनिक क्रियाओ पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं जिससे केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र को उच्चतर क्रियाओ को करने का समय मिल सके।

मेढक में वरटिब्रल कॉलम के दोनो ओर **गुच्छिकाओ** या **गैंगलिआ** (ganglia) की एक एक लडी (chain) होती है। प्रत्येक लडी या शृखला में छोटे-छोटे भूरे या काले रग के ९-१० गेंगलिआ होते हैं। प्रत्येक गुच्छिका या गेंगलिअन (ganglion) अपने पडोसी रीढ तन्त्रिका से **योजि तन्त्रिका शाखा** (ramus communicans) द्वारा जुडा रहता है। स्पाइनल कॉर्ड से अपवाही न्यूरन्स के एक्सोन्स (axons) प्रतिपृष्ठ मूल में होते हुए योजि तन्त्रिका शाखा द्वारा सिम्पाथेटिक गेंगलिअन में पहुँचते है और सिम्पाथेटिक न्यूरन के डेंड्रोन्स (dendrons) के साथ साइनैप्स (synapses) वनाते हैं। सिम्पाथेटिक न्यूरोन्स के एक्सान्स मिलकर सिम्पाथेटिक तन्त्रिकाएँ वनाते हैं।

मेढक में दोनो **सिम्पाथेटिक चेन्स** (Sympathetic chains) के पिछले भाग पृष्ठ महाधमनी के इधर-उधर मिलते हैं। इनके अगले हिस्से सिस्टेमिक धमनियो के वाहरी किनारो से चिपके होते हैं। प्रत्येक चेन

सिस्टेमिक धमनियो के जोड के आगे **पाँच** और पीछे तीन या चार **गुच्छिकाएँ** (ganglia) होती हैं। प्रत्येक गुच्छिका से सिम्पाथेटिक तन्त्रिकाएँ निकलती हैं। तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठी गुच्छिकाओ से निकलनेवाली तन्त्रिकाएँ मिलकर **सोलर प्लेक्सस या जालक** (solar plexus) बनाती है जो उदरान्त्र धमनी (coeliaco-mesenteric artery) के इधर-उधर होते हैं। जिन-जिन अगो को उदरान्त्र धमनी की शाखाएँ रुधिर पहुँचाती हैं उन सभी अगो में सोलर जालक की तन्त्रिकाएँ भी जाती हैं। इसी प्रकार प्रथम सिम्पाथेटिक गुच्छिका में से जो तन्त्रिका तन्तु निकलते हैं वे हृदय पर **कार्डिएक जालक** (cardiac plexus) बनाते हैं। यह जालक दोनो अलिन्द और वेन्ट्रिकल में खुलनेवाली शिराओ और धमनियो के चारो ओर स्थित होता है। इसके आगे प्रत्येक ओर की सिम्पाथेटिक चेन श्रवण कैपस्यूल में होती हुई खोपडी में घुसती है और अन्त में **गैसेरियन गुच्छिका** (Gasserian ganglion) से मिल जाती है। पीछे की ओर प्रत्येक सिम्पाथेटिक चेन ९वीं रीढ-तन्त्रिका की एक शाखा से मिलकर समाप्त हो जाती है।

तंत्रिका की रचना
(Structure of a nerve)

तन्त्रिका का रग सफेद होता है और देखने में वह मोटे डोरे-सी लगती है। काटने पर वह ठोस होती है। प्रत्येक तन्त्रिका वास्तव में तन्त्रिका-तन्तुओ का एक समूह होती है। ये तन्तु अनेक **बडल्स** (bundles) में मिलते हैं। प्रत्येक बडल को **फ्यूनीकुलस** (funiculus) कहते हैं। इसके चारो ओर सयोजी ऊतक का एक आवरण होता है जिसे **पेरीन्यूरियम** (perineurium) कहते हैं। फ्यूनीकुलाई के बीच बीच मिलनेवाले सयोजी ऊतक को **एण्डोन्यूरियम** (endoneurium) कहते हैं। सभी फ्यूनीकुलाई के चारो ओर सयोजी ऊतक का मोटा आवरण होता है जिसे **एपीन्यूरियम** (epineurium) कहते हैं।
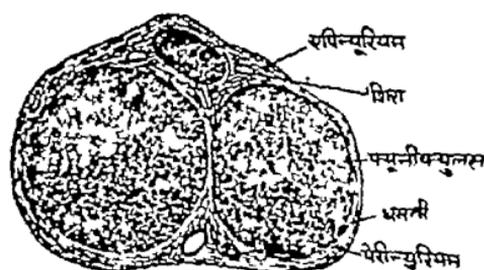
चित्र १०५—तन्त्रिका की अनुप्रस्थ काट

प्रतिवर्ती क्रियाएँ या रिफलेक्स ऐक्सन्स
(Reflex Actions)

प्राणियो में ऐच्छिक तथा अनैच्छिक (involuntary) क्रियाएँ हैं। ऐच्छिक कार्य मस्तिष्क के आज्ञानुसार होते हैं। अनैच्छिक क्रियाओ

में सेरिब्रम का कोई हाथ नही होता। उदाहरण के लिए एक ऐसा मेढक लीजिये जिसका मस्तिष्क नष्ट कर दिया गया हो। ऐसे मेढक को धागे से लटका दो और फिर उसकी अगली टाँगो में हाइड्रोक्लोरिक एसिड या गरम लोहा छुआओ। छुआते ही वह अपनी टाँग को खीच लेता है। जितनी बार तुम गरम लोहा या तेजाब छुआओगे उतनी ही बार मस्तिष्कहीन मेढक में एक ही-सी प्रतिचेष्टा होती है। **ऐसी सभी** क्रियाएँ जो **अचेतन** होती हैं **प्रतिवर्त्ती क्रियाएँ कहलाती हैं।** एक ही प्रकार के सवेदन द्वारा किसी अग में सदैव एक ही सी प्रतिवर्त्ती क्रिया होती है।

इस प्रकार की क्रिया निम्न प्रकार की होती है। तुम पढ चुके हो कि प्रत्येक रीढ-तन्त्रिका रीढ-रज्जु से दो मूलो (roots) द्वारा जुडी रहती है। पृष्ठ-मूल में एक गुच्छिका (ganglion) भी होती है। इस गुच्छिका में अनेक
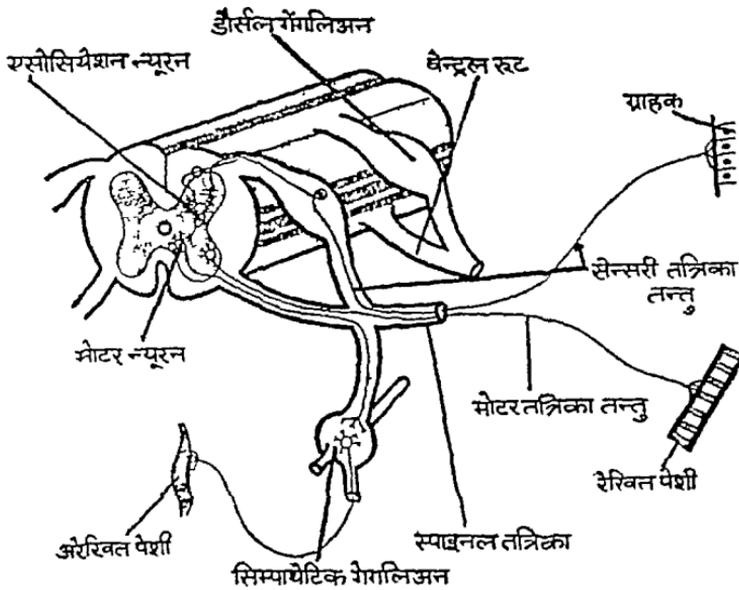
चित्र १०६—रिफ्लेक्स आर्क

एक ध्रुवीय न्यूरन्स होते हैं जिनके एक्सौन रीढ-रज्जु की ओर डेन्ड्रीन्स (dendrons) रीढ-रज्जु से दूर फैले होते हैं। प्रतिपृष्ठ मूल में केन्द्र-त्यागी या मोटर तन्तु होते हैं और पृष्ठमूल में केन्द्रगामी या सेन्सरी तन्तु होते हैं।

गर्म लोहा या एसिड छुआने पर मस्तिष्कहीन (decerebrated) मेढक के अपनी टाँग खींच लेने का उदाहरण लो। इस प्रतिवर्त्ती क्रिया में टाँग की त्वचा **ग्राहक अंग** (receptor) का कार्य करती है। त्वचा के सवेदक तन्तु ताप-उद्दीपन को लेकर रीढ तन्त्रिका की पृष्ठमूल में होते हुए रीढ-रज्जु में पहुँचते हैं। सवेदक तन्तुओ की तन्त्रिका कोणिकायें पृष्ठ मूल की गुच्छिका

में स्थित होती हैं। रीढ़-रज्जु के ग्रे-मैटर (grey matter) में घुसने पर संवेदक तन्तु कई शाखाओं में विभाजित हो जाते हैं। संवेदक कोशिका के एक्संन एडजस्टर न्यूरन्स के डन्ड्राइट्स के साथ साइनैप्स बनाते हैं। एडजस्टर न्यूरन तन्त्रिका संवेग (nervous impulse) को उचित मोटर न्यूरन में पहुँचा देते हैं। प्रेरक या मोटर न्यूरन के एक्सोन्स प्रतिपृष्ठ मूल में होते हुए साइएटिक तन्त्रिका द्वारा मेढक की पिछली टाँग की पेशियों में पहुँच जाते हैं। इस संवेग के फलस्वरूप पेशियो का कुंचन होता है जिससे टाँग सिकुड़ जाती है।

प्रश्न

१—मेढक के मस्तिष्क की संरचना का सचित्र वर्णन करो। प्रत्येक भाग का कार्य समझाओ।

२—मेढक के रीढ़-रज्जु के अनुप्रस्थ सेक्शन का नामांकित चित्र बनाओ और उसकी संरचना तथा कार्य समझाओ।

३—कपाल तन्त्रिकाओ में कौन-कौन सी संवेदक या सेन्सरी होती है और ये कौन-कौन से ग्राहक-अंगो से जुड़ी रहती हैं ?

४—निम्नलिखित पर सचित्र टिप्पणियाँ लिखो —

मौनरो-छिद्र, प्रतिवर्त्ती क्रिया, सेरिब्रम, ग्रे-मैटर, सेरिबलम तथा एन्टीरियर कोराएड प्लेक्सस।

५—मेढक में सिम्पाथेटिक तन्त्रिका तन्त्र की स्थिति, रचना तथा कार्यों को विस्तारपूर्वक समझाओ।

६—मेढक में किसी स्पाइनल तन्त्रिका की संरचना समझाओ। चित्र की सहायता से उदाहरणसहित प्रतिवर्त्ती क्रिया की विधि समझाओ।

———

अध्याय १२

ज्ञानेन्द्रियाँ

अन्य वरटिब्रेट्स की तरह मेढक में भी पाँच प्रमुख ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं जो वाहरी उद्दीपनो को ग्रहण करके मस्तिष्क में पहुँचाती हैं। प्रमुख ज्ञानेन्द्रियाँ निम्नलिखित हैं —

(१) स्पर्शेन्द्रिय (sense of touch)—त्वचा
(२) घ्राणेन्द्रिय (sense of smell)—घ्राण कोष
(३) स्वादेन्द्रिय (sense of taste)—जीभ
(४) श्रवणेन्द्रिय (sense of hearing)—कान
(५) दर्शनेन्द्रिय (sense of sight)—नेत्र

(१) स्पर्शेन्द्रिय (Sense of touch)

त्वचा एक सफल स्पर्शेन्द्रिय का कार्य करती है। इसमें सवेदक तत्रिकाओ की अनेक शाखाएँ मिलती हैं। इन्ही के द्वारा **छूने का ज्ञान, ठंडक, गर्मी, नमी, प्रकाश की तेजी, पीडा, दवाव** इत्यादि का ज्ञान होता है। मेढक की त्वचा में सम्पर्क ग्राहक-अगो (contact receptors) की सख्या अपेक्षाकृत कम होती है। ये सवेदक कोशिकाओ के समूह के रूप में मिलते हैं और आमतौर पर एपिडर्मल सेल्स से ढके रहते हैं।

(२) घ्राणेन्द्रिय (*Sense of smell*)

मेढक की घ्राणेन्द्रियाँ ओलफैक्टरी कैपस्यूल्स में होती हैं। इनका अधिकाश भाग कार्टिलेज का वना होता है। ये नासा-रन्ध्रो (nares) द्वारा वाहर तथा मुखगुहा के अगले भाग से सम्बन्ध वनाये रखते हैं। प्रत्येक कैप्स्यूल की सतह स्तभी (columnar) एपियीलियम से ढँकी होती है। इसमें जगह-जगह घ्राण-कोशिकाओ के समूह होते हैं। आकार में ये सेल्स द्विध्रुवीय (bipolar) होती है। इनके स्वतत्र भाग में अनेक घ्राण-रोम (sensory hairs) होते हैं। इनके निचले भाग से घ्राण तत्रिका के तन्तु जुडे होते हैं। स्तनधारियो की अपेक्षा मेढक में घ्राण-कोशिकाओ की सख्या कम होती है जिससे मेढक में सूंघने की शक्ति भी अपेक्षाकृत वहुत कम होती है। यह चलते-फिरते या उडते कीडो को पकडता है। इस प्रकार इसे घ्राणेन्द्रियो की अपेक्षा दृष्टि का कही अधिक सहारा लेना पडता है।

औलफैक्टरी कैपस्यूल की संवेदक कोशिकाओं के क्रियाशील होने के लिए उनका नम बनी रहना आवश्यक होता है। ये सेल्स तब तक उत्तेजित नहीं होतीं जब तक किसी वस्तु के कण तरल पदार्थ में घुल नहीं जाते। घ्राण रोम रासायनिक उद्दीपन ग्रहण करके घ्राण तन्त्रिका द्वारा मस्तिष्क में पहुँचाते हैं और तभी मेढक को गंध-ज्ञान होता है।

(३) जीभ या स्वादेन्द्रिय (Sense of taste)

वरटिब्रेट्स में स्वाद का पता जीभ में स्थित **स्वाद-कोशिकालय** (taste buds) द्वारा होता है। ये जीभ के अलावा वोमरिन दाँतों के आस-पास की श्लेष्मिक झिल्ली में भी मिलते हैं। प्रत्येक टेस्ट-बड या **स्वाद-कोशिकालय** में दो प्रकार की सेल्स होती हैं—(अ) **संवेदक कोशिकाएँ** तथा (आ) **आधार कोशिकाएँ** (supporting cells)। संवेदक कोशिकायें लम्बी तथा तर्कुवत (spindle shaped) होती हैं। इनके स्वतन्त्र सिरों पर **फ्लैजिला** (flagella) होती हैं और निचले भाग से **ग्लॉसोफेरेंजियल तन्त्रिका और ७वीं कपाल तन्त्रिका की पैलाटिन** (palatine) शाखा के तन्तु जुड़े रहते हैं।

वास्तव में स्वाद का भी तभी पता चलता है जब कोई वस्तु घुलनशील अवस्था में होती है। घुली वस्तु के कण संवेदक कोशिकाओं के फ्लैजिला से टकराते हैं और इस प्रकार जो उद्दीपन उत्पन्न होता है उसकी सूचना तन्त्रिका तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती हैं और तभी स्वाद का पता चलता है। स्वाद की ज्ञानेन्द्रियाँ भी मेढक में कुंठित होती हैं। इनका कारण स्पष्ट है। मेढक शिकार को निगल जाता है। मुखगुहा में टिकने तथा दाँतों द्वारा कुचले जाने पर ही स्वाद का पता चलता है।

(४) नेत्र (Eyes)

मेढक के नेत्र सिर के दोनों तरफ नेत्र-कोटरों में स्थित होते हैं। नेत्र कोटर में नेत्र-गोलक आसानी से घुमाया जा सकता है। नेत्र-कोटर की भीतरी सतह पर हड्डी न होने से ये मुख-गुहा की ऊपरी सतह (roof) पर अंडाकार उभारों के रूप में दिखाई देते हैं।

बाहर से देखने में नेत्र-गोलक का थोड़ा-सा भाग दिखाई पड़ता है। **ऊपरी और निचली पलकें** लगभग अचल होती हैं। निचली पलक से जुड़ी एक पारदर्शी झिल्ली मिलती है जिसे **निक्टीटेटिंग झिल्ली** कहते हैं। इसका मुख्य कार्य नेत्रों की रक्षा करना है। पलकों की त्वचा ही नेत्र की बाहरी सतह पर पारदर्शी झिल्ली बनाती है जिसे **नेत्र-श्लेष्मिका या कनजंक्टाइवा** (conjunctiva) कहते हैं। मेढक के नेत्र पलकों द्वारा ढके नहीं जा सकते। बन्द करने
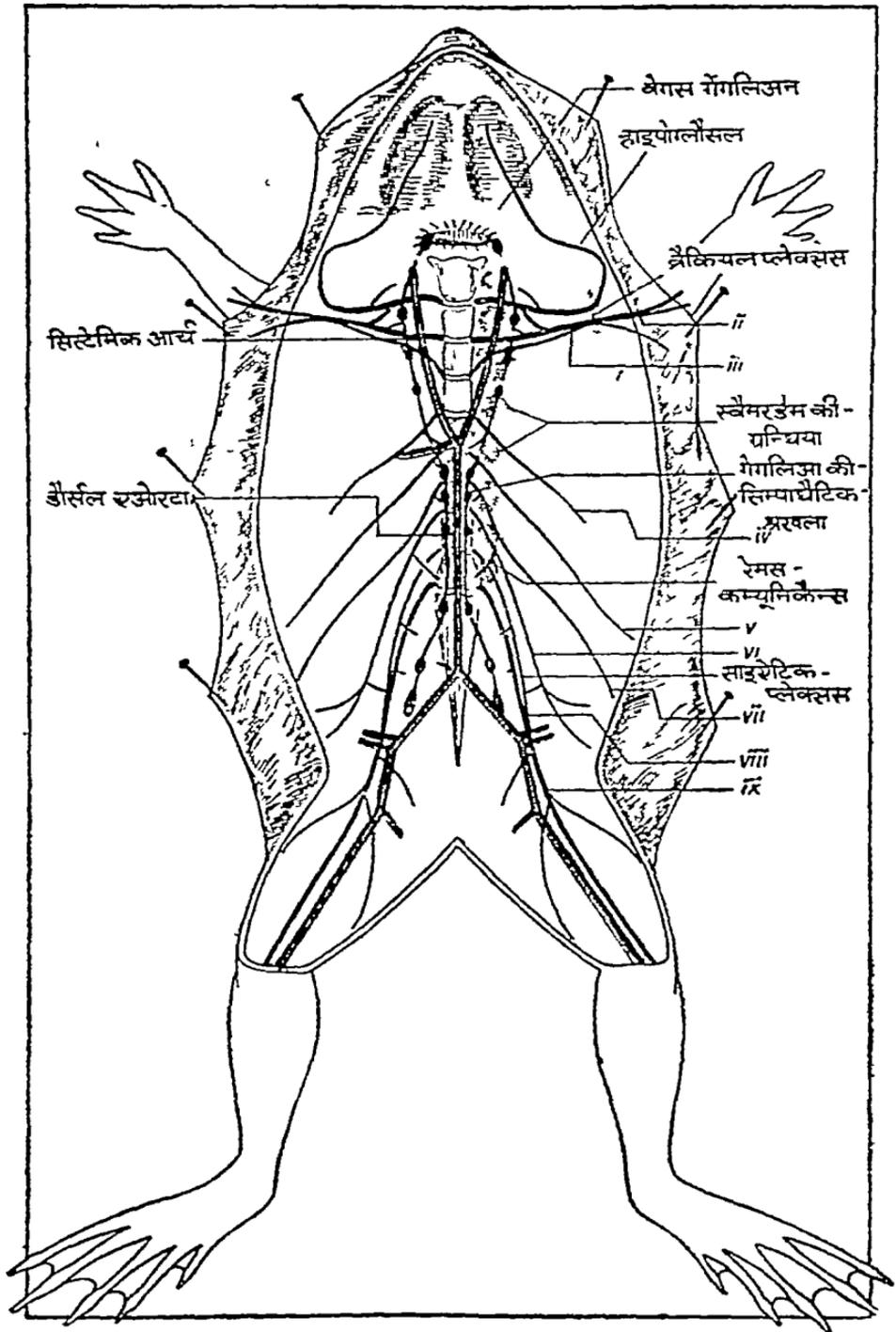
चित्र १०७—मेंढक मे स्पाइनल तंत्रिकाएं तथा सिम्पायेटिक तंत्रिका तंत्र

के लिए नेत्र-गोलक को नेत्र-कोटर में **रिट्रैक्टर बलबाई** (retractor bulbi) नामक पेशियों के कुचन द्वारा खींचना पड़ता है। ऊपर उठाने में
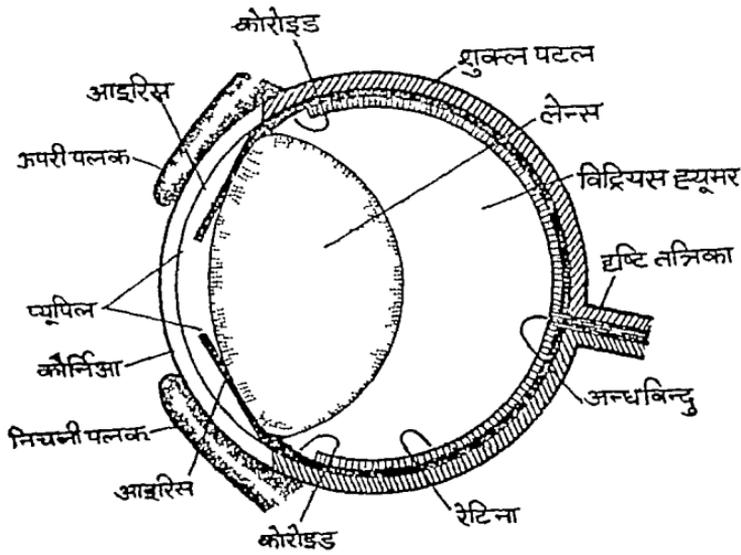
चित्र १०८—मेढक के नेत्र की सरचना

लिवेटर बलबाई (levator bulbi) पेशियाँ सहायता देती हैं। निचली पलक में **उपाश्रु-ग्रन्थियाँ** (Harderian glands) होती हैं जिनका स्राव निक्टीटेटिंग झिल्ली को नम बनाये रखता है।

नेत्र गोलक की भीतरी सतह से जुडी ६ पेशियाँ होती हैं। इनमें कपाल तन्त्रिकाओं के तन्तु होते हैं जो इनके कुचन पर नियत्रण रखते हैं। इनमें से चार **सरल पेशियाँ** (recti muscles) और दो **तिर्यक** या **तिरछी पेशियाँ** (oblique muscles) होती हैं। इनमें से चारों सरल पेशियाँ नेत्र-गोलक की मध्य वृत्त से जुडी रहती हैं। पृष्ठ भाग
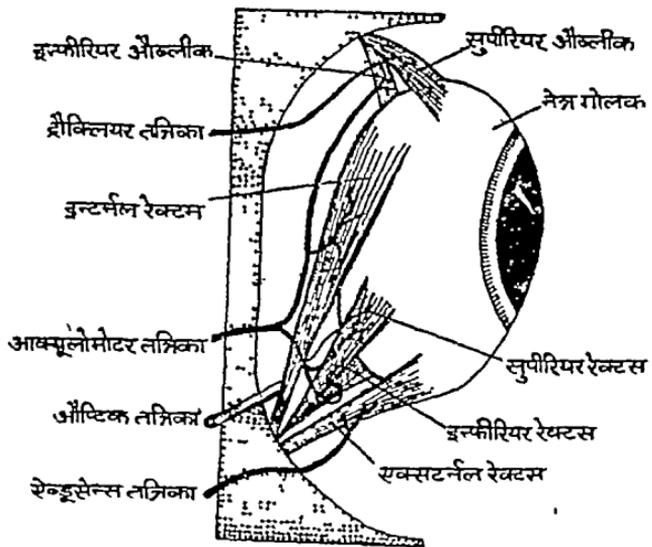
चित्र १०९—नेत्र गोलक से जुडी हुई पेशियाँ तथा तन्त्रिकाएँ

में स्थित पेशी को **सुपीरियर रैक्टस** (superior rectus), नीचेवाली को **इन्फीरियर रैक्टस** (inferior rectus), आगेवाली को **एन्टीरियर रैक्टस** (anterior rectus) और पीछेवाली को **पोस्टीरियर रैक्टस** (posterior rectus) पेशियाँ कहते हैं। ये चारो पेशियाँ नेत्र-गोलक को क्रमश ऊपर, नीचे, आगे और पीछे आवश्यकतानुसार घुमा सकती हैं। शेष दो पेशियो में से **सुपीरियर ऑब्लीक** (superior oblique) पेशी नेत्र गोलक की दृष्टि-अक्ष (optical axis) के चारो ओर इस प्रकार घुमा सकती है कि नेत्र का ऊपरी किनारा ऊपर उठाया जा सकता है। **इन्फीरियर ऑब्लीक** (inferior oblique) इसके ठीक विपरीत क्रिया करती है।

प्रत्येक नेत्र-गोलक की दीवार तीन सकेन्द्रित स्तरो या पर्त्तो की बनी होती है—

(अ) **स्क्लीरोटिक या शुक्ल पटल** (sclerotic)
(आ) **कोरोइड** (choroid)
(इ) **रैटिना या रूपाधार** (retina)

नेत्र गोलक के सबसे बाहरी स्तर को **शुक्ल-पटल** (sclerotic) कहते हैं। इसका २/३ भाग जो कि नेत्र-कोटर के भीतर रहता है उपास्थि या कार्टिलेज का बना होता है। इसका अगला भाग जो कि बाहर से दीखता है पारदर्श होता है और थोडा-सा बाहर की ओर उभरा रहता है। इस भाग को **कौनिया** (cornea) कहते हैं। इसकी बाहरी सतह को **कनजकटाइवा** (conjunctiva) ढके रहती है।

बीच के स्तर को **कोराइड** (choroid) कहते है। यह सयोजी ऊतक का बना होता है और इसमें रुधिर वाहिनियाँ तथा रग-कोशिकायें (pigment cells) काफी सख्या में मिलती हैं। रग कोशिकाओ की उपस्थिति से यह काला दिखाई पडता है। जिस स्थान पर स्क्लीरोटिक और कोनिया मिलते हैं उस स्थान के आगे कोराइड एक गोल पीले रग का **आइरिस** (iris) बनाता है। आइरिस के बीचोबीच एक गोल छेद के रूप में **प्यूपिल या तारा** (pupil) होता है। **वर्त्तुल** (circular) तथा **रेडियल** (radial) अरेखित पेशियों की उपस्थिति से आइरिस कैमरा के डायेफ्राम की तरह काम करता है। वर्त्तुल पेशियो के कुचन से प्यूपिल का व्यास कम हो जाता है किन्तु रेडियल पेशियो के कुचन से बढ जाता है।

कौनिया तथा स्क्लीरोटिक के जोड के पास **सीलिएरी बॉडी** (ciliary body) होता है। दृष्टि तन्त्रिका (optic nerve) नेत्रगोलक के पिछले भाग में प्रवेश करती है और भीतर पहुँचकर यह कोराएड की भीतरी सतह पर रैटिना

वनाती है। जिस स्थान पर दृष्टि-तन्त्रिका रैटिना से जुडी रहती है उसे अध-विन्दु (blind spot) कहते हैं क्योकि यहाँ पर कोई प्रतिमूर्त्ति (image) नही वनती। माइक्रोस्कोप से देखने पर रैटिना मे तन्त्रिका कोशिकाओ की कई पर्तें मिलती हैं। कोराएड से मिला हुआ रग-कोशिकाओ (pigment cells) की एक पर्त होती है। इस एपिथीलियम की कोशिकाओ में रग की कणिकाये होती हैं। इस स्तर के वाद दृष्टि-शलाकाओ या रॉड्स (rods) तथा
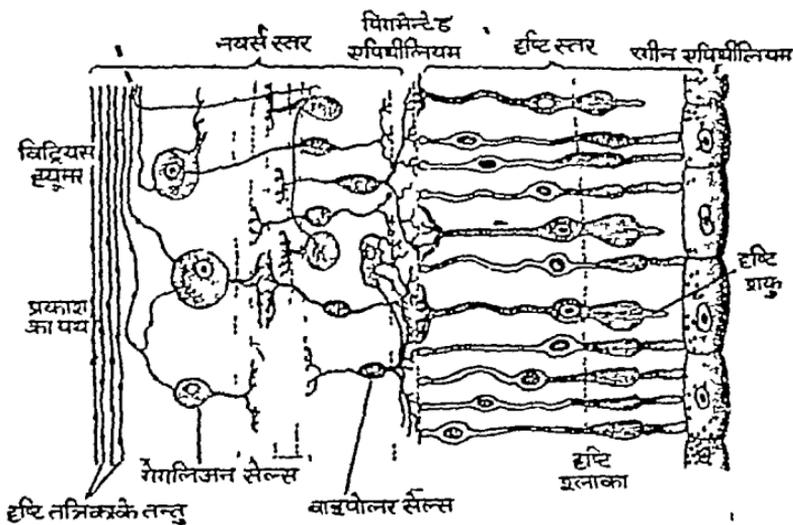
चित्र ११०—रैटिना का अनुप्रस्थ सेक्शन

दृष्टि-शकुओ या कोन्स (cones) की एक लेयर होती है। ये दोनों वास्तव में सवेदक-कोशिकाओ के ही रूपान्तर हैं। ये दोनो रैटिना की सतह पर लम्ब कोण वनाती हैं। मेढक में दृष्टि-शलाकायें या रॉड्स जिनके द्वारा प्रकाश और अन्धकार का पता चलता है, दृष्टि-शकुओ या कोन्स की अपेक्षा सख्या में अधिक होते हैं। शकुओ का काम कदाचित् वाहरी वस्तुओ के रग का पता चलाना है। रॉड्स और कोन्स के भीतरी सिरे पर द्विध्रुवीय न्यूरन्स (bipolar neurons) की एक पर्त होती है। इसके वाद गैंगलिओनिक लेयर (ganglionic layer) होती है इसमें द्विध्रुवीय न्यूरन्स (bipolar neurons) होते हैं। इनके वहुत लम्बे एक्सोन्स (axons) मिलकर दृष्टि-तन्त्रिका (optic nerve) वनाते हैं।

प्यूपिल के ठीक पीछे पारदर्श क्रिस्टेलाइन तथा गोल लेन्स होता है। इसके चारो ओर एक पतला पारदर्श खोल होता है जिसे लेन्स कैपस्यूल कहते हैं। इसका निर्माण तन्तुवत कोशिकाओ के सकेन्द्रित स्तरो (concentric layers) द्वारा होता है। सीलियरी वॉडी (ciliary body) से कुछ तन्तु निकलकर सस्पेन्सरी लिगामेन्ट (suspensory ligament) वनाते हैं जो लेन्स

को नेत्र-गोलक की गुहा में लटकाने में सहायता देता है। कौर्निया तथा सीलियरी बॉडी के बीच एक पेशी होती है जिसे **अग्राकर्षक लेन्स पेशी** (protractor lens muscle) कहते हैं। इनके कुंचन से लेन्स खिसककर कौर्निया के निकट पहुँच जाता है। ऐसी ही दो और पेशियाँ भी कौर्निया और सीलियरी बॉडी के बीच होती है। इन्हें **प्रत्याकर्षक लेन्स पेशियाँ** (retractor lentis muscle) कहते हैं। इनके कुंचन से लेन्स रैटिना की ओर खिसक जाता है।

लेन्स और कौर्निया के बीच में **अग्र-वेश्म** (anterior chamber) होता है। इसमें पानी जैसा द्रव भरा होता है जिसे **ऐकुअस ह्यूमर** (aqueous humor) कहते हैं। लेन्स तथा रैटिना के बीच **पश्च-वेश्म** होता है। इसमें पारदर्शी जेली के समान द्रव भरा रहता है जिसे **विट्रियस ह्यूमर** (vitreous humor) कहते हैं। यह अपने दाव से नेत्र गोलक का निश्चित आकार बनाये रखता है तथा रैटिना में झुर्रियाँ नही पडने देता।

नेत्रों द्वारा देखने की क्रिया

वरटिब्रेट्स के नेत्र कैमरा (camera) के समान कार्य करते हैं। दोनो की सरचना में काफी समानता होती है। नेत्र और कैमरा दोनो के ही भीतर अँधेरा होता है। पलकें खिडकी या सवारक (shutter) का, प्यूपिल डायेफ्राम का, लेन्स कैमरा के लेन्स का और रैटिना कैमरा के फिल्म या प्लेट का कार्य करते हैं। किसी वाहरी वस्तु से निकलनेवाली प्रकाश किरणें कौर्निया तथा एकुअस ह्यमर को पारकर प्यूपिल में होती हुई लेन्स में प्रवेश करती हैं। रैटिना पर प्रतिमूर्त्ति बनाने का अधिकतर काम कौर्निया को करना पडता है। कौर्निया ही प्रकाश-किरणो का दो-तिहाई नमन (bending) कर देता है। प्यूपिल एक प्रकार के नियामक (regulator) का कार्य करता है। इसका व्यास घट-बढ़ सकता है जिससे इसके अनुसार ही प्रकाश-किरणें भीतर घुस सकती हैं। लैन्स भी इन किरणों के नमन (bending) में सहायता देता है। इस प्रकार रैटिना की सतह पर एक छोटी, तथा उल्टी प्रतिमूर्त्ति वन जाती है। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले तन्त्रिका सवेग (nervous impulse) दृष्टि तन्त्रिका द्वारा शीघ्र ही मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं और फिर वह उसका सही ज्ञान देता है।

मेढक भूमि पर **निकट दृष्टीय** (short sighted) और पानी में **दूर-दृष्टीय** (long sighted) होता है। भूमि पर निकट-दृष्टीय होने से मेढक को कोई असुविधा नहीं होती। ऐसी दशा में कीडे-मकोडे साफ दिखाई देते हैं जिससे मेढक उन्हें आसानी से अपनी लसलसी जीभ द्वारा पकड सकता है। डुबकी लगाने पर इसे दूर की वस्तुयें साफ दिखाई देती हैं जिससे दूर पर होने पर भी उसे शत्रु आसानी से दिखाई दे जाते हैं।

ऐकोमोडेशन या व्यवस्थापन (Accommodation)

मेढक के नेत्रों में ऐकोमोडेशन या दूर और पास की वस्तुओ को देखने के लिए लैन्स के आकार को बदलने की क्षमता नही होती। उच्च श्रेणी के वरटिब्रेट्स लचीले लैन्स की वक्रता (curvature) में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके दूर और पास की वस्तुयें सरलता से देख सकते हैं। मेढक का गोल लेन्स लचीला नही होता। इसी लिए मेढक मे थोडा बहुत ऐकोमोडेशन लैन्स को आगे या पीछे खिसकाकर हो सकता है। इसके लिए **अग्राकर्षक लैन्स पेशियाँ** (protractor lens muscles) और **प्रत्याकर्षक लैन्स पेशियाँ** (retractor lens muscles) होती हैं।

मेढक, टोड तथा अन्य वरटिब्रेट्स में दोनो नेत्र सिर के पार्श्व भागो (lateral sides) में स्थित होते हैं जिससे इनमे दोनो नेत्रो से एक ही वस्तु को एक साथ देखने की शक्ति कम होती है। इसके विपरीत मनुष्य के दोनो नेत्र, जो कि सिर के अगले भाग में होते हैं एक ही साथ एक वस्तु को देख सकते हैं। इस प्रकार उच्च कोटि के वरटिब्रेट्स में **द्विनेत्रीय दृष्टि** (binocular vision) होती है। इससे इन प्राणियो को निगाह डालते ही दूरी का अनुमान हो जाता है। किन्तु ये प्राणी सभी दिशाओ में एक साथ नहीं देख सकते। इसके विपरीत मेढक, जिसमें **एकनेत्रीय दृष्टि** (monocular vision) होती है एक साथ चारो ओर देख सकता है जिससे यह सदैव चौकन्ना रह सकता है।

(५) श्रवणेन्द्रियाँ या कान
(Ears)

मेढक में कान दो भागो में बांटा जा सकता है—(१) **मध्य कर्ण** (middle ear) तथा (२) **आन्तरिक कर्ण** (internal ear)। मध्य कर्ण की रचनाओ का कार्य ध्वनि कम्पन (sound vibrations) को भीतरी कान तक पहुँचाना है किन्तु आन्तरिक कर्ण संवेदक (sensory) अंग होता है।

मध्य कर्ण की हवा से भरी गुहा को **टिम्पैनिक कैविटी** (tympanic cavity) भी कहते हैं। यह यूस्टेकियन नलिका द्वारा फैरिक्स से जुडी रहती है। मध्य-कर्ण की बाहरी सीमा कर्ण पटह (tympanum) बनाता है जो कि त्वचा की सतह से मिला होता है। आकार में यह गोल होता है और कार्टिलेज के एक छल्ले पर, जिसे **एन्युलस टिम्पैनिकस** (annulus tympanicus) कहते हैं मढा होता है। कर्ण पटह की भीतरी सतह से जुडी एक लम्बी मुद्गर के आकार की सरचना होती है जिसे **कर्ण-दंडिका** या **काल्यूमेला**

(columella) कहते है। इसका दूसरा सिरा स्टेपीडियल प्लेट (stapedial plate) से जुडा रहता है। स्टेप्स (stapes) या स्टेपीडियल प्लेट फीनेस्ट्रा ओवैलिस में सटी होती है।
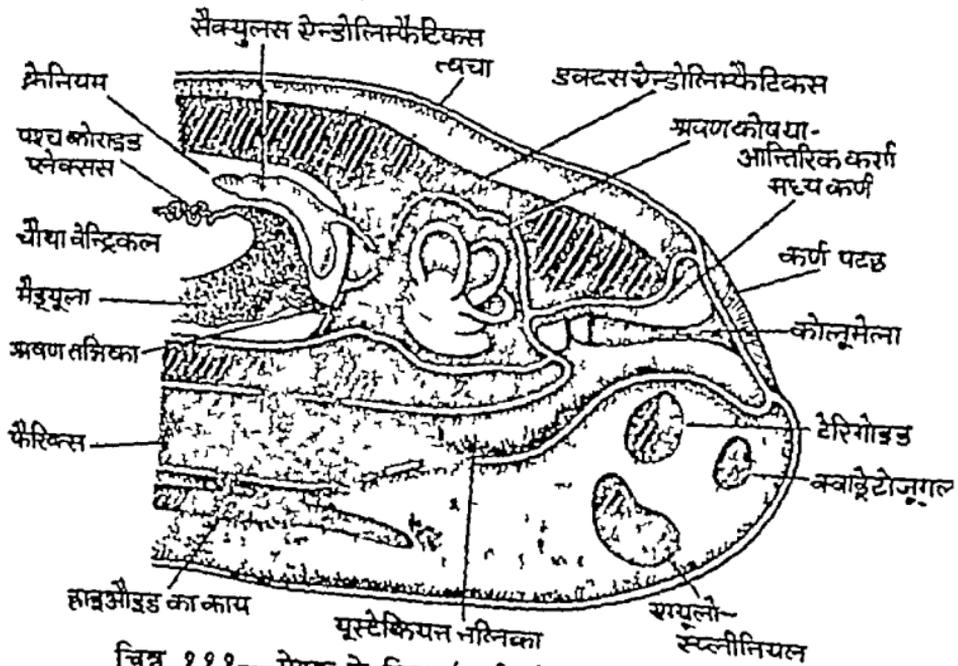
चित्र १११—मेढक के सिर (कर्ण-प्रदेश) का अनुप्रस्थ सेक्शन

श्रवण-कोष या आॅडिटरी कैपस्यूल में एक लिम्फ सदृश द्रव भरा रहता है जिसे परिलसीका या पैरीलिम्फ (perilymph) कहते हैं। इसी में मेम्ब्रेनस लैबिरिन्थ (membranous labyrinth) उतराया करती है। मेम्बरेनस लैबिरिन्थ में दो भाग होते हैं—ऊपरी भाग को यूट्रीकुलस (utriculus) और निचले भाग को सैक्यूलस (sacculus) कहते हैं। इन दोनो भागो के बीच मे सैक्यूलो-यूट्रीकुलर नलिका (sacculo-utricular canal) होती है।

यूट्रीकुलस से तीन अर्धवृत्ताकार नलिकाएं (semicircular canals) निकलती हैं जो एक दूसरे के साथ लम्ब कोण (right angle) बनाती हैं। इनका नाम इनकी स्थिति के अनुसार होता है। इनमें अग्र और पश्च अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ खडी (vertical) होती हैं। इन दोनो के दो सिरे मिलकर एक साथ यूट्रीकुलस में खुलते हैं और दो सिरे अलग-अलग
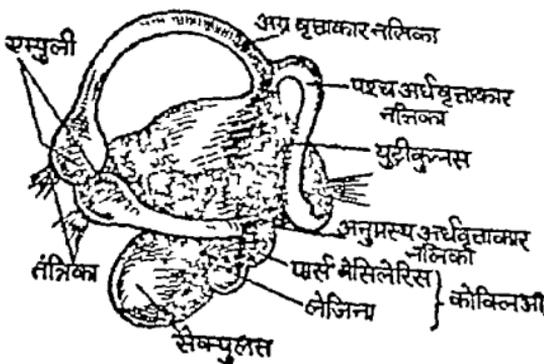
चित्र ११२—मेढक की मेम्बरेनस लैबिरिन्थ का बाहरी दृश्य

खुलते हैं, तीसरी नलिका बाहर की ओर पडी (horizontal) होती है। इसे **अनुप्रस्थ अर्धवृत्ताकार नलिका** कहते है। प्रत्येक नलिका के एक सिरे पर फला हुआ भाग होता है जिसे **ऐम्पुला या तुंबिका** (ampulla) कहते है। अग्र और अनुप्रस्थ अर्धवृत्ताकार नलिकाओ के ऐम्पुली (ampullae) अगले सिरो पर किन्तु पश्च अर्धवृत्ताकार नलिका की तुंबिका पिछले सिरे पर होती है।

यूट्रीकुलस के नीचे एक अनियमित आकार की रचना होती है जिसे **सैक्युलस** कहते हैं। इसके पिछले भाग से दो उभार निकले रहते हैं जिन्हे
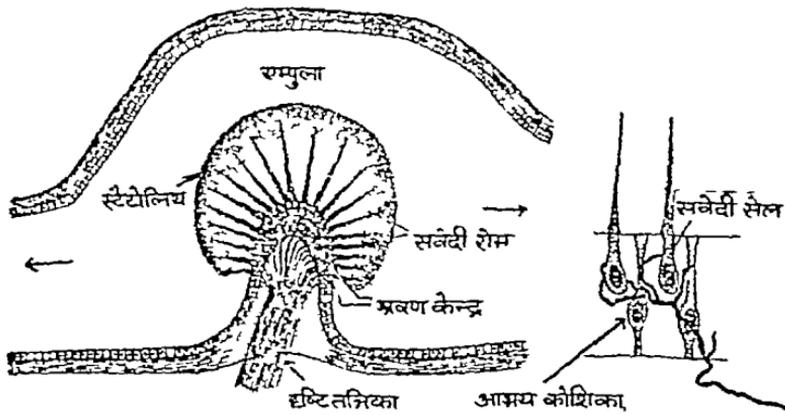
चित्र ११३—ऐम्पुला का सेक्शन तथा सवेदी सेल्स

लैगिना (lagena) और **पार्स बेसीलेरिस** (pars basilaris) कहते हैं। ये दोनो मिलकर उच्च वरटिब्रेट्स में **कोक्लिया** (cochlea) बनाते है। सैक्युलस से पतली **अन्तर्लसीका वाहिनी या सैक्युलस एन्डोलिम्फैटिकस** (ductus endolymphaticus) निकलती है जो कुछ दूर ऊपर जाकर क्रेनियम की दीवार में होती हुई क्रेनियम में घुस जाती है और वहाँ सैक्युलस एन्डोलिम्फैटिकस बनाती है। मेम्बरेनस लैबिरिन्थ के भीतर **एण्डोलिम्फ या अन्तरलसीका** (endolymph) भरी रहती है जिसमें कैलशियम कार्बोनेट के अनेक नन्हे-नन्हे केलास (crystals) होते हैं जिन्हे **ओटोकोनिया** (otoconia) या **कर्णाश्म** (ear stones) कहते हैं। ऐम्पुली और अर्धवृत्ताकार नलिकाओ से श्रवण तन्त्रिका के तन्तु जुडे रहते हैं।

मेम्बरेनस लैबिरिन्थ की दीवारें सयोजी ऊतक की बनी होती है और इसकी भीतरी सतह पर घनाकार एपिथीलियम होता है। ऐम्पुली के वे भाग जहाँ श्रवण तन्त्रिका की शाखाएँ घुसती है, भीतर की ओर उभरे रहते

हैं। इन उभारो को श्रवण-केन्द्र (acoustic spot) कहते हैं। इसका एपिथीलियम लम्बी सवेदक कोशिकाओ (sensory cells) का बना होता है। इनकी भीतरी सतह पर सवेदक-रोम (sensory hair) होते हैं। इन्हीं की निचली सतह से श्रवण तन्त्रिका के तन्तु जुड़े रहते हैं। सवेदक कोशिकाओं को सहारा देने के लिए आश्रय-कोशिकाएँ (supporting cells) होती हैं। प्रत्येक ऐम्पुला में कम से कम एक श्रवण-केन्द्र अवश्य होता है। यूट्रीकुलस तथा सैक्युलस में भी श्रवण-केन्द्र होते हैं।

सुनने की क्रिया

सुनने में सहायता देने के अलावा आन्तरिक कर्ण शरीर के सन्तुलन, दिशा परिवर्तन तथा गति (velocity) का पता चलाने में सहायता देता है।

ध्वनि-उत्कम्पन कर्ण-पटह से टकराते हैं और उसमें आवेपन उत्पन्न करते हैं। ये कालुमेला द्वारा स्टेपीडियल प्लेट में और अन्त में श्रवण-कोष (auditory capsule) में स्थित परिलसीका (perilymph) में पहुँचकर उसमें कपन पैदा कर देते हैं। कर्ण-पटह के दोनो ओर वायु का एक सा दवाव वनाये रखने के लिए यूस्टेकियन-ट्यूब का होना आवश्यक होता है। परिलसीका द्वारा आवेपन (vibration) मेम्बरेनस लैबिरिन्थ के भीतर भरी एन्डोलिम्फ में पहुँच जाते हैं। एन्डोलिम्फ के कम्पन से श्रवण-केन्द्र की संवेदक-कोशिकाओं के रोमो को उद्दीपन मिलता है। इन कोशिकाओ में उत्पन्न होनेवाले तन्त्रिका संवेगो को श्रवण-तन्त्रिका मस्तिष्क में पहुँचा देती है।

अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ (semicircular canals) वास्तव में सन्तुलन, दिशा परिवर्तन तथा गति का पता चलाने में सहायता देती हैं। इन कार्यों में कर्णाश्म (ear stones) सहायता देते हैं। इन क्रियाओ का सम्बन्ध ग्रैविटी (gravity) से है। शरीर के किसी एक दिशा में झुकने पर कर्णाश्म उसी ओर के श्रवण-रोमों पर अधिक दवाव डालते हैं। यह दवाव सामान्य स्थिति में पड़नेवाले दवाव से भिन्न होता है। इसका पता चलते ही मस्तिष्क आवश्यक पेशियों का कुचन करके शरीर का सतुलन ठीक कर देता है। इस प्रकार कर्णाश्म सहावल (pulmb line) का सा कार्य करते हैं। तीनो अर्धवृत्ताकार नलिकायें जो एक दूसरे के साथ लम्ब कोण वनाती हैं, गति तथा दिशा का पता चलाने में सहायता देती हैं।

प्रश्न

१—मेढक के नेत्र की सरचना विस्तारपूर्वक समझाओ। मेढक के नेत्रो में ऐकोमोडेशन किस प्रकार सभव होता है?

२—मेढक के सिर के कर्ण प्रदेश के ट्रासवर्स सेक्शन का नामांकित चित्र बनाओ और सुनने की विधि समझाओ।

३—निम्नलिखित में से किन्ही तीन पर सक्षेप में टिप्पणी लिखो —

अन्ध विन्दु (blind spot), कर्णाश्म, यूस्टेकियन नलिका, कालूमेला, द्विदृष्टीय दृष्टि।

अध्याय १३

जननांग

वरटिब्रेट्स में जनन-कोशिकायें या गैमीट्स (gametes) गोनड्स या जनन-पिंडको (gonads) में बनते हैं। नर मेढक में गोनड को वृषण (testes) तथा मादा में अडाशय (ovary) कहते हैं। ये दोनों ही आवश्यक जननाग हैं क्योंकि वृषण में शुक्राणु (spermatozoa) और अडाशय में अडे (ova) बनते हैं। गोनड के साथ में जो अन्य सरचनायें मिलती हैं वे केवल गैमीट्स को बाहर ले जाने में तथा ससेचन (fertilisation) में सहायता देती हैं।

नर जननाग

(Male Reproductive Organs)

मेढक के वृषण लगभग १ इच लम्बे और पीले रग के होते हैं। प्रत्येक वृषण अपनी ओर के वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह से मिसोर्कियम (mesorchium) नाम की झिल्ली द्वारा जुडा रहता है। प्रत्येक वृषण की भीतरी सतह से १०-१२ बहुत ही महीन नलिकाये निकलती हैं जिन्हे वासा एफरेंशिया या शुक्र वाहिकाएँ (vasa-efferentia) कहते हैं। ये सभी वृक्क के अगले भाग के भीतरी तट पर स्थित बिडर-नलिका (Bidder's canal) में खुलती हैं। यह नलिका वृक्क के बाहरी
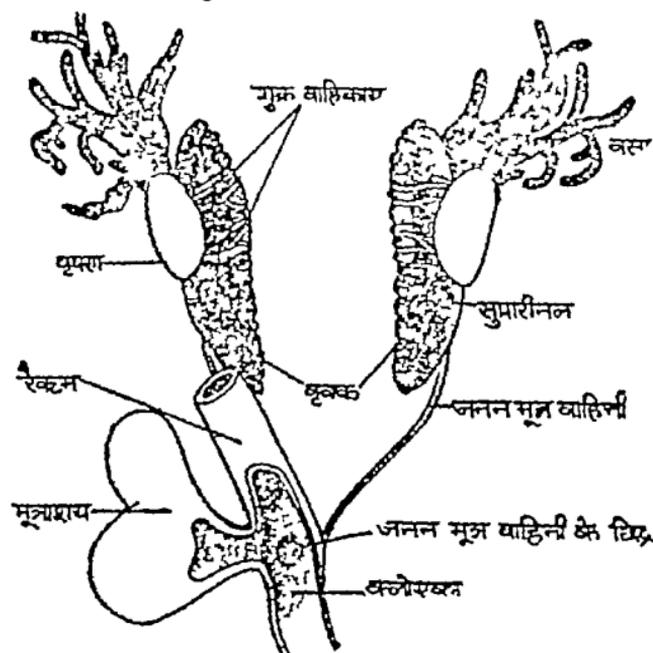
चित्र ११४—नर मेढक के जननाग

तट पर स्थित मूत्र-वाहिनी से अनेक ट्रासवर्स-सग्रह नलिकाओ (transverse collecting ducts) द्वारा जुडी रहती है। इस प्रकार नर मेढक में जनन तत्र (reproductive system) और मूत्र-तत्र में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मूत्रवाहिनी इसी लिए **जनन मूत्रवाहिनी** (urinogenital duct) कहलाती है। दोनो ओर की जनन मूत्र-वाहिनियाँ क्लोएका की पृष्ठ सतह पर खुलती हैं। राना टिग्रीना के अतिरिक्त मेढक की अन्य स्पेशीज में जनन मूत्रवाहिनी का निचला भाग फूलकर शुक्राशय या **सेमाइनल वैसिकल** (seminal vesicle) बनाता है जिसमें जननकाल में शुक्राणु इकट्ठे होते हैं और मैथुन के समय तालाब के पानी में निकाले जा सकते हैं। प्रत्येक ओर के वृक्क अगले सिरे से **वसा-पिडक** (fat body) जुडे रहते हैं।

वृषण की हिस्टौलोजिकल संरचना—वास्तव में प्रत्येक वृषण अनेक **रेतो-वाहिनियो** या **सेमिनेफेरस-ट्यूबूल्स** (seminiferous tubules) का बना होता है। ये सयोजी ऊतक, जिसमें रुधिर-वाहिनियां तथा तत्रिका तन्तु होते
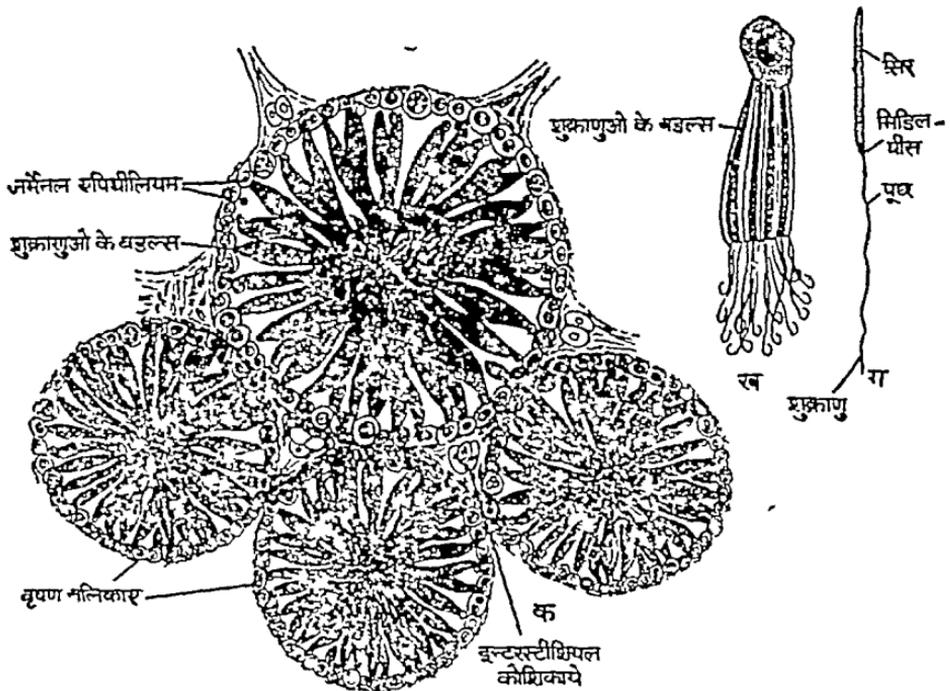
चित्र ११५—क, मेढक के वृषण का सेक्शन, ख, शुक्राणुओ का एक समूह, ग, एक शुक्राणु

हैं द्वारा सधी रहती है। प्रत्येक रेतो-वाहिनी की भीतरी सतह पर **जर्मेनल-एपिथीलियम** (germinal epithelium) होता है। इसी एपिथीलियम की कोशिकाओ के विशिष्ट प्रकार के विभाजन, जिसे **शुक्रजनन** (spermatogenesis) कहते हैं, द्वारा शुक्राणु उत्पन्न होते हैं।

प्रत्येक शुक्राणु का सिर (head) न्यूक्लियस का बना होता है। इसके पीछे एक सँकरा भाग होता है जिसे ग्रीवा (neck) कहते हैं। यह भाग सेन्ट्रोसोम तथा माइटोकौन्ड्रिया (mitochondria) का बना होता है। अन्तिम भाग साइटोप्लाज्म द्वारा निर्मित पूंछ (tail) होता है जिसकी सहायता से शुक्राणु तरल माध्यम में सरलता से तैर सकता है। रेतोवाहिनियों के बीच-बीच सयोजी ऊतक (connective tissue) होता है जिसमें इन्टरस्टीशियल कोशिकाएं (interstitial cells) होती हैं। ये अवाहिनी ग्रन्थियां (ductless glands) बनाती हैं और नर-हारमोन उत्पन्न करती हैं।

मादा जननाग

(Female Reproductive Organs)

जनन काल मे मादा मेढक के अडाशय (ovaries) विशेषरूप से बडे हो जाते हैं। प्रत्येक अडाशय अनियमित आकार का होता है और अपरिपक्व अवस्था में यह हल्के पीले रग का और छोटा होता है किन्तु परिपक्व (mature) होने पर इसका रग काला हो जाता है और यह इतना बडा हो जाता है कि देहगुहा में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला होता है। वृपण की तरह प्रत्येक अडाशय अपनी ओर के वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह से मीसोवेरियम (mesovarium) झिल्ली द्वारा जुडा रहता है। प्रत्येक अडाशय के अगले सिरे से वसा-पिंडक (fat body) जुडे रहते हैं।

अड-वाहिनियां (oviducts) विशेषरूप से लम्बी तथा कुडलीदार (coiled) होती हैं। प्रत्येक अड-वाहिनी अपनी ओर के फेफडे के आधार के समीप एक सीलियेटेड मुखिका या ऑस्टियम (ostium) द्वारा खुलती है। अड-वाहिनी का अगला भाग सँकरा और विशेषरूप से कुडलित होता है। इसकी भीतरी ग्रन्थिल सतह एल्व्यूमिनस पदार्थ (albuminous material) या जेली बनाती है जो अड के अडवाहिनी में नीचे खिसकते समय उसके चारो तरफ लिपट जाती है। अड-वाहिनियो के अन्तिम भाग चौडे होकर अड-कोष या ओवीसैक (ovisac) बनाते हैं। इनमें जननकाल में अडो का अस्थायी सग्रह होता है। दोनो ओर के ओवीसैक क्लोएका की पृष्ठ सतह पर खुलते हैं। अडाशय के अगले सिरे से वसा-पिडक (fat body) जुडे रहते हैं। इसमें चर्वी के रूप में पोषक-पदार्थ इकट्ठा रहता है। इसी की सहायता से अडाशय में अडो का और वृपण में शुक्राणुओ का परिवर्धन होता है।

अडाशय की हिस्टोलोजिकल सरचना—प्रत्येक अडाशय अनेक पिडकों में बँटा होता है। प्रत्येक पिंडक (lobule) में एक प्रकार का द्रव भरा रहता है। पिंडक की भीतरी सतह जर्मीनल एपियीलियम (germinal epithelium) की बनी होती है। इसी एपियीलियम की कोशिकाओं के अडजनन (oogene-

चित्र ११६—मादा मेंढक के जननांग
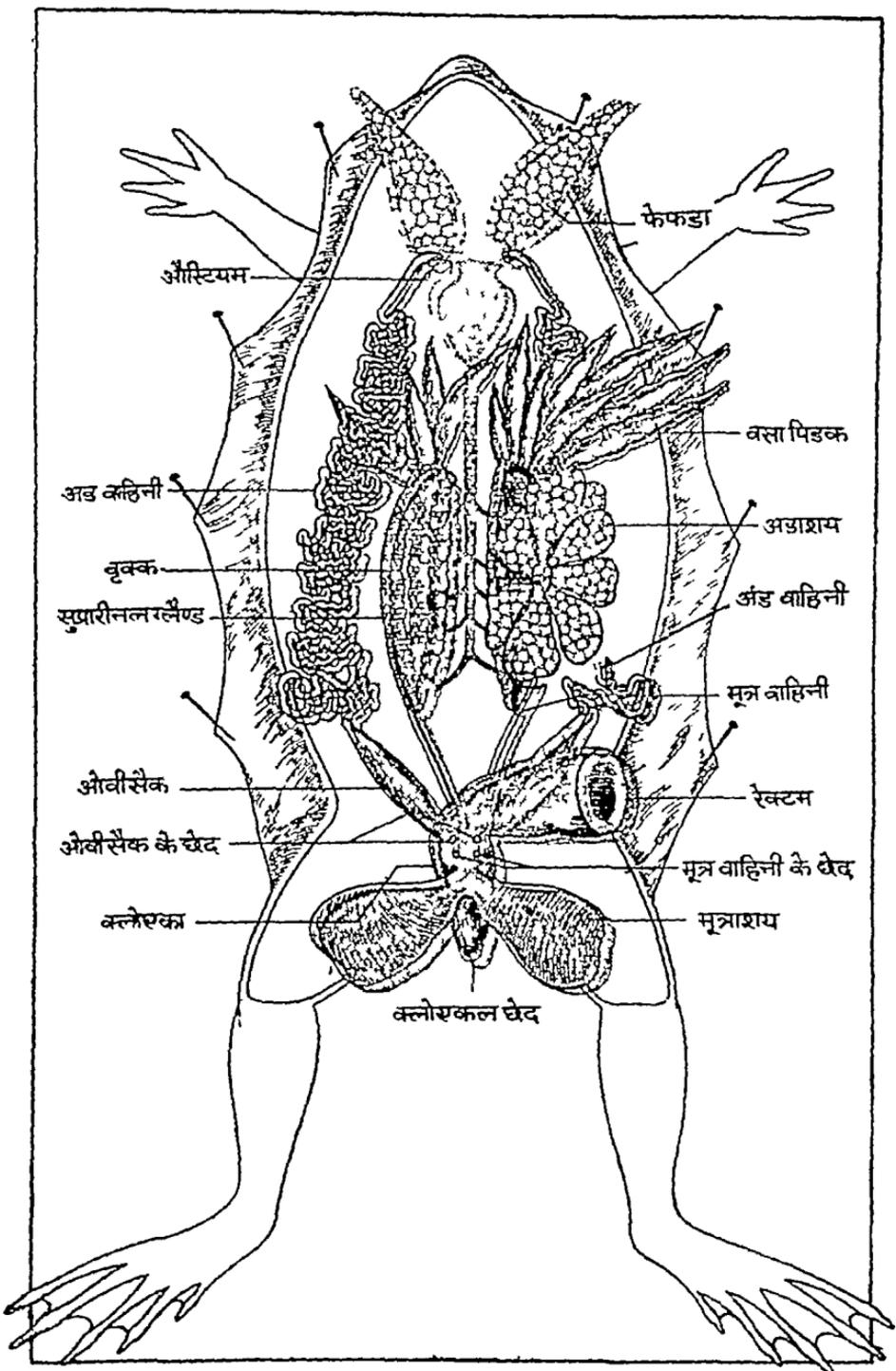
sis) से अडाशय की भीतरी सतह पर अनेक **पुटिकाएँ** या **फोलिकल्स** (follicles) बन जाते है। प्रत्येक पुटिका मे एक कोशिका की विशेष वृद्धि से एक बडा सा अडा (ovum) बन जाता है जिसके चारो ओर चपटी **फोलिकुलर सेल्स** की पतली पर्त होती है जिसे **फोलिकुलर एपिथीलियम** (follicular epithelium)
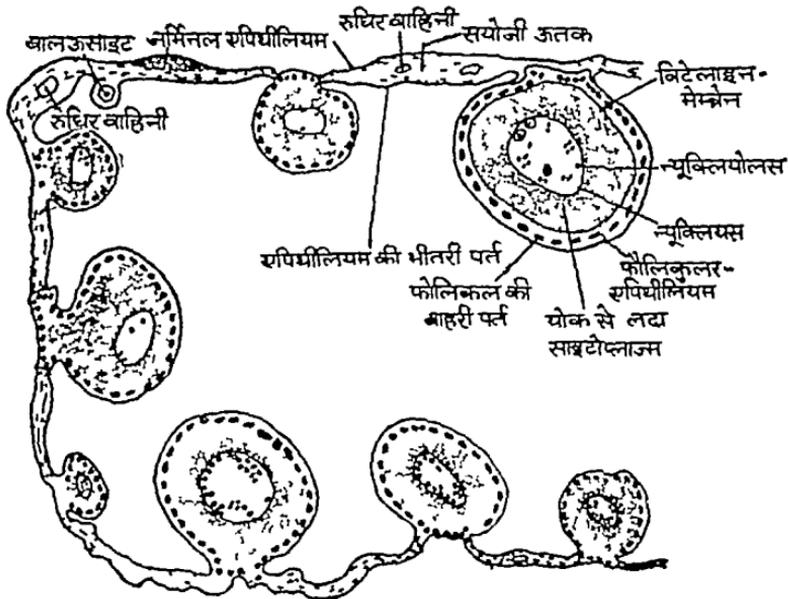
चित्र ११७—मेढक के अडाशय (ovary) का सेक्शन

कहते है। प्रत्येक अडे का साइटोप्लाज्म अपने चारो ओर एक पतली झिल्ली बनाता है जिसे **पीत-कला** या **विटेलाइन मेम्ब्रेन** (vitelline membrane) कहते हैं। पुटिका की सबसे बाहरी सतह पर एक और पतली झिल्ली होती है जिसे **ओवेरियन फोलिकल का बाहरी स्तर** (outer layer of ovarian follicle) कहते है। परिपक्व अड लगभग $\frac{1}{१४}$ इच बडा होता है। इसके साइटोप्लाज्म में एक सिरे में स्पष्ट साइटोप्लाज्म और दूसरे सिरे मे योक (yolk) होता है। इस प्रकार के अडो को **टीलोलेसीथल** (telolecithal) कहते हैं।

प्रश्न

१—मादा मेढक के जननागो का चित्र सहित वर्णन करो।

२—नर मेढक के जनन-तत्र का सचित्र वर्णन करो। इसे मूत्र-जनन तत्र क्यो कहते हैं?

३—मेढक के वृषण तथा अडाशय की हिस्टोलोजिकल सरचना चित्र सहित समझाओ।

अध्याय

कोशिका-विभाजन तथा गैमिटोजेनेसिस

प्रत्येक जीवित कोशिका की सबसे बडी विशेषता उसका बढना तथा विभाजन है। कोशिका विभाजन (cell division) निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है —

(अ) एमाइटोसिस (amitosis)

(आ) माइटोसिस (mitosis) या समसूत्रण

(इ) माइओसिस (meiosis) या अर्धसूत्रण

अधिकाश बहुकोशिकीय जन्तुओ या मैटाजोआ (metazoa) के शरीर में दो प्रकार की कोशिकाएँ या सेल्स होती हैं—सोमैटिक (somatic) तथा जनन कोशिकाओ (reproductive cells)। सोमैटिक सेल्स जनन के अतिरिक्त अन्य सभी जीवन-क्रियाएँ जैसे श्वसन, पाचन, उत्सर्जन इत्यादि करती हैं। जनन कोशिकायें केवल गैमीटस (gametes) के निर्माण में सहायता देती हैं। प्रत्येक सोमैटिक कोशिका एक जटिल क्रम द्वारा जिसे माइटोसिस या समसूत्रण कहते हैं, दो कोशिकाओ मे बँट जाती है। इस प्रकार के विभाजन के फलस्वरूप ऊतको का जीर्णोद्धार होता रहता है और प्राणी अपनी सामान्य वृद्धि प्राप्त करने मे सफल होता है।

(अ) एमाइटोसिस
(*Amitosis*)

इस प्रकार का विभाजन कुछ प्रोटोजोआ (protozoa) तथा अन्य श्रेणी के प्राणियो में तथा उन कोशिकाओ में होता है जिनमें अपकर्ष (degeneration) आरभ हो जाता है। इस प्रकार का विभाजन स्तनधारियो की भ्रूण-कलाओ (embryonic membranes) की सेल्स में होता है। इस क्रिया मे न्यूक्लियस (nucleus) प्रथम लम्बा और द्विमुडाकार (dumb-bell shaped) हो जाता है। धीरे धीरे द्विमुडाकार न्यूक्लियस का मध्य भाग पतला और कमजोर होकर टूट जाता है। इस प्रकार एक न्यूक्लियस से दो न्यूक्लियाई वन जाते हैं। इसके वाद साइटोप्लाज्म का भी विभाजन होता है जिससे एक कोशिका से दो डाटर-कोशिकायें वन जाती हैं।

(आ) माईटोसिस या समसूत्रण
(Mitosis)

इस जटिल तथा सन्नियमित क्रिया को निम्नलिखित ५ प्रावस्थाओ में बाँटा जा सकता है —

(१) विश्रामावस्था या इन्टरफेज (interphase)
(२) प्रोफेज (prophase)
(३) मैटाफेज (metaphase)
(४) एनाफेज (anaphase)
(५) टीलोफेज (telophase)

(१) इन्टरफेज—माइटोसिस के आरभ होने के पूर्व प्रत्येक कोशिका विश्रामावस्था अथवा वर्धि-अवस्था (vegetative stage) मे होती है। इस अवस्था में सेन्ट्रोसोम (centrosome) निष्क्रिय होता है और न्यूक्लियस में क्रोमोसोम्स (chromosomes) दिखाई नही देते।

चित्र ११८—इन्टरफेज

(२) प्रोफेज (Prophase)—न्यूक्लियर-विभाजन का आरभ सेन्ट्रोस्फीयर (centrosphere) के विभाजन से होता है। न्यूक्लियस के कोलीएड्स के डिहाइड्रेशन (dehydration) के फलस्वरूप क्रोमोसोम्स या केन्द्रक सूत्र (chromosomes) लम्बे तथा रँगने लायक डोरो (threads) के रूप मे साफ-साफ दिखाई देने लगते हैं। धीरे धीरे ये लम्बाई में कम और मोटाई में बढते जाते हैं तथा प्रत्येक क्रोमोसोम में दो क्रोमैटिड्स (chromatids) भी साफ दिखाई पडने लगते हैं। इस समय तक न्यूक्लियर मेम्ब्रेन (nuclear membrane) भी गायब होने लगता है। सेन्ट्रोस्फीयर के विभाजन से बननेवाले दोनो सेन्ट्रोस्फीयर कोशिका में विरुद्ध दिशाओ में एक
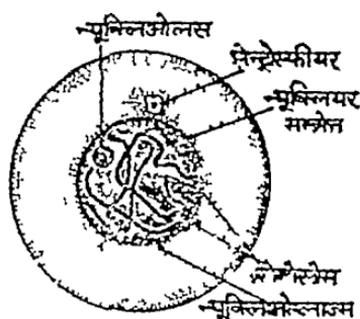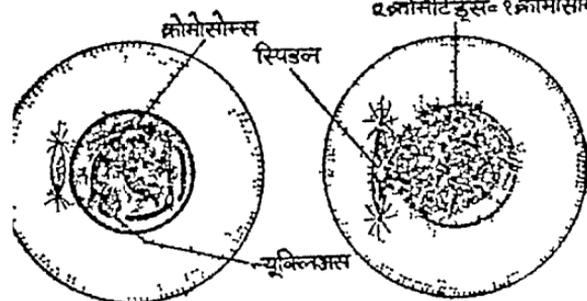
चित्र ११९—प्रारभिक तथा लेट प्रोफेज

दूसरे से दूर हटते जाते हैं। प्रत्येक से अनेक तारा रश्मियो या एस्ट्रल रेज (astral rays) साइटोप्लाज्म के सॉल (sol) से जेल में वदल जाने से वन जाती है। इन रश्मियो की उपस्थिति के कारण प्रत्येक सेन्ट्रोस्फीयर अव एस्टर (aster) कहलाता है। न्यूक्लियर मेम्वरेन के गायव हो जाने पर न्यूक्लियोप्लाज्म भी सॉल से जेल में वदल जाता है और इस प्रकार दोनो एस्टर्स के वीच अनेक तन्तुओ से वना तर्कु या स्पिन्डिल (spindle) वन जाता है। इसके निर्माण में न्यूक्लियोप्लाज्म तथा साइटोप्लाज्म दोनो ही भाग लेते हैं। दोनो एस्टर्स तथा स्पिन्डिल को मिलाकर एम्फीएस्टर (amphiaster) कहते हैं।

(३) मेटाफेज (*Metaphase*)—इस प्रावस्या में तर्कु (spindle) पूरी तौर पर वन जाता है। क्रोमोसोम्स तो विशेष प्रकार के वायोलौजिकल रगो (biological stains) से रँगे जा सकते हैं किन्तु स्पिन्डिल फाइवर्स या तर्कु-तन्तु रँगे नही जा सकते। इस अवस्था तक क्रोमोसोम्स पूरी तौर पर सिकुड जाते हैं। जिससे ये अपनी मूल लम्वाई के १/१० या १/२० लम्वे रह जाते हैं। प्रत्येक क्रोमोसोम जिसमें अव दो क्रोमैटिड्स साफ दिखाई देने लगते हैं एक विशेष स्थान पर, जिसे सेन्ट्रोमीयर (centromere) या स्पिन्डिल अटैचमेन्ट (spindle attachment), कहते हैं तर्कु की मध्य रेखा (equatorial plane) से चिपक जाता है। प्रत्येक प्राणी में क्रोमोसोम्स की सख्या निश्चित (fixed) होती है। हो सकता है
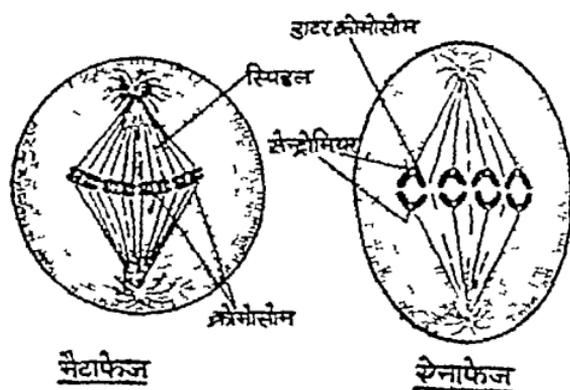
चित्र १२०—मैटाफेज तथा ऐनाफेज

कि सब क्रोमोसोम्स एक ही आकार तथा लम्वाई के न हो किन्तु आनुवशिक गुणो (hereditary characters) में अवश्य एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यदि किसी कोशिका में चार क्रोमोसोम्स हैं तो वास्तव में समजात क्रोमोसोम्स (homologous chromosomes) के दो जोडे होते हैं।

(४) ऐनाफेज (*Anaphase*)—हम तुम्हें ऊपर वता चुके हैं कि प्रत्येक क्रोमोसोम में दो क्रोमैटिड्स (chromatids) होते हैं। इस प्रावस्या में प्रत्येक क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स एक दूसरे से अलग होना आरम्भ करते

है। सर्वप्रथम सेन्ट्रोमीयर का विभाजन होता है जिससे प्रत्येक क्रोमैटिड का सेंट्रोमीयर अलग हो जाता है। इस समय एक क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स के सेन्ट्रोमीयर में एक प्रकार का अपकर्षण (repulsion) उत्पन्न हो जाता है। प्रत्येक क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स को एक दूसरे से अलग करने के लिए तर्कु-तन्तुओ (spindle fibres) का अनुप्रस्थ समतल में कुचन भी होता है। जैसे जैसे क्रोमैटिड्स, जिन्हे अब डॉटर क्रोमोसोम्स कहना अधिक उपयुक्त होगा, के बीच की दूरी बढती जाती है वैसे-वैसे वे खिचने के कारण ∠ के आकार के हो जाते हैं।

(५) टीलोफेज (*Telophase*)—डॉटर क्रोमोसोम्स विपरीत दिशा में खिसकते-खिसकते कोशिका के दोनो ध्रुवो (poles) के समीप पहुँच जाते हैं। इन क्रोमोसोम्स के दोनो समूहो के बीच में स्थित तर्कु-तन्तुओ का अवशेष अब "स्तम्भ काय" (stem body) कहलाता है। प्रत्येक ध्रुव मे इकट्ठे क्रोमोसोम्स अब एक दूसरे के निकट पहुँच जाते हैं। प्रोफेज में जो क्रियायें होती हैं अब उनके विपरीत क्रियायें होती हैं—कोलॉएड्स (colloids) के हाइड्रेशन (hydration) से क्रोमोसोम्स फिर से लम्बे और पतले हो जाते हैं और अन्त मे अदृश्य हो जाते हैं। क्रोमोसोम्स के समूह के चारो ओर न्यूक्लियर मेम्ब्रेन (nuclear membrane) बन जाता है, न्यूक्लियोप्लाज्म और न्यूक्लियोलाई (nucleoli) का पुन. निर्माण हो जाता है और इस प्रकार एक न्यूक्लियस के विभाजन से दो डॉटर न्यूक्लियाई बन जाते हैं।
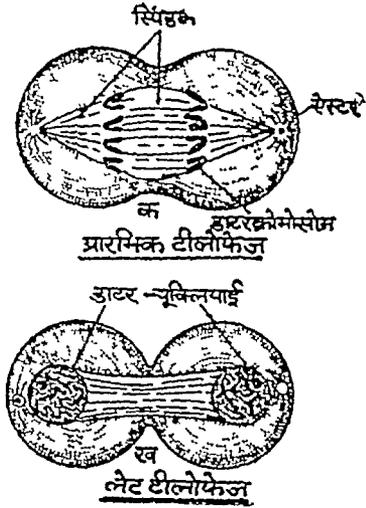
चित्र १२१—टीलोफेज

साइटोकाइनेसिस (*Cytokinesis*)—इसका आरभ भी टीलोफेज में होता है। कोशिका के मध्य भाग के चारो ओर एक छिछली खाई बन जाती है जो धीरे-धीरे गहरी होती जाती है और इस प्रकार साइटोप्लाज्म के विभाजन से दो कोशिकायें बन जाती हैं। न्यूक्लियस तथा कोशिका के विभाजन के पश्चात् प्रत्येक सेल कुछ समय के लिए विश्रामावस्था में रहती हैं। ऐसा अनुमान है कि इसी अवस्था में प्रत्येक क्रोमोसोम के लौंगिट्युडिनल विभाजन के फलस्वरूप उसमें दो क्रोमैटिड्स बन जाते हैं।

समसूत्रण या माइटोसिस से लाभ

इस न्यूक्लियर-विभाजन की जटिल क्रिया से, जिसमें लगभग ३० से लेकर ६० मिनट लगते हैं, दो लाभ हैं —

(१) एक कोशिका से दो कोशिकायें बन जाती हैं जो गुण तथा आकार में एक समान होती हैं।

(२) क्रोमोसोम्स मात्रा (quantity) तथा अपने विशेष गुणों (quality) के अनुसार दो बराबर बराबर भागो मे बँट जाते हैं।

(इ) अर्धसूत्रण तथा माइओसिस

(Meiosis)

इस प्रकार का न्यूक्लियर-विभाजन जनद (वृषण या अडाशय) मे गैमिट्स (gametes) के निर्माण में होता है। इस प्रकार के विभाजन के फलस्वरूप गैमीट्स में क्रोमोसोम्स की सख्या मातृ-कोशिकाओ की अपेक्षा आधी हो जाती है। समसूत्रण की तरह अर्धसूत्रण या माइओसिस में भी चार प्रमुख अवस्थाएँ होती हैं किन्तु इसमें प्रोफेज स्वय निम्नलिखित अवस्थाओ में विभाजित किया जा सकता है —

(क) लेप्टोटीन (leptotene)
(ख) सिनैप्टोटीन (synaptotene)
(ग) पैकीटीन (pachytene)
(घ) डिप्लोटीन (diplotene)
(च) डाइकाइनेसिस (diakinesis)

(१) प्रोफेज—(अ) लेप्टोटीन (*Leptotene*) अवस्था में प्रत्येक कोशिका में क्रोमोसोम्स (chromosomes) पहले पतले और लम्बे डोरो के समान होते हैं। ये टेढ़े-मेढे और अविभाजित (undivided) होते हैं और इनमें क्रोमैटिड्स (chromatids) की उपस्थिति का कोई चिह्न नही मिलता। प्रत्येक क्रोमोसोम में अनेक क्रोमोमीयर्स (chromomeres) होते हैं जिससे आकृति में ये मणिमय (beaded) होते हैं। प्रत्येक क्रोमोसोम में सेन्ट्रोमीयर साफ दिखाई पडता है और सेन्ट्रोसोम्स के चारो ओर रश्मियां बनने लगती हैं।

(ख) सिनैप्टोटीन (*Synaptotene*)—इस अवस्था में समजात क्रोमोसोम्स (homologous chromosomes) युग्मित (paired) हो जाते हैं, अर्थात् एक ही आकार, लम्बाई और आनुवंशिक गुणो के क्रोमोसोम्स पास-पास आ जाते हैं और सर्वप्रथम दोनो एक दूसरे से उसी स्थान में मिलते

हैं जहाँ पर सेन्ट्रोमीयर्स होते है। इसके बाद युग्म के दोनो क्रोमोसोम्स अन्य स्थानों में भी मिल जाते हैं। समजात क्रोमोसोम्स के एक दूसरे के निकट खिच आने में किस प्रकार की आकर्षण-शक्ति काम करती है इसका अब तक ठीक पता नही है।
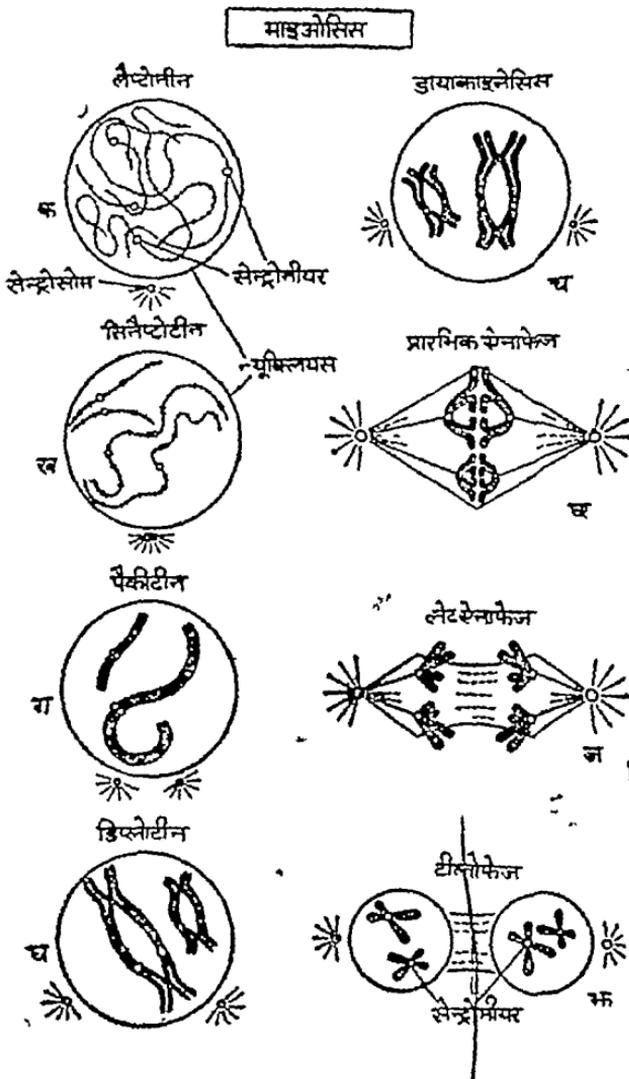
चित्र १२२—माइओसिस की विभिन्न अवस्थाएँ

(ग) पैकीटीन (*Pachytene*)—इस अवस्था में प्रत्येक युग्म या जोडे के दोनो क्रोमोसोम्स एक दूसरे से इस प्रकार सट जाते हैं कि यदि आरभ में इनकी सख्या ८ होती है तो इस अवस्था मे चार ही दिखाई देते हैं। इस अवस्था में क्रोमोसोम्स के जोडो को बाइवैलेन्ट (bivalent) कहते हैं। ये बाइवैलेन्ट अब छोटे और मोटे हो जाते हैं और आकृति में ये वैसे ही लगते

हैं जैसे कि माइटोसिस की प्रोफेज प्रावस्था में। इसी अवस्था में वाइवैलेन्ट का प्रत्येक क्रोमोसोम लम्बाई में विभाजित हो जाता है जिससे प्रत्येक वाइवैलेन्ट में चार क्रोमैटिड्स दिखाई देते है किन्तु किसी भी क्रोमोसोम के सेन्ट्रोमीयर का विभाजन नही होता।

(घ) डिपलोटीन (*Diplotene*)—इस अवस्था मे प्रत्येक वाइवैलेन्ट के दोनो होमोलोगस या समजात क्रोमोसोम्स सुलझने (uncoil) तथा एक दूसरे से अलग होने लगते हैं। ये दोनो एक दूसरे से पूरी तौर पर अलग नही हो जाते वल्कि किसी एक स्थान पर जुडे रहते हैं। जिन स्थानो पर ये जुडे रहते हैं, उन्हें कैएजमेटा (chiasmata) कहते हैं। इन स्थानो पर वाइवैलेन्ट क्रोमोसोम के एक सहयोगी क्रोमोसोम (partner chromosome) का एक क्रोमैटिड दूसरे सहयोगी क्रोमोसोम के टूटे हुए क्रोमैटिड के दूसरे सिरे से जुड जाता है।

(च) डाईकाइनेसिस (*Diakinesis*)—इस अवस्था में वाइवैलेन्ट के दोनो सहयोगी क्रोमोसोम्स पूरी तौर पर अलग-होने लगते हैं। न्यूक्लियर मेम्बरेन धीरे-धीरे गायव हो जाती है, न्यूक्लियर तर्कु (nuclear spindle) वन जाता है और क्रोमोसोम्स तर्कु या स्पिन्डिल से चिपकने के लिए तैयार हो जाते हैं।

(२) मेटाफेज (*Metaphase*)—इस अवस्था में प्रत्येक वाइवैलेन्ट क्रोमोसोम (bivalent chromosome) तर्कु या स्पिन्डिल से अपने दोनो सेन्ट्रोमीयर्स (centromeres) द्वारा इस प्रकार चिपक जाता है कि एक सेन्ट्रोमीयर तर्कु के मध्य भाग (equatorial plane) के ऊपर और एक नीचे रहता है। प्रत्येक वाइवैलेन्ट क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स अव भी परस्पर जुडे रहते है।

(३) ऐनाफेज (*Anaphase*)—अव वाईवैलेन्ट के दोनो सहयोगी क्रोमोसोम्स, जिसमे से प्रत्येक में दो क्रोमैटिड्स होते हैं। इस प्रकार एक दूसरे से अलग हो जाते हैं कि उनमें से एक क्रोमोसोम एक सेन्ट्रोसोम की ओर और दूसरा दूसरे सेन्ट्रोसोम की ओर चला जाता है। इस प्रकार यदि सेल में क्रोमोसोम्स की सख्या ८ है तो सन्तति कोशिकाओ (daughter cell) में केवल ४ क्रोमोसोम्स रह जाते हैं।

(४) **टीलोफेज** (*Telophase*)—आमतौर पर टीलोफेज में परिपक्व-प्रावस्था (maturation phase) का दूसरा विभाजन भी शुरू हो जाता है। इसी प्रावस्था में प्रत्येक न्यूक्लियस में क्रोमोसोम्स की संख्या आधी या एकगुणित (हैप्लोइड) हो जाती है। परिपक्व प्रावस्था के दूसरे विभाजन में क्रोमोसोम्स, जिनमें से प्रत्येक दो परस्पर सेन्ट्रोमीयर द्वारा जुड़े क्रोमैटिड्स (chromatids) का बना होता है, रहते हैं, स्पिन्डिल के मध्यभाग से जुड़ जाते हैं। इस प्रकार दूसरी परिपक्व प्रावस्था (second maturation division) के **प्रोफेज** (prophase) और **मेटाफेज** (metaphase) का अन्त हो जाता है। ये दोनो ही ठीक माइटोसिस की सी होती हैं। **ऐनाफेज** में सेन्ट्रोस्फीयर का विभाजन होता है जिसके बाद प्रत्येक क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स एक दूसरे से अलग होकर विमुख ध्रुवो (poles) को चले जाते हैं। **टीलोफेज** ठीक माइटोसिस जैसी होती है।

माईओसिस का महत्त्व

(१) इसके फलस्वरूप **गैमीट्स** (gametes) में क्रोमोसोम्स की संख्या **आधी** या हैप्लोइड (haploid) हो जाती है। संसेचन (fertilisation) के फलस्वरूप जाइगोट (zygote) में क्रोमोसोम्स की संख्या **डिप्लोइड** (diploid) हो जाती है।

(२) इसके फलस्वरूप क्रोमोसोम्स के नये संयोग (combinations) बन सकते हैं।

गैमिटोजेनेसिस

(Gametogenesis)

नर तथा मादा मे **जनन कोशिकाओ** या गैमीट्स (gametes) के बनने की पूरी विधि को **गैमिटोजेनेसिस** (gametogenesis) कहते हैं। **नर गैमीट्स** या युग्मको (gametes) के निर्माण की विधि को **शुक्रजनन** (spermatogenesis) और मादा में अंडे बनने की विधि को **अंड-जनन** (oogenesis) कहते हैं। नर-गैमीट को **शुक्राणु** (sperm) और स्त्री-गैमीट को **अंड** (ovum) कहते हैं। यद्यपि अंड और **शुक्राणु** एक दूसरे से आकार और संरचना में बिलकुल भिन्न होते हैं फिर भी दोनो में परिवर्धन की प्रावस्थाएँ (developmental stages) एक ही सी होती हैं। दोनो की क्रमिक प्रावस्थाएँ निम्न प्रकार होती हैं —

(क) गुणन प्रावस्था (phase of multiplication)

(ख) वृद्धि प्रावस्था (phase of growth)

(ग) परिपक्व प्रावस्था (phase of maturation)

शुक्रजनन

(Spermatogenesis)

वृषण में प्रत्येक शुक्रोत्पादक नलिका (seminiferous tubule) की भीतरी सतह पर जर्मिनल एपिथीलियम (germinal epithelium) होता है। इसकी कुछ कोशिकाओं के बारम्बार माइटोटिक विभाजन से बहुत सी कोशिकायें बन जाती हैं। इस प्रकार गुणन-प्रावस्था के अन्त में इन सेल्स को **स्पर्मेटोगोनिया** (spermatogonia) या **प्रशुक्र कोशिकाएँ** कहते हैं।

अब वृद्धि प्रावस्था आरम्भ होती है। स्पर्मेटोगोनिया के साइटोप्लाज्म में पोषक पदार्थों के इकट्ठा होने से वे कुछ बड़ी हो जाती हैं। इन्हें अब **प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट्स** (primary spermatocytes) कहते हैं। वृद्धि प्रावस्था के बाद ही परिपक्वता-प्रावस्था (maturation phase) शुरू हो जाती है। इस प्रावस्था में दो बार कोशिका विभाजन होता है—**प्रथम परिपक्वता विभाजन** (first maturation division) और **द्वितीय परिपक्वता विभाजन** (second maturation division)। इनमें से प्रथम परिपक्वता विभाजन **माइओटिक** (meiotic) और दूसरा **माइटोटिक** (mitotic) होता है।
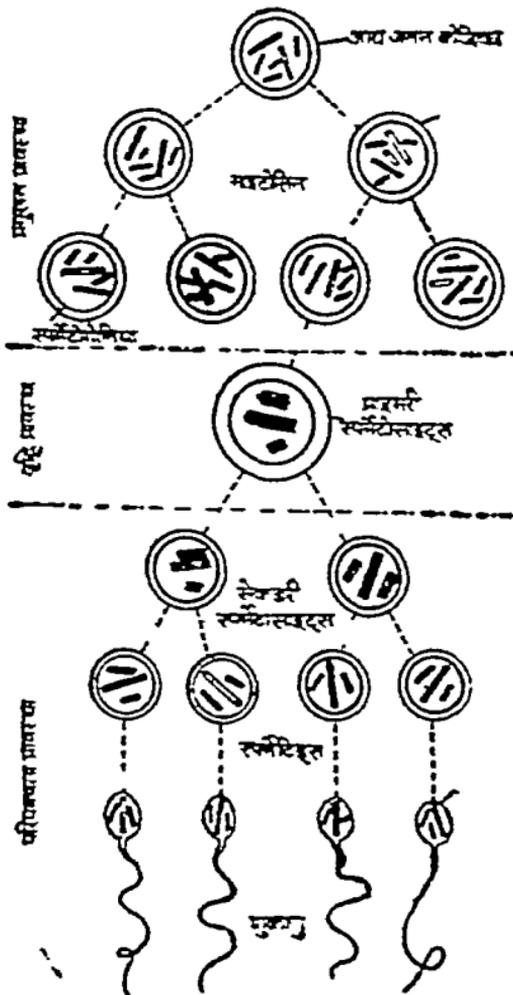
चित्र १२३—शुक्रजनन

प्रथम परिपक्वता विभाजन के पूर्व प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट्स के समजात क्रोमोसोम्स (homologous chromosomes) का युग्मन (pairing) होता है। यदि किसी प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट में क्रोमोसोम्स की संख्या ६ है तो समजात क्रोमोसोम्स के केवल **तीन जोड़े** (three pairs) मिलेंगे ये जोड़े तर्कु या स्पिन्डिल के तन्तुओं से चिपक जाते हैं। प्रत्येक युग्म का हर एक

समजात क्रोमोसोम दो क्रोमैटिड्स में विभाजित होता है। ऐनाफेज में प्रत्येक जोडे का एक क्रोमोसोम तर्कु के एक सिरे पर और दूसरा दूसरे सिरे पर चला जाता है। इस प्रकार **प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट** से बननेवाली दोनो कोशिकाओ जिन्हे **सेकेंडरी** स्पर्मेटोसाइट्स (secondary spermatocytes) कहते हैं, में, केवल ३ क्रोमोसोम्स होते है, अर्थात् उनकी सख्या **हैप्लोएड** (haploid) हो जाती है।

सेकेंडरी स्पर्मेटोसाइट्स (secondary spermatocytes) का अब माइटोटिक विभाजन होता है जिससे प्रत्येक डॉटर सेल में तीन क्रोमैटिड्स (chromatids) या डॉटर क्रोमोसोम्स पहुँचते है। इस प्रकार प्रत्येक स्पर्मेटोगोनियम से चार **स्पर्मेटिड्स** (spermatids) बन जाते हैं। इनके भिन्नन से शुक्र कोशिकाएँ या शुक्राणु बन जाते है। स्पर्मेटिड का न्यूक्लियस **सिर** बनाता है, साइटोप्लाज्म से फ्लैजिलम सदृश लम्बी पूंछ बनती है और सेन्ट्रोसोम तथा माइटोकौन्ड्रिया मध्यस्थल (middle piece) बनाते हैं। सिरे के अगले सिरे पर एक्रोसोम (acrosome) होता है जो कि गौल्जी बॉडी का बना होता है।

अण्डजनन

(Oogenesis)

इसकी गुणन प्रावस्था (phase of multiplication) मे अडाशय के जर्मीनल एपिथीलियम (germinal epithelium) की कोशिकाओ के विभाजन से **ऊगोनिया** (oogonia) बनती हैं। वृद्धि प्रावस्था (phase of maturation) में प्रत्येक ऊगोनियम के साइटोप्लाज्म में योक (yolk) तथा अन्य पोषक पदार्थों के पर्याप्त मात्रा में इकट्ठे होने से वह बहुत बडी हो जाती है। उसे अब **प्राइमरी ऊसाइट** (primary oocyte) कहते हैं।

परिपक्वता प्रावस्था में **प्रथम माइओटिक विभाजन** असमान होता है जिससे एक बहुत ही छोटी सी कोशिका जिसे **फर्स्ट पोलर बॉडी** (first polar body) कहते है और एक बडी कोशिका जिसे **सेकेंडरी ऊसाइट** (secondary oocyte) कहते हैं बन जाती हैं। यद्यपि पोलर बॉडी या लोपिका में न्यूक्लियर द्रव्य का ठीक आधा भाग होता है फिर भी साइटोप्लाज्म का लगभग पूर्ण अभाव होता है जिससे सेकेंडरी ऊसाइट मे योकसहित सारा का सारा साइटोप्लाज्म पहुँच जाता है।

सेकेंडरी ऊसाइट का फिर दुबारा असमान विभाजन होता है किन्तु यह माइटोटिक होता है। इससे फिर दो असमान कोशिकायें या सेल्स बनती हैं, बड़ी को अंड या ओवम (ovum) और छोटी को सेकेंड पोलर बाडी कहते हैं। कभी कभी फर्स्ट पोलर बॉडी का भी विभाजन होता है जिससे अंड जनन में प्रत्येक ऊगोनियम दो या तीन पोलर बॉडी और एक बड़ा सा अंडा (egg) उत्पन्न करती है। पोलर बॉडी तो सदैव नष्ट हो जाते हैं किन्तु अंडा संसेचन के लिए पूरी तौर पर तैयार हो जाता है।
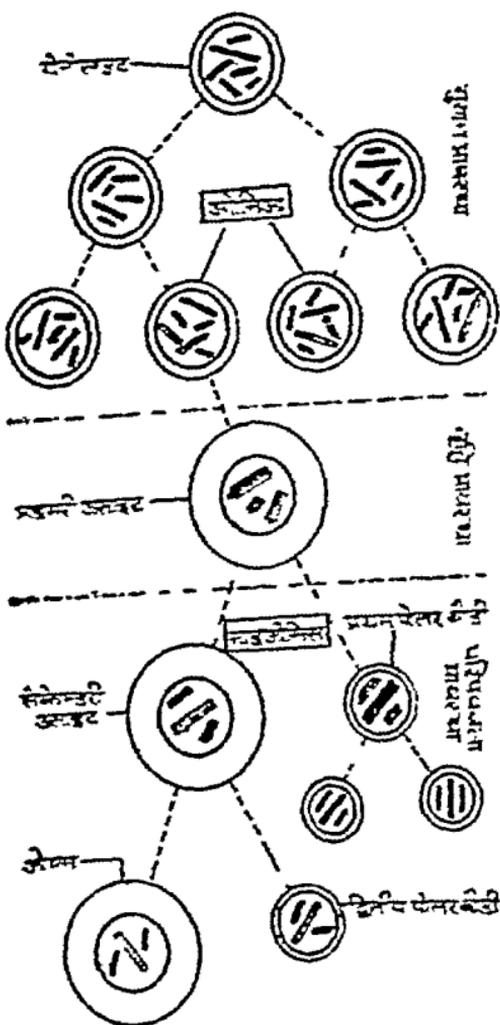
चित्र १२४—अंडजनन

अंड जनन में पोलर बॉडी का बनना क्यों आवश्यक है? यदि प्रत्येक ऊगोनियम से चार बराबर बराबर आकार की अंड-कोशिकायें (egg cells) बनतीं तो उस दशा में साइटोप्लाज्म में मिलनेवाले योक का भी समान विभाजन हो जाता। इस असमान विभाजन के कारण २-३ पोलर बॉडी बनकर नष्ट हो जाते हैं किन्तु प्राइमरी ऊसाइट में इकट्ठा लगभग संपूर्ण साइटोप्लाज्म और योक ओवम या अंड में इकट्ठा हो जाता है। इसमें इकट्ठे योक के सहारे ही संसेचित (fertilised) अंडे का परिवर्धन (development) टैडपोल तक हो सकता है। टैडपोल स्वयं भोजन ग्रहण कर सकता है और इस समय तक अंडे में इकट्ठा भोजन भी समाप्त हो जाता है।

वरटिब्रेट्स में अंडाशय से सदैव प्राइमरी ऊसाइट्स बाहर निकलते हैं। इनका परिपक्वन (maturation) सदैव अंडाशय के बाहर होता है। अंडवाहिनी (oviduct) में नीचे खिसकते समय फर्स्ट पोलर बॉडी बनता है। सेकेंड पोलर बॉडी के बनने के लिए सेकेंडरी ऊसाइट में शुक्राणु का प्रवेश करना आवश्यक होता है।

प्रश्न

१—समसूत्रण या माइटोसिस का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

२—माइटोसिस तथा माइओसिस में क्या उल्लेखनीय अन्तर होते हैं ?

३—निम्नलिखित में से किन्ही चार पर टिप्पणियाँ लिखो —

(क) अण्डजनन (oogenesis)

(ख) शुक्रजनन (spermatogenesis)

(ग) पोलर बॉडी (polar body)

(घ) माइओसिस (meiosis)

(च) क्रोमोसोम्स (chromosomes)

(छ) क्रोमैटिड्स (chromatids)

(ज) सेन्ट्रोसोम (centrosome)

अध्याय १५

मैथुन, संसेचन तथा भ्रूण-परिवर्धन

भारतीय मेढक का जनन काल (breeding season) जून के अन्तिम सप्ताह से सितम्बर के अंत तक लगभग तीन महीने रहता है। उत्तरी भारत में इन्हीं दिनो वर्षा होती है। जनन काल में मेढक कामातुर हो जाते है। नर मेढक के वृषण एक प्रकार का **हारमोन** उत्पन्न करते हैं जो उसमें कई उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। नर मेढक में अगली टाँगो की तर्जनी के नीचे **मैथुन गद्दियाँ** (copulatory pads) बन जाती है तथा वह समाजप्रिय (social) हो जाता है। नर और मादा छिछले या उथले तालाबो और अन्य स्थानो में इकट्ठे पानी में एकत्र होने लगते हैं। नर अपने **स्वर कोषों** या **वोकल सैक्स** को फुलाकर टर्र-टों टर्र-टों का शोर मचाकर मादा को आकर्षित करता है।

मैथुन (*Copulation*)

मैथुन के लिए नर मादा की पीठ पर चढकर उसे अपनी अगली टाँगो की सहायता से पकड लेता है। मैथुन-गद्दियाँ इस पकड को और अधिक दृढ बना देती हैं। इस दशा में मादा ही तैरती है, नर केवल सतुलन बनाए रखने के लिए कभी-कभी अपनी पिछली टाँगें चलाता है। मैथुन का मुख्य प्रयोजन एक ही स्थान पर नर द्वारा शुक्राणुओ का और मादा द्वारा अडो का स्खलन करना है। कभी कभी तो इसमें कई दिन लग जाते हैं।

अंडरोपण

क्लोएकल छेद के बाहर पानी में निकलते ही प्रत्येक अडे में जेली का आवरण पानी सोखकर लसलसा और फूल जाता है। इस लसलसे आवरण द्वारा अडे एक दूसरे से चिपक जाते हैं और **अडसमूह या स्पॉन** (spawn) बनाते हैं। जेली के होने से कई लाभ हैं —

(१) अडसमूह बनाने के अलावा यह बैक्टीरिया तथा फफूँदी के स्पोर्स (fungal spores) और धूल के कणों से अडो की रक्षा करती है।

(२) यह अडा तथा भ्रूण को रगड (friction) से बचाये रखती है।

(३) जेली होने से अडे एक दूसरे से सटे नही होते जिससे आक्सीजन और सूर्य का प्रकाश मिलने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती।

(४) हल्की होने से यह अड-समूह को उतराने मे सहायता देती है और आमतौर पर किसी जलीय पौधे से अटका देती है।

(५) अस्वादिष्ट होने के कारण मछलियाँ तथा पानी के कीडे अडसमूह नही खाते।

(६) कभी कभी जेली में एल्गी तथा अन्य प्रकार के छोटे जलीय पौधे उलझ जाते हैं और प्रकाश-सश्लेषण द्वारा आक्सीजन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार अडसमूह को साँस लेने के लिए आक्सीजन की कमी नही रहती।

चित्र १२५—मेढक का अडसमूह

(७) जेली एक कडेन्सर (condenser) के समान कार्य करती है। इसकी सहायता से सूर्य की गर्मी भीतर तो घुस जाती है किन्तु निकल नही पाती जिससे बाहर की अपेक्षा अडो में अधिक गर्मी बनी रहती है।

मेढक के अडे का व्यास लगभग १४ इच होता है। अडे के इतने बडे होने का कारण केवल यही है कि इसके साइटोप्लाज्म में **योक** की काफी मात्रा इकट्ठी रहती है। अडे के ऊपरी हल्के भाग को, जिसमें साइटोप्लाज्म न्यूक्लियस तथा काला रग मिलता है, **प्राणि ध्रुव** (animal pole) कहते हैं। अडे के निचले भाग को जिसमें योक भरा रहता है **वजीटल पोल** (vegetal pole) कहते हैं। इस प्रकार के अडे को जिसमें योक केवल एक ही ध्रुव में इकट्ठा रहता है **टीलोलेसीयल** या **एकत-पीती** (telolecithal) कहते हैं।

जनन काल में मैथुन के फलस्वरूप मादा मेढक इस प्रकार के हजारो अडो का स्खलन करती हैं। इन्ही के ऊपर नर अपने शुक्राणु स्खलित कर देता है। इस प्रकार मैथुन के फलस्वरूप अडों और शुक्राणुओ के एक ही स्थान में स्खलित होने से अडो के ससेचन में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। इस प्रकार मेढक में सदैव **बहिर्संसेचन** (external fertilisation) होता है। शुक्राणु
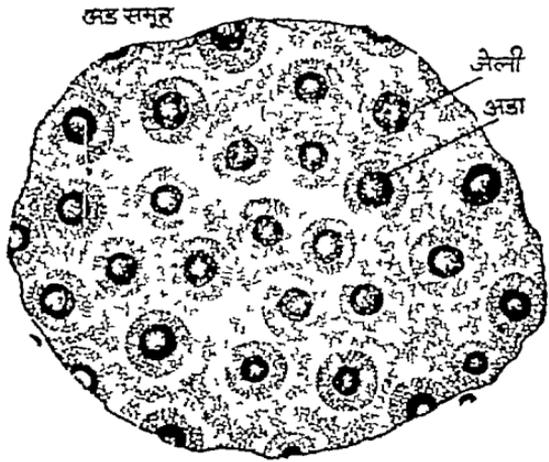
अपनी पूंछ की सहायता से पानी में तैरते हैं। इनमें से कुछ अडे की जेली में घुस जाते हैं। जिस स्थान पर शुक्राणु विटेलाइन झिल्ली (vitelline membrane) को छूता है वह एक नुकीले उभार के रूप में ऊपर उठ आता है। इसे प्रवेश शकु (receptor cone) कहते हैं। यहां पर एक शुक्राणु अपनी पूंछ की गति के फलस्वरूप विटेलाइन मेम्ब्रेन में छेद करके अडे के साइटोप्लाज्म में घुस जाता है।

अडे (सेकेंडरी ऊसाइट) में घुसने के बाद शुक्राणु के न्यूक्लियस को **मेल प्रोन्यूक्लियस** (male pronucleus) कहते हैं। अडे में शुक्राणु के घुसने से जो उद्दीपन मिलता है उससे वह द्वितीय पोलर बॉडी बनाता है और स्वय **अड या ओवम** हो जाता है। ओवम का न्यूक्लियस अब **फीमेल प्रोन्यूक्लियस**
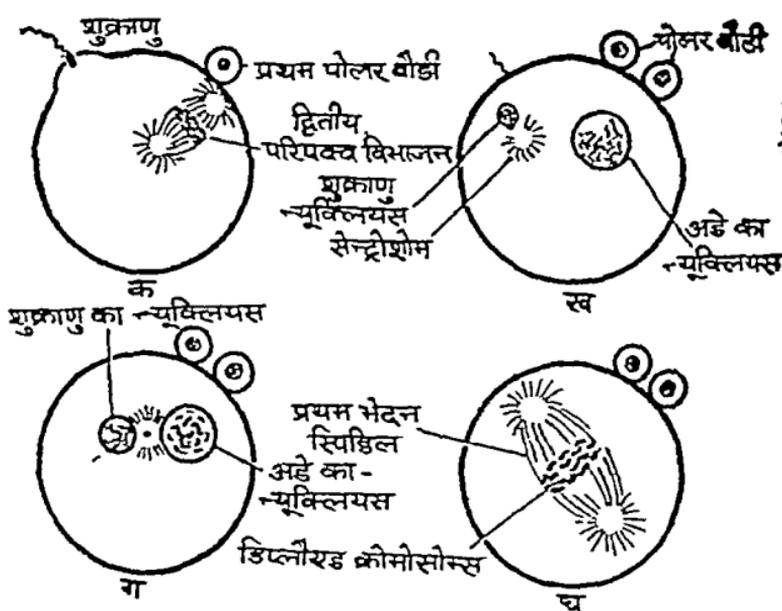
चित्र १२६—संसेचन की प्रावस्थाएं

(female pronucleus) कहलाता है। अब मेल और फीमेल प्रोन्यूक्लियस एक दूसरे की ओर बढते हैं, शुक्राणु का मध्य स्थल (middle piece) अब दो सेन्ट्रोसोम बनाता है जिनके बीच में तर्कु बन जाता है। दोनों प्रोन्यूक्लियाई के क्रोमोसोम्स तर्कु से चिपक जाते हैं। यही तर्कु (spindle) खडीभवन (segmentation) के प्रथम विभाजन में भी काम देता है।

संसेचन के मुख्य परिणाम

(१) सर्वप्रथम संसेचन-झिल्ली (fertilisation membrane) बन जाती है।

(२) शुक्राणु के अडे में प्रवेश करने के वाद वह सेकेंड पोलर बॉडी वनाता है।

(३) ससेचन के फलस्वरूप ससेचित अडे में क्रोमोसोम्स की सख्या डिप्लोइड (diploid) हो जाती है। इस प्रकार नर तथा मादा के आनुवशिक गुण मिल जाते हैं।

(४) अडे में सेन्ट्रोसोम नहीं होता किन्तु ससेचन इस अभाव को दूर कर देता है।

(५) अडे में प्रवेश शुक्र खडीभवन के प्रथम-विभाजन का स्थल निश्चित करता है। इस विभाजन के फल-स्वरूप भ्रूण की बाइलेट्रल सिमेट्री (bilateral symmetry) निश्चित हो जाती है।

चित्र १२७—ससेचित अडे

(६) ससेचन के फलस्वरूप अडे को खडीभवन के लिए उद्दीपन मिलता है।

(७) ससेचन के बाद प्रत्येक अडा सिकुडता है जिससे विटेलाइन मेम्बरेन से अलग होकर वह इस प्रकार घूम जाता है कि प्राणि-गोलार्ध (animal pole) ऊपर आ जाता है।
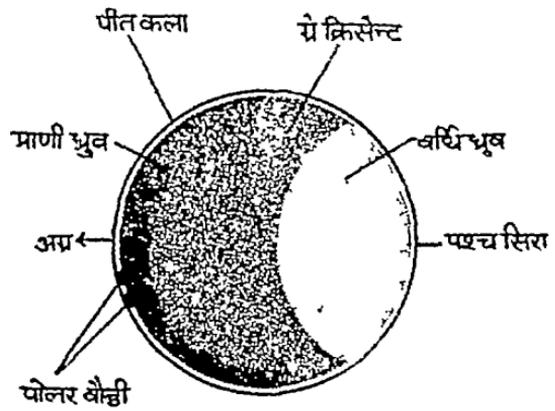
खंडीभवन या क्लीवेज

(Segmentation or cleavage)

ससेचन के २½—३ घटे बाद ससेचित अडे का विभाजन आरम्भ हो जाता है। इस विभाजन को जिसके फलस्वरूप ससेचन अंडा (fertilised) अनेक
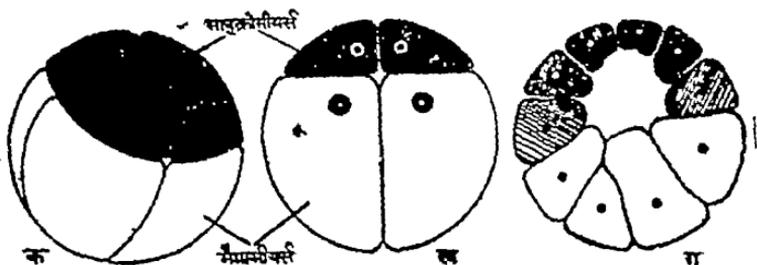
चित्र १२८—खडीभवन (segmentation) की प्रारभिक अवस्थाएं

कोशिकाओ मे बंट जाता है, सैगमेन्टेशन या खडीभवन (segmen-

tation) कहते हैं। विभाजन सदैव माइटोटिक (mitotic) होता है। प्रथम भाजन रेखा प्राणि-ध्रुव से वर्धि-ध्रुव तक फैली होती है। दूसरी भाजन या **भेदन प्रसीता** (cleavage furrow) भी खडी (vertical) किन्तु प्रथम के साथ समकोण वनाती है। इस प्रकार ससेचित अड चार वरावर वरावर आकार की कोशिकाओ या **ब्लास्टोमीयर्स** (blastomeres) में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक ब्लास्टोमीयर का ऊपरी भाग काला और निचला भाग सफेद और योक से भरा होता है। तीसरी भाजन रेखा ट्रासवर्स प्लेन में होते हुए भी प्राणि-ध्रुव के अधिक समीप होती है। इस प्रकार आठ कोशिकाएँ वन जाती हैं जिनमें से ऊपरी चारो सेल्स छोटी किन्तु रगीन और नीचे की चारो वडी और रगहीन होती हैं। ऊपर की चारो कोशिकाओ को **माईक्रोमीयर्स** (micromeres) और नीचे की चारो वडी सेल्स को **मैक्रो या मैगामीयर्स** (megameres) कहते हैं। **चौथी और पाँचवीं** भेदन प्रसीताएँ (cleavage furrows) खडी (vertical) या मेरीडियोनल (meridional) होती है। ये पहली और दूसरी मेरीडियोनल प्रसीताओ के वीच वनती हैं। इस प्रकार कोशिकाओ की सख्या १६ हो जाती है। इसके वाद दो ट्रासवर्स भेदन प्रसीताएँ वनती हैं जिससे भ्रूण में सेल्स की संख्या ३२ हो जाती है।
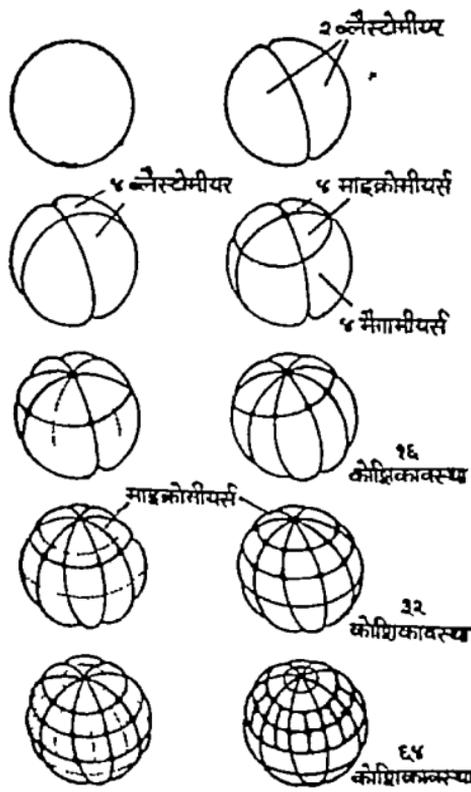
चित्र १२९—खडीभवन या सैगमेन्टेशन

इसके वाद अनियमित खडीभवन (segmentation) होता है—योक के न होने से माइक्रोमीयर्स (micromeres) का विभाजन तेजी से होता है किन्तु मैगामीयर्स में योक की उपस्थिति से तर्कु या स्पिन्डिल आसानी से नही वन पाता जिससे इसका विभाजन धीरे-धीरे होता है। इस प्रकार के खडी-भवन के फलस्वरूप **मोरयूला** (morula) वन जाता है जिसका ऊपरी भाग माइक्रोमीयर्स का और निचला भाग मैगामीयर्स का वना होता है। खडी-

भवन के क्रम के आगे बढने से एक खोखली गेंद के समान सरचना बन जाती है जिसे **ब्लैस्टयूला** (blastula) कहते हैं। बाहर से देखने पर इस भ्रूणीय (embryonic) अवस्था में तथा **ससेचन** अड में कोई अन्तर नही होता क्योकि दोनो के आकार एक होते हैं और दोनो में ही रग तथा योक का एक ही-सा वितरण होता है। ब्लैस्ट्यूला की द्रव से भरी गुहा को **ब्लैस्टोसील** (blastocoel) कहते हैं। इस गुहा की गोल गुम्बज के आकार की छत अनेक रगीन किन्तु योकरहित (yolkless) **माइक्रोमीयर्स** की बनी होती है ब्लैस्ट्यूला की गुहा का फर्श अपेक्षाकृत बडी योक से भरी किन्तु रगहीन **मैगामीयर्स** (megameres) का बना होता है। ब्लैस्ट्यूला की कोशिकाओ का अब **सभावी क्षेत्रों** (presumptive areas) में भिन्नन (differentiation) आरम्भ हो जाता है। माइक्रोसर्जीकल रीति से यह स्पष्ट हो गया है कि ब्लैस्ट्यूला के कुछ भाग विशेष अगो के निर्माण के लिए विशेषित हो जाते हैं। ब्लैस्ट्यूला का लगभग पूरा प्राणि-ध्रुव **सभावी एक्टोडर्म** (presumptive ectoderm) बनाता है जिसे आगे चलकर सभावी एपिडर्मिस और सभावी न्यूरल प्लेट में विभाजित कर सकते हैं। प्राणि तथा वर्धि गोलार्धो के बीच **संभावी नोटोकोर्ड** का छोटा सा क्षेत्र होता है। इसके समीप ही **सभावी मीजोडर्म** (presumptive mesoderm) होता है। वर्धि गोलार्ध (vegetal hemisphere) जो मैगामीयर्स का बना होता है, सभावी **एन्डोडर्म** बनाता है।
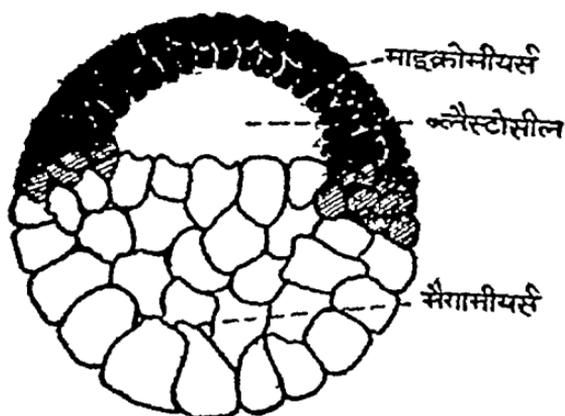
चित्र १२०—मेढक का ब्लैस्ट्यूला

गैस्ट्रूलेशन (*Gastrulation*)

गैस्ट्रूलेशन या गैस्ट्रूला के निर्माण मे वास्तव में सभावी क्षेत्रो का पुनर्विन्यास (rearrangement) होता है जिससे ये क्षेत्र भ्रूण में अपने उचित स्थान में पहुँच जाते हैं और साथ ही साथ उचित स्थान घेर लेते हैं। उदाहरण के लिए गैस्ट्रूलेशन के फलस्वरूप सभावी एपिडर्मिस तथा न्यूरल प्लेट जो मिलकर एक्टोडर्म बनाते हैं भ्रूण की पूरी बाहरी सतह ढक

लेते हैं और नोटोकोर्ड, मीजोडर्म, जो वाहर स्थित होते हैं खिसककर भीतर पहुँच जाते हैं।

मेढक में गैस्ट्रूलेशन निम्नलिखित तीन तरीको से होता है —

(अ) एपिबोली या परिवृद्धि (epiboly or overgrowth)

(आ) इन्वैजिनेशन या अन्तर्गमन (invagination or emboly)

(इ) ब्लास्टोपोर के प्रतिपृष्ठ तथा पृष्ठ होठो का कुचन।

माइक्रोमीयर्स का मैगामीयर्स के ऊपर फैलना या परिवृद्धि और इन्वैजिनेशन लगभग एक ही साथ आरम्भ होते हैं। प्राणि-ध्रुव की रगीन कोशिका माइक्रोमियर्स धीरे-धीरे मैगामियर्स के ऊपर फैलते जाते हैं। इनके उत्तरोत्तर फैलने से सभावी न्यूरल प्लेट पृष्ठ सतह पर और एपिडर्मिस भ्रूण के शेष वाहरी भाग को रोक लेते हैं।

इन्वैजिनेशन (invagination) का आरम्भ सभावी नोटोकॉर्ड के निकट होता है। आरम्भ में एक छोटा सा अर्द्ध चन्द्राकार (semilunar) गड्डा दिखाई देता है। धीरे-धीरे इस भाग की सेल्स भीतर धंसती है। भीतर धंसने पर पास-पड़ोस में खिचाव होता है। भारी भरकम मैगामियर्स तो अपनी जगह से खिसकते नहीं किन्तु सभावी नोटोकोर्ड की सेल्स धीरे-धीरे भीतर खिचती जाती हैं। वाहरी सतह से हटने पर न्यूरल-प्लेट और एपिडर्मिस को फैलने का और अधिक स्थान मिल जाता है। इस प्रकार जो गहरी कैनाल सी वन जाती है उसे **आरकैन्ट्रान** (archenteron) और उसके वाहर की ओर खुलनेवाले छेद को **ब्लास्टोपोर** (blastopore) कहते हैं। जैसे-जैसे आरकैन्ट्रोन वढती जाती है **ब्लास्टोसील** (blastocoel) घटती जाती है। ब्लास्टोपोर के ऐन्टीरियर सिरे पर **पृष्ठ होंठ** (dorsal lip) और दोनो
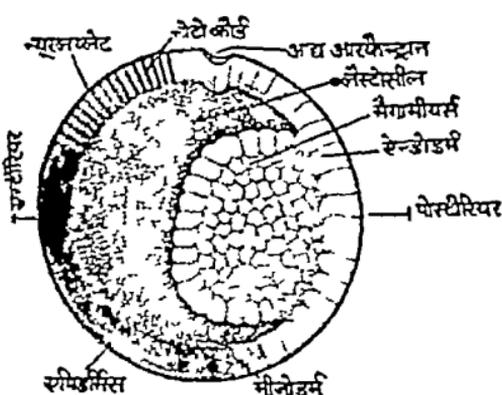
चित्र १३१—ब्लैस्ट्यूला का सैजाइटल सेक्शन
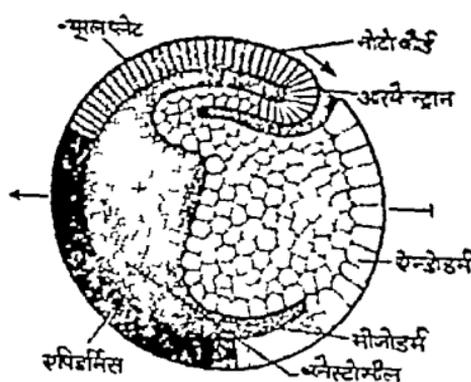
चित्र १३२—प्रारम्भिक गैस्ट्रूला का सैंजाइटल सेक्शन

तरफ पार्श्व होठ (lateral lips) होते हैं। माइक्रोमियर्स के और फैलने पर **ब्लास्टोपोर** गोल दिखाई देता है। इस समय इसके पिछले भाग मे **प्रतिपृष्ठ** होठ (ventral lip) होता है। अन्त में ब्लास्टोपोर के **पृष्ठ** तथा **प्रतिपृष्ठ** होठो के सिकुडने से मैगामियर्स भीतर खिसक जाती हैं और ब्लास्टोपोर बहुत छोटा हो जाता है। इस अवस्था में योक से भरे मैगामियर्स एक खूंटी के समान सरचना के रूप में ब्लास्टोपोर में दिखाई देते हैं। इस अवस्था को **गैस्ट्रुला या योक प्लग स्टेज** (yolk plug stage) कहते हैं।

चित्र १३३—गैस्ट्रुलेशन की चित्र १३२ की अपेक्षा अधिक प्रगत अवस्था
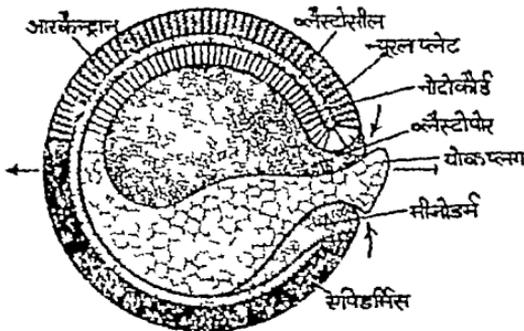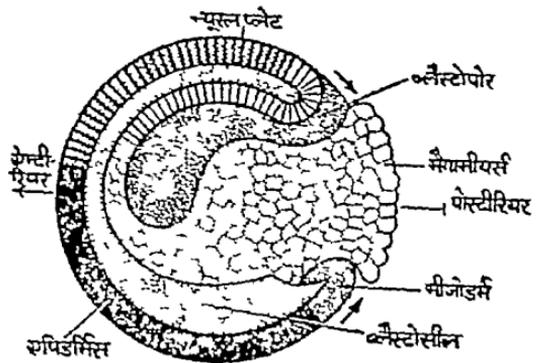
इस प्रकार गैस्ट्रुला एक दोहरी दीवारो की थैली के समान भ्रूणीय अवस्था होती है। इसकी बाहरी दीवार एक्टोडर्म (अर्थात् एपिडर्मिस और न्यूरल प्लेट) की बनी होती है। इसी प्रकार भीतरी दीवार में मैगामियर्स और नोटोकौर्डल सेल्स (अर्थात् एण्डोडर्म) होती है। मीजोडर्म प्रतिपृष्ठ होट के समीप एक्टोडर्म और एण्डोडर्म के बीच धँसना आरम्भ करता है। इस भ्रूणीय अवस्था

चित्र १३४—गैस्ट्रुला का सेक्शन
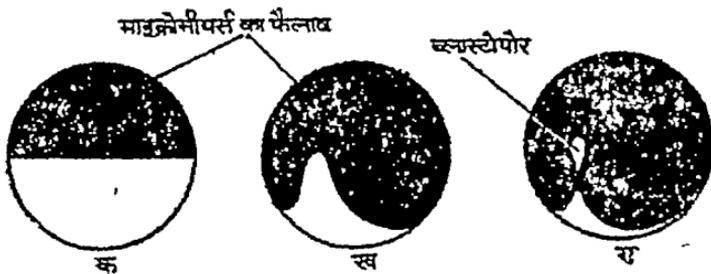
चित्र १३५—माइक्रोमीयर्स का मैगामीयर्स पर फैलाव

की गुहा को आरेकेन्ट्रान कहते हैं जो **ब्लास्टोपोर** द्वारा बाहरी जगत से सम्बन्ध बनाये रखती हैं। इस प्रकार गैस्ट्रूलेशन के समाप्त होने तक सभी क्षेत्र यथा-

स्थान पहुँच जाते है। ब्लैस्ट्यूला अवस्था में उतराते समय प्राणि-ध्रुव ऊपर होता है और इसी में ब्लास्टोसील (blastocoel) होती हैं किन्तु गैस्ट्रुलेशन के समाप्त होने पर आर्केन्ट्रान ऊपर आ जाती है और ब्लास्टोपोर पिछले सिरे (posterior end) पर पहुँच जाता है।

भ्रूण में तीन पर्त या जर्मीनल लेयर्स (germinal layers) होती है। इन्ही से शरीर के सभी अंगो का निर्माण होता है —

एक्टोडर्म	मीजोडर्म	एन्डोडर्म
(१) एपिडर्मिस	(१) पेरिटोनियम	(१) नोटोकोर्ड
(२) केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र	(२) पेरिकार्डियम	(२) आहार-नाल का एपिथीलियम
(३) प्राक्टोडियम और स्टोमोडियम की झिल्ली या एपिथीलियम	(३) ऐच्छिक और अनैच्छिक पेशियाँ	(३) जठर तथा इन्टेस्टाइनल ग्रंथियाँ
(४) नेत्रो के लेन्स	(४) हड्डियाँ, कार्टिलेज तथा अन्य प्रकार के संयोजीऊतक, स्नायु	(४) यकृत, अग्न्याशय
(५) रैटिना कौर्निया	(५) एडिपोज टिशू	(५) फेरिंक्स
(६) कनजक्टाइवा	(६) डर्मिस	(६) यूस्टेकियननलिका
(७) आइरिस तथा उसकी पेशियाँ	(७) वाहिनियाँ, एक्सक्रीटरी तथा जनन तंत्र	(७) फेफड़े और ट्रेकिया
(८) त्वचीय ग्रन्थियाँ	(८) तन्त्रिका तन्तुओ की मेडयुलरीशीथ	(८) मूत्राशय
(९) ऐनामल	(९) प्लीहा या तिल्ली	
(१०) मेम्ब्रेनस लैबिरिन्थ	(१०) लेन्स, कौर्निया और रैटिना के अलावा नेत्र के अन्य भाग	

पोस्ट-गैस्ट्रुला अवस्था
(Postgastrula Stage)

गेस्ट्रुला अवस्था के वाद भ्रूण कुछ लम्बा हो जाता है और अब इसमें विभिन्न तन्त्रो (systems) की स्थापना होती है। गैस्ट्रुलेशन के अन्त में न्यूरल प्लेट भ्रूण के पृष्ठ भाग में मध्य रेखा के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती हैं। इसी प्लेट से आगे चलकर मस्तिष्क और रीढ-रज्जु वनते हैं।

न्यूरल प्लेट के थोडा नीचे धँस जाने से दोनो किनारे **न्यूरल फोल्ड्स** के रूप में ऊपर उठ जाते हैं। जैसे-जैसे **न्यूरल फोल्ड्स** ऊपर उठते और एक दूसरे की तरफ वढते हैं, न्यूरल ग्रूव (neural groove) अधिकाधिक गहरा होता जाता है। दोनो फोल्ड्स के तटो के परस्पर मिलने से **न्यूरल** या **तन्त्रिका नाल** (neural canal) वन जाती है। न्यूरल फोल्ड्स पिछले सिरे पर एक दूसरे से मिलने के पहले ब्लास्टोपोर को ढक लेते हैं जिससे न्यूरल-कैनाल और आरकेन्ट्रोन के बीच एक छोटी सी न्यूरेन्ट्रिक-कैनाल (neurentric canal) सम्बन्ध वनाये रखती है। न्यूरल-नाल भीतर धँसकर आरकेन्ट्रोन के ऊपर स्थित होती है। इसका अगला सिरा मस्तिष्क और पिछला भाग रीढ-रज्जु वनाता है। भ्रूण की इस अवस्था को **न्यूरुला** (neurula) कहते है। इसी अवस्था मे आरकेन्ट्रोन की प्रतिपृष्ठ सतह से नोटो कौर्डल सेल्स अलग होकर

चित्र १३६—न्यूरल ट्यूब का निर्माण
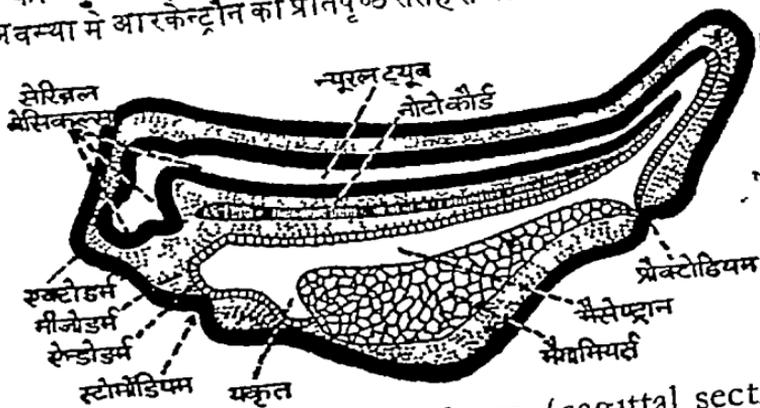
चित्र १३७—न्यूरुला का सेजाइटल सेक्शन (sagittal section)

नोटोकौर्ड वनाती हैं जो न्यूरल ट्यूब (neural tube) तथा आरकेन्ट्रोन के वीच नोटोकौर्ड वनाती हैं। कुछ वैज्ञानिको के अनुसार नोटोकौर्ड मीजोडर्म से वनता है। अलग होने के वाद नोटोकौर्डल सेल्स एक वेलनाकार सरचना वनाती है जो इस अवस्था में एक्सिएल स्कैलिटन का कार्य करता है। इस अवस्था में नोटोकौर्ड के इधर-उधर एक्टोडर्म और एन्डोडर्म के वीच मीजोडर्म ऊपर से नीचे फैली होती है इनके पृष्ठ-पार्श्व (dorso-lateral) भागों में एक दरार सी वन जाती है। जो धीरे-धीरे प्रतिपृष्ठ सतह की ओर वढती जाती है। इसी गुहा को **सीलोम** (coelome) कहते हैं।

टेडपोल
(*Tadpole*)

समेचन के लगभग १५ दिनो वाद भ्रूण जो कि अव लगभग ६ मिलीमीटर लम्वा होता है, सीलिएटिड एक्टोडर्मल कोशिकओ की सहायता से जेली के भीतर हिलने-डुलने लगता है। वरावर रगड लगने से जेली फट जाती है और शिशु-टेडपोल (early-tadpole) पानी में निकल आता है।
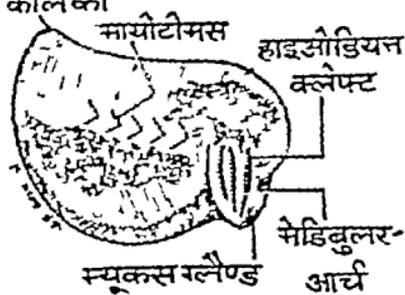
चित्र १३८—जेली के वाहर निकलने के पूर्व शिशु-टेडपोल

शिशु-टेडपोल अवयवहीन (limb-less) मुखहीन, नेत्रहीन और काले रग का होता है इसकी लम्वाई लगभग ७ मिलीमीटर होती है। और शरीर केवल सिर, धड तथा वहुत छोटी पूंछ में वंटा होता है। इस समय यह सीलिया (cilia) की सहायता से थोडा वहुत कठिनता से तैर सकता है। इसी लिए यह किसी जलीय पौधे से चिपक जाता है। नेत्र, घ्राण-कोष, मुख तथा क्लोएकल छेद के निशान इसमें अवश्य होते हैं किन्तु इनमें से कोई भी अग क्रियाशील नहीं होता। वाह्य जल श्वसनिकाओं (external gills) के भी स्पष्ट चिह्न होते हैं। **स्टोमोडियम** (stomodeum) या भावी मुख के ठीक नीचे **सिमेन्ट-ग्लैण्ड** (cement gland) होती है जिसकी सहायता से टेडपोल जलीय पौधो से चिपक जाता है। ये पौधे प्रकाश-सश्लेषण द्वारा आक्सीजन उत्पन्न करते हैं जिससे इन्हें त्वचीय-श्वसन के लिए आक्सीजन की कमी नहीं होती।

शीघ्र ही शिशु-टेडपोल के दोनो ओर पहले दो-दो और फिर तीन-तीन पक्षवत (feathery) **वाह्य जल-श्वसनिकाएं** या **एक्सटर्नल गिल्स** निकल आती हैं, पूंछ लम्वी हो जाती है और मुख द्वार वन जाता है। शिशु टेडपोल

तो सचित योक के सहारे जीवित रहता है लेकिन इस अवस्था में अब यह बाह्य जल-श्वसनिकाओ की सहायता से सांस लेता है। यह लम्बी तथा पक्षयुक्त पूंछ की सहायता से तैरता है और मुख द्वारा पेड-पौधे जैसे काई (Algae) खाने लगता
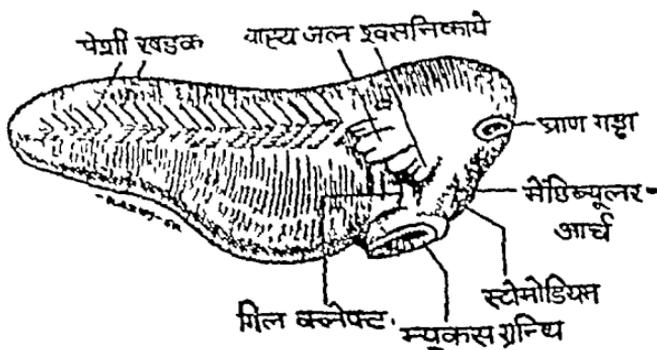
चित्र १३९—जेली के बाहर निकलने पर शिशु-टैडपोल

है। इस प्रकार का भोजन खाने में सहायता देने के लिए इसके मुख के ऊपर-नीचे हौर्नी जबडे (horny jaws) बन जाते हैं जिनमें हौर्नी दांत भी होते हैं। इस समय तक सिमेन्ट ग्लैण्ड गायब हो जाती है। शाकाहारी या हर्बिवोरस होने के कारण इसकी आहार-नाल जो कि अब तक चौडी और छोटी थी, बहुत लम्बी हो जाती है। छोटी-सी देहगुहा मे समाने के लिए इसे घडी की कमानी (spring) की तरह कुडलित (coiled) होना पडता है।

लगभग १५-१६ घटे तक टैडपोल बाह्य जल-श्वसनिकाओं से सांस लेता है। इसी बीच इसके सिर के पिछले भाग में दोनो तरफ चार-चार दरारें या गिल क्लेफ्ट्स (gill clefts) बन जाते हैं। इनकी दीवारो में गिल-फिलामेन्ट्स (gill-filaments) बनने लगते
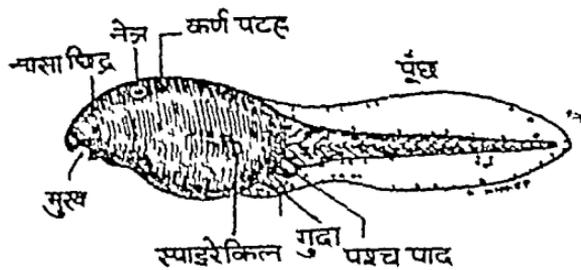
चित्र १४०—आन्तरिक श्वसनिकाओ से सांस लेनेवाला टैडपोल

हैं। इसके बाद सबसे आगे के गिल क्लेफ्ट के ठीक आगे से त्वचा का एक एक ढक्कन जिसे औपर्क्युलम या ढापन (operculum) कहते हैं निकलना आरभ करता है। ये धीरे-धीरे पीछे की ओर फैलते जाते हैं और अन्तिम गिल क्लेफ्ट के पीछे देह-भित्ति से मिल जाते हैं? केवल बाईं ओर एक छोटा सा छेद छूट जाता है जिसे स्पाइरेकिल (spiracle)

कहते हैं। इस प्रकार सभी वाह्य जल-श्वसनिकाएँ ढक जाती हैं और धीरे-धीरे गायब होती जाती हैं। इनकी जगह आन्तरिक जल-श्वसनिकाएँ (internal gills) ले लेती हैं। इस अवस्था में टेडपोल विलकुल मछलियो की तरह साँस लेता है। मुख में होता हुआ पानी फैरिक्स में घुमता है और वहाँ से गिल क्लेफ्ट में होता हुआ ओपर्क्युलम में जाता है और अन्त में स्पाइरेकिल (spiracle) में होता हुआ वाहर निकल जाता है।

चित्र १४१—टेडपोल का प्रतिपृष्ठ दृश्य
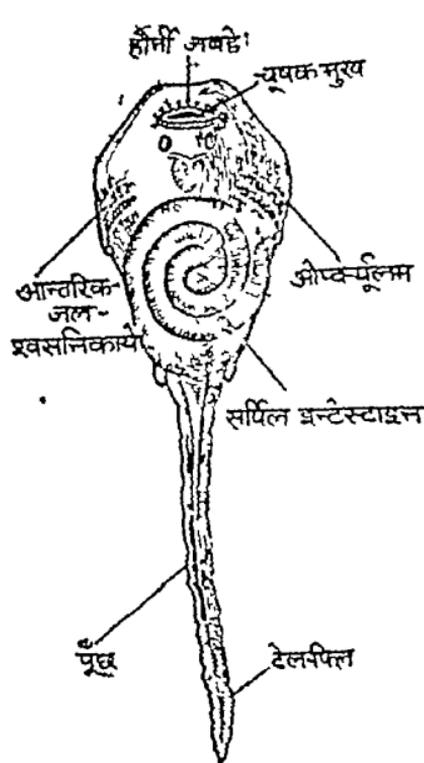
अब टेडपोल पूरी तौर पर वढ जाता है। इसका शरीर शिर, धड और पूंछ में बांटा जा सकता है। धड सिर की अपेक्षा अधिक चौडा और गोल होता है किन्तु पूंछ चपटी, पेशीय और लम्बाई में सिर और धड दोनो से वडी होती है। इसमें पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ पक्षत (ventral fin) होते हैं जिससे यह तैरने का सफल अग होती है। इसी समय अगली और पिछली टाँगें नन्ही-नन्ही कलिकाओ के रूप में निकलना आरम करती हैं किन्तु पिछली टाँगें अधिक शीघ्रता से निकलती हैं। क्यो? अगली टाँगो के निकलने में ओपर्क्युल्म वाधा डालते हैं। वारहवें सप्ताह तक वाइं अगली टाँग स्पाइरेकिल में होती हुई वाहर निकल आती है और कुछ समय वाद दाहिनी टाँग ओपर्क्युलम में छेद करके वाहर निकल आती है। इस समय टेडपोल मासभक्षी या कार्निवोरस (carnivorous) हो जाता है। इस समय तक फेफडे भी वन जाते हैं और रूपान्तरण के कुछ पहले यह फेफडो द्वारा साँस लेना शुरू भी कर देते हैं।

टेडपोल का रूपान्तरण (Metamorphosis)

टेडपोल और मेढक के स्वभाव में, आहार तथा शरीर रचना में काफी अन्तर होता है। टेडपोल जल श्वसनिकाओ से साँस लेता है, पेड-पौधे खाता है तथा अपनी लम्बी पूंछ से तैरता है। इसके विपरीत मेढक फेफडो से साँस

लेता है। कीड़े-मकोडे खाता है तथा विना पूंछ का होता है और भूमि पर

चित्र १४२—रूपान्तरण की प्रथम अवस्था

छलाँग भरता है। इससे स्पष्ट है कि टेडपोल में अनेक ऐसे अगो का होना आवश्यक है जिनका मेढको में कोई भी उपयोग नही है। इसीलिए टेडपोल के विभिन्न अगो की रचनाओ में समूल परिवर्तन होना आवश्यक है। जिस समय रूपान्तरण या मेटामौरफोसिस होता है मेढक वास्तव में वडी असहाय अवस्था में होता है क्योकि इस अवस्था में न तो इसके अंग पुराने ढग पर और न नये ढग पर ही काम कर पाते हैं। अत यह अवस्था जितनी ही शीघ्र समाप्त हो जाय उतना ही उसके लिए हितकर होगा। इसी लिए इस समय सभी परिवर्तन वडी तेजी से होते हैं। आकार और स्वभाव के अनुरूप शरीर की विभिन्न सरचनाओं में तेजी से होनेवाले सभी परिवर्तनो को रूपान्तरण या मेटामौर्फोसिस (metamorphosis) कहते हैं। थाइरोएड ग्लैण्ड (thyroid gland) के हारमोन्स रुधिर में पहुँचते ही मेटामौर्फोसिस आरम्भ कर देते हैं।

चित्र १४३—भूमि पर आनेवाला शिशु टेडपोल

टेडपोल के वाह्य आकार में परिवर्तन

(१) इस समय तक दोनो जोडी टाँगो के सभी भाग पूरी तौर पर वन जाते हैं।

(२) फैगोमाइट्स की सहायता से टेडपोल की पूँछ के ऊतक गलकर एक प्रकार का द्रव वनाते हैं जो रुधिर-प्रवाह में पहुँच कर पोषाहार का कार्य करते हैं।

(३) हॉर्नी जवडे और दाँत गायव हो जाते हैं और मुख चौडा हो जाता है।

(४) सिर चपटा हो जाता है और दोनो पार्श्व नेत्र थोडा उभर आते हैं।

(५) औपर्क्युलम और स्पाइरेकिल गायव हो जाते हैं।

(६) त्वचा का रग हल्का हो जाता है।

(७) जीभ अपेक्षाकृत लम्बी हो जाती है।

(८) वाह्य नासाछिद्र आन्तरिक नासाछिद्रो द्वारा मुख-गुहा में खुलते हैं।

आन्तरिक सरचना में परिवर्तन

(१) हर्बिवोरस टेडपोल की लम्बी तथा कुडलीदार आहार-नाल अब लम्बाई में वहुत कम हो जाती है।
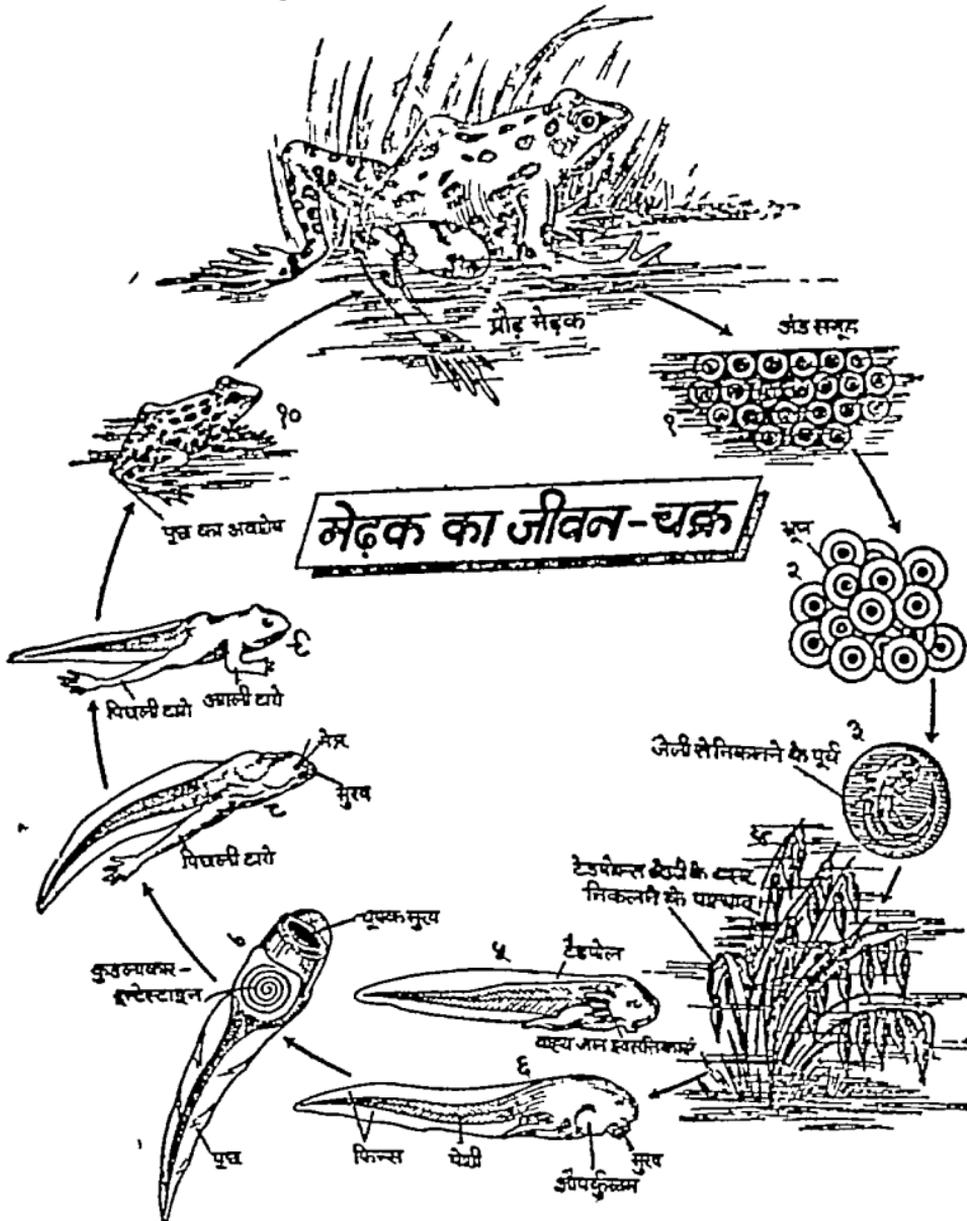
चित्र १४४—मेढक का जीवन-चक्र

(२) आमाशय और यकृत वडे हो जाते हैं।

(३) टेडपोल के ककाल का जो अब तक कार्टिलेज का बना होता है, अधिकाश भाग हड्डियो का बन जाता है।

(४) मस्तिष्क पूरी तौर पर विकसित हो जाता है।

(५) द्विवेष्मी (two chambered) हृदय त्रिवेश्मी हो जाता है।

(६) टेडपोल में केवल आन्तरिक कर्ण होता है किन्तु इस समय मध्य-कर्ण (middle ear) और टिम्पैनम बन जाते है।

(७) रुधिर-वाहिनियो के विन्यास में भी पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है।

स्वभाव में परिवर्तन (*Changes in habits*)

(१) यह अब हर्बिवोरस से इनसैक्टिवोरस (insectivorous) हो जाता है।

(२) यह पानी मे अपनी लम्बी तथा जालदार टाँगो की सहायता से तैरता है और भूमि पर छलाँग मारता है। यह इस समय जलस्थलचर (amphibious) होता है।

(३) यह अपनी लसलसी जीभ द्वारा शिकार पकडता है।

भ्रूणीय परिवर्धन में जो समय लगता है वह आमतौर पर परिस्थिति के अनुसार वदलता रहता है। मेढक के परिवर्धन में कुछ महीने से लेकर दो वर्ष का समय लगता है। बुलफ्राग (bull frog) में लगभग २ वर्ष का समय लगता है किन्तु राना टिग्रीना में १½-२ महीने का समय लगता है।

प्रश्न

१—मेढक के निषेचित अडे की रचना समझाओ और निषेचन क्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

२—निषेचित अडे में खडीभवन (segmentation) का सविस्तर वर्णन योक प्लग स्टेज या गैस्ट्रूला के बनने तक करो। प्रयोगशाला में इन सभी अवस्थाओ को देखने के लिए क्या व्यवस्था करोगे ?

३—मेढक में तीनो जर्मीनल लेयर्स (germinal layers) के निर्माण का वर्णन करो। इन तीनों स्तरो से कौन-कौन से अगो का क्रमश परिवर्धन होता है ?

४—मेढक में मीजोडर्म तथा देहगुहा (coelome) के परिवर्धन का सविस्तर वर्णन करो।

५—अडे के ससेचन से लेकर प्रौढ मेढक के बनने तक कौन-कौन-सी उल्लेखनीय प्रावस्थाएँ (stages) मिलती हैं। सक्षेप में सभी का अलग-अलग वर्णन करो।

६—प्रौढ मेढक के शरीर में कौन-कौन से अगो का परिवर्धन एक्टोडर्म, मीजोडर्म तथा ऐण्डोडर्म से होता है?

७—मेढक के टैडपोल की वाह्य रचना तथा स्वभाव का वर्णन करो। रूपान्तरण में कौन-कौन से उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं?

९—(क) भ्रूण (embryo) तथा लार्वा में क्या अन्तर होता है?

(ख) मेढक के टैडपोल में मछलियो से मिलते-जुलते कौन-कौन लक्षण होते हैं?

अध्याय

खरगोश (*Rabbit*)

यह क्लास मैमेलिया (Mammalia) का प्राणी है। वरटिब्रेटा के इस क्लास (class) में ३०००-४००० जातियों या स्पेशीज के प्राणी मिलते हैं। शारीरिक संरचना, भ्रूणीय परिवर्धन तथा फिजियालोजिकल (physiological) दृष्टिकोण से स्तनधारी (mammal) भूमि पर रहने के लिए उपयुक्त होते हैं। शरीर के परिमाण में स्तनधारियों में काफी अन्तर होता है। खेत में रहनेवाला चूहा करीब एक इंच होता है जब कि इस क्लास का सबसे बड़ा प्राणी जिसे ह्वेल कहते हैं ८० से लेकर १०८ फीट लम्बा होता है। इनके प्राकृतवास में भी पर्याप्त अन्तर होता है। ये ध्रुव प्रदेश, समुद्र की अगाध गहराई में, घने जंगलों में, रेगिस्तान तथा जमीन के अन्दर मिलते हैं।

सृष्टि के अधिकांश विशालकाय तथा मनुष्योपयोगी प्राणी इसी क्लास में मिलते हैं। गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, ऊँट, भेड़, बकरी इत्यादि सभी स्तनधारी होते हैं। मनुष्यों को भोजन के लिए दूध, मांस, चरबी आदि इन्हीं से मिलते हैं। वस्त्रों के लिए ऊन, बाल और खाल मिलती हैं और सहस्रों उपयोगी वस्तुओं के लिए चमड़ा। किसानों को भी इनका बड़ा सहारा है। बोझ लादने और सवारी के लिए भी अनेक मनुष्य इन्हीं पर निर्भर रहते हैं।

खरगोश

(Rabbit)

स्वभाव तथा प्राकृतवास—यह हमारे देश के सभी भागों में मिलता है। यह हमारे खेतों तथा बागों में घुस जाते हैं और नन्हें-नन्हें पौधों को कुतर-कुतरकर खा जाते हैं। खेलने के मैदानों में जगह जगह भॉट (burrows) बनाकर उन्हें खराब कर डालते हैं। सभी बातें इनके विरुद्ध नहीं होतीं। इनसे कुछ आर्थिक लाभ भी हैं—खाने में इनका मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है। इनका समूर (fur) बड़ा सुन्दर होता है। साथ ही प्रयोगशालाओं में इन्हीं पर अनेक फिजियालोजिकल प्रयोग भी किये जाते हैं।

इनके अनेक शत्रु होते हैं। मनुष्य, लोमड़ियाँ, कुत्ते, बिज्जू, बिल्लियाँ, उल्लू, बाज इत्यादि सभी इनके शत्रु हैं। फिर भी इनकी संख्या में कोई कमी नहीं होती। क्यों? इसका कारण इनकी बुद्धि नहीं है। साथ ही साथ इनमें

आत्म-रक्षा का भी कोई साधन नही होता। वास्तव में इनकी रक्षा करने में इनकी निम्नलिखित विशेष आदतें ही सहायता देती हैं —

(१) इनकी महान् जनन-शक्ति (fertility)
(२) भाँट या जमीन में सुरग बनाकर उसके अदर रहने की आदत।
(३) गोधूली वेला भाँट के बाहर निकलना।
(४) माँ द्वारा बच्चो की देखरेख।
(५) तीक्ष्ण दर्शनेन्द्रियाँ (eyes) तथा श्रवणेन्द्रियाँ (ears)।

चित्र १४५—खरगोश का प्राकृतवास

खरगोश की वशवृद्धि बडी तेजी से होती है। लगभग ६ महीने की अवस्था होने पर मादा बच्चा देना शुरू कर देती है और प्रतिवर्ष ५-६ बार बच्चे देती है। एक बार में ६-८ बच्चे होते हैं। बच्चों के मरने की सभावना कम होती है क्योंकि मादा भाँट के भीतर ही बच्चे देती है और उनकी पूरी तौर पर देखभाल करती है। इनकी भाँट में अनेक शाखाएँ होती हैं। दिन में इनका परिवार इसी के भीतर छिपा रहता है। खतरे की आहट पाते ही माँ अपने बच्चो को साथ में लेकर चोर दरवाजे से बाहर भाग जाती है। भोजन तथा खेल-कूद के लिए इनकी टोली आमतौर पर सूर्यास्त के बाद ही भाँट के बाहर निकलती है। बाहर निकलने पर टोली के बडे-बूढे चौकन्ने रहते हैं। इनके लम्बे कान बराबर खडे रहते हैं और जिधर से भी किसी प्रकार के खतरे की आहट मिलती है, उधर ही घूम जाते हैं। किसी प्रकार का खतरा होते ही ये अपनी पिछली लम्बी टाँगो की सहायता से छलाँग भरकर भाग जाते हैं। भोजन की तो इन प्राणियों को किसी भी स्थान में कमी नहीं होती। घास पात के अतिरिक्त ये अनाज, जडें, फल, फूल इत्यादि सभी प्रकार की वस्तुएँ बडे चाव से खाते हैं।

बाह्य आकृति (*External features*)

आमतौर पर सभी स्तनधारियो का शरीर चार स्पष्ट भागो में बाँटा जा सकता है—(१) सिर, (२) धड (trunk), (३) **गर्दन** (neck) तथा (४) पूंछ।

इसकी गर्दन इतनी छोटी होती है कि खरगोश सुनने और पीछे देखने के लिए अपना सिर आसानी से घुमा नही सकता। यदि गर्दन लम्बी होती तो भॉट में तेजी से घुसने पर सिर टकराने की सभावना बनी रहती। गर्दन के न होने से इसे असुविधा होती है उसकी कमी को इसके दोनो नेत्र जो सिर के पार्श्व भागो मे स्थित होते हैं पूरा कर देते हैं। दोनो बडे, कुछ उभरे हुए (protuberant) तथा सिर के इधर उधर स्थित नेत्रों की सहायता से बिना गर्दन घुमाये ही खरगोश आगे-पीछे तथा ऊपर-नीचे भी देख सकता है। प्रत्येक नेत्र में बालदार **ऊपरी** (upper) और **निचली पलकें** (lower eye lids) होती हैं जिनमें **बरौनियाँ** (eye brows) होती हैं। तीसरी पलक जिसे **निक्टीटेटिंग झिल्ली** (nictitating membrane) कहते हैं, अर्ध-पारदर्श (translucent) और बालरहित होती है। यह नेत्र के भीतरी कोने में मिलती है और आवश्यकता पडने पर आँख के ऊपर खीची जा सकती है।
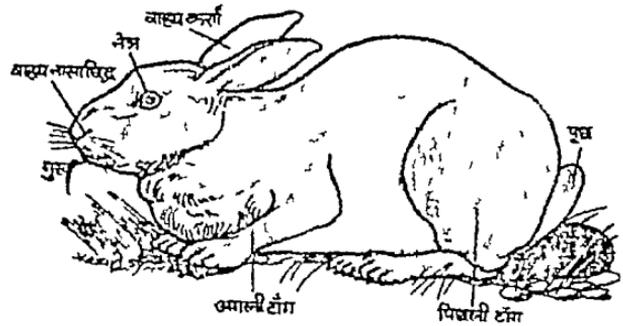
चित्र १४६—खरगोश की बाह्य आकृति

इनके दोनो **बाह्य कर्ण** या **पिन्ना** (external ear) लम्बे, कुछ नुकीले और चल (movable) होते हैं। लम्बे बाह्य कर्णो के होने से इसकी श्रवण-शक्ति तीक्ष्ण होती है। इन्हे मनचाही दिशा में घुमा कर यह आसानी से इस बात का पता चला सकता है कि किस दिशा से आवाज आ रही है। पिन्ना के ऊपरी सिरे बडे सवेदक (sensory) होते हैं। इन्ही की सहायता से खरगोश को पता चल जाता है कि वह अमुक भॉट (burrow) में आसानी से घुस सकता है कि नही।

सिर के सिरे की प्रतिपृष्ठ (ventral) सतह पर **मुख** (mouth) होता है। यह ऊपरी तथा निचले बालदार होठो से घिरा रहता है। ऊपरी होठ बीचोबीच, में कटा होता है जिससे इसके अगले ऊपरी दांत दिखाई

पडते हैं। इस प्रकार के होठ को हेअर लिप या फ्लौष्ठ (hare lip) कहते हैं। इसके तुड (snout) के इधर-उधर विशेष प्रकार के लम्बे, कटे तथा संवेदक (sensory) बाल होते हैं जिन्हें प्रश्मश्रु या विवरैसी (vibrissae) कहते हैं। इनकी जडो से संवेदक तन्त्रिका के तन्तु जुडे रहते हैं। इन बालों की सहायता से खरगोश को भॉट की चौडाई (width) का अनुमान हो जाता है।

इनका धड (*trunk*) दो भागो में बँटा होता है—(१) वक्ष (thorax) तथा उदर (abdomen)। वक्ष सँकरा और पसलियो (ribs) से घिरा रहता है किन्तु उदर अधिक चौडा होता है और इसकी प्रतिपृष्ठ सतह पर कोई भी हड्डी नहीं होती। मादा में इसी तरह पर छोटे-छोटे चूचुकों (teats) के चार या पाँच जोडे मिलते हैं। बच्चो के पोषण के लिए इन्ही से दूध निकलता है।

धड के अगले सिरे के इधर-उधर दोनो अगली टाँगें होती हैं। ये पिछली टाँगो की अपेक्षा छोटी और कम लचीली होती हैं। छलाँग लेने के बाद जब खरगोश भूमि पर आता है तो सर्वप्रथम ये ही शरीर का भार सम्हालती हैं। प्रत्येक अगली टाँग में तीन भाग होते हैं—(१) उत्तर बाहु (२) अग्रबाहु और (३) हाथ या हस्त। उत्तर बाहु का ऊपरी भाग वक्ष से सटा रहता है और त्वचा से ढका रहता है। हाथ या पजे में पाँच नखरयुक्त (clawed) अँगुलियाँ होती हैं भीतरी अँगुली सबसे छोटी होती है और भूमि पर बैठे होने पर भूमि को नहीं छूती। इसे पोलेक्स (Pollex) कहते हैं।

पिछली टाँगें (hind limbs) अगली टाँगो की अपेक्षा अधिक लम्बी और पेशीय (muscular) होती हैं। प्रत्येक पिछली टाँग में चार स्पष्ट भाग होते हैं—ऊरु (thigh), जांघ (shank), गुल्फ या टखना (ankle) और पाद (foot)। प्रत्येक टाँग मे केवल चार नखरयुक्त अँगुलियाँ होती हैं। हमारी टाँगो में भीतरी ओर अँगूठा या हेलेक्स (hallux) होता है किन्तु खरगोश में यह गायब हो जाता है। भूमि पर बैठे होने पर ऊरु (thigh) का ऊपरी भाग आगे की ओर, जघा पीछे की ओर और गुल्फ तथा पाद आगे की ओर झुके रहते हैं जिससे पिछली टाँगों को सीधा करते ही यह छलाँग भर सकता है।

धड के पिछले सिरे पर एक छोटी सी पूँछ होती है जो एक प्रकार से विपत्ति-संकेत (danger signal) का कार्य करती है। खतरे का आभास पाते ही इनकी टोली के बडे-बूढे अपनी पूँछ हिलाकर छोटे-छोटे सदस्यो को सचेत कर देते हैं जिससे वे जल्दी से जल्दी भॉट में चले जावें। पूँछ के आधार के समीप गुदा (anus) तथा जनन मूत्र-द्वार (urinogenital aperture) अलग-अलग होते हैं। नर में जनन मूत्र-द्वार शिश्न (penis) के सिरे पर होता है। शिश्न के सिरे पर एक रक्षक आवरण होता है जिसे
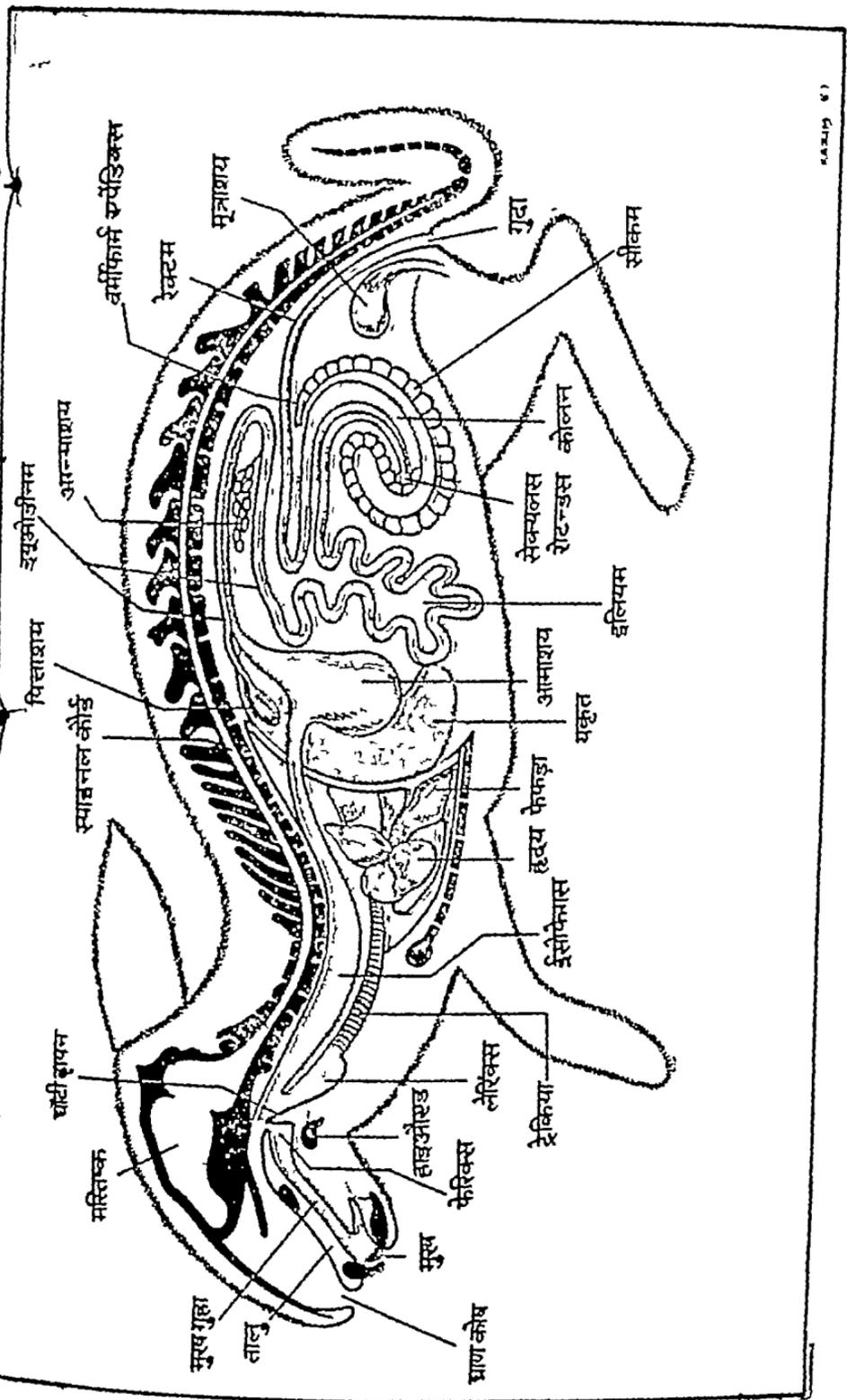
चित्र १४८—खरगोश के पूर्ण शरीर का लौंगिट्युडिनल सेक्शन

प्रिप्यूस (prepuce) या शिश्नाग्र कहते हैं। शिश्न के आधार पर एक छोटी सी थैली होती है जिसे **स्क्रोटल सैक** या **वृषण-कोष** (scrotal sac) कहते हैं। मादा में जनन-मूत्र द्वार **योनि** (vulva) कहलाता है। गुदा और जनन-मूत्र द्वार के बीच एक छिछला गढा होता है जिसमें **पेरिनीयल ग्रन्थियाँ** (perineal glands) होती हैं।

(१) आन्तरग या विसरा (*Viscera*)

वक्षगुहा और उदरगुहा (abdominal cavity) में स्थित अगो की स्थिति समझने के लिए इन दोनो प्रदेशो के ट्रासवर्स सेक्शन्स का अध्ययन आवश्यक है।

उदर(abdomen)के ट्रासवर्स सेक्शन को देखो। पृष्ठ सतह का अधिकाश भाग वरटिब्रल कॉलम तथा पेशियो से घिरा रहता है। पार्श्व तथा प्रतिपृष्ठ सतह की भित्तियाँ पतली होती हैं। बीच में विशाल देह-गुहा या **सीलोम** (coelome) होती है जिसमें **सीलोमिक द्रव** (coelomic fluid) भरा होता है। देह-भित्ति
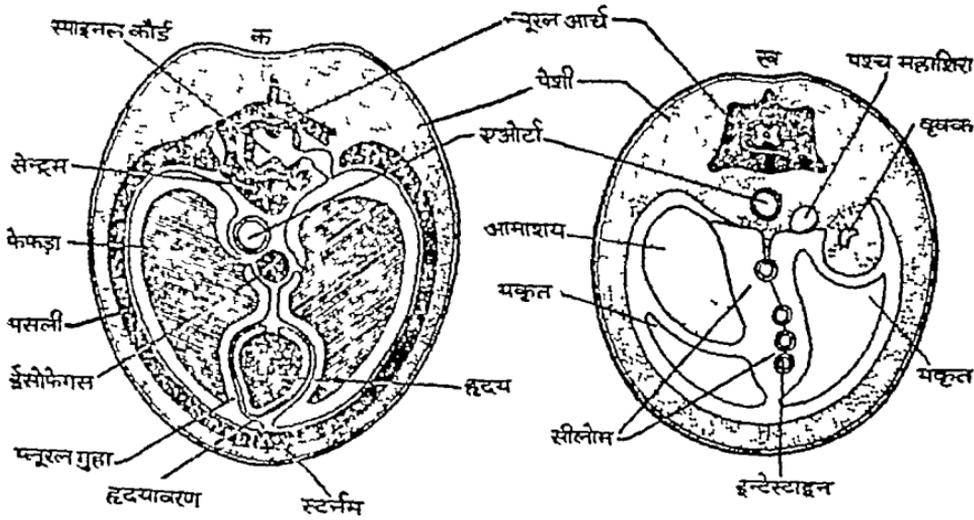
चित्र १४७—क, खरगोश के **थोरैक्स** और ख, **एबडोमेन** के सेक्शन्स

की भीतरी सतह पर एक चमकदार पतली सफेद झिल्ली मढी रहती है। इसे **पेरिटोनियम** या **उदर्या** कहते हैं। पृष्ठ सतह पर वरटिब्रल कॉलम के नीचे दोनो ओर से आनेवाली **पेरिटोनियम** मिलकर एक दोहरी पर्तवाली झिल्ली बनाती है जिसे **मैसेण्टरी**(mesentery)कहते हैं। उदर-गुहा में स्थित आमाशय छोटी आँत तथा अन्य आतरग इसी झिल्ली से घिरे रहते हैं जिससे वे एक दूसरे से बँधे रहते हैं और आसानी से अपनी-अपनी जगहो से खिसकने नही पाते। वरटिब्रल कॉलम के इधर-उधर दोनो वृक्क (kidneys) होते हैं। ये देह-गुहा में उभरे हुए दिखाई देते हैं और केवल प्रतिपृष्ठ सतह पर पेरिटोनियम से ढके रहते हैं।

वक्ष-प्रदेश (thorax) के ट्रान्सवर्स सेक्शन में आहार नाल का केवल ईसोफेगस (oesophagus) नाम का ही भाग दीखता है। पृष्ठ सतह पर वरटिब्रल कॉलम होता है। वरटिब्री या कशेरुक से जुड़ी पसलियाँ होती हैं। प्रतिपृष्ठ सतह पर स्टर्नम (sternum) होता है। वक्ष गुहा का अधिकांश भाग दोनों फेफड़े तथा हृदय घेरे रहते हैं। फेफड़ों के चारो ओर प्लूरा या फुफ्फुसावरण (pleura) होता है। हृदय के चारो ओर पेरिकार्डियम (pericardium) होता है।

(२) त्वचा (Skin)

मेंढक के विपरीत खरगोश की त्वचा सूखी, अपेक्षाकृत अधिक मोटी तथा बालदार होती है और संरचना भी मेंढक की अपेक्षा अधिक जटिल होती है।

मेंढक की तरह खरगोश की त्वचा में भी दो स्तर होते हैं —

(१) एपिडर्मिस (epidermis) (२) डर्मिस (dermis)

(१) एपिडर्मिस (epidermis)—एपिडर्मिस वास्तव में एक प्रकार का स्ट्रेटिफाइड एपिथीलियम (stratified epithelium) है। इसकी भीतरी पर्त जिसे मैलपीघियन स्तर (malpighian layer) कहते हैं कॉलमनर, गोल तथा चपटी कोशिकाओं की बनी होती है। सबसे नीचे के
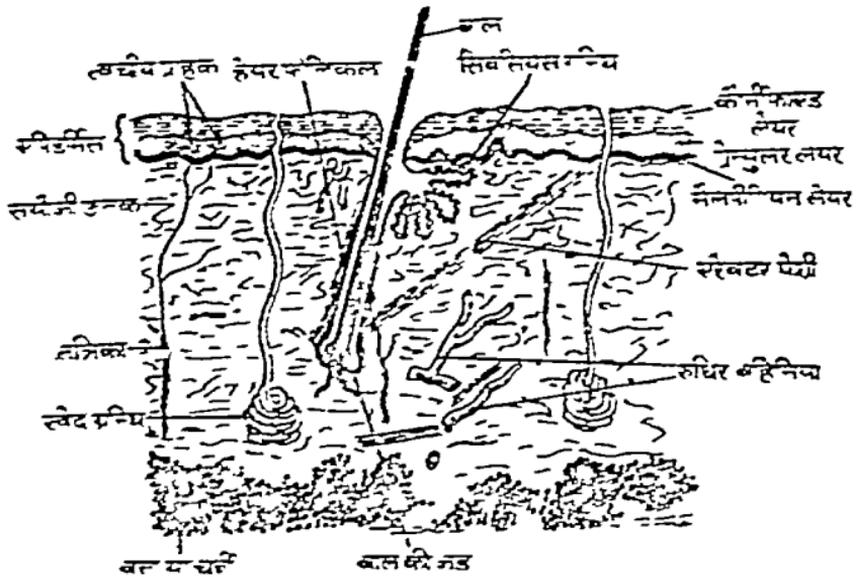
चित्र १४९—स्तनधारी की त्वचा का सेक्शन

स्तर की कोशिकाएँ लम्बी (columnar) होती हैं और इनमें माइटोटिक विभाजन की क्षमता होती है। इनके विभाजन से जो नई नई कोशिकाएँ बनती हैं, वे जैसे जैसे ऊपर की ओर खिसकती हैं, चपटी होती जाती हैं। इस स्तर में रुधिर वाहिनियाँ (blood vessels) नहीं होती हैं फिर भी सेल्स के बीच-बीच

खाली जगह (intercellular spaces) होती है। जीवित कोशिकाएँ परस्पर प्रोटोप्लाज्मिक तन्तुओ (threads) द्वारा जुडी रहती हैं। इस प्रकार लसीका (lymph) इन कोशिकाओ के बीच-बीच की खाली जगहो मे घुस जाती है और इन्हें पोषाहार (nutrition) पहुँचाती है।

मैलपीगियन स्तर के ऊपर **स्ट्रेटम ग्रैन्युलोसम** (stratum granulosum) होता है। यह स्तर २-३ सेल्स मोटा होता है। इसके ऊपर **स्ट्रेटम लुसिडम** (stratum lucidum) होता है। स्ट्रेटम ग्रैन्युलोसम की सेल्स ग्रैन्युलर (granular) होती है और स्ट्रेटम लुसिडम की सेल्स साफ होती हैं। इसके ऊपर **स्ट्रेटम कौर्नियम** (stratum corneum) होता है। इसकी सेल्स चपटी, अस्पष्ट और मृत होती हैं। ये सभी **कैरेटिन** (keratin) की बनी होती हैं और रगड़ खाकर झडती रहती हैं। तलुओ में स्ट्रेटम कौर्नियम सबसे अधिक मोटा होता है। नेत्रो के कौर्निया (cornea) में इस स्तर की कोशिकाएँ पूरी तौर पर पारदर्श होती हैं और झडती नही। **स्ट्रेटम मैलपिगाइ** (stratum malpighi) की सबसे निचली पर्त की कोशिकाएँ तन्त्रिका तन्तुओ से जुडी रहती हैं। इसी स्तर की कोशिकाओ में रग की कणिकाएँ होती हैं। सफेद चमडी या गोरे लोगो में इन कणिकाओं का अभाव होता है।

स्तनधारियो की त्वचा में बाल (hair) भी होते हैं। ये एपिडर्मिस द्वारा निर्मित **केश-कूपो या हेयर-फोलिकलों** (hair follicles) में धँसे रहते हैं। बाल का जितना भाग केश कूप के भीतर रहता है उसे जड़ (root) कहते हैं। जड का निचला सिरा फैलकर एक उल्टे प्याले सदृश रचना बनाता है जिसमें रुधिर केशिकाओ का एक गुच्छा होता है। इस भाग को बल्ब (bulb) कहते हैं। रक्त द्वारा पोषण होते रहने से इस भाग की सेल्स का बराबर विभाजन हुआ करता है। जैसे-जैसे नई सेल्स ऊपर खिसकती है, वे चपटी, मृत और **कैरेटिन** की बनकर बाल का निर्माण करती हैं। केशकूपों से जुडी विशेष प्रकार की अनैच्छिक पेशियाँ होती हैं जो अपने कुचन से बालो को सीधा खडा करने में सहायता देती हैं।

त्वचा में जगह-जगह **कुडलित नालाकार स्वेद ग्रन्थियाँ** (coiled tubular sweat glands) होती हैं। इनका निचला ग्रन्थिल भाग कुडलित और वाहिनियाँ (ducts) लहरियादार होती हैं। ग्रन्थिल भाग के चारो ओर केशिकाओ का एक जाल होता है। जिन स्तनधारियो में त्वचा में घने बाल होते हैं उनमें स्वेद ग्रन्थियाँ कुछ विशेष स्थानो में मिलती हैं—**मनुष्य** में पूरे शरीर में, **बिल्ली** और **चूहो** में केवल तलुओ में और **कुत्तों** में ये नाक, जीभ और मुखगुहा की श्लेष्मिक् झिल्ली में मिलती हैं।

(२) डर्मिस (dermis)—एपिडर्मिस की अपेक्षा यह अधिक मोटा होता है और इसका अधिकाश भाग सयोजी ऊतक का बना होता है। यह एक मजबूत नमदे के रूप में होता है। डर्मिस के ऊपरी भाग में बहुत ही छोटे-छोटे उभार मिलते हैं। इनमें से कुछ उभारो में केशिकाओ के गुच्छे मिलते हैं। तन्त्रिका तन्तु एपिडर्मिस के मैलपीगियन स्तर में मिलते हैं और त्वचीय ग्राहक अग (skin receptors) बनाते हैं। इसके अलावा रुधिर लिम्फ वाहिनियाँ, रुधिर-वाहिनियाँ, अरेखित पेशी तन्तु, केशकूप, स्नेह ग्रन्थियाँ (sebaceous glands) तथा स्वेद-ग्रन्थियाँ सभी डर्मिस में मिलती हैं। स्नेह-ग्रन्थियाँ केशकूपो से जुडी रहती हैं और एक प्रकार की चर्बी बनाती हैं। इन्हीं के परिवर्तन से स्तन-ग्रन्थियाँ (mammary glands) बन जाती हैं। डर्मिस के निचले भाग में चर्बी की एक मोटी पर्त होती है।

त्वचा के कार्य

(Functions of skin)

(१) यह एक सफल रक्षक आवरण है।

(अ) यह दबाव, रगड तथा आघातो से शरीर की रक्षा करती है।

(आ) बाल तथा चर्बी की तह बाहरी आघात (या चोट) के प्रभाव को कम कर देती है।

(इ) यह रोगाणुओं (germs) को शरीर मे घुसने से रोकती है।

(ई) यह शरीर के भीतरी अगो से जल की हानि रोकती है।

(२) त्वचा का एपिडर्मिस सींग, खुर, नखर (claws), नाखून आदि उपयोगी अगों का निर्माण करता है।

(३) धूप में त्वचा का रग बदल (tanned) जाता है जिससे हानिकारक प्रकाश-रश्मियाँ भीतर घुसने नहीं पातीं।

(४) यह अवशोषक अग का भी थोडा बहुत काम करती है। तेल, मरहम इत्यादि को आसानी से सोख लेती है।

(५) यह शारीरिक ताप का नियमन करती है। गर्मी के दिनों में या अधिक दौड-धूप करने पर जब शरीर में गर्मी बढ जाती है तो त्वचीय रुधिर वाहिनियाँ अधिक चौडी हो जाती हैं जिससे रुधिर-प्रवाह बढ जाने से वह अधिक गर्म हो जाती है। ऐसी दशा में त्वचा के सम्पर्क में आनेवाली वायु थोडी गर्मी ले जाती है। साथ ही पसीना भी खूब निकलता है। जब पसीना भाप बनकर उडता है तो गुप्त उष्मा (latent heat) के रूप में शारीरिक गर्मी का उपयोग

होता है। इसके विपरीत जाडे में रुधिर वाहिनियाँ अपने आप सिकुड जाती हैं और पसीना भी कम निकलता है। वाल और चर्बी के स्तर भी गर्मी की हानि कम करते हैं।

(६) त्वचा एक भांडार का भी कार्य करती है। सवक्युटेनियस चर्बी (subcutaneous fat) वास्तव मे सचित भोजन का ढेर है जिसका आवश्यकता पडने पर उपयोग किया जा सकता है। चर्बी की पर्तें शारीरिक सौन्दर्य को निखारने मे सहायता देती हैं

(७) त्वचा एक सफल स्पर्शेन्द्रिय (sense of touch) का भी कार्य करती है। इसके द्वारा रासायनिक पदार्थों, स्पर्श, दवाव, गर्मी, सर्दी, इत्यादि उद्दीपनो का आसानी से पता चल जाता है। त्वचा की सतह पर मृत कोशिकाओ की पर्तें तन्त्रिका तत्र को अधिक उद्दीप्त होने से वचाती है।

(८) यह एक उत्सर्जक अग का भी काम करती है। पसीने में यूरिया की थोडी सी मात्रा होती है।

(९) यह एक स्रावक अग (secretory organ) का कार्य करती है। स्तन-ग्रन्थियाँ शिशु के पोषण के लिए दूध उत्पन्न करती हैं। त्वचा की स्नेह ग्रन्थियो से एक प्रकार का तेल निकलता है जो त्वचा पर फैलकर उसे अधिक स्निग्ध और कोमल वना देता है। और साथ ही साथ जल मे भीगने से वचाता है।

(१०) स्नेह-ग्रन्थियो से निकलनेवाले सीवम (sebum) में एक प्रकार के एस्टर्स (esters) होते हैं जो सूर्य के प्रकाश में विटामिन D में वदल जाते हैं। वाल चाटनेवाले जानवरो को इस प्रकार विटामिन D मिलने में असुविधा नहीं होती।

(११) कुछ अशो में त्वचा आक्सीजन तथा कार्वन डाई-आक्साइड की लेन-देन में या श्वसन में भी सहायता देती है।

(१२) **सैकेंडरी सैक्सुयुल आकर्षण**—सीग, त्वचा या वालो का रग अनेक स्तनधारियो में नर का आकर्षण वढाता है।

(३) पाचन-तत्र (Digestive system)

मेंढक और खरगोश के पाचन तत्र की आधारभूत (basic) सरचना एक ही सी होती है। इस तत्र को तुम निम्नलिखित पाँच शीर्षको में वाँट सकते हो :—

(१) आहार-नाल (alimentary canal)

(२) भोजन और उसका पाचन

(३) पचे हुए भोजन का अवशोषण

(४) एसिमिलेशन या स्वागीकरण

आहार नाल

आहार नाल का आरभ मुखगुहा में होता है। खरगोश का मुख सिर के अगले सिरे पर होता है। यह ऊपरी और निचले होंठों से घिरा रहता है।

चित्र १५०—खरगोश की आहार नाल
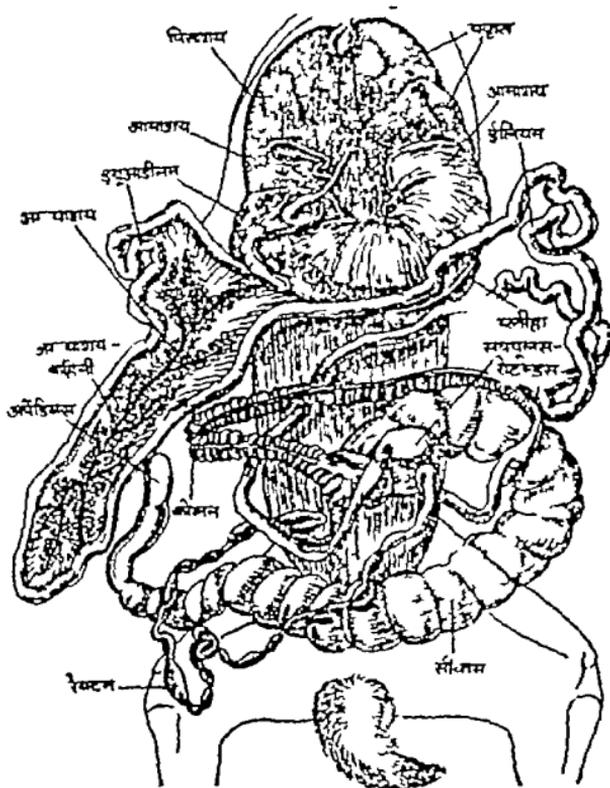
ऊपरी होठ बीचोबीच में कटा होता है। इस प्रकार के होठो से इसे कुतरने के पहले घास तथा पत्तियो को पकडने में सहायता मिलती है। मेंढक के विपरीत खरगोश की मुखगुहा में तालु (palate) होता है। इस प्रकार भोजन तथा सांस लेने के रास्ते बिल्कुल अलग हो जाते हैं। तालु का अगला मेहरावदार हिस्सा जो कि प्रिमैक्सिला, मैक्सिला और पैलाटाइन (palatine) हड्डियो का बना है, कठोर तालु और पिछला भाग जो केवल सयोजी ऊतक का बना होता है, कोमल तालु कहलाता है। कोमल तालु का पिछला भाग जो कि फैरिक्स या ग्रसनी में लटका रहता है यूव्युला या प्रतिजिह्विका (uvula) कहलाता है।

खरगोश की मासल जीभ (tongue) अगले सिरे पर स्वतत्र और पिछले सिरे पर जुडी रहती है। यह भोजन के टुकडो को दांतो के बीच खिसकाकर चर्वण (mastication) में सहायता देती है। दांतो और बालो की सफाई में भी यह सहायता देती है। बिल्ली की जीभ की सतह पर तो असख्य नुकीले कांटे होते हैं जो हड्डी में चिपके गोश्त को खुरचकर खाने में सहायता देते हैं। स्वाद कोशिकालयो (taste buds) की उपस्थिति से यह एक स्वादेन्द्रिय का भी काम करती है।

दांत (*Teeth*)—मेंढक के विपरीत खरगोश के दोनो जबडो में दांत होते हैं। स्तनधारी सदैव विषमदती (heterodont) होते हैं अर्थात्

इनके दाँत चार प्रकार के हो सकते हैं—इन्साइजर (incisor), **कैनाइन** या **श्वदंत** (canine), **प्रीमोलर** या **प्रचर्वण दंत** (premolar) और **चर्वण दंत** या **मोलर** (molar)। इन चारो प्रकार के दाँतो का अलग-अलग कार्य होता है। इन्साइजर पकडने या कुतरने में, कैनाइन चीरने-फाडने में और प्रीमोलर कुचलने में सहायता देते हैं। स्तनधारियो के जीवन में, केवल दो बार दाँत निकलते हैं और सभी **थीकोडॉन्ट** (thecodont) होते हैं, अर्थात् इन सभी की जडें जबडो में स्थित गड्ढो या थीका (theca) में धँसी रहती हैं।

खरगोश में कुतर-कुतरकर खाने के लिए इन्साइजर्स विशेषरूप से बडे, चौडे और सिरो पर चपटे तथा रुखानी के समान पैने होते हैं। ऊपरी इन्साइजर्स के पीछे नन्हें-नन्हे इन्साइजर्स होते हैं किन्तु ये कुतरने में किसी प्रकार की सहायता नही देते हैं। अगले इन्साइजर्स रुखानी के समान सदैव नुकीले बने रहते हैं। **कैनाइन या श्वदंतो** के न होने से दोनो जबडो में खाली स्थान होते हैं जिन्हे **दंत-विदर** या **डाएस्टिमा** (diastema) कहते हैं।

चित्र १५१—खरगोश मे दंत-विन्यास

इनमें होठो के **मांसल प्रवर्ध** (fleshy processes) स्थित होते हैं जो भोजन को दाँतो के बीच-बीच खिसकाने में और भोजन के बडे टुकडो को ईसोफेगस में जाने से रोकते हैं। ऊपरी जबडे में प्रत्येक ओर तीन-तीन और निचले जबडे मे दो-दो प्रीमोलर मिलते हैं किन्तु मोलर की संख्या दोनो जबडो में प्रत्येक ओर तीन-तीन होती है। खरगोश में
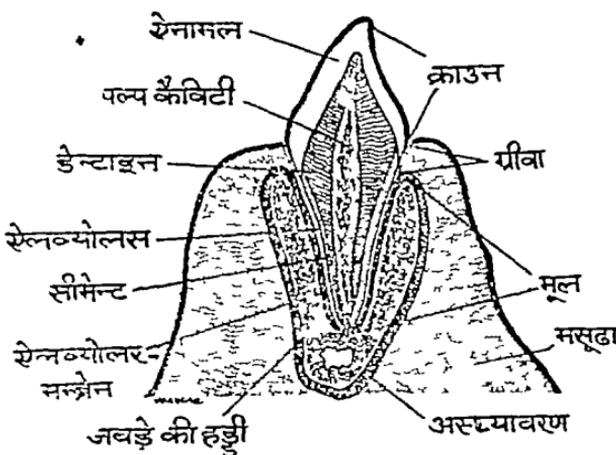
चित्र १५२—दाँत की संरचना

डेंटल फौरम्यूला (dental formula) निम्न प्रकार है —

इ $\frac{2}{1}$ कै $\frac{0}{0}$ प्रीमो $\frac{3}{2}$ मो $\frac{3}{3}$ × २ = २८

मेंढक अपने भोजन को निगल जाता है जिससे उसकी मुखगुहा के पास-पडोस में सैलाइवरी ग्रन्थियाँ नही होतीं। खरगोश भोजन को दाँतो की सहायता से खूब चबाते (masticate) है। इस क्रिया में सहायता देने के लिए खरगोश में चार जोडी लार **ग्रन्थियाँ** (salivary glands) होती है।
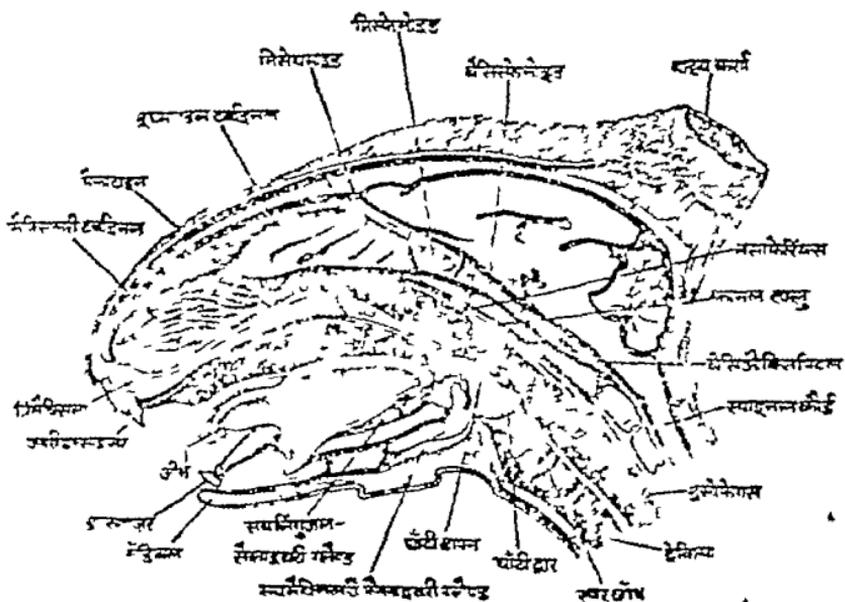
चित्र १५३—खरगोश के सिर का लौंगिट्यूडिनल सेक्शन

स्थिति के अनुसार इन्हे पैरोटिड (parotid), सबलिंगुअल (sublingual) सबमैक्सिलरी (sub-maxillary) और इन्फ्राऔर्बिटल (infraorbital) कहते हैं। ये लार उत्पन्न करती है जिसमें म्यूसिन (mucin) तथा टॅलिन (ptyalin) नाम का एन्जाइम (enzyme) होता है।

आहार-नाल—मुखगुहा का पिछला भाग जिसमें आन्तरिक नासा छिद्र (internal nares) खुलते हैं, फेरिक्स (pharynx) कहलाता है। इसी में **घाँटी द्वार** (glottis) तथा ईसोफेगस खुलते हैं। **घाँटी ढापन** (epiglottis) द्वारा सुरक्षित रहता है। घाँटी ढापन भोजन के टुकडो को ट्रेकिया (trachea) में जाने से रोकता है। फेरिक्स में दोनो ओर की **यूस्टेकियन नलिकाएँ** (eustachian tubes) भी खुलती है।

ईसोफेगस (oesophagus) एक लम्बी और पतली नली के रूप में होता है। गर्दन में होता हुआ यह वक्षगुहा में जाता है और अन्त में डायेफ्राम (diaphragm) में छेद करके उदर-गुहा में पहुँचकर आमाशय में खुलता है। आमाशय एक थैली के रूप में उदरगुहा के अगले भाग में मिलता है। इसका बायाँ पिंडक दाहिने की अपेक्षा बडा होता है ? बाएँ कार्डिएक पिंडक में ईसो-

फेगस खुलता है और दाहिना पाइलोरिक वाल्व द्वारा ड्यूओडीनम (duodenum) में खुलता है। मेढक की तरह आमाशय की भीतरी सतह में असख्य नालाकार **जठर-ग्रन्थियाँ** (tubular gastric glands) होती हैं।

पाइलोरस के बाद छोटी आँत (small intestine) का आरभ होता है। इसका ऊपरी भाग जो कि अँगरेजी के अक्षर U का सा आकार बनाता है ड्यूओडीनम (duodenum) कहलाता है। पाइलोरस से लगभग १ इच की दूरी पर इसमें **पित्त-वाहिनी** (bile duct) खुलती है। इसकी दोनो बाहुओं के बीच मैसेण्टरी द्वारा सधी **अग्न्याशय** (pancreas) के हल्के गुलाबी पिंडक मिलते हैं। अग्न्याशय-वाहिनी ड्यूओडीनम की दूरस्थ बाहु में मोड के कुछ ऊपर खुलती है।

ड्यूओडीनम को छोड छोटी आँत या क्षुद्रांत्र (small intestine) का शेषभाग **इलियम** (ileum) कहलाता है। इसकी अधिक लम्बाई और साथ ही साथ भीतरी सतह पर असख्य **रसांकुर** या **विलाई** (villi) की उपस्थिति से पचे हुए भोजन को सोखने वाली सतह का क्षेत्रफल कई गुना बढ़ जाता है। ड्यूओडीनम में विलाई के बीच-बीच **ब्रुनर-ग्रन्थियाँ** (Brunner's glands) तथा **श्लेष्मिक झिल्ली ग्रन्थियाँ** (crypts of Lieberkuhn) मिलती हैं किन्तु इलियम में केवल ब्रुनर ग्रन्थियाँ मिलती हैं। इलियम की बाहरी सतह पर थोडी-थोडी दूर पर हल्के पीले रग तथा मक्खी के छत्ते के आकार के **लसीका क्षेत्र** या **लिम्फौएड नौडयूल्स** (lymphoid nodules) मिलते है।
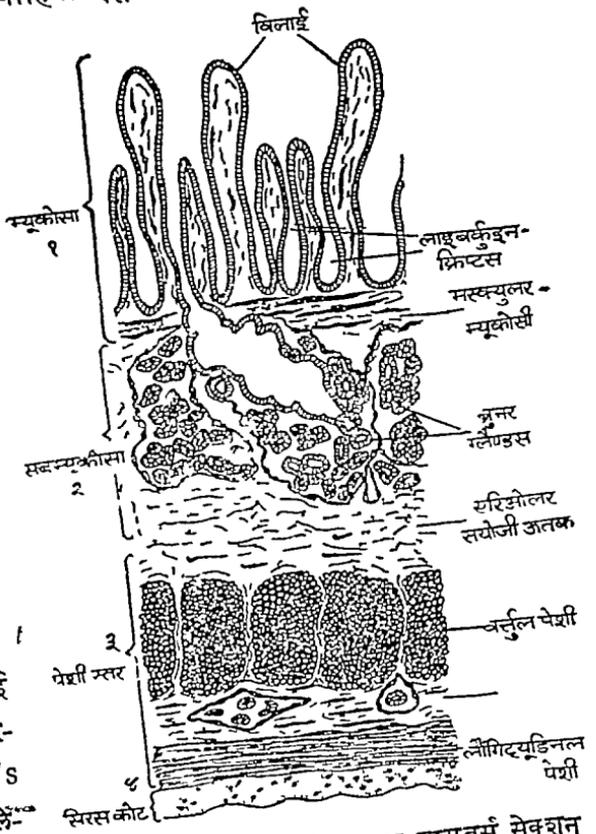
चित्र १५४—ड्यूओडीनम का ट्रासवर्स सेक्शन

छोटी तथा बडी आंत के सगम स्थान पर एक लम्बी अन्धी नलिका होती है जिसे **सीकम** या **उण्डुक** (caecum) कहते हैं। यह लगभग १८ इच लम्बा और १ इच चौडा होता है। इसका अन्तिम सँकरा भाग जो लगभग ४ इच लम्बा होता है **वर्मीफार्म एपेंडिक्स** (vermiform appendix) कहलाता है। इलियम का अन्तिम भाग एक गोल थैली सी सरचना बनाता है जिसे **गोल स्यूनिका** या **सैक्युलस रोटन्डस** (sacculus rotundus) कहते हैं। इस स्यूनिका या सैक्युलस रोटन्डस तथा सीकम के बीच एक वाल्व होता है। **बडी आंत** (large intestine) को भी दो भागो में बांटा जा सकता है। ऊपरी भाग जो लगभग २½ फीट लम्बा होता है **कोलन** या **बृहदांत्र** (colon) कहलाता है और निचला भाग जो लगभग १½ फीट लम्बा होता है **रेक्टम** या **मलाशय** (rectum) कहलाता है। यह मणिमय (beaded) होता है और गुदा (anus) द्वारा बाहर खुलता है।

यकृत (*Liver*)—शरीर में यकृत सबसे बडी ग्रन्थि होती है। इसमें ५ गहरे लाल या कत्थई रग के पिडक होते हैं। यह डायेफ्राम के पीछे **मेसेण्टरी** (mesentery) द्वारा सधी रहती है इससे पाँचो पिडको के नाम उनकी स्थिति के अनुसार होते हैं—**दाहिना** तथा **बांया केन्द्रीय पिडक** (right and left central lobes), **बांया पार्श्वस्थ लोव** (left lateral lobe), वह पिडक जो दाहिने वृक्क के अगले सिरे को ढके रहता है **कॉडेट लोव** (caudate lobe) और बीचोबीच में स्थित सबसे छोटे लोव को **स्पाइजेलियन लोव** (spigelian lobe) कहते हैं।
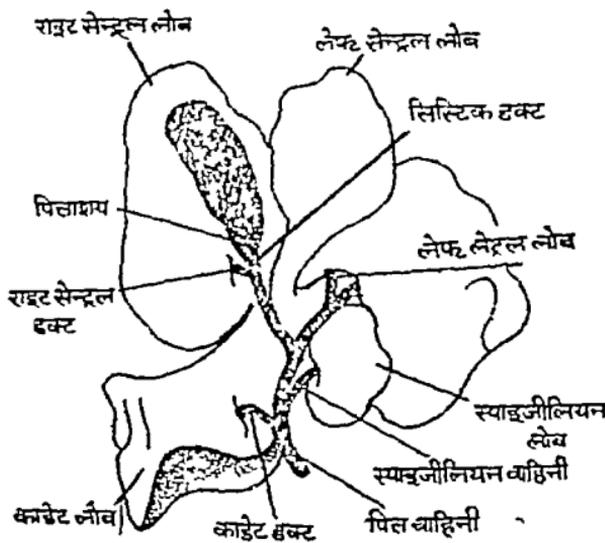
चित्र १५५—खरगोश का यकृत

प्रत्येक पिडक (lobe) में अनेक **पिडकाएं** या **लोब्यूल्स** (lobules) होते हैं जो लगभग १ मिलीमीटर बडे होते हैं। प्रत्येक लोब्यूल में यकृत-कोशिकाओ की अनेक कतारें होती हैं। इन कतारो के बीच-बीच **पित्त-केशिकाएं** (bile capillaries) और **रुधिर-केशिकाएं** होती हैं। प्रत्येक लोब्यूल की बाहरी सतह पर पित्त-

-केशिकाएँ परस्पर मिलकर **इन्टरलोब्यूलर पित्त वाहिनी** (interlobular bile channel) बनाती हैं।

यकृत को **हिपैटिक धमनी** और **हिपैटिक पोर्टल वेन** से रुधिर मिलता है। इन दोनो की शाखाएँ **इन्टरलोब्यूलर** होती हैं। इनसे शाखाएँ निकलकर लोब्यूल के भीतर **केशिकाओं** का एक जाल बनाती हैं। ये सभी केशिकाएँ अत में मिलकर लोब्यूल के बीचो-बीच में **हिपैटिक-शिरा** (hepatic vein) बनाती हैं। इस प्रकार यह शिरा **इन्ट्रालोब्यूलर** (intralobular) होती है।

यकृत की **कोशिकाएँ** केशिकाओ के रुधिर से आवश्यक सामग्री लेकर **पित्त** बनाती हैं जो **पित्त-केशिकाओ** में पहुँच जाता है। पित्त वाहिनियाँ (heptic ducts) इसे इकट्ठा करके **पित्ताशय** में पहुँचाती हैं जो कि यकृत के दाहिने
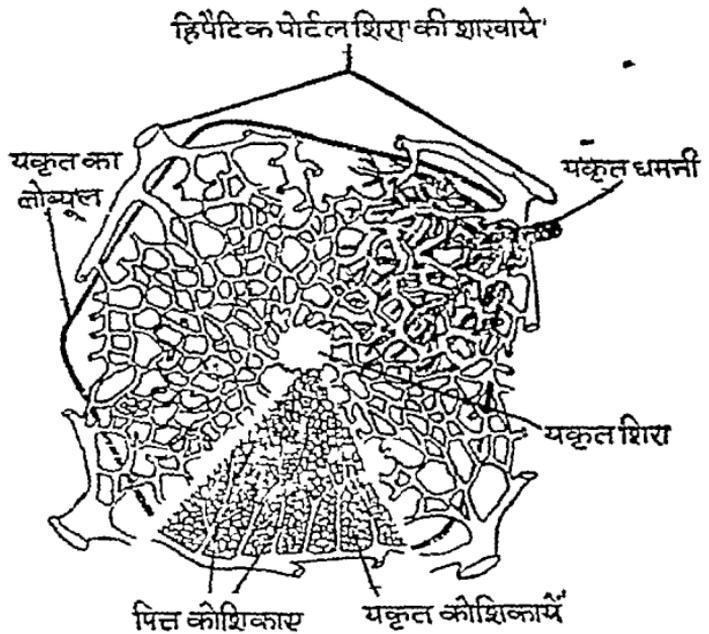
चित्र १५६—यकृत के एक लोब्यूल की रचना

केन्द्रीय पिडक की प्रतिपृष्ठ सतह पर एक लम्बी अडाकार थैली के रूप में मिलता है। इसकी वाहिनी को **पित्ताशय-वाहिनी** (cystic duct) कहते हैं। इसी में यकृत के पाँचो पिडको से आनेवाली पित्त-वाहिनियाँ (hepatic ducts) खुलती हैं। इन सब के मिलने से **कॉमन बाइल डक्ट** बनती है जो कि **ड्यूओडीनम** में खुलती है।

अग्न्याशय (*Pancreas*)—खरगोश के अग्न्याशय की हिस्टोलौजिकल सरचना मेढक से मिलती-जुलती है। इसमे भी अनेक पिडकाएँ (lobules) होती हैं। किन्तु ये छितरी रहती है। प्रत्येक पिन्डक (lobule) में अनेक ग्रन्थिल एसिनाई (glandular acini) होते हैं जिनके बीच-बीच में **मधुवशि ग्रन्थियाँ** (islets of Langerhans) होती हैं। प्रत्येक मधुवशि ग्रन्थि कोशिकाओ का ठोस समूह होती है और चारो ओर केशिकाओ के जाल से घिरी रहती हैं।

पाचन क्रिया—र्हविवोरस प्राणी होने के कारणखरगोश फल,फूल,पत्तियाँ, वीज, जड, वक्षो की छाल खाता है। कुतरने में इनके अगले इन्साइजर विशेष रूप से सहायता देते ह। मुखगुहा में भोजन से लार(saliva) मिल जाती है और फिर चर्वण (mastication) आरम होता है। चभलाया हुआ भोजन ईसोफेगस में पहुँचता है। लार में **म्युसिन** (mucin) तथा **टॅलिन** (ptyalin) नाम का इन्जाइम होता है। म्युसिन भोजन को नम वना देता है जिससे दाँतो द्वारा चभलाये जाने पर उसके अनेक छोटे-छोटे टुकडे हो जाते हैं। टॅलिन भोजन में मिलनेवाली **माडी** (स्टार्च) तथा **ग्लाइकोजेन** (glycogen) को **माल्टोज** (maltose) में वदल देता है।

क्रमाकुचन (peristalsis) द्वारा भोजन के ईसोफेगस के नीचे उतरते समय और आमाशय में पहुँच जाने के कुछ देर वाद भी टॅलिन की क्रिया होती रहती है। आमाशय में **जठर-ग्रन्थियाँ** (gastric glands) होती हैं जो **जठर-यूष** (gastric juice) बनाती हैं। भोजन के आमाशय में पहुँचते ही **गैस्ट्रिन** (gastrin) नाम का हारमोन उत्पन्न होता है। यह रुधिर-प्रवाह द्वारा गैस्ट्रिक ग्लैण्ड्स में पहुँचकर उन्हें अधिक क्रियाशील वना देता है जिससे **गैस्ट्रिक-रस** निकलने लगता है। आमाशय की मथन-क्रिया (churning) के फलस्वरूप गैस्ट्रिक-रस भोजन से भली भाँति मिल जाता है। **गैस्ट्रिक-रस** में ० ४% हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड, **पेप्सिन** (pepsin) **गैस्ट्रिक लाइपेस** (gastric lipase) तथा **रेनिन** (rennin) नामक एन्जाइम्स होते हैं। हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड निम्न प्रकार उपयोगी होती है —

(१) पेप्सिन के क्रियाशील होने के लिए यह माध्यम को ऐसिडिक (acidic) वना देती है।
(२) भोजन के साथ आनेवाले वैक्टीरिया को नष्ट कर देती है।
(३) माल्टोस (maltose) के हाइड्रोलिसिस (hydrolysis) में सहायता देती है।
(४) टॅलिन की क्रिया समाप्त कर देती है।
(५) पाइलोरस के खुलने तथा बन्द होने की क्रिया पर नियन्त्रण रखती है।

पेप्सिन प्रोटीन को घुलनशील **प्रोटिओसेस** (proteoses) तथा पेप्टोन (peptone) में वदल देता है **रैनिन** (rennin) दूध में मिलनेवाले केसीनोजेन (caseinogen) को **केसीन** (casein) में वदल देता है। इस प्रकार दूध में मिलनेवाला प्रोटीन आमाशय में रुक जाता है जिससे पेप्सिन को उस पर क्रिया करने का अवसर मिल जाता है। **गैस्ट्रिक लाइपेस** दूध में मिलनेवाली वसा (fat) को फैटी-ऐसिड्स (fatty acids) तथा ग्लिसरौल (glycerol) में वदल देता है।

इस प्रकार अधपचा ऐसिडिक **चाइम** (chyme) जो लेई की तरह गाढा होता है, पाइलीरस मे होता हुआ **ड्यूओडीनम** (duodenum) में पहुँचता है। यहाँ पहुँचते ही इसकी दीवारें **सेक्रीटिन** (secretin) तथा **कौलिसिस्टोकाइनिन** (cholecystokin) नामक हारमोन्स उत्पन्न करती है। ये रुधिर प्रवाह द्वारा अग्न्याशय तथा यकृत में पहुँच जाते हैं। सेक्रेटिन अग्न्याशय की कोशिकाओ (cells) को अधिक क्रियाशील बनाता है और **कौलिसिस्टोकाइनिन** पित्ताशय का कुचन करके **पित्त** (bile) को ड्यूओडीनम (duodenum) मे पहुँचाता है। पित्त में **पित्त-रग** (bile pigments), कोलेस्ट्रौल (cholestrol) तथा सोडियम कार्वोनेट तथा अन्य पित्त-लवण मिलते है। **पित्त-लवण** चर्वी या वसा के **इमल्सीफिकेशन** (emulsification) में सहायता देते हैं। कोलेस्ट्रौल की उपस्थिति से पित्त लवण अधिक घुलनशील हो जाते हैं। स्वय क्षारीय (alkaline) होने के कारण यह गैस्ट्रिक-रस की क्रिया का अन्त कर देता है।

अग्न्याशय रस भी क्षारीय होता है। इसमे **ट्रिप्सिनोजेन** (trypsinogen), **लाइपेस** (lipase) और **एमीलोप्सिन** (amylopsin) नाम के तीन **एन्जाइम्स** (enzymes) होते हैं।

(क) इन्टेस्टाइनल रस में एक ऐसा एन्जाइम होता है जो अक्रिय (inactive) ट्रिप्सिनोजेन (trypsinogen) को क्रियाशील **ट्रिप्सिन** (trypsin) में बदल देता है और फिर ट्रिप्सिन प्रोटिओसेस (proteoses) और पेप्टोन्स (peptones) को अमीनो ऐसिड में बदल देता है।

(ख) **एमिलोप्सिन** (amylopsin)—यह माडी को ग्लूकोज (glucose) मे बदल देता है।

(ग) **लाइपेस** (lipase) इमल्सीफाएड (emulsified) चर्वी को **फैटी-ऐसिड्स** और **ग्लिसरौल** में बदल देता है।

छोटी आँत की ब्रुनर ग्रन्थियाँ (Brunner's glands) तथा श्लेष्मिक झिल्ली ग्रथियाँ (crypts of Lieberkuhn) **इन्टेस्टाइनल-रस** उत्पन्न करती है। इसमें कई प्रकार के एन्जाइम्स मिलते हैं —

(१) **एन्ट्रोकाइनेस** (enterokinase)—यह अक्रिय ट्रिप्सिनोजेन (trypsinogen) को क्रियाशील **ट्रिप्सिन**(trypsin)में बदल देता है।

(२) **इरेप्सिन** (erepsin) पैप्टोन्स को अमीनो-ऐसिड्स में बदल देता है।

(३) **लाइपेस** (lipase) मल्सीफाएड चर्वी को फैटी-ऐसिड्स और ग्लिसरौल में बदल देता है।

(४) इनवर्टेज (invertase)—शक्कर को ग्लूकोज (glucose) में बदल देता है।

(५) लैक्टेज (lactase)—यह लैक्टोज (lactose) को ग्लूकोज में बदल देता है।

इस प्रकार ड्यूओडीनम से इलियम में पहुँचते-पहुँचते पाचक-रसो के मिलने से चाइम (chyme) और भी पतला हो जाता है। इसे अब चाइल (chyle) कहते हैं।

हर्बिवोरस (herbivorous) प्राणियो के भोजन में सेल्लोज की अधिक मात्रा होती है किन्तु इसके पाचन के लिए किसी भी पाचक रस में कोई भी एन्जाइम नहीं होता। खरगोश के सीकम (caecum) में सहजीवी बैक्टीरिया (bacteria) तथा प्रोटोजोआ (protozoa) मिलते हैं जो सेललोज को फैटी-एसिड्स में बदल देते हैं।

पचे हुए भोजन का अवशोषण तथा एसिमिलेशन

पाचन क्रिया का उद्देश्य भोजन के अघुलनशील भागों को घुलनशील (soluble) बनाना है जिससे वे सोखे जाने के बाद रुधिर-प्रवाह (blood stream) में पहुँच सकें। मुखगुहा तथा ईसोफेगस (oesophagus) में पचे हुए भोजन का अवशोषण नहीं के बराबर होता है। आमाशय में आमतौर पर जल का अवशोषण होता है। अधिकाश पचे हुए भोजन का अवशोषण छोटी आंत में ही होता है। अवशोपक सतह का क्षेत्रफल बढाने के लिए इसकी भीतरी सतह पर असख्य रसाकुर या विलाई (villi) होते हैं प्रत्येक रसाकुर के बीचो-बीच में एक लिम्फ वाहिनी होती है जिसे लैक्टियल (lacteal) कहते हैं। इसके चारो ओर रुधिर केशिकाओं का एक जाल होता है।

फैटीऐसिड्स (fatty acids) तथा ग्लिसरोल (glycerol) सोखे जाने के बाद लैक्टियल में पहुँच जाते हैं और वहां वे परस्पर मिलकर फिर से चर्बी बनाते हैं जिसकी उपस्थिति से यह वाहिनी दूध के समान सफेद दिखाई देती है। ग्लूकोज, अमीनो एसिड तथा लवणो का घोल विसरण द्वारा रुधिर वाहिनियो में पहुँच जाता है। इन वाहिनियो या केशिकाओ के मिलने से हिपैटिक-पोर्टल शिरा (hepatic portal vein) बनती है जो यकृत में पहुँचकर केशिकाओ का जाल बनाती हैं। छोटी आँत की बाहरी सतह पर मिलने वाले अडाकार लसीका क्षेत्र (lymphoid nodules) एक प्रकार के लिम्फोसाइट्स (lymphocytes) उत्पन्न करते हैं जो चर्बी के अवशोपण में सहायता देते हैं। सीकम की भीतरी सतह पर भी इसी प्रकार की लसीका-ग्रन्थियां मिलती हैं।

अपचित (undigested) या न पचने योग्य भोजन अब कोलन (colon) में प्रवेश करता है। यहाँ पर अतिरिक्त जल सोख लिया जाता
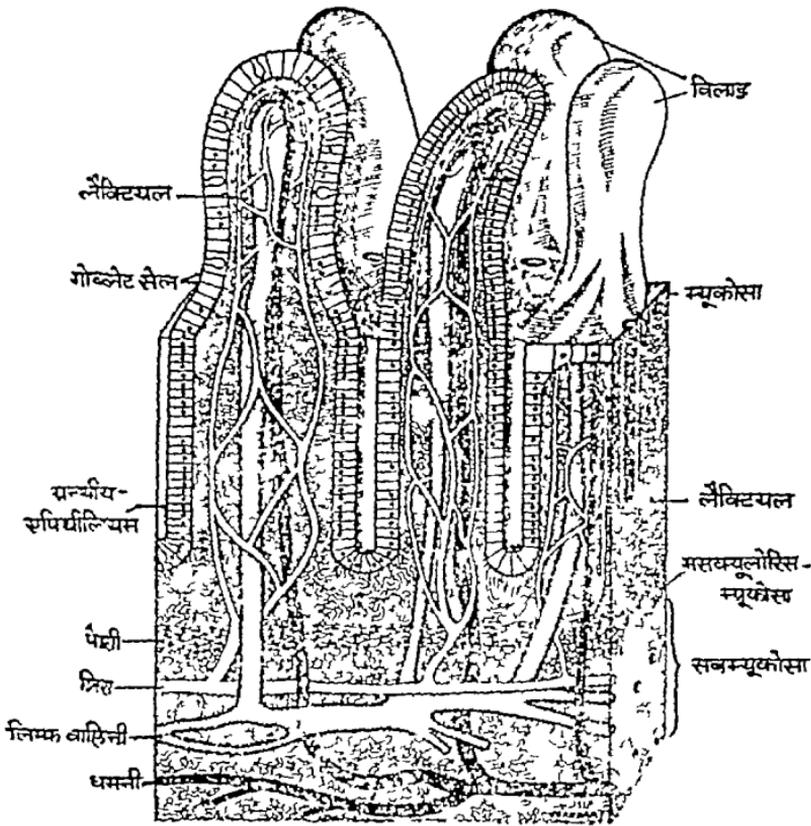
चित्र १५७—छोटी आँत में मिलनेवाले रसाकुरो की सरचना

है जिससे मल करीब-करीब ठोस हो जाता है। जब यह भाग मलाशय या रेक्टम में पहुँचता है तो और भी कडा हो जाता है और गुदा में होकर बाहर निकल जाता है।

पचे हुए भोजन का अन्तिम रूप—पचा हुआ भोजन रुधिर परिवहन द्वारा शरीर के कोने-कोने में पहुँच जाता है। शरीर के विभिन्न अगों की कोशिकाओ या सेल्स मे पहुँचने पर भोजन के कार्बनिक (organic) तथा अकार्बनिक (inorganic) भाग परस्पर मिलकर **जीवित प्रोटीन** या **प्रोटोप्लाज्म** (protoplasm) बनाते हैं। इस प्रकार प्रोटोप्लाज्म के बनने की क्रिया को **एसिमिलेशन** या **स्वागीकरण** (assimilation) कहते हैं। कार्बोहाइड्रेट्स तथा चर्बी का अधिकाश भाग **गर्मी** (heat) और **एनर्जी** (energy) उत्पन्न करने के काम में आता है। प्रोटीन्स का भी थोडा भाग एनर्जी उत्पन्न करने के काम आता है।

(४) श्वसन-तंत्र
(Respiratory system)

वास्तव में श्वसन-क्रिया जीवित-सेल्ल में होती है जहाँ प्रोटोप्लाज्मिक एन्जाइम्स की उपस्थिति में भोजन के ऑक्सीडेशन से एनर्जी और गर्मी (heat) उत्पन्न होती है। इस क्रिया को समझने के लिए सबसे पहले खरगोश के श्वसन-अंगों का समझना आवश्यक है। मेढक के विपरीत खरगोश के श्वसन-अंग संरचना में अधिक जटिल होते हैं।

(१) श्वसन-अंग (*Respiratory organs*)—मेढक की मुखगुहा में भोजन और हवा का एक ही रास्ता होता है किन्तु खरगोश में तालु (palate) की उपस्थिति से मुख-गुहा (buccal cavity) नेजल चेम्बर से बिलकुल अलग हो जाती है। खरगोश के आन्तरिक नासा-छिद्र (internal nares) फेरिक्स में घाँटीद्वार (glottis) के पास खुलते हैं। प्रत्येक नेजल चेम्बर का अधिकांश भाग कागज के समान पतली तथा अत्यधिक मुड़ी या बलखाई हुई टर्बाइनल हड्डियों से घिरा रहता है। ये मैक्सिला (maxilla), नेसल (nasal) तथा इथमौएड (ethmoid) से प्रवर्धों के रूप में निकलती हैं और एक संवहनीय (vascular) झिल्ली से ढकी रहती हैं। इस झिल्ली में म्यूकस तथा सेरस ग्रन्थियाँ (mucous and serous glands) होती हैं जो क्रमशः म्यूकस और जल उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार की संरचना के फलस्वरूप नेसल चेम्बर एक फिल्टर (filter) के समान कार्य करते हैं —

(१) वायु में मिलनेवाले धूल के कण म्यूकस में उलझकर वहीं रह जाते हैं, फेफड़ों में नहीं जाने पाते।
(२) इसी प्रकार बैक्टीरिया भी उलझकर वहीं रह जाते हैं।
(३) झिल्ली के संवहनीय होने से ठंडी हवा गरम हो जाती है।
(४) सेरस ग्लैण्ड्स (serous glands) के होने से सूखी हवा नम हो जाती है।
(५) इथमोटर्बाइनल्स संवेदक एपिथीलियम से ढंकी होती है जिससे यह घ्राणेन्द्रिय का काम करता है।

गर्दन होने के कारण ट्रेकिया या श्वास-नली काफी लम्बी होती है और लेरिंक्स या स्वर यंत्र से लेकर फेफड़ों तक फैली होती है। लेरिंक्स की दीवारें थाइरौएड (thyroid) क्रिकौएड (cricoid) और एरिटिनौएड (arytenoid) कार्टिलेज्स द्वारा घिरी रहती हैं। इसमें स्वर-रज्जु (vocal cords) होते हैं। घाँटी द्वार (glottis) की रक्षा

करने के लिए घांटी ढापन या एपिग्लोटिस (epiglottis) होता है। भोजन निगलते समय एपिग्लोटिस घांटी द्वार (glottis) को ढक लेता है जिससे भोजन के टुकड़े ट्रेकिया में नही घुसने पाते।

ट्रेकिया की भीतरी सतह सीलिएटेड एपिथीलियम से ढँकी रहती है और इसकी पतली दीवार को फैलाए रखने के लिए कार्टिलेज के बने अधूरे छल्ले

चित्र १५८—खरगोश का स्वरतन्त्र या लैरिंक्स
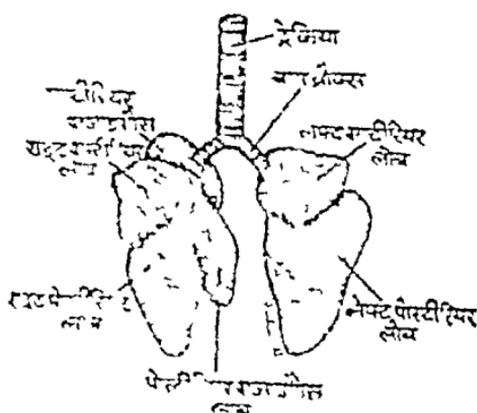
चित्र १५९—खरगोश के फेफड़े

होते है। गर्दन में होती हुई श्वास-नली वक्ष-गुहा में पहुँचते ही ब्रोंकाई (bronchi) में विभाजित हो जाती है। प्रत्येक ब्रोंकस अपनी ओर के फेफड़े में घुस जाता है। बाएँ ओर का फेफड़ा बाएँ अग्र पिंडक (left anterior lobe) और बाएँ पश्च पिंडक मे बँटा रहता है और दाहिने ओर के फेफड़े में ऐन्टिरीयर एजाइगौस लोब (anterior azygos), पश्च एजाइगौस (posterior azygos), दाहिना ऐन्टिरीयर (right anterior) और दाहिना पॅस्टीरीयर लोब (right posterior lobe) होते हैं। ब्रोंकस की एक शाखा प्रत्येक पिंडक में जाती है। प्रत्येक फेफड़े के चारों ओर प्लूरा (pleura) होता है। इसमें झिल्लियों की दो पर्ते होती है—एक फेफड़ों की बाहरी सतह से सटी होती है और दूसरी वक्ष गुहा की भीतरी सतह से। इन दोनों के बीच एक प्रकार का तरल द्रव होता है जिससे फेफड़ों को बराबर फूलने और पिचकने में किसी प्रकार की रगड़ नही लगने पाती।

फेफड़ों के हरेक पिंडक में पहुँचते ही प्रत्येक ब्रोंकस विभाजित होकर ब्रोंकिओल्स (bronchioles) बनाता है। ब्रोंकिओल के क्रमश विभाजन से एलव्योलर डक्ट्स (alveolar ducts), एट्रियम (atrium) तथा इन्फन्डीबुलम (infundibulum) बन जाते हैं। प्रत्येक इन्फण्डीबुलम में अनेक बहुत ही पतली दीवारों के एलव्योलाई (alveoli) या वायु

कोष्ठिकाएँ होती हैं। इस जटिल संरचना के फलस्वरूप फेफड़ों की भीतरी सतह जिसके द्वारा बाहरी हवा तथा रुधिर में लेन-देन (exchange) होता रहता है, का क्षेत्रफल बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। मनुष्य के फेफड़ों में वायु कोष्ठिकाओं की संख्या लगभग ७,२०,००,००० होती है तथा श्वसन सतह का क्षेत्रफल लगभग १०० वर्ग फुट होता है। प्रत्येक वायुकोष्ठिका की अत्यन्त पतली दीवारों की सतह पर केशिकाओं का घना जाल होता है। पल्मोनरी धमनी फेफड़ों में रुधिर लाती है और पल्मोनरी शिरा रुधिर वापस ले जाती है।

चित्र १६०—फेफड़ों की संरचना

फेफड़ों का वेन्टिलेशन (Ventilation of lungs)—बाहरी हवा के फेफड़ों में जाने और फेफड़ों की अशुद्ध वायु के बाहर निकलने को वास्तव में "साँस लेना" (breathing) या फेफड़ों का संवातन (ventilation of lungs) कहते हैं। इसे दो अवस्थाओं में बाँट सकते हैं —
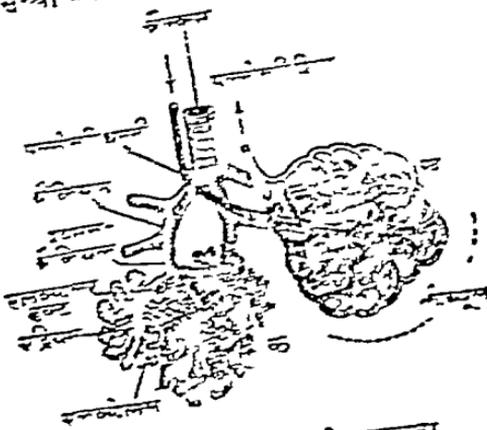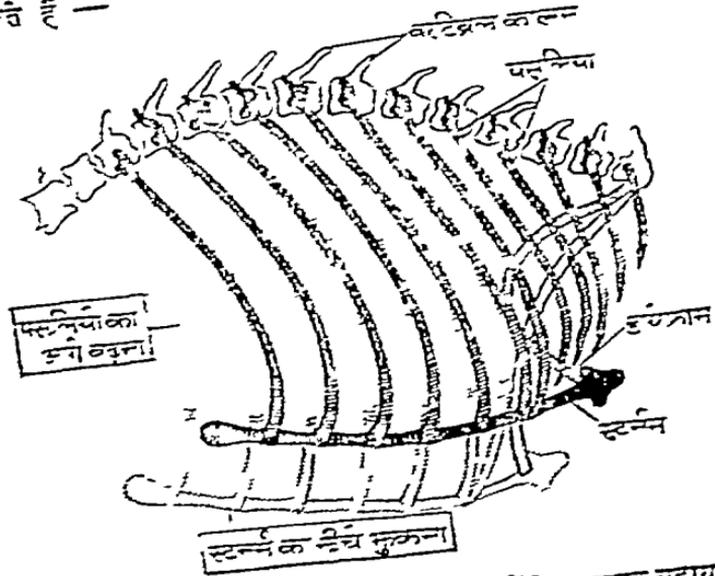
चित्र १६१—पसलियाँ तथा डायफ्राम इन्सपिरेशन में किस प्रकार सहायता देते हैं

(अ) इन्सपिरेशन या नि श्वास (inspiration)

(आ) एक्सपिरेशन (expiration)

साँस लेने में पसलियो के वीच-वीच की **पेशियाँ और डायेफ्राम** (diaphragm) सहायता देती है। वक्षगुहा की पृष्ठ सतह पर वरटिब्रल कॉलम होता है जिससे जुडी १३ जोडी पसलियाँ होती हैं जिनमें से पसलियो के आगे के नौ जोडे प्रतिपृष्ठ (ventral) सतह पर स्टर्नम (sternum) से जुडे रहते हैं। प्रत्येक पसली घुमावदार (curved) होती है। पसलियों के वीच-वीच में इन्टरकोस्टल पेशियाँ (intercostal muscles) होती हैं।

(१) **इन्सपिरेशन**—जव वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियो का कुचन होता है तो सभी पसलियाँ आगे की ओर खिसक जाती है और स्टर्नम नीचे की ओर झुक जाता है। इस प्रकार वक्षगुहा का आयतन डौर्सो-वेंट्रल प्लेन (dorso-ventral plane) में वढ जाता है। पसलियो के घुमावदार होने से वक्ष-गुहा का आयतन पार्श्व या लेट्रल समतल (plane) में भी वढ जाता है। साथ ही साथ गोल-गुम्वज आकार के डायेफ्राम (diaphragm) की रेडियल पेशियो (radial muscles) के कुचन से यह चपटा हो जाता है जिससे वक्ष गुहा का आयतन आगे से पीछे या एण्ट्रो-पोस्टीरियर समतल (antero posterior plane) में वढ जाता है।

इस प्रकार वक्ष गुहा के आयतन के वढ जाने पर लचीले फेफडे फैल जाते हैं जिससे उनके भीतर भरी वायु भी फैल जाती है। वायु के फैलने पर उस पर दाव (pressure) कम हो जाता है। ऐसी दशा में वाहरी हवा जिससे दाव अधिक होता है श्वास-नली में होती हुई ब्रौंकाई में और अन्त मे फेफडो में पहुँच जाती है।

वडे और भारी शरीर वाले स्तनधारियो में पसलियो की अपेक्षा डायेफ्राम अधिक महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। छलाँग मारने वाले स्तनधारियो में जैसे **कंगारू, गिलहरी, खरगोश, वन्दर** इत्यादि में डायेफ्राम की अपेक्षा पसलियाँ अधिक काम करती हैं। नर मैमल की अपेक्षा मादा में भी साँस लेने में पसलियाँ डाये-फ्राम की अपेक्षा अधिक कार्य करती हैं। मादा में यदि डायेफ्राम अधिक कार्य करता है तो उसके वरावर चपटे होते रहने से भ्रूण (embryo) के ऊपर अधिक दवाव पडता है जिससे भ्रूणीय-परिवर्धन में वाधा पडती है।

(२) **एक्सपिरेशन** (*Expiration*)—डायेफ्राम की रेडियल पेशियो के ढीले पडने पर चपटा डायेफ्राम गुम्वज सदृश हो जाता है और साथ ही इन्टरकोस्टल पेशियो के शिथिल (relaxation) होने से पसलियाँ पीछे खिसक जाती हैं। इस प्रकार वक्ष-गुहा का आयतन कम हो जाता है जिससे

फेफडो पर दवाव पडता है और उनके भीतर भरी हवा का कुछ भाग वाहर निकल जाता है। यह न समझ लेना चाहिए कि एक्सपिरेशन में फेफडो की वायु पूरी तौर पर वाहर निकल जाती है। वास्तव में इस समय भी फेफडे हवा से भरे रहते हैं।
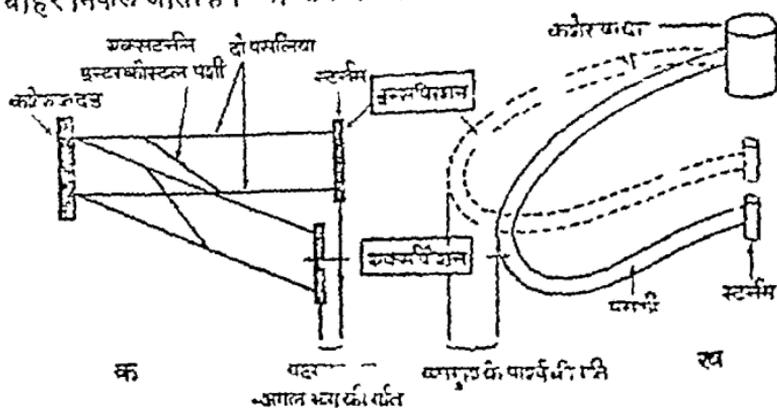
चित्र १६२—पसलियो की गति के फलस्वरूप वक्षगुहा का आयतन किस प्रकार बढ जाता है।

फेफडो में गैसेस का लेन-देन
(Exchange of gases)

साँस लेने (breathing) का मुख्य प्रयोजन वाहरी शुद्ध वायु को वरावर वायु कोष्ठिकाओ की पतली तथा सवहनीय (vascular) दीवारो के निकट सम्पर्क में वनाये रखना है। वायु कोष्ठिकाओ में भरी हवा की आक्सीजन म्यूकस की पतली पर्त में घुल जाती है। वाहरी हवा में आक्सीजन की मात्रा २०% होती है जव कि कार्वन डाइआक्साइड ०.०३% होता है। पल्मोनरी धमनी की केशिकाओ के रुधिर में कार्वन डाइआक्साइड की मात्रा कहीं अधिक होती है किन्तु आक्सीजन की मात्रा कम होती है जिससे विसरण (diffusion) द्वारा आक्सीजन तो रुधिर में पहुँच जाती है किन्तु रुधिर की आक्सीजन वायुकोष्ठिकाओ की हवा में पहुँच जाती है। रुधिर तथा वायुकोष्ठिका में भरी-हवा के वीच होनेवाले इस लेन-देन को वाह्य श्वसन (external respiration) कहते हैं। साँस लेने के कारण वायु कोष्ठिकाओ में भरी हवा सदैव वदला करती है और परिवहन के फलस्वरूप वायुकोष्ठिकाओ की दीवारो में स्थित कोशिकाओ का रुधिर भी सदैव वदला करता है। जिनसे वाह्य-श्वसन भी वरावर हुआ करता है।

जो आक्सीजन रुधिर में पहुँचती है वह लाल रुधिर कणिकाओ (R B C) के हीमोग्लोविन से मिलकर आक्सीहीमोग्लोविन (oxyhaemoglobin) वनाती है। इस प्रकार रुधिर आक्सीजिनेटेड हो जाता है। पल्मोनरी शिरा आक्सीजिनेटेड रुधिर को वाएँ अलिन्द (left auricle) में पहुँचा देती है। हृदय

इस रुधिर को धमनियो द्वारा शरीर के सभी भागो में पहुँचा देता है। शरीर के विभिन्न अगो में पहुँचने पर आक्सीहीमोग्लोबिन आक्सीजन और हीमोग्लोबिन मे टूट जाता है। यही आक्सीजन अब केशिकाओ की पतली दीवारो में होती हुई कोशिकाओ या सेल्स मे पहुँच जाती है जहाँ भोजन के आक्सीडेशन से एनर्जी उत्पन्न होती है।

(५) परिवहन तत्र
(Circulatory system)

हृदय (*Heart*)

(१) **स्थिति तथा सरचना**—खरगोश का हृदय वक्षगुहा मे स्थित होता है। इसका चौडा भाग या आधार (base) आगे की ओर और पिछला नुकीला भाग थोडा बाई ओर झुका रहता है। यह **पेरिकार्डियम** (pericardium) से घिरा रहता है। **पैरिकार्डियल द्रव** (pericardial fluid) वाहरी आघातो से हृदय की रक्षा करता है।

तुम पढ चुके हो कि मेढक के हृदय में तीन चेम्वर्स होते हैं किन्तु स्तनधारियो के हृदय में चार वेश्म या चेम्वर्स होते हैं। अगले भाग में दो पतली दीवारो के अलिन्द (auricles) होते हैं। वाएँ अलिन्द के पीछे वायाँ वेन्ट्रिकल (left ventricle) और दाहिने अलिन्द के पीछे दाहिना वेन्ट्रिकल होता है। दोनो वेन्ट्रिकल्स मिलकर हृदय का पिछला नुकीला तथा मासल भाग वनाते हैं। इसकी प्रतिपृष्ठ सतह पर एक छिछली खाँई होती है जो **इन्टर वेन्ट्रिकुलर सेप्टम** (inter ventricular septum) की स्थिति वताती है। दाहिना वेन्ट्रिकल पिछले सिरे तक नही फैला
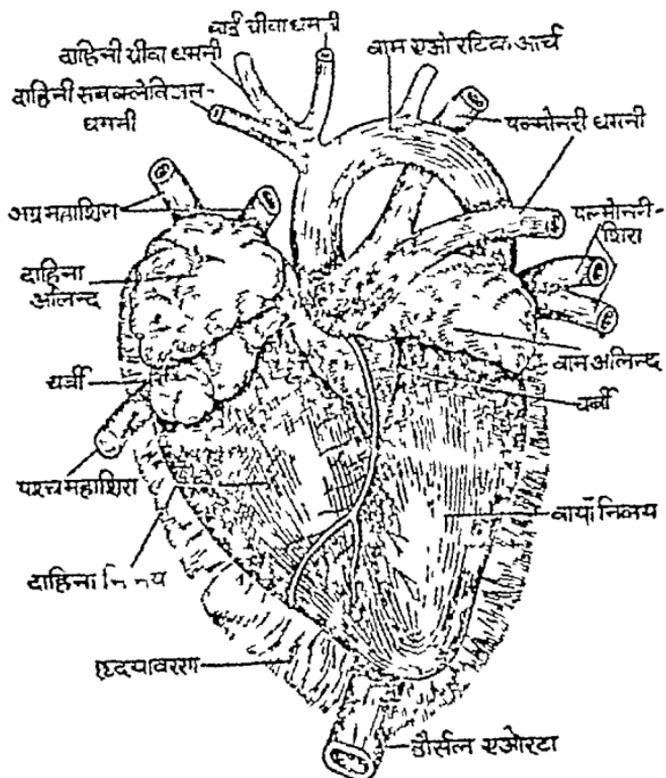
चित्र १६३—खरगोश के हृदय की वाह्य आकृति (पृष्ठ दृश्य)

होता किन्तु पिछला निरा बनाता है और इनकी दीवारें भी दाहिने की अपेक्षा अधिक मोटी होती हैं।

मेढक के हृदय में शिरा-पात्र (sinus venosus) नहीं होता जिससे दोनों अग्र-महाशिराएँ (anterior venae cavae) और पश्च महाशिरा (posterior vena cava) दाहिने अलिन्द में खुलती है। पल्मोनरी शिराएँ (pulmonary veins) बाएं अलिन्द में खुलती हैं। दाहिना अलिन्द निलय छिद्र ट्राइकस्पिड वाल्व (tricuspid valve) द्वारा घिरा होता है। इस वाल्व में तीन पर्दे-नुमा सरचनाएँ होती हैं जो वेन्ट्रिकल में लटकी रहती हैं और मोटे डोरी के समान सरचनाओं, जिन्हें कौर्डी टेन्डिनी (chordae tendinae) कहते हैं, के द्वारा वेन्ट्रिकल की भीतरी दीवार से जुडी रहती हैं। ठीक इसी प्रकार बायाँ अलिन्द निलय द्वारा बाइकस्पिड वाल्व (bicuspid valve) से घिरा रहता है। इनके कौर्डी टेन्डिनी कहीं अधिक मजबूत होते हैं। ये दोनों वाल्व अलिन्द से निलय में रुधिर के बहाव में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालते किन्तु उल्टी दिशा में रुधिर का बहाव नहीं होने देते। दाहिने वेन्ट्रिकल के बाएँ अगले (left anterior) सिरे से पल्मोनरी महाधमनी (pumonary aorta) और बाएं वेन्ट्रिकल के दाहिने अगले सिरे से बाईं महाधमनी निकलती है। इन दोनों महाधमनियों के प्रारम्भिक भागों में अर्धवृत्ताकार वाल्व (semilunar valve) होते हैं जो केवल एक ही दिशा में रुधिर का बहाव होने देते हैं।

हृदय की क्रिया
(*Working of the Heart*)

हृदय की पंपिंग-क्रिया (pumping action) उसकी पेशीय भित्तियों के कुचन पर निर्भर रहती है। अलिन्द और वेन्ट्रिकल का एकान्तरिक कुचन (alternate contraction) और शिथिलन हुआ करता है। हृदय के वेश्मों के कुचन को सिस्टोल या कुचन (systole) और शिथिलन (relaxation) को अनुशिथिलन (diastole) कहते हैं।

कुचन का आरम्भ अग्र-महाशिरा या प्रीकेवल में होता है फिर दोनों अलिन्दों का और अन्त में वेन्ट्रिकल्स (ventricles) का होता है। कुचन के बाद इनका क्रमशः अनुशिथिलन (diastole) होता है। दाहिने ऑरिकिल में तीनों महाशिराएँ अशुद्ध रुधिर इकट्ठा करती हैं और बाएँ ऑरिकिल में शुद्ध रुधिर इकट्ठा होता है। जब दोनों अलिन्दों का कुचन होता है तो उनका रुधिर शिराओं में वापस नहीं जाने पाता।

दाहिने अलिन्द का अशुद्ध रुधिर ट्राइकस्पिड वाल्व को ठेलकर दाहिने वेन्ट्रिकल में और बाएँ अलिन्द का शुद्ध रुधिर बाइकस्पिड वाल्व में होता हुआ बाएँ वेन्ट्रिकल में पहुँच जाता है। अब वेन्ट्रिकलस का कुचन होता है। दोनो का रुधिर अलिन्दो में वापस नही जाने पाता। इस समय बाइकस्पिड और ट्राइकस्पिड वाल्वो के पल्लव या फलैप्स (flaps) ऊपर उठ जाते हैं और परस्पर मिलकर दोनो अलिन्द-निलय (auriculo-ventricular) छिद्रो को बन्द कर देते हैं। मास-स्तम्भियो या कौर्डी-टेन्डिनी (chordae tendinae) के होने से इन वाल्व के पल्लव या फलैप्स उलटकर अलिन्दो में नही जाने पाते। अत वेन्ट्रिकल्स के सिकुडने पर उनका रुधिर महाधमनियो में जाता है। दाहिने वेन्ट्रिकल्स का अशुद्ध रुधिर पल्मोनरी धमनी द्वारा फेफडो में पहुँच जाता है। श्वसन क्रिया के फलस्वरूप यह रक्त शुद्ध या आक्सीजिनेटेड (oxygenated) हो जाता है और फिर पल्मोनरी शिराओ द्वारा बाएँ अलिन्द में पहुँचता है। बाएँ अलिन्द से बाएँ वेन्ट्रिकल में जाता है और बाएँ वेन्ट्रिकल के कुचन से यह बाई महाधमनी चाप (left aortic arch) में और फिर उसकी शाखाओ द्वारा शरीर के सभी भागो में पहुँच जाता है।

चित्र १६४—खरगोश के हृदय की आन्तरिक सरचना

शिरा उपतंत्र
(Venous System)

(१) अग्र शिराएँ (Anterior veins)—दाहिनी तथा बाई अग्र महाशिराओं (anterior venae cavae) में चार-चार शिराएँ खुलती हैं जो कि सिर तथा अगली टाँगो के विभिन्न भागो से रुधिर इकट्ठा

करके लाती हैं। दाहिनी अग्र महाशिरा (left precaval) में निम्नलिखित शिराएँ खुलती हैं —

(अ) दाहिनी एक्सटर्नल जुगलर या ग्रीवा शिरा (left jugular vein)—यह गर्दन के पार्श्व भाग में होती है। यह एन्टिरीयर और पोस्टीरियर फेशियल (facial) शिराओ के मिलने से बनती है और मुख तथा गर्दन के विभिन्न भागो से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(आ) इन्टर्नल जुगलर (internal jugular)—यह ट्रेकिया (trachea) के किनारे-किनारे पीछे जाती है और सबक्लेविअन शिरा (subclavian vein) के सगम के निकट ही खुलती है और मस्तिष्क से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(इ) दाहिनी सबक्लेविअन (right subclavian)—यह अपनी ओर की अगली टाँग से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(ई) इन्टरकौस्टल शिराएँ (intercostal veins)—ये वक्षगुहा में पसलियो के बीच-बीच स्थित पेशियो से रुधिर इकट्ठा करके लाती हैं।

खरगोश में दाहिनी बाई महाशिराएँ दोनो ही होती हैं। लेकिन कुछ स्तनधारियो में केवल दाहिनी अग्र महाशिरा होती है।

(२) पश्च शिराएँ (Posterior veins)—अग्र महाशिरा की अपेक्षा यह अधिक लम्बी तथा चौडी होती है। इसका अधिकाश भाग उदरगुहा (abdominal cavity) की पृष्ठ सतह पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला होता है। हृदय के पीछे जितने अग होते हैं उन सभी का रुधिर इसी में इकट्ठा होकर दाहिने आरिकिल में पहुँचता है। इसमें निम्नलिखित शिराएँ खुलती हैं —

(अ) इसके पिछले सिरे पर एक्सटर्नल और इन्टरनल इलिअक या श्रोणि (iliac) शिराएँ खुलती हैं। इनमें से एक्सटर्नल इलिअक पिछली टाँगो के बाहरी भागो से और इन्टर्नल इलिअक भीतरी भागो से रुधिर इकट्ठा करके लाती हैं। एक्सटर्नल इलिअक को उरु शिरा (femoral vein) भी कहते हैं। यह मूत्राशय तथा गर्भाशय से भी रुधिर इकट्ठा करती है।

(आ) इलिओ-लम्बर (ilio-lumbar)—इनका भी एक जोडा होता है। ये उदर गुहा की पृष्ठ-पेशियो से रुधिर इकट्ठा करके एक्सटर्नल इलिअक शिराओ के कुछ ऊपर पोस्टीरियर वेना केवा में पहुँचाती है।
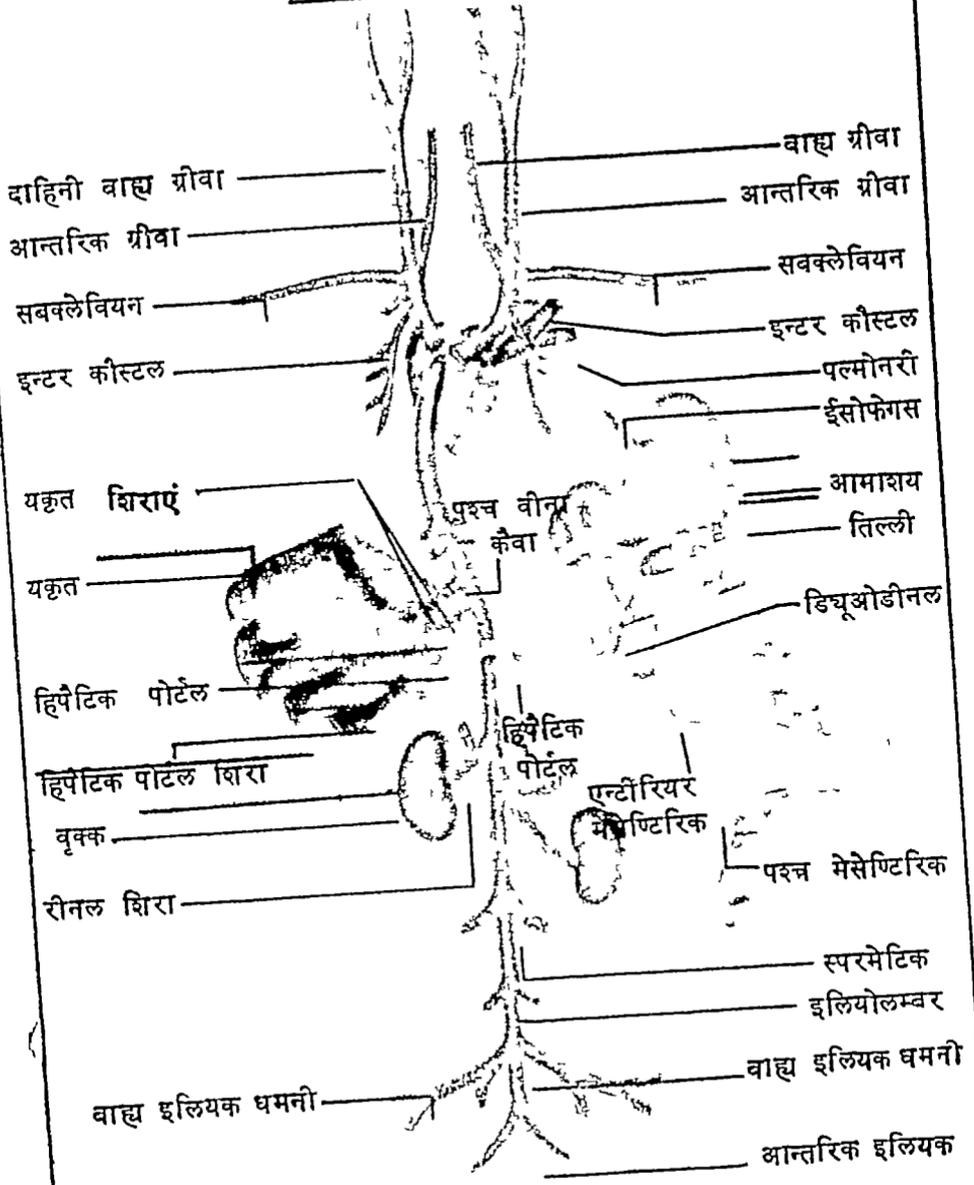
चित्र १६५—खरगोश का शिरा उपतंत्र

(इ) **अंडाशय या वृषण शिराएँ** (Ovarian or spermatic)—ये वृषण (testes) या अडाशय से रुधिर इकट्ठा करके पृष्ठ महाशिरा में उँडेलती हैं।

(ई) **वृक्क शिराएँ** (Renal vein)—प्रत्येक वृक्क के भीतरी तट से एक वृक्क शिरा निकलती है। बाईं वृक्क शिरा से दाहिनी लम्बाई बडी होती है क्योकि इस ओर का वृक्क दाहिने वृक्क से लगभग १ इच पीछे होता है। प्रत्येक ओर की वृक्क शिरा में उस ओर की **डौर्सो-लम्बर** और **एडरीनल शिराएँ** भी खुलती हैं। **डौर्सो लम्बर** शिराएँ पीठ की पेशियो से रुधिर इकट्ठा करके लाती हैं।

(उ) **याकृत शिराएँ** (Hepatic veins)—यकृत के विभिन्न लोन्स या पिंडको से याकृत शिराएँ रुधिर इकट्ठा करके लाती हैं।

(३) **हिपैटिक पोर्टल सिस्टम या याकृत निवाहिका उपतत्र**—आहार नाल के विभिन्न भागो से कई एक शिराएँ रुधिर इकट्ठा करने के बाद मिलकर एक **हिपैटिक पोर्टल वेन** बनाती हैं जो पश्च महाशिरा में खुलने के बजाय यकृत में घुसकर केशिकाओ का एक जाल बनाती है। अत इस पोर्टल-शिरा का आरम्भ और अन्त दोनो ही केशिकाओं (capillaries) मे होता है। खरगोश मे यह निम्नलिखित शिराओ के मिलने से बनती है —

(अ) **लियनोगैस्ट्रिक शिरा** (Lienogastric vein)—यह आमाशय, यकृत और प्लीहा (spleen) से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(आ) **ड्यूओडीनल** (Duodenal)—यह अग्न्याशय, इलियम के ऊपरी हिस्से से और ड्यूओडीनम से रुधिर इकट्ठा करके लाती है।

(इ) **अग्र मैसेण्टेरिक शिरा** (Anterior mesenteric vein)—यह छोटी आंत के निचले भाग, सीकम (caecum), कोलन तथा मलाशय या रक्टम से रुधिर इकट्ठा करती है।

(४) **पल्मोनरी शिरा** (Pulmonary veins)—प्रत्येक फेफडे से एक पल्मोनरी शिरा निकलती है। दोनो ओर की शिराएँ फेफडो से शुद्ध रुधिर इकट्ठा करके बाएँ अलिन्द में पहुँचाती हैं।

धमनी उपतंत्र

(Arterial system)

हृदय से केवल दो महाधमनियाँ निकलती है—**पल्मोनरी महाधमनी** (pulmonary aorta) तथा **बाईं महाधमनी चाप** (left aortic arch)।

(१) पल्मोनरी धमनी—यह दाहिने वेन्ट्रिकल से निकलने के बाद बाई और दाहिनी पल्मोनरी धमनियो में बँट जाती है जो दोनो फेफडो को अशुद्ध रुधिर पहुँचाती हैं।

(२) बाई महाधमनी चाप—इसके अगले तथा पिछले भाग से, जो घूमकर पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) बनाता है, अनेक शाखाएँ निकलती हैं। अत इन्हे हम दो भागो में लेंगे —

(क) अग्र शाखाएँ (Anterior branches)

(क) मूल कैरॉटिड धमनी (Common carotid)—दाहिनी तथा बाई दोनो मूल ग्रीवा धमनियाँ, बाई महाधमनी से निकलती हैं। सिर में पहुँचने के लिए इन्हे गर्दन में होकर जाना पडता है। सिर में पहुँचते ही प्रत्येक मूल ग्रीवा धमनी की दो शाखाएँ हो जाती हैं —

(i) बाह्य कैरॉटिड धमनी (External carotid)—यह सिर तथा मुख को रक्त पहुँचाती है।

(ii) आन्तरिक कैरॉटिड धमनी (Internal carotid)—यह मस्तिष्क को रक्त पहुँचाती है।

आमतौर से दाहिनी तथा बाई ग्रीवा धमनियाँ इननोमिनेट या अनामक (innominate) धमनी से निकलती हैं, किन्तु ऐसा होना अनिवार्य नही है। कभी-कभी बाई मूल ग्रीवा धमनी बाई एओर्टिक आर्च (aortic arch) से निकलती है।

(ख) सबक्लेवियन धमनी (Subclavian artery)—दाहिनी सबक्लेवियन धमनी या तो अनामक (innominate) धमनी से या दाहिनी मूल ग्रीवा धमनी के आधार से निकलती है। इनमें प्रत्येक पहली पसली के ठीक सामने बाहर की ओर जाती है और निम्नलिखित शाखाओ को जन्म देती है —

(i) वरटिब्रल धमनी (vertebral artery)—यह निकलते ही सर्वाइकल वरटिब्री द्वारा निर्मित वरटिब्रा आर्टीरियल कैनाल (vertebrarterial canal) में प्रवेश करती है और फिर इसी में होती हुई मस्तिष्क की ओर जाती है और वहाँ रीढ रज्जु और मस्तिष्क को रक्त पहुँचाती है।

(ii) आन्तरिक स्तन-धमनी (Internal mammary artery)—यह वक्ष-गुहा की प्रतिपृष्ठ भित्ति की भीतरी सतह को रक्त पहुँचाती है।
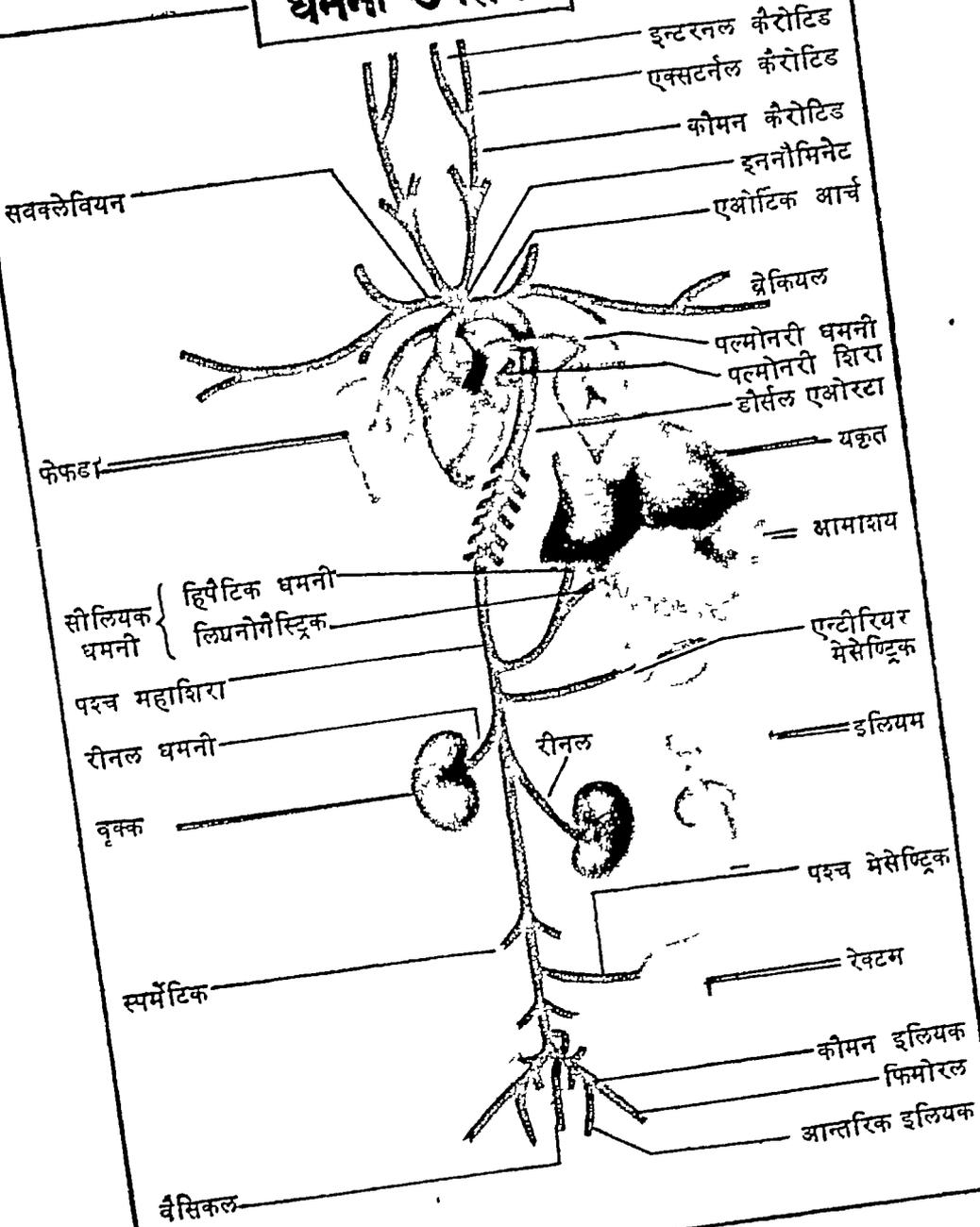
चित्र १६६—खरगोश का धमनी उपतंत्र

(iii) **बाहु या ब्रैकियल धमनी** (Brachial artery)—वास्तव में यह सबक्लेवियन का ही सतनन (continuation) होती है। यह अगली टांगो को रक्त पहुँचाती है।

(ख) पश्च शाखाएँ

पृष्ठ महाधमनी (Dorsal aorta) से निम्नलिखित प्रमुख धमनियाँ निकलती हैं —

(i) **इन्टरकौस्टल धमनियाँ** (Intercostal arteries)— ये इन्टर-कौस्टल पेशियो (intercostal muscles) तथा पसलियो को रुधिर पहुँचाती हैं।

(ii) **सीलिएक धमनी** (Coeliac artery)—यह डायेफ्रॉम के पीछे पृष्ठ महाधमनी से निकलती है और मैसेन्ट्री में पहुँचकर निम्नलिखित धमनियो में विभाजित हो जाती है —

(क) **यकृत धमनी** (Hepatic artery)—यह यकृत के विभिन्न लौब्स या पिंडको को रक्त पहुँचाती है।

(ख) **प्लीहा-जठर या लियनोगैस्ट्रिक धमनी** (Lienogastric artery)—यह आमाशय तथा प्लीहा (spleen) को रक्त पहुँचाती है।

(iii) **वृक्क धमनियाँ** (Renal arteries)—ये सख्या में केवल दो होती हैं। इनमें से बाईं वृक्क-धमनी दाहिनी से अधिक लम्बी होती है।

(iv) **एन्टीरियर मैसेन्ट्रिक धमनी** (Anterior mesenteric artery)—यह अकेली (single) होती है और एबडॉमिनल धमनी के लगभग ½ इन्च पीछे **डौरसल एओरटा** से निकलती है। इसकी अनेक शाखाएँ हो जाती है जो ड्यूओडीनम, अग्न्याशय, छोटी आँत सीकम और रेक्टम को रक्त पहुँचाती हैं।

(v) **वृषण या अडाशय धमनियाँ** (Spermatic or ovarian arteries)—नर में दो वृषण धमनियाँ होती हैं जो उदरगुहा की पृष्ठ-भित्ति से मिली हुई पीछे तथा बाहर की ओर जाती हैं और वृषण को रक्त पहुँचाती हैं। ठीक इसी प्रकार मादा में **अंडाशय धमनियाँ** (ovarian arteries) होती हैं।

(vi) **पोस्टीरियर मैसेन्ट्रिक धमनी** (Posterior mesenteric

artery)—यह एक छोटी-सी धमनी है जो रेक्टम के अन्तिम भाग को रक्त पहुँचाती है।

(vii) कटि या लम्बर धमनी (Lumbar artery)—यह पृष्ठ महाधमनी के पिछले सिरे के समीप निकलती है।

(viii) श्रोणि या इलिएक धमनियाँ (Iliac arteries)—उदरगुहा के पिछले सिरे पर पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) दो श्रोणि धमनियों में विभाजित हो जाती है जो पिछली टाँगो को रक्त पहुँचाती हैं। टाँगो में इसी धमनी के पिछले भाग को फेमोरल धमनी (femoral artery) कहते हैं।

(ix) पुच्छ या कॉडल धमनी (caudal artery)—यह पृष्ठ महाधमनी के पिछले सिरे से निकलकर पूंछ को रक्त पहुँचाती है।

(ख) पाल्मोनरी एओरटा (Pulmonary aorta)—दाहिने वेन्ट्रिकल से निकलने के वाद यह हृदय की पृष्ठ सतह के आगे दाहिनी तथा वाईं पल्मोनरी धमनियो में विभक्त हो जाती है जो फेफडो को रक्त पहुँचाती हैं।

रुधिर (Blood)

तुम पढ चुके हो कि वरटिब्रेट्स का रक्त एक तरह सयोजी ऊतक (liquid connective tissue) होता है। सामान्य सयोजी ऊतक से यह निम्न प्रकार भिन्न होता है —

(१) रक्त का तरल भाग या प्लाज्मा (plasma) सयोजी ऊतक मैटरिक्स (matrix) के समान है तथा रुधिर कणिकाओ की तुलना सयोजी ऊतक कोशिकाओ से की जा सकती है। किन्तु मैटरिक्स (matrix) के निर्माण में रुधिर कणिकाओ का कोई हाथ नही होता।

प्लाज्मा के अलावा रुधिर में तीन प्रकार की कणिकाएँ मिलती हैं जिन्हे —

(क) लाल-रुधिर कणिकाएँ (Red blood corpuscles)
(ख) श्वेत-रुधिर कणिकाएँ (White blood corpuscles)
(ग) रुधिर प्लेटलेट्स (Blood platelets) कहते हैं। सर्वप्रथम हम प्लाज्मा की रचना लेंगे—

(१) प्लाज्मा—यह एक लसलसे द्रव के रूप में होता है और समस्त रक्त का $\frac{3}{5}$ भाग बनाता है। यह लगभग रगहीन पदार्थ है जिसका सघटन

(composition) बहुत जटिल तथा सदैव एक-सा नही रहता, अर्थात् शरीर के विभिन्न भागो में आते-जाते बराबर बदला करता है। प्लाज्मा में घुलनशील तथा कोलौयडल (colloidal) पदार्थ दोनो ही मिलते हैं। घुलनशील पदार्थों में निम्न वस्तुएँ मिलती हैं।

(क) घुली हुई गैसों में आक्सीजन (O_2), नाइट्रोजन तथा कार्बन डाई-आक्साइड होती हैं।

(ख) पचे हुए भोजन में ग्लूकोज (glucose), चर्बी, अमीनो-अम्ल तथा विटामिन्स प्रमुख हैं। घुलनशील चर्बी साबुन (soluble soap) के रूप में होती है।

(ग) प्लाज्मा में कई प्रकार के अकार्बनिक लवण (inorganic salts) मिलते हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय लोहे, कैलशियम, पुटैशियम, सोडियम के क्लोराइड, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट और सल्फेट होते हैं। इन्ही की उपस्थिति से रक्त मंद क्षारीय (mildly alkaline) होता है।

(घ) प्लाज्मा मे अवाहिनी ग्रन्थियो द्वारा निर्मित हारमोन्स भी मिलते हैं।

(य) ऐन्टीटौक्जिन तथा अन्य रक्षक पदार्थ भी मिलते हैं जो शरीर की रक्षा में सहायता देते हैं।

(र) इनके अतिरिक्त प्लाज्मा में फाइब्रिनोजिन (fibrinogen) मिलता है जो रुधिर के थक्का बनने (blood clotting) में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। इसके अतिरिक्त एलब्यूमिन्स तथा ग्लोब्यूलिन्स (globulins), नाम के भी प्रोटीन होते हैं।

(ल) शरीर के विभिन्न भागो में अनेक प्रकार की कैटोबौलिक क्रियाएँ होती रहती हैं जिनके फलस्वरूप यूरिया (urea), यूरिक अम्ल (uric acid), कार्बन डाई-आक्साइड तथा अमोनिया आदि एक्सक्रीटरी पदार्थ बनते हैं। ये सभी प्लाज्मा मे उपस्थित रहते हैं।

(२) लाल-रुधिर कणिकाएँ (Red blood corpuscles)—स्तनधारियों में ये गोल, बाइकौनकेव तथा न्यूक्लियसहीन होती हैं। इनका व्यास लगभग ७.५ म्यू (μ) और मोटाई २ म्यू होती है। एक घन मिलीमीटर में इनकी सख्या ४५ से ५० लाख होती है। नर स्तनधारियो में इनकी संख्या स्त्री स्तनधारियो की अपेक्षा अधिक होती है। प्रत्येक लाल रुधिर कणिका के चारो ओर एक बहुत ही पतला तथा लचीला आवरण होता है जिसके लचीलेपन के कारण ये केशिकाओ के भीतर, जिनका व्यास इनसे कम होता है, सहज ही में चली जाती हैं। प्रत्येक लाल रुधिर कणिका के प्रोटोप्लाज्म में हीमोग्लोबिन

मिलता है जो श्वसन क्रिया में प्रमुख भाग लेता है। हीमोग्लोबिन कुछ नीलापन लिये लाल होता है। यही कारण है कि मनुष्य में शिराओ का रग देखने में वैंगनी (purple) होता है। जब हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन से मिलकर **ऑक्सी-हीमोग्लोबिन** (oxyhaemoglobin) बनाता है तो इसका रग चटकीला लाल हो जाता है। हीमोग्लोबिन की उपस्थिति से रक्त में ऑक्सीजन ढोने की शक्ति कई गुनी बढ जाती है। इनकी उत्पत्ति यद्यपि लाल अस्थि मज्जा (red bone marrow) में न्यूक्लियस युक्त होती है, परन्तु परिवर्धन काल में ये अपने न्यूक्लियस को खो देती हैं। न्यूक्लियस के अभाव से लाल रुधिर कणिकाएँ १२० दिन से अधिक जीवित नहीं रहती। मरने के पहले ये प्लीहा-गोर्द (spleen pulp) में जाकर फँस जाती हैं। और वहाँ इनके हीमोग्लोबिन में मिलनेवाला लोहा रोक लिया जाता है किन्तु शेष भाग यकृत में पहुँच कर पित्त रग (bile pigments) बनाता है जिसकी उपस्थिति से पित्त (bile) रगीन हो जाता है।
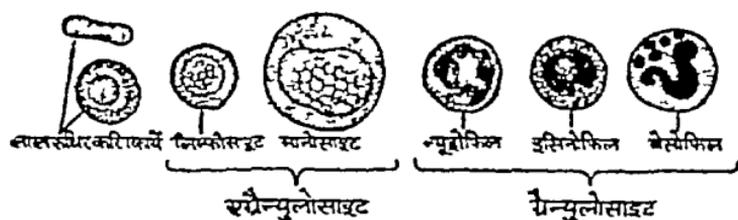
चित्र १६७—खरगोश के रुधिर में मिलनेवाली विभिन्न प्रकार की रुधिर कणिकाएँ

(३) **श्वेत-रुधिर कणिकाएँ** (White blood corpuscles)—ये लाल-रुधिर कणिकाओ की अपेक्षा बडी और सामिपारदर्श (translucent) होती हैं तथा अमीबा (*Amoeba*) की भाँति ये अपने आकार को सदैव बदलती रहती हैं। अपने को बहुत ही पतला बनाकर य केशिकाओ की दीवारो में छेद करके बाहर निकल आती हैं। इसी लिए ये शरीर के कोने कोने में घूमती फिरती रहती हैं।

जब कभी जीवाणु शरीर के किसी भाग में प्रवेश करते हैं तब श्वेत रुधिर कणिकाएँ एक बडी सख्या में उस स्थान पर पहुँच जाती हैं और उन्हे चारो तरफ से घेरकर रासायनिक तथा मल्ल युद्ध आरम्भ करती हैं। आक्रामी जीवाणुओ को अपने कूटपादो की सहायता से ये निगल जाती हैं। इसी लिए इन्हे **फैगो-साइट्स** भी कहते हैं। कुछ श्वेत-रुधिर कणिकाएँ रोगाणुओ (germs) द्वारा बनाये गये विषो या टौक्सिन्स को ऐन्टीटौक्सिन (antitoxin) बनाकर नष्ट कर देती हैं। रोग होने पर इनकी सख्या बहुत अधिक बढ जाती है। सक्षेप में शरीर को स्वस्थ रखने में इनका विशेष हाथ होता है। शरीर की रक्षा तथा

प्रतिरक्षा (defence) के अतिरिक्त ये मृत कोशिकाओ के अवशेष तथा चर्बी की कणिकाओ के वहन (transport) में भी सहायता देती हैं।

न्यूक्लियस के आकार, आकृति तथा साइटोप्लाज्म की रचना के आधार पर श्वेत-रुधिर कणिकाएँ कई प्रकार की होती हैं। ग्रैन्युलोसाइट्स का साइटोप्लाज्म कणात्मक (granular) होता है किन्तु एग्रैन्यूलोसाइट के साइटोप्लाज्म मे कणिकाओ का अभाव होता है। रँगने के आधार पर ग्रैन्यूलोसाइट का वर्गीकरण एसीडोफिल (acidophil), बेसोफिल (basophil) और न्यूट्रोफिल (neutrophil) में किया जाता है। लिम्फोसाइट्स का न्यूक्लियस बडा होता है जिससे इनमें साइटोप्लाज्म की मात्रा कम होती है। ये घाव के भरने मे विशेषरूप से तथा चर्बी की कणिकाओ के वहन में भी सहायता देते हैं। इनका जन्म लिम्फ ग्लैण्डस में होता है। जिन श्वेत-रुधिर कणिकाओ में न्यूक्लियस अनियमित आकार का तथा अनेक पिंडको में विभाजित होता है, उन्हे पौलीमार्फ (polymorph) भी कहते हैं। आदमी के रुधिर में इनकी सख्या श्वेत-रुधिर कणिकाओं की सख्या की ६०-७५ प्रतिशत होती है। रोग की अवस्था में इनकी प्रतिशतिकता % और भी अधिक बढ जाती है क्योकि आमतौर पर ये ही फॅगोसाइट्स का काम करती हैं। मनुष्य के खून में श्वेत रुधिर कणिकाओ की सख्या ५०००-१०००० प्रति घन मिलीमीटर होती है।

(३) थ्रोम्वोसाईट (Thrombocytes)—ये नन्हे-नन्हे रगीन टुकडो के रूप में दिखाई देते हैं। लाल तथा श्वेत-रुधिर कणिकाओ से ये बहुत छोटे होते हैं और इनमे न्यूक्लियस का अभाव होता है। शरीर के कही से कट जाने पर ये रक्त के साथ बाहर निकल जाते हैं और टूटने-फूटने लगते हैं। इनके इस प्रकार टूटने पर इनसे एक प्रकार का रासायनिक द्रव निकलता है जिसे थ्रोम्वोकाइनेज कहते हैं। यह रुधिर के आतचन में सहायता देता है।

रुधिर के विभिन्न कार्य तुम मेढक के सम्वन्ध में पढ चुके हो।

(६) ककाल-तत्र या स्कैलिटन-सिस्टम
(Skeleton system)

मेढक की भाँति खरगोश का भी ककाल दो प्रमुख भागो में वाँटा जा सकता है —

(१) अक्ष ककाल (Axial skeleton)—इसमें कशेरुक दड या वरटिब्रल कॉलम (Vertebral column) तथा खोपडी होते हैं।

(२) उपांग कंकाल (Appendicular skeleton)—इसमें अगली तथा पिछली टाँगों की हड्डियाँ और उन्हें सहारा देनेवाली गर्डिल्स (girdles) होती हैं। सर्वप्रथम हम अक्षीय-कंकाल का अध्ययन करेंगे।

(क) कशेरुक दंड या वरटिब्रल कॉलम (Vertebral column)

खरगोश का वरटिब्रल कॉलम एक शलाका के रूप में सिर के पीछे से लेकर पूंछ तक फैला होता है। आगे की ओर अगली टाँगें तथा पीछे की ओर पिछली टाँगें सहारा देती हैं। उदर (abdomen) तथा वक्ष गुहाओं (thoracic cavities) में मिलनेवाले अनेक अंग वरटिब्रल कॉलम के ही सहारे लटके रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह खोपडी (skull) को सहारा देता है तथा पूंछ का भी कंकाल (skeleton) बनाता है।

खरगोश के वरटिब्रल कॉलम में लगभग ४६-४७ कशेरुक होती हैं। खरगोश तथा मेढक की वरटिब्री की आधारभूत रचना एक ही-सी होती है, फिर भी दोनों में निम्न अन्तर होते हैं —

(क) खरगोश में प्रत्येक कशेरुका का सेन्ट्रम चपटा होता है।

(ख) प्रत्येक वरटिब्रा के अगले तथा पिछले सिरों पर एक एक एपीफाइसिस (epiphysis) होता है। आयु के साथ वरटिब्रल कॉलम लम्बाई में बढ़ता है और इस प्रकार की वृद्धि में एपीफाइसिस सहायता देते हैं।

(ग) दो कशेरुक के बीच में अन्तरकशेरुक या इन्टरवरटिब्रल डिस्क (intervertebral discs) होते हैं। ये फाइब्रोकार्टिलेज (fibro-cartilage) के बने होते हैं। इनके होने से सभी कशेरुक दृढतापूर्वक एक दूसरे से बँधी रहती हैं और रगड (friction) नहीं लगने देती, ये धक्कों को सह लेती हैं और साथ ही साथ वरटिब्रल कॉलम के लचीलेपन में किसी प्रकार की कमी नहीं होने पाती।

स्थिति के अनुसार खरगोश की कशेरुक निम्न पाँच भागों में बाँटी जा सकती हैं —

(१) सर्वाइकल या ग्रीवा कशेरुक (Cervical vertebrae) गरदन
(२) थोरेसिक या वक्षीय कशेरुक (Thoracic vertebrae)
(३) लम्बर या कटि कशेरुक (Lumbar vertebrae) कमर
(४) सेक्रल या त्रिक कशेरुक (Sacral vertebrae) कमर के पीछे
(५) कॉडल या पुच्छ कशेरुक (Caudal vertebrae) पूँछ

कशेरुक की आधारभूत सरचना एक ही-सी होती है किन्तु फिर भी सभी भागो के कशेरुक में कुछ न कुछ विशेष लक्षण मिलते हैं जिनकी सहायता से इन्हे आसानी से पहचाना जा सकता है। सर्वप्रथम हम लम्बर-कशेरुक को लेंगे।

(१) **लम्बर या कटि कशेरुक**—इन कशेरुक की रचना समझने के पूर्व इनके कार्य को समझ लेना अधिक उपयोगी होगा। खरगोश कूद-कूद-कर भी चलता है। इस प्रकार से चलने में जब यह अपनी टाँगो को आगे बढाता है तो इसका वरटिब्रल कॉलम झुक जाता है और जब टाँगो को पीछे बढाता है तो यह सीधा हो जाता है। इस प्रकार इसका वरटिब्रल कॉलम
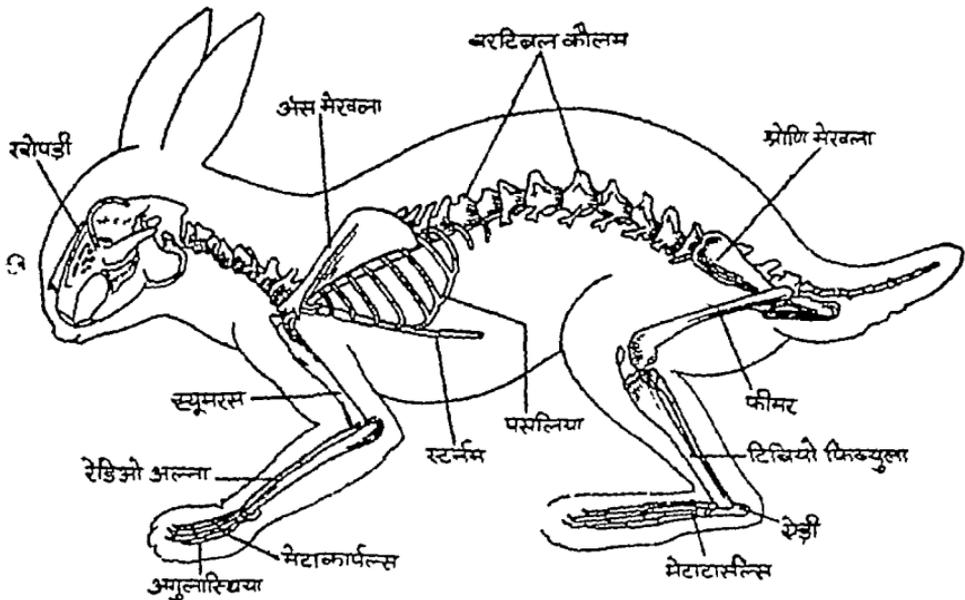
चित्र १६८—खरगोश का पूरा अस्थि-ककाल या स्कैलिटन

और उसकी पेशियाँ एक प्रकार के स्प्रिग (spring) का काम करती हैं। कूदने में टाँगो की अपेक्षा वरटिब्रल कॉलम का सहयोग अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वरटिब्रल कॉलम का आकुचन (flexion) तथा प्रसार (extension) सबसे अधिक लम्बर-कशेरुक तथा पिछली थोरसिक कशेरुक के प्रदेश में होता है। इसीलिए ये बडी तथा मजबूत होती हैं। इनके केन्द्रक या सेन्ट्रम बडे होते हैं और साथ ही-साथ इनमे कुछ नये प्रवर्ध या प्रोसेस भी होते हैं। अन्य वरटिब्री के विपरीत इनके **ट्रासवर्स प्रोसेस** बडे ही नही होते बल्कि आगे, नीचे तथा बाहर की ओर झुके रहते हैं और सिरे अपेक्षाकृत अधिक फैले होते हैं। आगे की दो-तीन लम्बर वरटिब्री के सेन्ट्रम की प्रतिपृष्ठ सतह से एक और प्रोसेस निकलता है जिसे **हाइपापोफिसिस** (hypapophysis)

कहते हैं। इन कशेरुक के न्यूरल स्पाइन (neural spine) भी चौड़े तथा चपटे होते हैं। न्यूरल स्पाइन के इधर-उधर चौड़े मैटापोफिसिस (metapophyses) होते हैं जिनकी भीतरी सतह पर प्रीजाइगॉपोफिसिस (prezygapophyses) होते हैं। वरटिब्रा के पिछले सिरे पर पोस्टजाइगॉपोफिसिस (postzygapophyses) होते हैं जिनकी संधि मुखिकाएँ (articular facets) नीचे की ओर झुकी रहती हैं। प्रत्येक पोस्टजाइगॉपोफिसिस के नीचे एक और उभार होता है जिसे ऐनापोफिसिस (anapophyses) कहते हैं।

प्रीजाइगॉपोफिसिस ऊपर की ओर होते हैं और भीतर की ओर झुके रहते हैं किन्तु पोस्टजाइगॉपोफिसिस नीचे होते हैं और वाहर की ओर झुके रहते
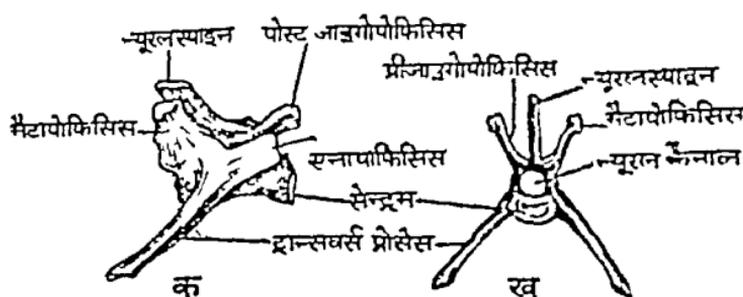
चित्र १६९—लम्बर वरटिब्रा क, पार्श्व तथा ख, अग्र दृश्य

हैं। जीवित अवस्था में प्रीजाइगॉपोफिसिस तथा पोस्टजाइगॉपोफिसिस मिलकर एक संधि बनाते हैं जो स्नायुओं (ligaments) द्वारा घिरी रहती है। इस जोड़ की संधि गुहा (articulating cavity) में एक प्रकार का संधिरस (synovia) होता है जिसकी उपस्थिति से दोनो जाइगॉपोफिसिस सरलता से एक दूसरे के ऊपर फिसल सकते हैं। इस प्रकार के जोडो के कारण वरटिब्रल कॉलम में झुकाव तथा घुमाव की शक्ति सीमित हो जाती है।

(२) थोरैसिक या वक्षीय वरटिब्री (Thoracic vertebrae)—ये बारह या तेरह होती हैं तथा इन्ही से पसलियाँ जुडी रहती हैं। प्रत्येक पसली के ऊपरी द्विशाख (forked) सिरे को जुड़ने का स्थान देने के ही लिए इनकी रचना में विशेष परिवर्तन हो जाते हैं। आगे की सभी पसलियाँ घुमावदार होती हैं। प्रत्येक पसली का ऊपरी सिरा द्विशाख होता है और अँगरेजी के अक्षर Y से मिलता-जुलता है। इनमें से छोटे ऊपरी सिरे को ट्युबर्कुलम (tuberculum) और बड़े को कैपीटुलम कहते हैं। ट्युबर्कुलम के जोड़ के लिए प्रत्येक ट्रांसवर्स प्रोसेस के ऊपर ट्युबर्कुलर फेसेट होता है। ठीक इसी प्रकार कैपीटुलम (capitulum) के लिए सेन्ट्रम के अगले तथा पिछले सिरो पर कैपीटुलर फेसेट होते हैं। प्रत्येक थोरैसिक वरटिब्रा में प्रीजाइगॉपोफिसिस

तथा पोस्टज़ाइगॉपोफ़िसिस के जोडे होते हैं। आगे की ९ वरटिब्री के न्यूरल स्पाइन (neural spines) लम्बे पतले तथा पीछे की ओर झुके रहते हैं किन्तु दसवी थोरसिक वरटिब्रा का न्यूरल स्पाइन सीधा होता है। पसलियो की उपस्थिति से इन सभी वरटिब्री के ट्रासवर्स प्रोसेस बहुत छोटे किन्तु मोटे और मजबूत तथा सीधे होते हैं।

(३) सर्वाइकल या ग्रीवा कशेरुक सख्या में ७ होती हैं। इनकी रचना में परिवर्तन होने के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं —

(क) खोपडी के साथ जोड
(ख) गर्दन में हिलने-डुलने की क्षमता
(ग) गर्दन में आतरगो (viscera) का अभाव।
(घ) पसलियो का ह्रासन (reduction)
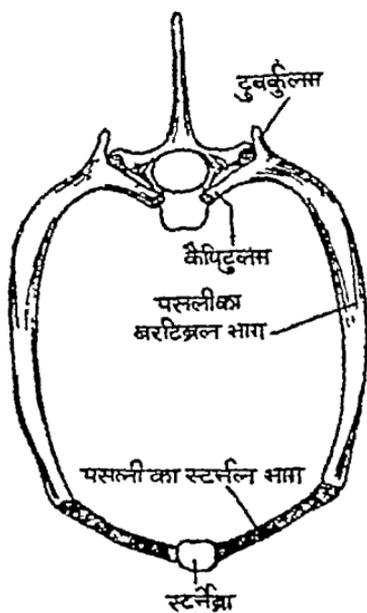
चित्र १७०—थोरैसिक वरटिब्रा से सम्बन्वित पसलियाँ

पाँचवीं सर्वाइकल कशेरुक को हम प्रारूपिक (typical) कह सकते हैं। थोरैसिक वरटिब्री की अपेक्षा यह अधिक चौडी होती हैं। थोरैसिक वरटिब्री की भाँति इनमें पसलियो के लिए सधि-मुखिकाएँ (articular facets) भी नही होतीं। न्यूरल आर्च (neural arch) के दोनो पार्श्वों से जुडी एक एक सर्वाइकल रिब होती है। इसलिए दोनो ओर एक एक वरटिब्राआर्टीरियल कैनाल (vertebra arterial canal) होती है। खरगोश के जीवन में इस नली में वरटिब्रल-धमनी (vertebral artery) होती है। प्रत्येक सर्वाइकल वरटिब्रा वास्तव में वरटिब्रा + दो सर्वाइकल पसलियाँ कहा जा सकता है। इनके न्यूरल स्पाइन (neural spine) बहुत ही छोटे होते हैं।
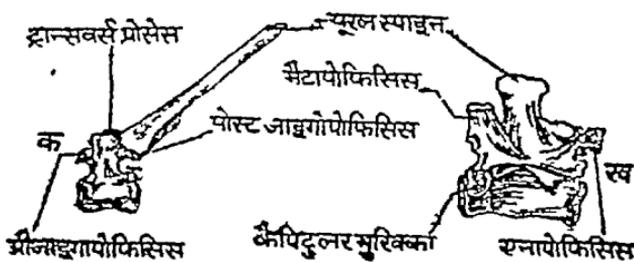
चित्र १७१—क, अगले थोरैसिक वरटिब्रा का पार्श्व-दृश्य, ख, पिछले थोरैसिक वरटिब्रा का पार्श्व-दृश्य

प्रथम सर्वाइकल (First cervical)—यह खोपडी को साथे रहता है और साथ ही साथ उसे ऊपर-नीचे झुकने में भी सहायता देता है। सिर को धारण करने के ही कारण इसे ऐटलस या शीर्ष-धरा कशेरुका (Atlas vertebra) कहते हैं।
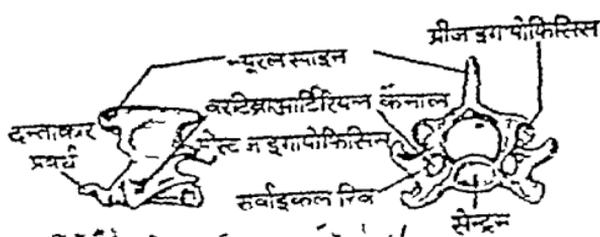
चित्र १७२—एक्सिस वरटिब्रा का अग्र तथा पार्श्व अग्र दृश्य।

इस वरटिब्रा का सेन्ट्रम बहुत ह्रासित (reduced) होता है जिससे इसकी न्यूरल कैनाल (neural canal) बहुत बडी होती है। खरगोश के जीवन में स्नायु या लिगामेन्ट की एक पट्टी द्वारा यह दो भागो में बँटी रहती है। ऊपरी भाग को स्पाइनल कैनाल (spinal canal) और निचले को ओडोन्टॉएड कैनाल (odontoid canal) कहते हैं। इस वरटिब्रा का सेन्ट्रम वास्तव में इससे अलग होकर अक्ष कशेरुका या एक्सिस वरटिब्रा के अगले सिरे से जुडकर ओडोन्टॉएड प्रासेस का निर्माण करता है। जीवित अवस्था में यह खूँटी ऐटलस वरटिब्रा की ओडोन्टॉएड कैनाल में घुसी रहती है और विवर्त सन्धि (pivot joint) का निर्माण करती है। यह जोड खरगोश को अपने सिर को दाएँ-बाएँ घुमाने में सहायता देता है।

ऐटलस वरटिब्रा के अगले सिरे पर न्यूरल कैनाल के इधर-उधर, दो छिछले गड्ढे होते हैं जो ऑक्सिपीटल कौंड्राइल के साथ कन्दुक उलूखल सन्धि (ball and socket joint) बनाते हैं। इसी जोड की सहायता से खरगोश अपने सिर को ऊपर-नीचे घुमा सकता है। ऐटलस वरटिब्रा के ट्रासवर्स प्रोसेस चौडी तथा चपटी पट्टियो के रूप में होते हैं।

चित्र १७३—शीर्षधरा-कशेरुका (atlas) के क, एन्टीरियर, ख, डोरसल तथा पोस्टीरियर दृश्य

अक्ष कशेरुका (Axis vertebra) का न्यूरल स्पाइन चपटा तथा चौडा होता है। पोस्ट जाइगॉपोफ़िसिस तो मिलते हैं किन्तु प्रीजाइगॉपोफ़िसिस का पूरा अभाव होता है। इसके सेन्ट्रम के अगले सिरे पर एक नुकीली खूँटी-सी होती है जिसे ओडोन्टॉएड प्रोसेस कहते हैं।

(४) त्रिक या सेक्रल कशेरुक (Sacral vertebrae)—कटि प्रदेश के लचीलेपन (flexibility) के विपरीत सेक्रल वरटिब्री आपस में मिलकर एक मजबूत रचना बनाती है जिसे सेक्रम (sacrum) कहते हैं। यद्यपि तीन-चार वरटिब्री मिलकर सेक्रम बनाती है किन्तु प्रत्येक वरटिब्रा की सीमाएँ स्पष्ट दिखाई देती है। सेक्रम (sacrum) पैल्विक गर्डिल को साधे रहता है जिससे पिछली टाँगो का लगाव रहता है। अधिकाश स्तनधारियो मे पिछली टाँगे ही चलने तथा कूदने

चित्र १७४—सेक्रम (sacrum)

में विशेष सहायता देती हैं जिससे सेक्रम का मजबूत होना भी आवश्यक है। प्रथम सेक्रल वरटिब्रा बहुत ही मजबूत होता है तथा इसका सेन्ट्रम भी अधिक चौडा होता है। इसके ट्रासवर्स प्रोसेस बहुत मोटे होते हैं और ईलिया (ilia) से दृढतापूर्वक जुडे रहते हैं। न्यूरल स्पाइन सीधा होता है। प्रीजाइगॉपोफिसिस छोटे होते हैं किन्तु पोस्टजाइगॉपोफिसिस का पूर्ण अभाव होता है। सेक्रल वरटिब्री के परस्पर मिल जाने से प्री-और पोस्टजाइगॉपोफिसिस से लेकर सेक्रल वरटिब्री उत्तरोत्तर छोटी होती जाती है और इनके तन्त्रिका कटक (neural spine) पीछे की ओर झुके रहते हैं। द्वितीय सेक्रल वरटिब्रा में तो अनुप्रस्थ प्रवर्धन स्पष्ट होते हैं और प्रथम के ट्रासवर्स प्रोसेस की भाँति ईलिया से जुडे रहते है किन्तु अन्य दो कशेरुक में ये भी ह्रासित होते हैं। इन सभी कशेरुक के इन्टरवर-टिब्रल छेद (intervertebral foramen) प्रतिपृष्ठ सतह पर स्थित होते हैं।
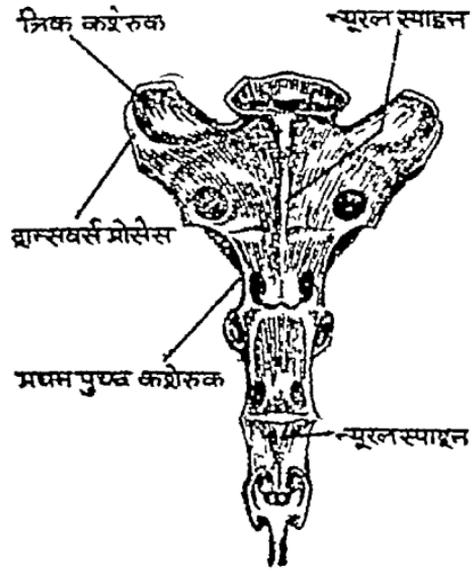
(५) पुच्छ या कौडल कशेरुक (caudal vertebrae)—इनकी सख्या लगभग १६ होती हैं। इनमे तन्त्रिका कटक और अनुप्रस्थ प्रवर्द्ध (transverse processes) नही होते। आगे से पीछे की ओर जाने पर इनमें केवल सेन्ट्रा रह जाते हैं। पूँछ में रीढ रज्जु नही मिलता।

पसलियाँ तथा उरोस्थि या स्टर्नम
(Ribs and Sternum)

खरगोश मे पसलियो के १२ या १३ जोडे होते हैं। ये पसलियाँ पतली तथा घुमावदार होती हैं और ऊपरी सतह पर थोरैसिक वरटिब्री से चल सन्धियो

द्वारा जुडी रहती हैं। ये पसलियाँ मिलकर एक पिंजडा या झावा (basket) वनाती हैं जो वक्ष गुहा में स्थित अगो की रक्षा करता है और साथ ही साथ श्वसन क्रिया में सहायता देनेवाली पेशियो के जुडने के लिए आवश्यक सतह की व्यवस्था करता है।

पसलियो के आगे के सात जोडे पूर्ण (complete) होते हैं अर्थात् ये पसलियाँ वरटिब्रल कॉलम से लेकर स्टर्नम तक फैली होती हैं। इनमें से प्रत्येक पसली दो भागो में विभाजित की जा सकती है—(१) **स्टर्नल भाग** (sternal portion) तथा (२) **वरटिब्रल भाग** (vertebral portion)। वरटिब्रल भाग अधिक लम्वा तथा हड्डी का वना होता है और थोरैसिक वरटिब्री के सेन्ट्रम तथा ट्रासवर्स प्रोसेस से जुडा रहता है। स्टर्नल भाग (sternal portion) कार्टिलेज का वना होता है और प्रतिपृष्ठ सतह पर स्टर्नम से जुडा रहता है। कार्टिलेज से वने इन भागो की उपस्थिति से पसलियो में पर्याप्त लचीलापन (flexibility) आ जाता है।

प्रथम ९ पसलियो के ऊपरी सिरे द्विशाख (bifurcated) होते हैं। इनमें से एक को **कैपीटुलम** और दूसरे को **टुवरकुलम** कहते हैं। टुवरकुलम ट्रासवर्स प्रोसेस से जुडा रहता है किन्तु कैपीटुलम सेन्ट्रम से। अन्त की तीन पसलियाँ केवल सेन्ट्रम से जुडी होती हैं। आठवी तथा नवी पसलियो के स्टर्नल भाग (sternal portions) स्टर्नम तक नही पहुँच पाते जिससे ये सातवी पसली के स्टर्नल भाग से जुडे रहते हैं। इसलिए आठवी तथा नवीं पसलियो को सहयुत पसलियाँ (false ribs) कहते हैं। नवी, दसवीं, ग्यारहवी तथा बारहवी पसलियो का स्टर्नम से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता जिससे इन्हे **फ्लोटिंग या अयुत पसलियाँ** (floating ribs) कहते हैं।
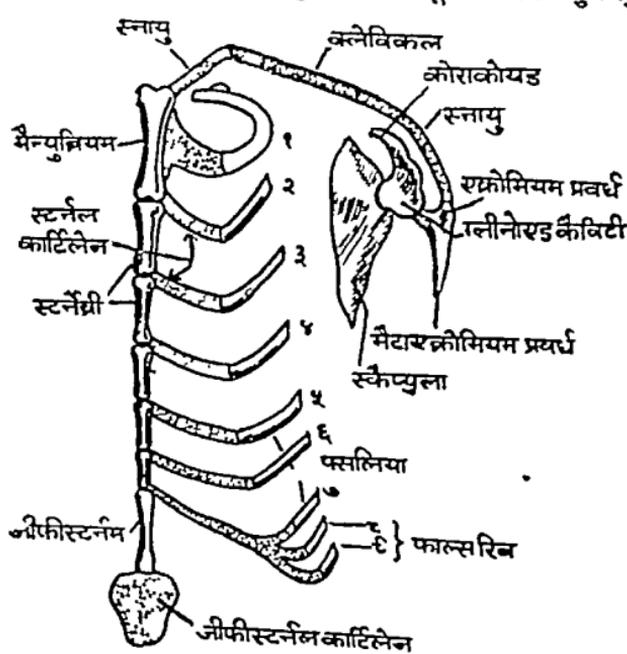
चित्र १७५—स्टर्नम तथा पैक्टोरल गर्डिल का प्रतिपृष्ठ दृश्य

स्टर्नम (sternum) में हड्डी की छ शलाकाएँ होती हैं जिन्हे स्टर्नेब्री (sternebrae) कहते हैं। सबसे पीछ की हड्डी को **जीफीस्टर्नम** (xiphisternum) कहते हैं। इसके पिछले सिरे से जुडी एक चौडी चपटी कार्टिलेज की पट्टी होती है जिसे **जीफीएड कार्टिलेज** (xiphoid cartilage) कहते हैं।

खोपड़ी
(Skull)

स्तनधारियों की खोपडी (Mammalian skull) का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक नही है कि हम खरगोश की ही खोपडी लें। कुत्ते जैसे स्तनघारी की खोपडी काफी बडी होती है और सरलता से मिल भी जाती है जिससे इसका अध्ययन अधिक सुविधाजनक होगा।

खोपडी के दो प्रमुख कार्य हैं —(१) मस्तिष्क तथा सवेदागो (नेत्र, कर्ण, नाक इत्यादि) की रक्षा तथा (२) जबडो का निर्माण। खोपडी के दो भाग होते हैं— **क्रेनियम** (cranium) तथा हनु ककाल (visceral skeleton) जो मुख प्रदेश (facial region) का अधिकाश भाग बनाता है। क्रेनियम (cranium) अनेक चौडी, चपटी तथा विभिन्न आकार की हड्डियो के मेल से बनता है और मस्तिष्क तथा उससे सम्बन्धित सवेदी अगो की रक्षा करता है। क्रेनियम के अगले भाग से जुडे **औलफैक्टरी कैपस्यूल्स** (olfactory capsules), पार्श्व में **औप्टिक कैपस्यूल्स** (optic capsules) और पिछले सिरे के इधर-उधर **श्रवण कोष** (auditory capsules) होते हैं। विसरल स्कैलिटन या हनु ककाल में **ऊपरी** तथा **निचले** जबड़े, हाइऑइड तथा लैरिंक्स के कार्टिलेज होते हैं।

क्रेनियम में मस्तिष्क होता है। यह पीछे की ओर प्रतिपृष्ठ सतह के समीप **फोरामेन मैगनम** द्वारा वरटिब्रल कॉलम की **तन्त्रिका नाल** (neural
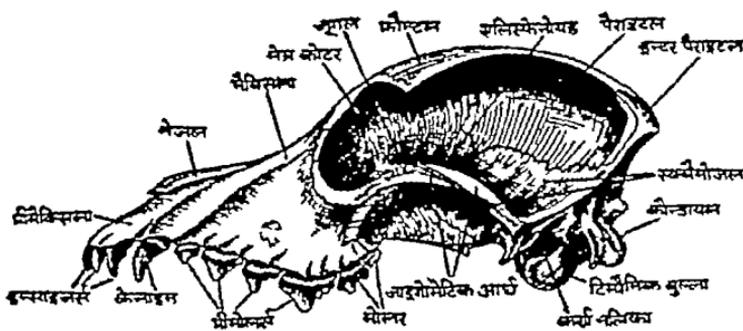
चित्र १७६—कुत्तें की खोपडी का पार्श्व दृश्य

canal) से जुडा रहता है और इस प्रकार मस्तिष्क तथा रीढ-रज्जु (spinal cord) भी एक दूसरे से जुडे होते हैं। क्रेनियम की विभिन्न हड्डियां परस्पर

अपने आरी जैसे किनारो द्वारा एक दूसरे मे इस प्रकार सटकर जुडी रहती हैं कि ये किसी भी प्रकार हिल-डुल नही सकती। इस प्रकार की अचल सधियो को **सीवन सधियाँ** (suture joints) कहते हैं।

क्रेनियम की विभिन्न हड्डियाँ स्थिति के अनुसार तीन स्पष्ट खडो में बाँटी जा सकती हैं —

(१) **ऑक्सिपीटल खड** (Occipital segment)
(२) **पेराईटल खड** (Parietal segment)
(३) **फ्रॉन्टल खड** (Frontal segment)

ऑक्सिपीटल खड (occipital segment) में फोरामेन मैंगनम के चारो ओर चार हड्डियाँ होती हैं। **वेसीऑक्सिपीटल** (basioccipital) नीचे, **एक्स-ऑक्सिपीटल्स** (ex-occipital) फोरामेन मैंगनम के इधर-उधर और **सुप्रा-ऑक्सिपीटल** (supraoccipital) फोरामेन मैंगनम के ऊपरी भाग में होती हैं। प्रत्येक वेसीऑक्सिपीटल के वाहरी किनारे पर एक प्रोसेस होता है जिसे **पारऑक्सि-पीटल प्रोसेस** (paroccipital process) कहते हैं। इसके भीतरी सिरे पर एक अंडाकार उभार होता है जिसे **ऑक्सिपीटल कॉंडाइल** कहते हैं। ये दोनो ऐटलस वरटिब्रा के साथ कन्दुक उलूखल-सन्धि (ball and socket joint) वनाते हैं।

क्रेनियम का मध्य भाग अथवा **पराईटल खड** किनारे की ओर **श्रवण कोषो** (auditory capsules) तथा **स्क्वैमोजल** (squamosal) द्वारा अलग किया जा सकता है। इस खड की प्रतिपृष्ठ सतह एक तिकोनी हड्डी की वनी होती है जिसे **वेसी-स्फिनौएड** (basisphenoid) कहते हैं। इसके तथा वेसी-ऑक्सि-पीटल के वीच कार्टिलेज की एक पतली पट्टी होती है। इस खड के दोनो किनारे **ऐलीस्फिनौ-एड** (alisphenoid) के वने होते है। पृष्ठ भाग दो चपटी तथा चौडी हड्डियो का वना होता
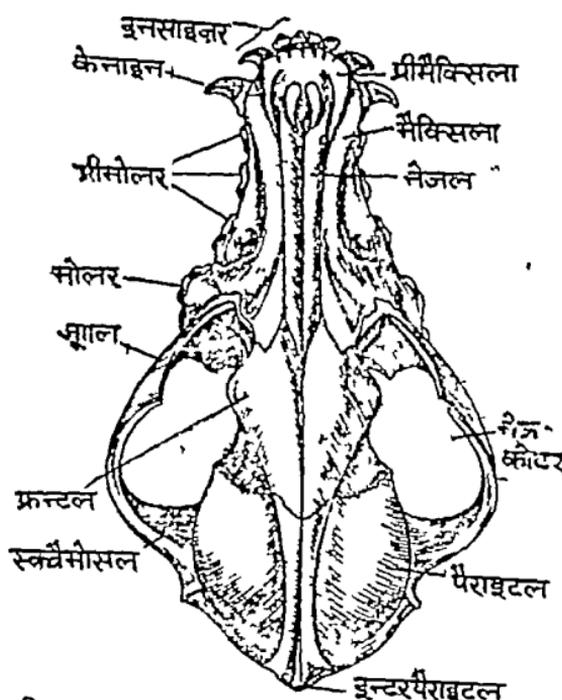
चित्र १७७—कुत्ते की खोपडी का पृष्ठ दृश्य

है जिन्हे, **पैराईटल्स** (parietals) कहते हैं। एक छोटी-सी हड्डी जिसे **इन्टरपैराईटल** कहते हैं दोनो ओर की सुप्राऔक्सिपीटल और पैराईटल्स के बीच रहती है।

फ्रौन्टल सेग्मेन्ट (frontal segment) में नीचे की ओर एक **प्रीस्फिनौईड** (presphenoids) होती है। दोनो तरफ (sides) **औरबिटोस्फिनोईड** (orbitosphenoid) होती हैं। इस खड के पृष्ठ भाग या छत में दो **फ्रौन्टल्स** (frontals) होती है जो सूचर्स या सीवनो (sutures) द्वारा एक दूसरे से मध्य-पृष्ठ तल (mid dorsal plane) में जुडी रहती हैं। प्रत्येक फ्रौन्टल का बाहरी भाग नेत्र कोटर की ऊपरी दीवार बनाता है और इसका ऊपरी भाग कुछ बाहर की ओर उभरा रहता है। इस उभार को **सुप्रा-औरबिटल-प्रबर्द्ध** (supraorbital process) कहते हैं। क्रेनियम की अगली दीवार एक चपटी हड्डी की बनी होती है जिसमें अनेक छेद होते हैं जिनमें होकर **घ्राण तन्त्रिका** की शाखाएँ घ्राण कोषो में जाती हैं। अनेक छेद होने से इस हड्डी को **चालनी-पटल** या **क्रिब्रीफौर्म प्लेट** (cribriform plate) कहते हैं जो वास्तव में **इथमोईड** (ethmoid) या **मीसैथमोईड** (mesethmoid) का ही एक भाग होता है।

सेन्स कैपस्यूल्स (Sense capsules)

औलफैक्टरी, आडेटरी तथा औप्टिक कैपस्यूल्स वास्तव में क्रेनियम से जुडे रहते हैं। इनमें से **औलफैक्टरी कैपस्यूल्स** क्रेनियम के अगले सिरे से जुडे रहते हैं।
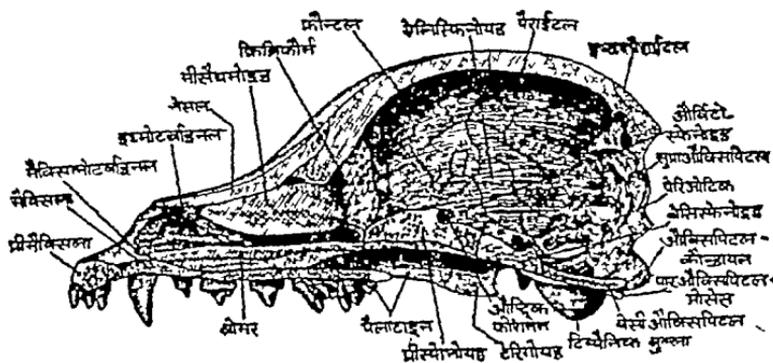
चित्र १७८—कुत्ते की खोपडी का मध्यसमान्तर या सैजाइटल सेक्शन

भीतर ये **मीसैथमोईड** (mesethmoid) द्वारा अलग रहते हैं। दोनो घ्राण कोषो की छत दो लम्बी तथा चपटी हड्डियो की बनी होती हैं जिन्हे **नेजल्स** (nasals) कहते हैं। पीछे की ओर प्रत्येक नेजल अपनी ओर की फ्रौन्टल से जुडी रहती है और बीच में दोनो ओर की **नेजल्स**

आपस में मिली रहती हैं। ऑल्फैक्टरी कैप्स्यूल्स की पार्श्व-भित्तियाँ ऊपरी जबड़े की तथा मूलि वोमर (vomers) की बनी होती हैं। प्रत्येक ऑल्फैक्टरी कैप्स्यूल में कोमल, अत्यन्त बलखाई हुई टर्बाइनल हड्डियाँ (turbinal bones) होती हैं। ये तीन प्रकार की होती हैं। घ्राण कोष के अगले भाग में मैक्सिलो टर्बाइनल पृष्ठ भाग में नेजोटर्बाइनल (nasoturbinal) और पिछले भाग में इथ्मोटर्बाइनल (ethmoturbinal) होती हैं। इनमें नेजो-टर्बाइनल अधिक लम्बी होती है।

ऑक्सिपीटल तथा पैराईटल खंडों के बीच प्रत्येक ओर श्रवणकोष होता है। प्रत्येक श्रवण-कोष में एक बड़ी पैरिऑटिक हड्डी (periotic bone) होती है। प्रत्येक पैरिऑटिक के बाहरी भाग से जुड़ी टिम्पैनिक (tympanic) होती है। इसके फूले हुए फ्लास्क के आकार के भाग को टिम्पैनिक बुल्ला (tympanic bulla) कहते हैं और इसके भीतर की गुहा को टिम्पैनिक कैविटी (tympanic cavity) कहते हैं। टिम्पैनिक बुल्ला के ऊपरी भाग को बाह्य कर्ण-मार्ग (external auditory meatus) कहते हैं। इसके निचले भाग में एक झिल्ली मढ़ी होती है जिसे कर्ण-पटह (tympanum) कहते हैं। टिम्पैनिक कैविटी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक तीन छोटी हड्डियों की एक शृंखला (chain) होती है। इन हड्डियों को ऐन्विल (anvil), मैलियस (malleus) तथा स्टेपीज (stapes) कहते हैं। इनमें से मलियस कर्ण-पटह से और स्टेपीज फीनेस्ट्रा ओवैलिस (fenestra ovalis) से जुड़ी रहती है।
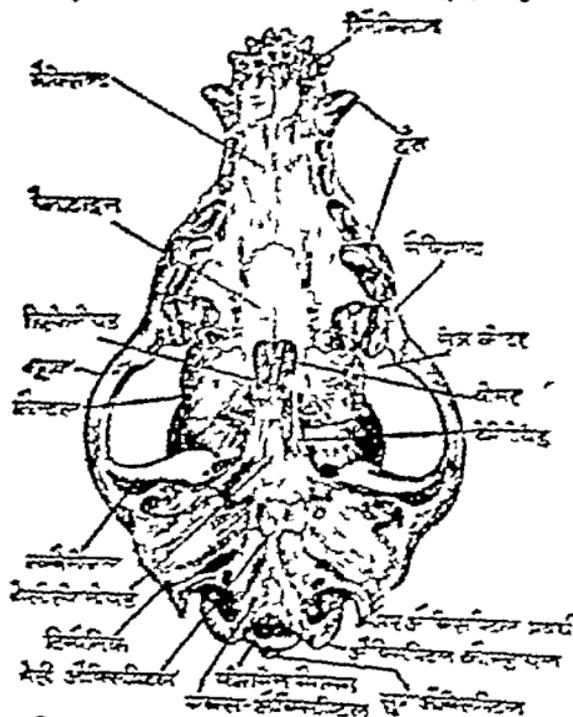
चित्र १७९—कुत्ते की खोपड़ी का प्रतिपृष्ठ दृश्य

नेत्र कोटर या ऑरबिट्स (orbits) क्रेनियम के पार्श्व भाग में स्थित होते हैं।

नेत्र कोटर ऊपर की ओर फ्रौन्टल (frontal) और आगे की ओर मैक्सिला द्वारा घिरा रहता है। इसके अगले कोने में लैकराइमल (lachrymal) मिलती है।

ऊपरी जबड़ा तथा तालु (Upper jaw and palate)

प्रत्येक ओर का ऊपरी जबडा तथा गाल (cheek arch) तीन हड्डियो का बना होता है। सबसे आगे दो **प्रीमैक्सिला** (premaxillae) होती है। प्रत्येक प्रीमैक्सिला में तीन गड्ढे होते हैं जिनमें **इन्साइजर दाँत** होते हैं। इसके बाद **मैक्सिला** (maxillae) होती है। प्रत्येक मैक्सिला मे एक **केनाइन** (canine), चार **प्रीमोलर** (premolars) तथा दो **मोलर** (molars) होते हैं। प्रत्येक मैक्सिला के पीछे **जूगल** (jugal) होती है। इसका एक प्रोसेस पीछे की ओर बढकर **स्क्वैमोजल** (squamosal) के **जाइगोमैटिक प्रोसेस** (zygomatic process) से मिलकर **जाइगोमैटिक आर्च** (zygomatic arch) बनाता है। प्रत्येक मैक्सिला (maxilla) के भीतरी ओर एक **ट्रासवर्स पैलाटाइन प्रोसेस** (palatine process) होता है। दोनो ओर के ये प्रोसेस बीच में मिलकर **कठोर तालु** (hard palate) का अगला भाग बनाते हैं। इसके पीछे कठोर-तालु को पूरा करने के लिए दो चौडी **पैलाटाइन्स** (palatines) होती हैं। इसके पीछे **औरबिटोस्फिनोईड** (orbitosphenoid) तथा **प्रीस्फिनोईड** (presphenoid) होती हैं जो दोनो ओर की **बेसीस्फिनोईड** (basisphenoid) तक फैली होती हैं। प्रत्येक आन्तरिक नासा-छिद्र की पार्श्व भित्ति
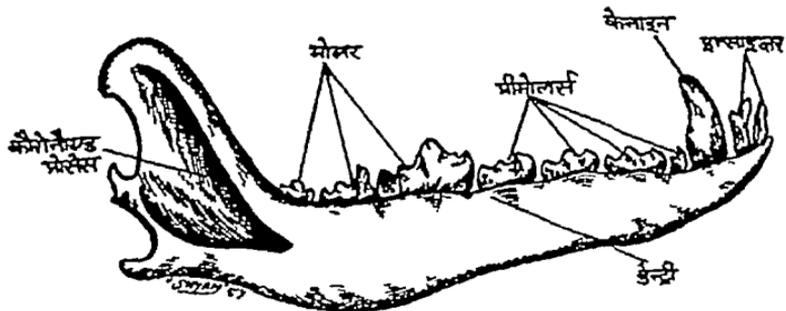
चित्र १८०—कुत्ते का निचला जबड़ा (पार्श्व दृश्य)

का निर्माण **टैरीगोईड** (pterygoid) करती है। तालु (palate) की उपस्थिति में मुखगुहा श्वसन-पथ से अलग हो जाती है। इस विशेषता के कारण स्तनधारियो में मुखगुहा में भोजन के होने से साँस लेने में किसी प्रकार की बाधा नही पडती। इसी से वरटिब्रेट जीवो में स्तनधारी क्लास के ही प्राणी ऐसे होते है जो भोजन का चर्वण कर सकते हैं।

अधोहनु (Lower jaw)

निचले जबडे में प्रत्येक ओर केवल एक ही हड्डी होती है जिसे **डेन्ट्री** या

दन्तिका (dentary) कहते हैं। दोनो ओर की दन्तिकाएँ आगे की ओर परस्पर मिलकर अधोहनु का निर्माण करती हैं। ऊपरी जवडे की प्रत्येक
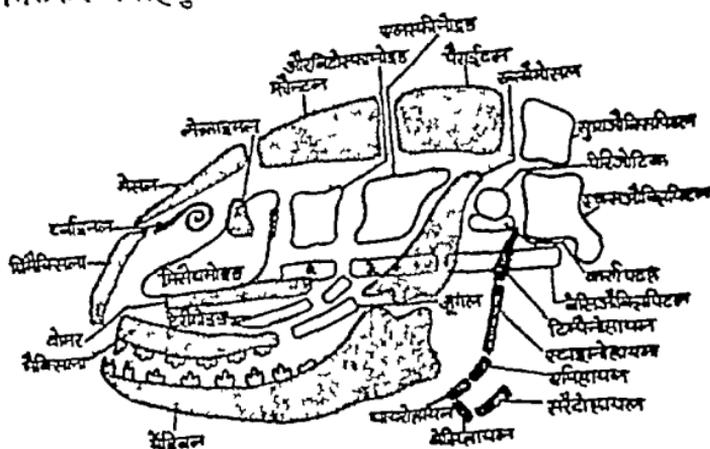
चित्र १८१—कुत्ते की खोपडी में कार्टिलेज तथा मेम्वरेन हड्डियाँ, मेम्वरेन हड्डियाँ काली विन्दुकित हैं।

स्क्वैमोजल (squamosal) की निचली सतह पर एक सवि-मुखिका होती है जिसमें निचला जवडा जुडा होता है।

हाइऑईड अपरेटस (Hyoid apparatus)

स्तनधारियो में हाइऑईड (hyoid) बहुत ही ह्रासित (reduced) अवस्था में मिलता है। यह जीभ के मूल (root) के समीप स्थित होता है। इसके प्रत्येक अगले सिरे से जुडी छोटी-छोटी हड्डियो की एक शृखला होती है। प्रत्येक शृखला में सरैटोहायल (ceratohyal), ऐपीहायल (epihyal), स्टाइलोहायल (stylohyal) तथा टिम्पैनोहायल (tympanohyal) नाम की हड्डियाँ होती हैं। हाइऑइड के पिछले सिरे से पश्चशृग (posterior cornua) निकलते हैं जिनका अधिकाश भाग थायरोहायल (thyrohyal) का वना होता है। लैरिक्स (larynx) की भित्ति में थाइरोयड कार्टिलेज (thyroid cartilages) का जोडा पश्च शृग के दूरस्थ सिरो द्वारा ही निर्मित होता है।

कार्टिलेज तथा मेम्वरेन अस्थियाँ (Cartilage and Membrane Bones)

ऊपर दिये चित्र तथा नीचे दी गई सारणी (table) की सहायता से कुत्ते के खोपडी की विभिन्न हड्डियो के सम्वन्ध में सहज ही समझा जा सकता है।

प्रदेश	कार्टिलेज बोन्स	मेम्बरेन बोन्स
(१) भूमि (floor) -	बेसीऔक्सिपीटल बेसीस्फिनोईड प्रीस्फिनोईड टैरीगोईड	वोमर
(२) तालु (palate)	पैलाटाइन	मैक्सिला
(३) छत (roof)	सुप्राऔक्सिपीटल	पैराइटल फ्रौन्टल नेजल
(४) पार्श्वभित्ति (side wall)	पेरीऔटिक ऐलीस्फिनोईड औरबिटोस्फिनोईड	पैराइटल फ्रौन्टल नेजल स्क्वैमोजल लैकराइमल टिम्पैनिक
(५) ऊपरी जबड़ा	.	प्रीमैक्सिला मैक्सिला
(६) निचला जबड़ा		डैन्टरी
(७) जाइगोमेटिक आर्च		जूगल स्क्वैमोजल
(८) कर्णास्थिकाएँ (Ear ossicles)	स्टेपीज इन्कस मैलियस	

उपांग कंकाल (Appendicular Skeleton)

इसमें टाँगो की हड्डियाँ तथा उनको आलम्बन देनेवाली गर्डिल्स होती हैं। टाँगो तथा दोनो गर्डिल्स की आधारभूत रचना मेढक तथा खरगोश में एक ही-सी होती है। दौडने, कूदने, भूमि खोदकर सुरग बनाने तथा अन्य कार्यों के अनुसार विभिन्न वरटिब्रेट्स में इनकी रचना बदलती रहती है। आधारभूत रचना का उल्लेख हम मेढक के सबध में कर चुके हैं।

(क) पैक्टोरल गर्डिल या स्कैप्युलो-कोराकोयड (Pectoral Girdle or Scapulo-coracoid)

पसलियो की उपस्थिति से पैक्टोरल गर्डिल के दाहिने और बाएं भाग (halves) एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग, जिसे स्कैप्युलो कोराक्वॉएड कहते हैं, थोरैक्स (thorax) के पृष्ठ-पार्श्व भाग (dorso-lateral) में स्थित होता है। वरटिब्रल कॉलम से यह पेशियो तथा स्नायुओ द्वारा जुडा रहता है। मेढक की पैक्टोरल गर्डिल से तुलना करने पर तुम देखोगे कि खरगोश में यह बहुत ज्यादा ह्रासित (reduced) होती हैं। इसमें केवल स्कैप्युला (scapula) सुविकसित होती है जो आकार
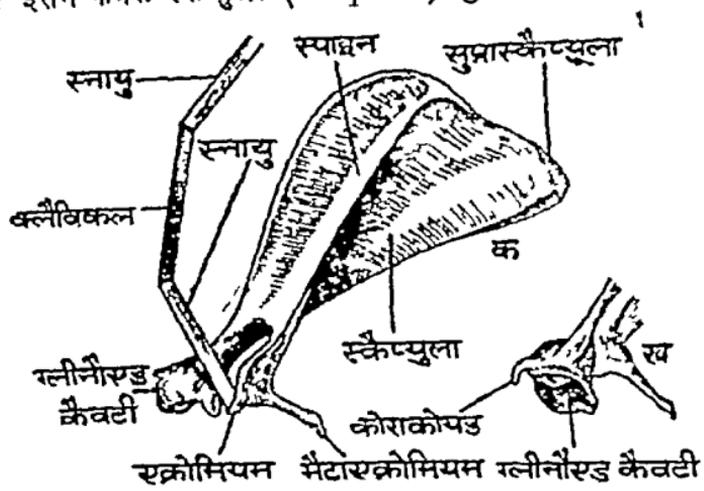
चित्र १८२—खरगोश की स्कैप्युलो-कोराकोयड (पैक्टोरल गर्डिल)

में तिकोनी होती है। इसका शीर्ष (apex) नीचे तथा आगे की ओर झुका होता है। फैलकर शीर्ष एक छिछला-सा गढा बनाता है जिसे ग्लीनोएड कैविटी (glenoid cavity) कहते हैं। स्कैप्यूला की पृष्ठ-सतह से जुडी हुई कार्टिलेज की एक पट्टी मिलती है जिसे सुप्रास्कैप्युला (suprascapula) कहते हैं। चपटी तथा तिकोनी स्कैप्युला की बाहरी सतह पर एक कूट (ridge) होता है जो स्कैप्यूला के पिछले सिरे से लेकर लगभग अगले सिरे तक फैला होता है और अन्त में ऐक्रोमियन प्रोसेस (acromion process) में समाप्त हो जाता है। इसके पिछले सिरे से मैटाएक्रोमियन प्रोसेस (meta-cromion process) निकलता है जो ऐक्रोमियन प्रोसेस के साथ छाते की मूठ के समान रचना बनाता है। स्कैप्युला से जुडी हुई कोराकोयड (coracoid) होती है। मेढक की पैक्टोरल गर्डिल में यह सुविकसित होती है किन्तु स्तनधारियो में यह [illegible] सत (reduced) होती है। वास्तव में केवल कोराकोयड प्रोसे[illegible] [illegible]d process) होता है जो केवल ग्लिनाएड

कैविटी के निर्माण में सहायता देता है। **प्रीकोराकोयड** (precoracoid) **ऐपीकोराकोयड** (epicoracoid) तथा **कोराकोयड फीनेस्ट्रा** (coracoid fenestra) का पूर्ण अभाव होता है। प्रत्येक स्कैप्युलो-कोराकोयड से जुडी हुई एक अल्पविकसित, कोमल तथा लम्बी **क्लैवीकल** (clavicle) नामक मेम्बरेन हड्डी (membrane) होती है। यह एक स्नायु (ligament) से जुडी होती है जो एक्रोमियन प्रोसेस को स्टर्नम के अगले सिरे या मैन्यूब्रियम (manubrium) से जोडता है। खरगोश जिसमें अगली टाँगो को केवल एक निश्चित दिशा में ही हिलाया-डुलाया जा सकता है, क्लैविकल अल्पविकसित होती हैं। इसके विपरीत, मनुष्य में जो भुजाओ को स्वतन्त्रतापूर्वक अनेक दिशाओ में घुमा सकता है तथा उनसे विभिन्न प्रकार के अन्य कार्य ले सकता है। यह सदैव सुविकसित होती है। ठीक इसी प्रकार गिलहरी तथा चमगादड में भी क्लैवीकल सुविकसित होती है।

प्रत्येक स्कैप्युला के पेशियो में स्थित होने के कारण अगली टाँगो को लगाव के लिए एक ओर तो पर्याप्त दृढता (rigidity) मिल जाती है और दूसरी ओर ये ही पेशियाँ, कूदने में जो धक्का लगता है, उसको सोख लेने म भी सहायता देती हैं।

मेढक तथा खरगोश की पैक्टोरल गर्डिल की तुलना

खरगोश	मेढक
(१) पसलियो की उपस्थिति से पैक्टोरल गर्डिल के दोनो अर्घांश अलग हो जाते हैं। ये दोनो भाग थोरैसिक-बासकेट के पृष्ठ-पार्श्व (dorso-lateral) भाग मे स्थित होते हैं।	(१) मेढक में पसलियाँ नही होती जिससे पैक्टोरल गर्डिल के दोनों अर्घांश प्रतिपृष्ठ-मध्य (mid-ventral) भाग में एक दूसरे से मिलकर एक उलटी चाप (arch) के आकार की रचना बनाते हैं।
(२) दोनो अर्घांशो के अलग हो जाने के कारण प्रत्येक स्कैप्युलो कोराकोयड सहज ही में हिल-डुल सकता है और साथ ही साथ इसमें धक्को (shocks) को सोखने की भी पर्याप्त क्षमता होती है।	(२) इसमें हिलने-डुलने की सीमित स्वतन्त्रता होती है।
(३) इसमे केवल स्कैप्युला (scapula) ही सुविकसित होती है।	(३) इसमें सभी हड्डियाँ सुविकसित होती हैं।

खरगोश	मेढक
(४) स्कैप्युला, एक्रोमियन प्रोसेस तथा मेटाएक्रोमियन प्रोसेस ये सब मिलकर पेशियो के लगाव के लिए पर्याप्त जगह देते हैं।	(४) एक्रोमियन प्रोसेस होता है किन्तु मेटाएक्रोमियन प्रोसेस का अभाव होता है।
(५) कोरैको-क्लैवीकुलर फीनेस्ट्रा नहीं होता।	(५) मेढक में यह होता है।
(६) कोराकोयड केवल एक प्रोसेस के रूप में होती है।	(६) कोराकोयड पूरी तौर पर विकसित होती है।
(७) क्लैविकल एक लिगामेंट से जुड़ी रहती है।	(७) क्लैवीकल प्रीकोराकोयड कार्टिलेज से जुडी रहती है।
(८) खरगोश का स्टरनम पसलियो के प्रतिपृष्ठ सिरो के कटने से बन जाता है और इसका पैक्टोरल गर्डिल से कोई सीधा लगाव नही होता।	(८) स्टरनम पैक्टोरल गर्डिल का ही एक भाग होता है।

(ख) अगली टांगो की हड्डियां

(Fore limbs)

पिछली टांगो की अपेक्षा खरगोश की अगली टांगें लम्बाई में बहुत छोटी होती हैं। कूदने तथा चलने में पिछली टांगें ही विशेष सहायता देती हैं। कूदने के बाद जमीन पर आने में सब से पहले अगली टांगें ही भूमि को छूती हैं। अत कूदने के बाद इन्ही को शरीर के भार को सँभालना पडता है। इसीलिए अगली टांगों के ककाल में अनेक हड्डियां मिल जाती हैं।

ह्यूमरस (humerus) के लम्बे तथा रम्भाकार भाग को **अस्थिदंड** (shaft) कहते हैं। इसका समीपस्थ सिरा कुछ फैलकर सिर (head) का निर्माण करता है जो आकार में गोल होता है। इसके इधर-उधर दो **ट्यूबिरोसिटी** (tuberosity) मिलती हैं जिनके बीच में **बाइसेप्स** (biceps) के स्नायु के लगाव के लिए **बाइसिपीटल ग्रूव** होता है। प्रत्येक ह्यूमरस के पुरोक्षपार्श्व (preaxial side) में एक काफी बडा उभार होता है जिसे **डेल्टाकार उभार** कहते हैं। इस उभार से पेशियो का लगाव होता है। ह्यमरस के दूरस्थ सिरे पर गरारी (pulley) के आकार की एक गहरी प्रसीता होती है जिसे **ट्रौकलिया** (trochlea) कहते हैं। यह पृष्ठसतह से प्रतिपृष्ठ सतह तक फैली होती है। इसके पृष्ठतल पर एक तिकोना **ओलेक्रेनन फौसा** [illegible]

ठीक विपरीत दिशा मे कौरोनोयड फौसा (coronoid fossa) होता है। इन दोनो के बीच सुप्राट्रौकलियर छेद (supratrochlear foramen) होता है।

चित्र १८३—खरगोश की ह्यूमरस (humerus)

अग्रवाहु (forearm) में दो हड्डियां होती हैं जो अलग अलग रहती हैं किन्तु स्नायुओं द्वारा परस्पर तनी मजबूती से बँधी रहती हैं कि हिल-डुल नही सकती। मनुष्य की ये दोनो हड्डियां एक दूसरे के ऊपर हिल-डुल सकती हैं किन्तु खरगोश में ये दोनो अलग होते हुए भी हिल नही सकती। कारण स्पष्ट है। मनुष्य अपने हाथो से विभिन्न प्रकार के काम लेता है किन्तु खरगोश अपनी अगली टांगो की सहायता से चल सकता और सुरग वनाने के लिए भूमि खोद सकता है जिससे उसकी हथेली (palm) सदैव नीचे की ओर झुकी रहती है इसके विपरीत मनुष्य अपनी हथेली को ऊपर या नीचे कर सकता है जिससे इन दोनो हड्डियो का अलग रहना जरूरी हो जाता है। अग्रवाहु की दोनो हड्डियो में अल्ना (ulna) अधिक लम्बी होती है और इसका समीपस्थ सिरा रेडियस (radius) के आगे वढकर ओलेक्रेनन प्रोसेस वनाता है जो सिगमोयड नौच (sigmoid notch) का अधिकांश भाग वनाता है। अगली टांगो को सीधा करने पर ओलेक्रेनन प्रोसेस ह्यूमरस के ओलेक्रेनन फौसा में सट जाता है। इस प्रकार कोहनी का जोड (elbow joint) वन जाता है जो अग्रवाहु को सीधा होने के वाद और अधिक मुडने से रोकता है।

हाथ के ककाल में तीन भाग होते हैं—

(१) कलाई या कार्पस (carpus)

(२) मेटाकार्पेल्स (metacarpals)

(३) अंगुलास्थियां या फैलेनजेस (phalanges)
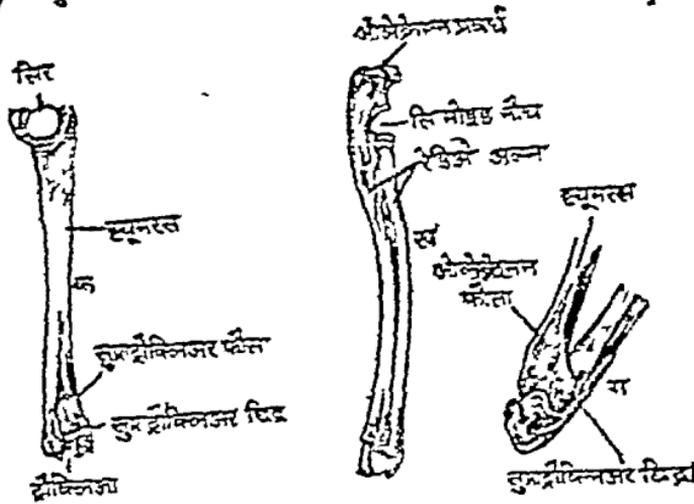
चित्र १८४—अगली टांगो की हड्डियां. क, ह्यूमरस, ख, रेडियो-अलना ; ग, कोहनी का जोड
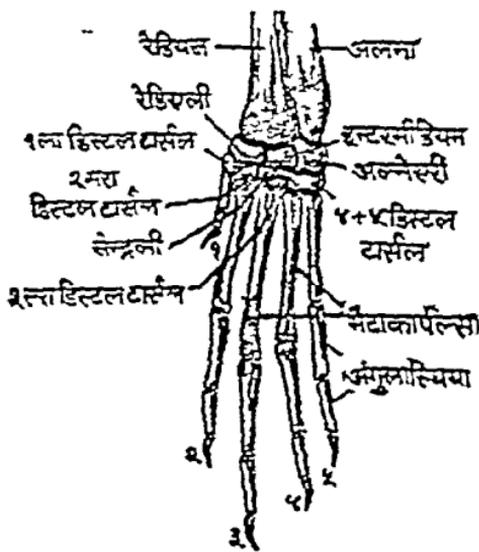
चित्र १८५—अगले पजे (fore paw) का ककाल

कार्पस में आठ अनियमित आकार की हड्डियो की दो कतारें होती हैं। समीपस्थ पक्ति में रेडिएली (radiale), इन्टरमीडियम (intermedium) तथा अलनेएरी (ulnare) होती हैं। बीच में सेन्ट्रेली (centrale) होती है। दूरस्थ पक्ति में केवल चार कार्पल्स होती हैं—चौथी तथा पांचवीं एक दूसरे मे मिल जाती हैं। अगले पजे में पांच मेटाकार्पल्स तथा पांच अगुलियां होती हैं। पहली अंगुली सबसे छोटी होती है और इसमें केवल दो फैलेनजेस (phalanges) होते हैं। दूसरी, तीसरी, चौथी तथा पांचवीं अंगुलियो में से प्रत्येक में तीन-तीन अगुलास्थियां होती हैं। अन्तिम फैलेनजेस नुकीले होते हैं तथा नखर (claw) को साथे रखते हैं।

पेल्विक गर्डिल ((Pelvic Girdle)

यह शरीर के पिछले भाग में कमर के पीछे स्थित होती है। पैक्टोरिल गर्डिल की अपेक्षा यह अधिक पूर्ण (complete) होती है। इसकी सबसे

बड़ी विशेषता यह है कि यह अपनी सामान्य स्थिति की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक घूम जाती है जिससे वरटिब्रल कॉलम के साथ यह एक न्यून-कोण (acute angle) बनाती हैं। इस परिवर्तन के फलस्वरूप इलियम (ilium) जो कि सामान्य स्थिति में पृष्ठ-पार्श्व (dorso-lateral) होती है, वरटिब्रल कॉलम के समान्तर आ जाती है। ठीक इसी प्रकार एन्ट्रोवैन्ट्रल प्यूबिस (pubis) प्रतिपृष्ठ सतह पर आ जाती है और पोस्ट्रोवैन्ट्रल इस्कियम (ischium) पोस्ट्रोडोरसल हो जाती है दोनो ओर की प्यूबस कार्टिलेज की एक सँकरी पट्टी द्वारा प्रतिपृष्ठ सतह पर एक दूसरे से जुडे रहते हैं। कार्टिलेज की इस सँकरी पट्टी को सिम्फाइसिस (symphysis) कहते हैं।
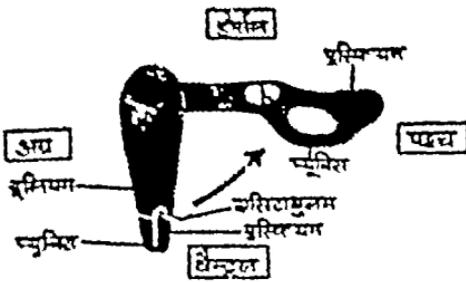
चित्र १८६—खरगोश की पैल्विक गर्डिल का घुमाव

प्रत्येक अर्धांश की बाहरी सतह पर एक गोल सन्धि-गुहा (articulation cavity) होती है जिसे एसिटैबुलम कहते हैं। फीमर का सिर इसी गुहा मे घँसा रहता है। एसिटैबुलम का अगला आधा भाग इलियम (ilium) बनाती है। इलियम का अगला भाग फैलकर ब्लेड (blade) के आकार का हो जाता है किन्तु इसका पिछला भाग सँकरा होता है। इसकी भीतरी सतह पर एक खुरदरा स्थान होता है जिससे सेक्रल वरटिब्रा के लम्बे तथा मोटे ट्रान्सवर्स प्रोसेस जुडे रहते हैं। प्रत्येक ओर की इस्कियम पृष्ठ-प्रतिपृष्ठ (dorso-ventral) भाग बनाती है। प्यूबिस (pubis) सबसे छोटी होती है और स्वय एसिटैबुलम के बनाने में कोई भी सहायता नही देती। इसकी प्रतिपृष्ठ सतह पर एक छोटी-सी हड्डी होती है जिसे कौटिलोयड (cotyloid) कहते हैं। यह एसिटैबुलम के शेष भाग के बनाने में सहायता
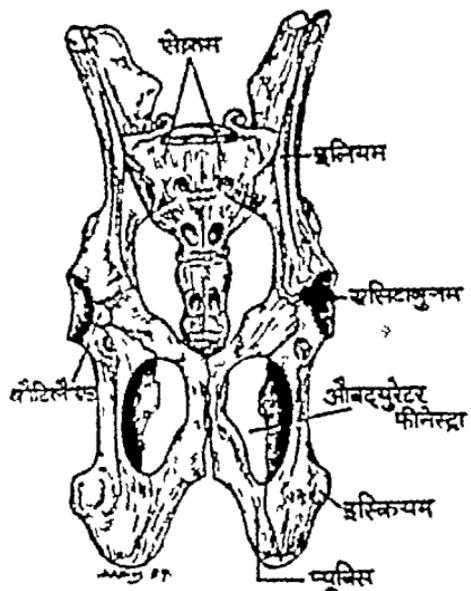
चित्र १८७—खरगोश की पैल्विक गर्डिल का प्रतिपृष्ठ दृश्य

देती हैं। इस्कियम तथा प्यूबिस के बीच में एक चौड़ा अंडाकार छेद होता है जिसे ऑबटयूरेटर फीनेस्ट्रा (obturator fenestra) कहते हैं।

पैल्विक गर्डिल तथा सेक्रल वरटिब्रा के ट्रांसवर्स प्रोसेस के परस्पर दृढ़तापूर्वक जुड़ जाने के कारण फीमर के सिर के संधियोजन के लिए पर्याप्त दृढ़ता (rigidity) मिल जाती है। पैल्विक गर्डिल के घुमाव के फलस्वरूप दृढ़ता और अधिक बढ़ जाती है।

खरगोश तथा मेढक की पैल्विक गर्डिल की तुलना

मेढक	खरगोश
(१) मेढक एक स्थान से दूसरे स्थान पर केवल कूदकर या तैरकर जा सकता है जिससे इसकी पैल्विक गर्डिल की रचना भी विशेषित (specialised) हो जाती है।	(१) आमतौर पर खरगोश चलता है जिससे इसकी पैल्विक गर्डिल की रचना में कोई विशेषता नहीं होती।
(२) दोनों अर्धभाग मिलकर एक चिमटी के आकार की रचना बनाते हैं।	(२) दोनो अर्धभाग मिलकर एक उल्टी चाप (arch) बनाते हैं।
(३) यह शरीर की अक्ष के लगभग समान्तर स्थित होती है।	(३) पैल्विक गर्डिल शरीर की अक्ष (axis) के साथ एक न्यून कोण बनाती है।
(४) दोनो इलिया (ilia) तथा सेक्रल वरटिब्रा के ट्रांसवर्स प्रोसेस के सिरो में लचीले (elastic) कार्टिलेज द्वारा सम्बन्ध होता है।	(४) इलिया तथा सेक्रल वरटिब्रा के ट्रांसवर्स प्रोसेस के बीच का सम्बन्ध अचल (immovable) होता है।
(५) प्रत्येक इलियम पूरी पैल्विक गर्डिल की लम्बाई का लगभग ३⁄४ भाग घेरती है।	(५) प्रत्येक इलियम पूरी पैल्विक गर्डिल की लम्बाई का लगभग १⁄२ भाग घेरती है।
(६) प्यूबिस एसिटैबुलम के निर्माण में हाथ बँटाती है तथा कैल्सीफॉइड कार्टिलेज की होती है।	(६) प्यूब्स उपास्थिजात हड्डी होती है किन्तु एसिटैबुलम के निर्माण में हाथ नहीं बँटाती।
(७) इस्कियम तथा प्यूब्स के बीच में ऑबट्यूरेटर फीनेस्ट्रा नही होता है।	(७) इस्कियम और प्यूब्स के बीच में ऑबटयूरेटर फीनेस्ट्रा होता है।
(८) प्रत्येक अर्धभाग की तीनों हड्डियाँ सिम्फाइसेस बनाती हैं।	(८) दोनो ओर की केवल प्यूब्स ही एक दूसरे से मिलकर सिम्फाइसेस बनाती है।

मेढक	खरगोश
(९) इलिया के अत्यधिक लम्बी हो जाने से एसिटैबुलम बहुत पीछे खिसक जाता है।	(९) एसिटैबुलम लगभग बीचो-बीच में होता है।
(१०) पैल्विक गर्डिल अपनी विशेषित रचना तथा विचित्र आकार के कारण सम्बद्ध अगो को अनाम्यता और उद्यामन (leverage) पहुँचाती है।	(१०) एक उलटे चाप के सदृश होने से यह उदर गुहा में मिलनेवाले अगो की रक्षा तथा पिछली टाँगो की पेशियो के लगाव मे सहायता देती है।
(११) एसिटैबुलम के अत्यधिक पीछे खिसक जाने से पिछली टाँगो की लम्बाई बढ जाती है जिससे छलाँग मारने और तैरने मे इनकी कार्यक्षमता भी बढ जाती है।	(११) खरगोश की टाँगें ऐसी ही लम्बी होती हैं और छलाँग मारने मे सहायता देती है।
(१२) इलियम के अत्यधिक लम्बे होने से कूदने में जो धक्के लगते हैं उसको सोख लिया जाता है जिससे वरटिब्रल कॉलम और स्पाइनल कौर्ड पर कोई बुरा प्रभाव नही पडने पाता।	(१२) खरगोश में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही होती।
(१३) पैल्विक गर्डिल की सघन-बिम्ब (compact disc) के बीचो-बीच में एसिटैबुलम के स्थित होने से एक मजबूत फलक्रम (fulcrum) बन जाता है जिससे तैरते तथा कूदते समय फीमर सहज ही मे हिल-डुल सकती है।	(१३) शिशु को जन्म देने के लिए गर्डिल का एक वृत्त के रूप में और सिम्फाइसेस का लचीला होना आवश्यक होता है।

(घ) पिछली टाँगे
(Hind Limbs)

खरगोश की जांघ (thigh) में एक लम्बी हड्डी होती है जिसे **फीमर** कहते हैं। इसका अस्थिदड (shaft) सीधा होता है और इसके समीपस्थ सिरे पर एक गोल सिर (head) होता है जो एसिटैबुलम से जुडा रहता है। सिर के समीप तथा भीतरी ओर **लैसर-ट्रोकैन्टर** (lesser trochanter) बाहर की ओर **ग्रेटर-ट्रोकैन्टर** (greater trochanter) और उसके ठीक नीचे **थर्ड-ट्रोकैन्टर** (third trochanter) होते हैं। सिर एसिटैबुलम के साथ **नितब सधि** (hip joint) बनाता है और तीनो ट्रोकैन्टर पिछली टाँगो

सहायता से देखने पर वह दो भागो में वँटा हुआ दिखाई देता है। वाहरी भाग को **कौर्टेक्स** (cortex) तथा भीतरी को **मैड्यूला** (medulla) कहते है। प्रत्येक मूत्र-नलिका का **वृक्काणु** या **मैलपीगियन बौडी** (Malpighian body) कौर्टेक्स में होता है। मैड्यूला, जो कौरटैक्स से चारो ओर घिरा रहता है, रेखित (striated) और कौरटैक्स विन्दुकित (dotted) दिखाई पड़ता है।

प्रत्येक मूत्र-नलिका का आरम्भ **मैलपीगियन बौडी** (malpighian-body) में होता है। इसमें दो भाग होते है। छोटे से प्याले के समान रचना को **वोमनीय कैपस्यूल** (Bowman's capsule) कहते हैं। इसके भीतर कोशिकाओ की एक गाँठ होती है जिसे **कोशिका गुच्छ** या **ग्लोमेर्यूलस** (glomerulus) कहते हैं। ग्लोमेर्यूलस **अभिवाही धमनिका** (afferent arteriole) के केशिकाओ में बँट जाने से वनता है। ग्लोमेर्यूलस की सभी केशिकाओ के फिर से मिलने से **अपवाही धमनिका** (efferent arteriole) वनती है जो वोमनीय कैप्स्यूल के वाहर निकल आती है और फिर मूत्र-नलिका के **समीपस्थ कुडलित भाग** (proximal convoluted portion) का निर्माण करती है, फिर **हेनले लूप** (*Henle's loop*) और फिर **दूरस्थ कुडलित** (distal convoluted portion) **भाग** वनाती है। इस प्रकार इन अगणित मूत्र-नलिकाओ के अन्तिम भाग विभिन्न **सग्रह नलिकाओं** (collecting tubules) में खुलते है। वहुत-सी सग्रह

चित्र १९१—वृक्क की भीतरी सरचना लौगिट्यूडिनल सेक्शन में
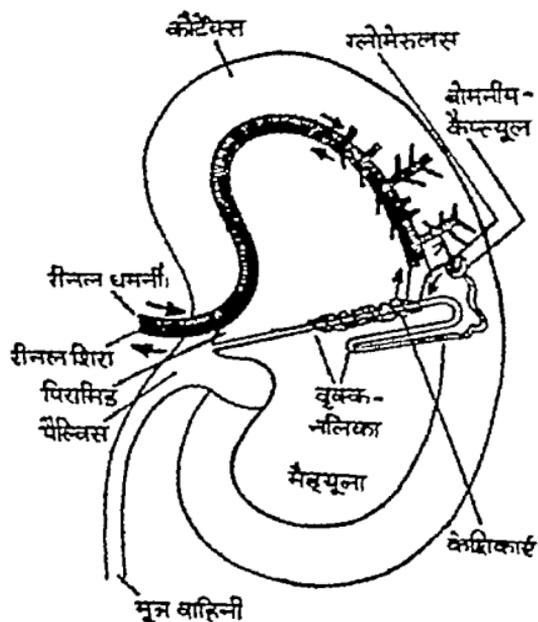
नलिकाएँ मिलकर **सग्रह-वाहिनी** (collecting duct) वनाती हैं। ये सभी **सग्रह-वाहिनियाँ** आपस में मिलकर एक नुकीली रचना वनाती हैं जिसे **पिरामिड** (pyramid) कहते हैं। खरगोश के प्रत्येक वृक्क में केवल एक ही **पिरामिड** होता है जो एक नुकीली रचना के रूप में यूरेटर के समीपस्थ चौडे भाग में उभरा हुआ दीखता है। यूरेटर के इस चौडे समीपस्थ भाग को **पैल्विस** (pelvis) कहते

है। बोमनीय कैप्स्यूल के बाहर निकलने के पश्चात् **अपवाही धमनिका** (efferent arteriole) फिर बारम्बार विभाजित होकर केशिकाओं का एक जटिल जाल बनाती है जो मूत्र-नलिका (uriniferous tubule) के चारो ओर लिपटा रहता है।

बोमनीय कैप्स्यूल की भीतरी सतह पर स्क्वैमस एपिथीलियम होता है परन्तु मूत्र-नलिका के शेष भाग में ग्रन्थीय और सीलिएटेड एपिथीलियम होता है।

वृक्को की कार्यिकी (Physiology of Excretion)

वृक्को का प्रमुख कार्य एक्सक्रीशन (excretion) है। वास्तव में परिवहन तत्र में प्रत्येक मैलपीगियन बौडी एक जीवित फिल्टर के समान कार्य करता है। मूत्र-नलिका (uriniferous tubule) का शेष भाग वास्तव
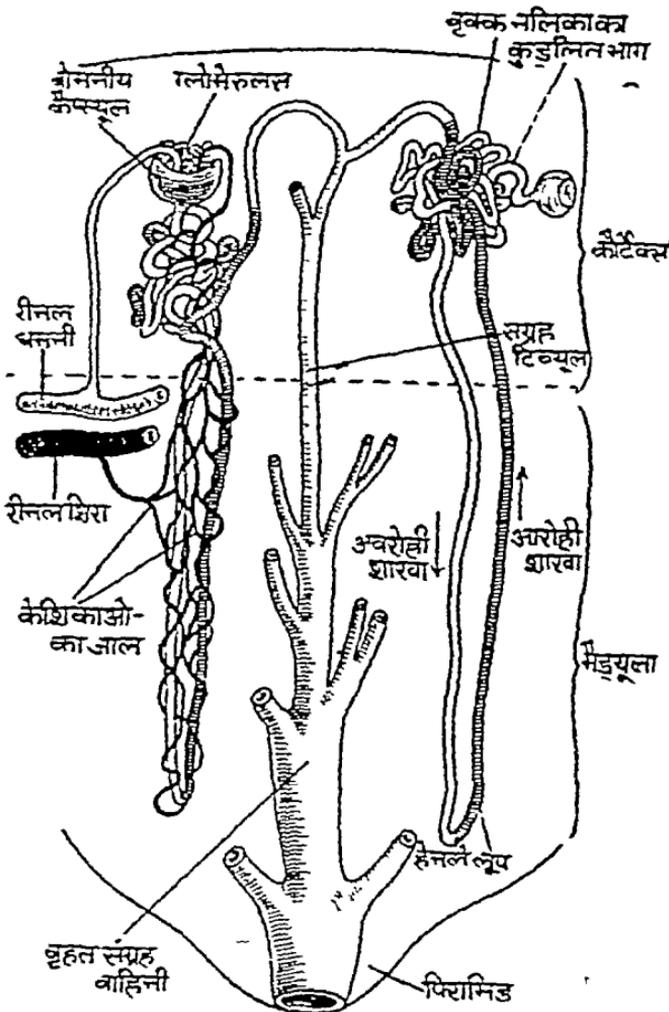
चित्र १९२—एक वृक्क नलिका (uriniferous tubule) की रचना

में प्रवृत्य अवशोषण (selective absorption) में सहायता देता है। सर्वप्रथम हम मैलपीगियन बॉडी के कार्य लेंगे।

प्रत्येक ग्लोमेर्यूलस में नाइट्रोजीनस एक्सक्रीटरी पदार्थों से लदा खून अभिवाही धमनिका (afferent arteriole) द्वारा जाता है और अपवाही-धमनिका (efferent arteriole) द्वारा बाहर निकलता है। अपवाही धमनिका का व्यास अभिवाही धमनिका (afferent arteriole) की अपेक्षा अधिक सँकरा होता है जिससे जितना रक्त ग्लोमेर्यूलस में एक निश्चित समय में प्रवेश करता है उतना उतने ही समय में बाहर नहीं निकल पाता। अतः रक्त की कुछ मात्रा ग्लोमेर्यूलस में इकट्ठी हो जाती है जिससे रक्त पर दबाव बढ़ जाता है। इसी दबाव के कारण ग्लोमेर्यूलस में अल्ट्राफिलट्रेशन (ultrafiltration) की क्रिया होती रहती है। इस क्रिया में प्लाज्मा (plasma) में घुला हुआ एक्सक्रीटरी पदार्थ ही नहीं वल्कि साथ में कुछ उपयोगी पदार्थ भी बोमनीय कैप्स्यूल की भीतरी दीवार तथा केशिकाओं की भित्ति को पार कर वृक्क-नलिकाओं में पहुँच जाते हैं। रुधिर कणिकाएँ, रुधिर के कोलोएड्स तथा कुछ विशेष प्रकार के प्रोटीन को छोड़कर प्लाज्मा के अन्य सभी भाग छन-छनकर वृक्क-नलिका (uriniferous tubules) में पहुँच जाते हैं।

छनकर जब फिल्ट्रेट या प्रोटीनरहित प्लाज्मा (deproteinised plasma) वृक्क-नलिका के ग्रन्थीय भाग में पहुँचता है तो उसका बहुत-सा जल, ग्लूकोज, लवण (NaCl), सोडियम कार्बोनेट तथा अन्य उपयोगी लवण फिर से सोख लिये जाते हैं। ये सभी पदार्थ वृक्क नलिका के चारो ओर केशिकाओं का जो जाल होता है, उसमें लौट जाते हैं तथा उनके रुधिर में बचे हुए एक्सक्रीटरी पदार्थ विसरण (diffusion) द्वारा वृक्क-नलिकाओं में पहुँच जाते हैं। इसी फिल्ट्रेट को अब मूत्र कहते हैं। जल का लगभग ९९% भाग फिर से सोख लिया जाता है। जिससे यह अधिक गाढ़ा (concentrated) हो जाता है।

८—जनन-मूत्र-तंत्र

(Urinogenital system)

(१) नर जननांग (Male reproductive organs)

शैशव अवस्था में खरगोश के दोनों टेस्टीज उदर-गुहा में स्थित होते हैं। इस समय इनकी स्थिति लगभग वैसी ही होती है जैसी मेढक में स्थायीरूप से मिलती है। इस अवस्था में दोनो टेस्टीज का वृक्कों से ठीक वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसा मेढक में स्थायीरूप से मिलता है। खरगोश के प्रौढ

होने के पूर्व दोनो वृषण गिसककर उदर-गुहा के बाहर वृषण-कोषो (scrotal sac) में उतर आते हैं और साथ में वृक्को के उन भागो को जिनसे ये जुडे थे अपने ही साथ खीच लाते हैं। वृक्क के इसी भाग से ऐपीडाइडिम्सि (epididymis) का निर्माण होता है । प्रत्येक स्क्रोटल-थैली उदर-गुहा से इनगुईनल नली (inguinal canal) द्वारा सम्बन्ध स्थापित रखती है। आमतौर पर वृष्ण के स्क्रोटल-थैली में उतर आने के बाद इनगुईनल नली सिकुड जाती है जिससे वृषण के लिए उदर-गुहा में वापस जाना किसी प्रकार सम्भव नही रहता। उदर-गुहा के बाहर स्क्रोटल-थैलियो में स्थित होने से इनको परिपक्वन के लिए उचित ताप मिलने में पर्याप्त सुविधा होती है।

खरगोश के दोनो वृषण अडाकार, लगभग १½ इच लम्बे तथा गुलाबी रग के होते हैं। प्रत्येक **वृषण की शुक्र वाहिकाएँ** (vasa efferentia) **एपीडाइडिमिस** मे खुलती हैं जो कि बीस फुट लम्बी पतली नली के रूप मे होता है किन्तु विशेषरूप से कुडलित होने के कारण यह एक छोटे से स्थान में ही समा जाता है। यह तीन स्पष्ट भागो मे विभाजित किया जा सकता है। वृषण के अगले सिरे के समीप **केपट एपीडाइडिमिस** (caput epididymis), पिछले सिरे के पास **कौडा एपीडाइडिमिस** (cauda epididymis) तथा भीतरी किनारे के पास एपीडाइडिमिस होता है। यह एक ऐसी कहरी नली के रूप में होती है जो ½ मिलीमीटर से अधिक मोटी नही होती। इसकी दीवार पेशीय होती है जिसके कुचन से क्रमार्कुचन (peristalsis) होता है जो शुक्राणुओ को आगे की ओर ठेलता है। कुछ लोगो के मतानुसार इसकी दीवारें एक ऐसा तरल पदार्थ बनाती हैं जिसमें शुक्राणुओ का पोषण तथा अस्थायी सचय होता है। कौडा एपीडाइडिमिस तथा स्क्रोटल-थैली की भीतरी दीवार के बीच एक मोटा किन्तु छोटा सयोजी ऊतक का रज्जु (cord) होता है जिसे **गुबरनैकुलम** (gubernaculum) कहते हैं। वृषण के अगले सिरे तथा उदर-गुहा की पृष्ठ-भित्ति के बीच एक दूसरा रज्जु होता है जिसे **स्परमैटिक कॉर्ड** कहते हैं। इसके साथ वृषण-धमनी (spermatic artery), **वृषण शिरा** तथा **तन्त्रिका** (nerve) भी इनगुइनल नली में होती हुई स्क्रोटल-थैली में प्रवेश करती हैं। वृषण के अगले तथा पिछले सिरे से जुडे हुए गुबरनैकुलम और स्परमैटिक कॉर्ड (spermatic cord) टेस्टीज के विस्थापन (displacement) को रोकते हैं। प्रत्येक ओर के कौडा एपीडाइडिमिस से एक **वॉस डेफरेंस** (vas deferens) निकलती है जिसकी दीवारें भी पेशीय होती हैं जिससे

इनमें स्नायुचन होता है और शुक्राणुओं को ठेलकर इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले जाता है। प्रत्येक ओर का शुक्र वाहक या वॉस डेफरेंस इनगुइनल नली में होकर उदर-गुहा में प्रवेश करता है जहाँ पर यह उसी ओर के युरेटर के निचले भाग के चारों ओर एक फंदा-सा डालकर फिर पीछे की ओर जाता है और अन्त में एक छोटी-सी थैली में खुलता है जिसे यूटरस मैस्कुलाइनस (uterus masculinus) कहते हैं। इसी की उपरिपृष्ठ सतह पर मूत्राशय (bladder) होता है। यूटरस मैस्कुलाइनस तथा मूत्राशय के निचले सिरे आपस में मिलकर एक लम्बी नली बनाते हैं जिसे मूत्रमार्ग या यूरेथ्रा (urethra) कहते हैं।
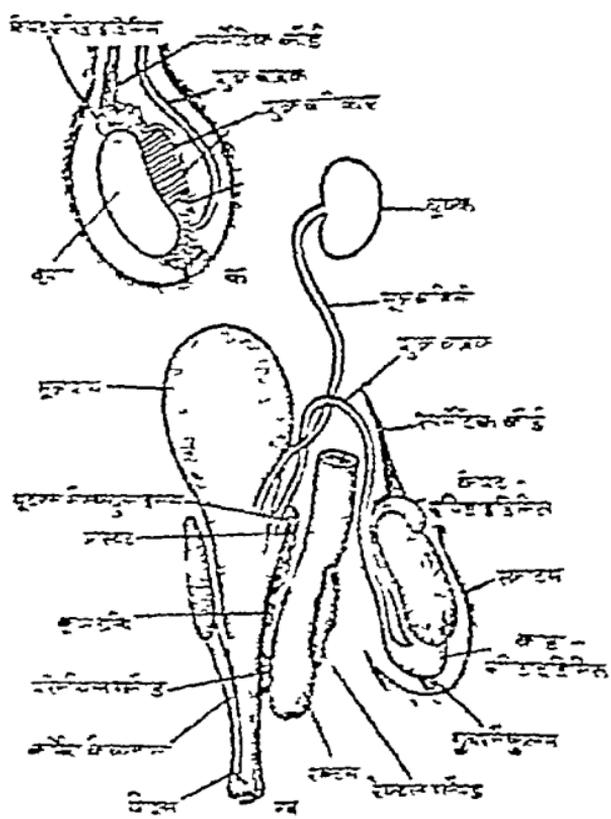
चित्र १९३—खरगोश की नर जननेन्द्रियाँ

स्तनधारियों में भ्रूण का परिवर्धन गर्भाशय (uterus) में होता है जिससे इन सभी प्राणियों में आन्तरिक-निषेचन (internal fertilisation) का होना भी बहुत आवश्यक है। चूँकि अंडों के निषेचन का स्थान शरीर के भीतर होता है, इससे यह भी अनिवार्य हो जाता है कि शुक्राणुओं का स्खलन भी अंड-वाहिनियों में हो। स्तनधारियों में इसी काम के लिए शिश्न (penis) की आवश्यकता पड़ती है।

इसीलिए मूत्रमार्ग या यूरेथ्रा जिसे मूत्र बाहर निकालने का भी कार्य करना पड़ता है, विशेषरूप से लम्बा तथा पतला हो जाता है और इसे पेशीय शिश्न में होकर बाहर खुलना पड़ता है। सामान्य दशा में मूत्र-मार्ग का काम मूत्राशय से मूत्र को बाहर निकालना है किन्तु मैथुन के समय यह आन्तरिक निषेचन में सहायता देता है। मैथुन के समय यह अधिक लम्बा, मोटा तथा कड़ा हो जाता है। इसी दृढ़ता के कारण यह मादा की योनि में प्रवेश कर सकता है। शिश्न को दृढ़ तथा सीधा रखने के लिए **कॉर्पोरा कैवरनोसा** (corpora cavernosa) पास-पास, एक-दूसरे के

समान्तर तथा शिश्न की पृष्ठ सतह पर होते हैं। शिश्न की प्रतिपृष्ठ सतह पर **कॉर्पस स्पौन्जियोसम** (corpus spongiosum) होता है जिसमें होकर यूरीथ्रा बाहर खुलता है। यह स्पॉन्जी (spongy) होता है क्योंकि इसमें अनेक छोटे-छोटे आशय (sinuses) होते है। मैथुन के पूर्व कॉर्पस स्पौन्जियोसम के आशय रुधिर से भरकर फूल जाते हैं जिससे शिश्न खड़ा और दृढ़ हो जाता है। मैथुन समाप्त होने पर इन आशयो का रक्त लौट जाता है जिससे खाली रबर ट्यूब की भाँति शिश्न भी शिथिल तथा मुलायम हो जाता है। दोनों कॉर्पोरा कैवरनोसा (corpora cavernosa) सयोजी ऊतक तथा पेशियो के बने होते हैं। ये दोनों पैल्विक गर्डिल की इस्कियम से निकलकर शिश्न के पृष्ठतल पर एक दूसरे के समान्तर फैले होते है।

शुक्राशय या यूटरस मैस्कुलाइनस (uterus masculinus) के पृष्ठ-पार्श्व (dorso lateral) भाग में **प्रौस्टेट ग्रन्थि** (prostate gland) होती है जो छोटी-छोटी वाहिनियो द्वारा यूरीथ्रा मे खुलती है। इस ग्रन्थि का स्राव, जो कि वीर्य का अधिकाश भाग बनाता है, पतला सफेद तथा हल्का अम्लीय होता है। वास्तव में यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि होती है क्योंकि इसके रस का
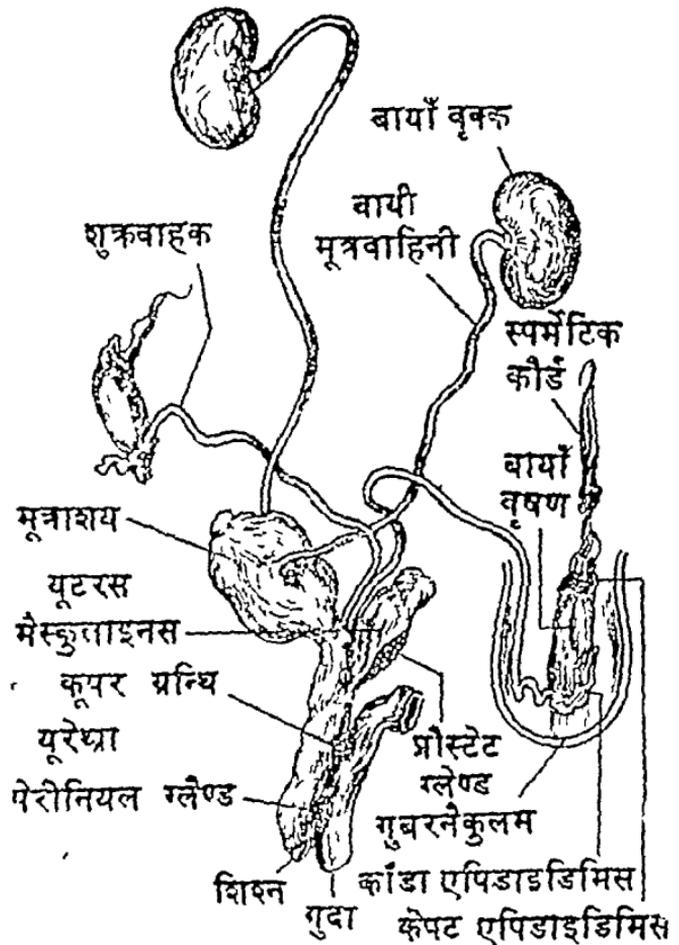
चित्र १९४—नर खरगोश के जनन अंग

शुक्राणुओ पर बड़ा ही जीवनदायक प्रभाव पड़ता है। जब तक शुक्राणु ऐपीडाइडिमिस तथा शुक्र-वाहक में होते हैं वे अक्रिय (inactive) होते हैं किन्तु इस

ग्रन्थि के रस के सम्पर्क में आते ही वे सक्रिय हो जाते हैं और अपनी पूँछ की गति के फलस्वरूप तरल माध्यम में तैर सकते हैं। यूरीथ्रा से जुड़ी कुछ और ग्रन्थियाँ मिलती हैं जिन्हें शिश्न-मूल या कूपर ग्रन्थि (Cowper's gland), पेरीनियल (perineal) तथा गुद-ग्रन्थियाँ (rectal glands) कहते हैं। शिश्न-मूल ग्रन्थि भी जोड़ होती है। इसमें अनेक पिंडक मिलते हैं। जो प्रोस्टेट ग्रन्थि (prostate gland) के पीछे मूत्र-मार्ग के चारों ओर होते हैं। यह लसलसा रस पैदा करती हैं जो शुक्राणुओं की अम्ल से रक्षा करता है। पेरिनीयल ग्रन्थियाँ लम्बी अण्डाकार तथा रंग में पीली होती हैं और पेरीनीयम में, जो शिश्न तथा गुदा के बीच में स्थित होता है, खुलती हैं। गुद-ग्रन्थियाँ (rectal gland) गुदा के अन्तिम भाग में खुलती हैं। ये दोनों प्रकार की ग्रन्थियाँ एक ऐसा रस बनाती हैं जिसकी गंध की सहायता से एक खरगोश दूसरे खरगोश को आकर्षित करता है।

वृषण (Testus) की रचना

प्रत्येक वृषण (testus) संयोजी ऊतक के आवरण द्वारा घिरा रहता है। यह अनेकानेक वृषण नलिकाओं (seminiferous tubules) का बना होता है। इन नलिकाओं के सहारे के लिए संयोजी ऊतक होता है। ये सभी नलिकाएँ कुंडलित होती हैं और इनकी भीतरी सतह जर्मिनल एपिथीलियम की बनी होती है। इसकी सेल्स शुक्रजनन के फलस्वरूप शुक्राणुओं को जन्म देती हैं। कुछ स्पर्मेटोगोनिया गुब्बारे के आकार की सेल्स बनाती हैं जिन्हें पोषि-कोशिकाएँ (sustentacular cells) कहते हैं। ये शुक्राणुओं के गुच्छों को सहारा देती हैं। शुक्र-वाहिनियों के बीच-बीच में मिलने वाले संयोजी ऊतक में रुधिर वाहिनियाँ तथा इन्टरस्टीशियल सेल्स (interstitial cells) अवाहिनी ग्रंथियाँ
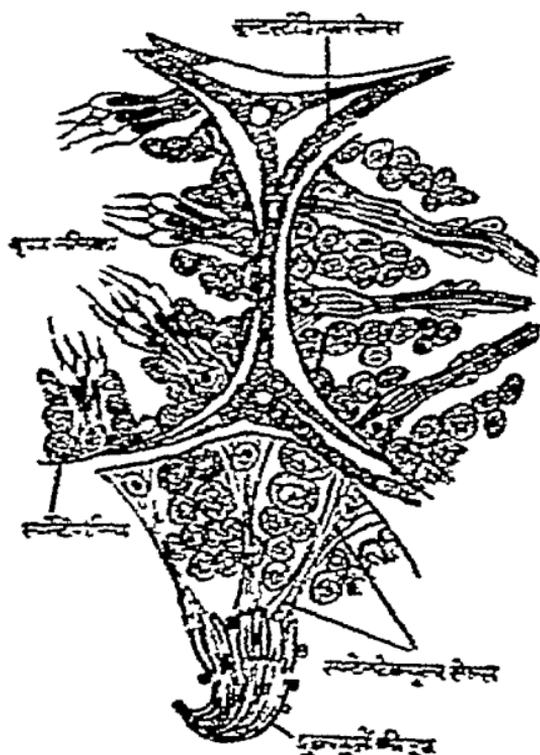
चित्र १९५—खरगोश के टेस्टिस की माइक्रोस्कोपिक संरचना

बनाती हैं। ये वास्तव में हारमोन्स उत्पन्न करती हैं जिनका प्रभाव जननाँगो की वृद्धि पर पडता है।

(२) **स्त्री-जननाग**--मादा खरगोश में दोनो **अंडाशय** (ovary) उदरगुहा में वरटिब्रल कॉलम के इधर-उधर तथा वृक्को के पीछे स्थित होते है। प्रत्येक अडाशय लगभग ¾ इच लम्बा होता है और उदरगुहा की पृष्ठ भित्ति से पेरिटोनियम द्वारा जुडा रहता है प्रत्येक अडाशय प्रचुर मात्रा में सवहनीय होता है और इसके बाहरी तट के निकट एक **सीलिएटेड फनल**
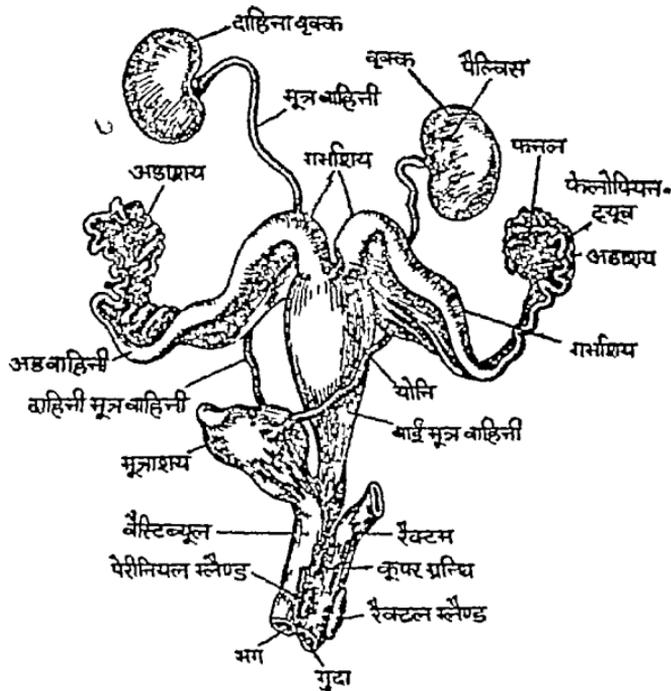
चित्र १९६--मादा खरगोश की जननेन्द्रियाँ
(प्रतिपृष्ठ दृश्य)

(ciliated funnel) होता है जो अडवाहिनी (oviduct) के ऊपरी सिरे पर होता है। अडवाहिनी का वह भाग जो सीलिएटेड फनल (ciliated funnel) तथा गर्भाशय (uterus) के बीच में होता है, **फैलोपियन नलिका** (Fallopian tube) कहलाता है। यह अड-वाहिनी का सँकरा तथा कुडलित भाग होता है। इसकी भीतरी सतह पर सीलिएटेड एपिथीलियम होता है तथा इसी में अपरिपक्व प्राइमरी ऊसाइट् का परिपक्वन (maturation), अडो का निषेचन तथा निषेचित अडो के खडीभवन (segmentation) का आरभ होता है। प्रत्येक ओर की फैलोपियन नलिका अपनी ओर के गर्भाशय में खुलती है। **गर्भाशय** (uterus) की दीवारें मोटी पेशीय (muscular) तथा सवहनीय होती हैं। पेशीय होने के कारण भ्रूणके परिवर्धन के समय यह आवश्यकतानुसार फैल जाती है। दोनो ओर के गर्भाशय परस्पर मिलकर **योनि** (vagina) बनाते हैं। इसका निचला सिरा मूत्राशय के निचले सँकरे भाग से मिलकर एक चौडा तथा छोटा-सा मार्ग बनाता है जिसे **वैस्टीब्यूल** (vestibule) कहते हैं। यह प्युबिक-सगम (pubic symphysis) की

पृष्ठ सतह पर किन्तु रैक्टम की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्थित होता है। वैस्टीब्यूल से जुडी हुई एक छोटी-सी रचना होती है जिसे **क्लाइटोरिस** (clitoris) कहते हैं। यद्यपि इसमें मूत्र-मार्ग नहीं होता, फिर भी यह नर के शिश्न का समजात (homologous) होता है। भग (vulva) द्वारा योनि बाहर खुलती है।

योनि की पृष्ठभित्ति से जुडी हुई दो छोटी-छोटी **कूपर ग्रन्थियां** होती हैं। **गुद-ग्रन्थियां** (rectal glands) मलाशय की पृष्ठ-सतह पर होती हैं। **पेरिनीयल ग्रन्थियों** (perineal glands) की स्थिति और कार्य भी वही हैं जो कि नर में होते हैं।

अडाशय की रचना—प्रत्येक अडाशय सयोजी ऊतक की एक पतली झिल्ली से ढका रहता है और उदर-गुहा की पृष्ठ दीवारो से पेरिटोनीयम द्वारा जुडा रहता है। इस सयोजी ऊतक के आवरण के ठीक नीचे जर्मिनल एपिथीलियम होता है। आरम्भ में ठोस अडाशय एक प्रकार के सवहनीय (vascular) सयोजी ऊतक से भरा रहता है जिसे **स्ट्रोमा** (stroma) कहते हैं। जर्मिनल एपिथीलियम की कुछ सेलस **ऊगोनिया** (oogonia) बनाती हैं। इस प्रकार की सेलस का एक समूह **ओवीजरस नाल** (ovigerous tube) के रूप में स्ट्रोमा में लटकने लगता है। इनके समूह जर्मिनल एपिथीलियम से अलग हो जाते हैं। इन्हे अब अपरिपक्व **ग्रैफियन फौलीकल** (Graafian follicle) कहते है। प्रत्येक समूह के बीचो बीच में एक **ऊगोनियम** (oogonium) होती है। परिपक्व-प्रावस्था (maturation phase) में प्रत्येक ऊगोनियम से एक अडा बनता है जो **अपीती** (alecithal) होता है। जैसे-जैसे **ग्रैफियन फौलीकल** परिपक्व होता जाता है वह नीचे खिसकता जाता है। इसी बीच फौलिकुलर सेल्स (follicular cells) का प्रगुणन (multiplication) होता है। धीरे-धीरे फौलीकल-सेलस के अलग होने से एक फौलीकुलर कैविटी बन जाती है जिसमें फौलीकुलर
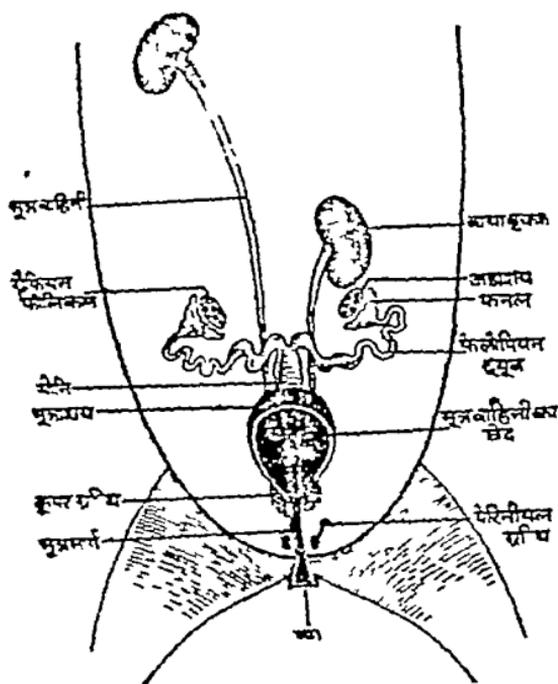
चित्र १९७—मादा खरगोश की जनेन्द्रियां (प्रतिपृष्ठ दृश्य)

(follicular fluid) भरी रहती है जो ग्रैफियन फौलीकिल के पोषण में सहायता देती है। फौलीकुलर कैविटी के बनने से फौलीकुलर सेल्स का वह समूह जिसके बीचोबीच में **प्राइमरी ऊसाइट** स्थित होता है अन्य सेल्स से जो फौलिकल की दीवार बनाती हैं, अलग हो जाता है। फौलीकुलर सेल्स के इस गोल समूह को **क्यूमुलस प्रोलीजेरस** (cumulus proligerus) कहते हैं। दो-तीन सेल्स मोटी दीवार को **मेम्बरेना ग्रेन्यूलोसा** (membrana granulosa) कहते हैं। प्राइमरी ऊसाइट के ठीक चारो ओर फौलीकुलर सेल्स का एक स्तर होता है, जिसे **कौरोना रेडियेटा** (corona
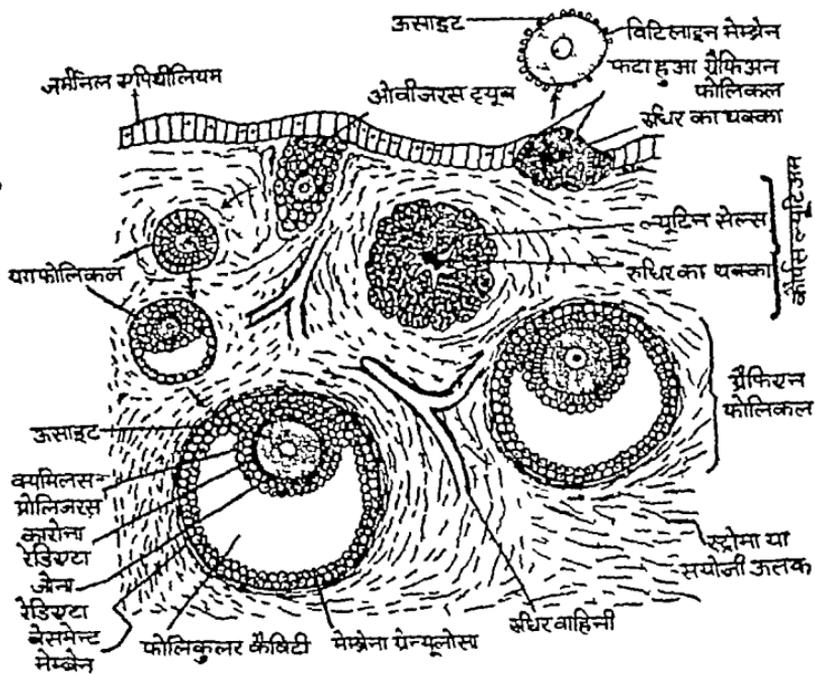
चित्र १९८—खरगोश के अडाशय का सेक्शन

radiata) कहते हैं। इस स्तर की सेल्स बहुत छोटी तथा रम्भाकार होती है। प्राइमरी ऊसाइट के बाहर एक पतली झिल्ली होती है जिसे विटेलाइन मेम्बरेन (vitelline membrane) कहते हैं। इस झिल्ली तथा **कौरोना रेडियेटा** के बीच एक दूसरी झिल्ली होती है जिसे **जोना रेडिएटा** (zona radiata) कहते हैं। परिपक्व-ग्रैफियन फौलीकिल (Graafian follicle) के चारो ओर सयोजी ऊतक का सवहनीय **बेसमेन्ट मेम्बरेन** (basement membrane) होता है।

महीने में एक बार परिपक्व ग्रैफियन फौलिकल्स अडाशय की बाहरी सतह पर पहुँचकर फट जाते हैं और इस प्रकार प्राइमरी ऊसाइट्स अडाशय के बाहर

निकल जाते हैं। इसके वाहर निकल आने के वाद प्रत्येक ग्रैफियन फौलिकल की शेष सेल्स से **कौर्पस-ल्यूटियम** (corpus luteum) वन जाता है। यदि अडे का निषेचन (fertilization) नही होता तो यह नष्ट हो जाता है। कौर्पस ल्यूटियम हारमोन्स पैदा करता है जो गर्भाशय को निषेचित अडे ग्रहण करने के लिये तैयार करता है और साथ ही साथ स्तन ग्रन्थियों (mammary glands) को सक्रिय वनाता है।

निषेचन (Fertilization)

खरगोश में मैथुन के लगभग १० घटे वाद ही अडे अडाशय के वाहर निकल आते हैं। मैथुन के समय शिश्न (penis) योनि के भीतर प्रवेश करता है। इसके वाद तन्त्रिका तन्त्र में जो परावर्ती-क्रियाएँ (reflex actions) होती हैं, उनके फलस्वरूप वासा एफरेन्शिया एपीडाइडिमिस तथा शुक्र वाहक (vasa deferentia) में क्रमाकुचन (peristaltic movement) आरम्भ होता है जिससे वीर्य मादा की योनि में स्खलित हो जाता है। लगभग इसी समय गर्भाशय की दीवारो का भी कुचन होता है जिससे वीर्य योनि से खिचकर गर्भाशय में पहुँच जाता है। शुक्राणु तरल माध्यम में तैरकर गर्भाशय में होते हुए **फैलोपियन नलिकाओ** में पहुँच जाते हैं। यहाँ पहुँचने में इन्हे कई घटे लगते हैं। पहुँचने के वाद इन्हे अडो की प्रतीक्षा करनी पडती है। अडाशय से निकलने के वाद अडे सिलिएटेड फनल में होते हुए फैलोपियन ट्यूव में पहुँचते हैं जहाँ इनका परिपक्वन (maturation) होता है तथा मैथुन के लगभग १६ घटे वाद इनका निषेचन होता है। निषिक्त-अडो का भाजन या खडीभवन (cleavage) भी यही आरम्भ हो जाता है।

खरगोश में भ्रूण-परिवर्धन

खरगोश में अडो का निषेचन फैलोपियन-नाल के ऊपरी भाग में होता है। अडे के सपर्क में आते ही शुक्राणु का **एक्रोसोम** (acrosome) विटेलाइन मेम्वरेन में छेद करके अडे में प्रवेश करता है। **मेल** और **फीमेल प्रोन्यूक्लियाई** के मिलने के पूर्व अडे का परिपक्वन (maturation) होता है। इसके वाद ओवम मेल न्यूक्लियस से मिलकर **युग्मज** या **जाइगोट** वनता है जिसके चारो ओर एक फर्टिलाईजेशन मेम्वरेन वन जाता है।

निषेचित अडा धीरे-धीरे फैलोपियन नाल में नीचे खिसकता है और साथ ही साथ इसका विभाजन भी होता रहता है। आठवें दिन भ्रूण (embryo) गर्भाशय की सवहनीय दीवार से चिपक जाता है। स्तनधारियों के अडो में योक या अड पीत की मात्रा बहुत कम होती है जिससे भ्रूण के पोषण का भार

माता पर होता है। आरम्भ में भ्रूण का पोषण **गर्भाशय रस** (uterine secretions) द्वारा होता है। इसे गर्भाशय की सवहनीय दीवारें उत्पन्न करती है।

इस समय तक भ्रूण से जुडी चार झिल्लियाँ वन जाती है—इन्हे **एमनिऔन** (amnion), **कोरिऔन** (chorion), **योक सैक** (yolk sac) तथा **एलण्टोइस** या **जरायुपोषिका** (allantois) कहते हैं। इस समय भ्रूण एमनिओटिक मेम्बरेन से घिरा रहता है। इस झिल्ली के भीतर एक प्रकार का द्रव जिसे **एमनिओटिक फ्ल्यूड** कहते हैं भरा रहता है जो बाहरी धक्को (shocks) को सोख लेता है और इस प्रकार कोमल भ्रण की रक्षा करने में बडी सहायता देता है। **कोरिओन** नाम की झिल्ली गर्भाशय की दीवार की भीतरी सतह से चिपक जाती है। कोरिओन और एमनिओन के बीच की गुहा या कैविटी को **एक्सट्राएम्ब्रिओनल सीलोम** (extra-embryonal coelom) कहते हैं। इसी बीच भ्रूण की प्रतिपृष्ठ सतह से एक थैली निकलती है जिसे **योक-सैक** (yolk sac) कहते हैं। फिर भी इसमें योक नही होता। यह गर्भाशय की सवहनीय दीवारो से चिपक कर **योक-सैक प्लैसेन्टा** (yolksac placenta) वनाता है जो भ्रूण के पोषण में सहायता देता है।

इसी बीच एलन्टोइस भी एक थैली के रूप में भ्रूण की आहार-नाल के पिछले भाग की प्रतिपृष्ठ सतह से निकलता है और धीरे-धीरे एक्सट्राएम्ब्रिओनल सीलोम में बढता है और अन्त में इस थैली के कुछ भाग की सतह गर्भाशय की दीवार से चिपक जाती है। जिस स्थान पर गर्भाशय की दीवार तथा एलण्टोइस मिलते हैं, अनेक प्रवर्ध (processes) निकल आते हैं जो गर्भाशय की दीवार में घुस जाते हैं। इन्हे कोरिऔनिक **विलाई** (villi) कहते हैं। ये एक प्रकार का एन्जाइम उत्पन्न करते हैं। जिसकी सहायता से गर्भाशय भित्ति के ऊतक तथा रुधिर-वाहिनियों की दीवारें नष्ट हो जाती हैं। रसाकुर शाखान्वित होकर **भ्रूण** (embryo) तथा **गर्भाशय भित्ति** में निकट सम्बन्ध स्थापित करते हैं।
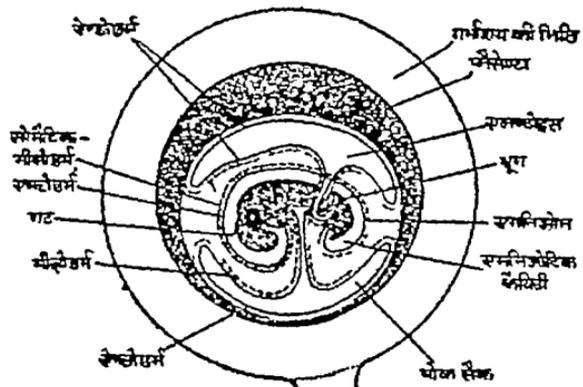
चित्र १९९—गर्भाशय के ट्रासवर्स सेक्शन में गर्भस्थ शिशु तथा फीटल मेम्वरेन

गर्भाशय की दीवार तथा एलन्टोइस द्वारा बनी इस संयुक्त संरचना को **एलन्टोइक प्लैसेन्टा** कहते हैं। प्लैसेन्टल रसांकुर रुधिर में नहाये रहते हैं जिससे गर्भाशय की दीवार के रुधिर से आक्सीजन तथा पोषाहार विसरण द्वारा रसांकुरो (villi) में पहुँचते रहते हैं। भ्रूण के रुधिर से वर्ज्य पदार्थ (waste matter) माँ के रुधिर में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार एलैन्टोइक प्लैसेन्टा भ्रूण के **श्वसन, पोषण** तथा **उत्सर्जन** में सहायता देता है। इसके अतिरिक्त यह ग्लाइकोजन के संचय और भ्रूण के मैटावौलिज्म या अपचय के नियंत्रण में भी सहायता देता है।

९—तंत्रिका तंत्र

(Nervous system)

मेढक की भाँति खरगोश का तंत्रिका-तंत्र भी निम्नलिखित तीन स्पष्ट भागो में विभाजित किया जा सकता है —

(क) **केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र** (Central nervous system)—इसमें **मस्तिष्क** तथा **रीढ रज्जु** (spinal cord) सम्मिलित होते हैं।

(ख) **पेरिफरल तंत्रिका तंत्र** (Peripheral nervous system)—इसमें **क्रेनियल तंत्रिकाएँ** (cranial nerves) तथा **स्पाइनल तंत्रिकाएँ** सम्मिलित होती हैं।

(ग) **आटोनौमिक तंत्रिका तंत्र** (Autonomic nervous system)

(क) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र

(Central Nervous System)

१—मस्तिष्क (Brain)

खरगोश तथा मेढक के मस्तिष्क की आधारभूत रूपरेखा वहुत कुछ एक ही-सी होती है किन्तु फिर भी खरगोश के मस्तिष्क की रचना अपेक्षाकृत अधिक जटिल (complicated) होती है। खरगोश के अग्र-मस्तिष्क (fore-brain) में **सेरिब्रल गोलार्ध** (cerebral hemispheres), **घ्राण पिडकाएँ** (olfactory lobes) तथा **डाइयेनसेफलान** (diencephalon) होते हैं। खरगोश के सेरीब्रल हेमीस्फ़ीयर्स मेढक की अपेक्षा बहुत बडे होते हैं और मस्तिष्क का लगभग दो-तिहाई भाग बनाते हैं। दोनों सेरीब्रल हेमीस्फीयर्स के वीच में **मीडिअन फिशर** (median fissure) नाम की एक गहरी खाई होती है। स्तनधारियो में दोनो सेरीब्रल हेमीस्फीयर्स जो मिलकर सेरीब्रम बनाते हैं, इतने बडे होते है कि ये आगे की ओर **औल्फैक्टरी लोब्स**

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के कार्य
(Functions of Central Nervous System)

स्तनधारियो में सेरिब्रम, सेरिबलम तथा मैड्यूला कार्य के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रत्येक सेरिब्रल गोलार्ध के सेरीब्रल कॉर्टेक्स (cerebral cortex) में न्यूरन्स की सख्या बहुत ज्यादा बढ जाती है। कुछ तनधारियो में भजित (convoluted) हो जाने से इस भाग में स्थित ग्रे मैटर लेना इसके परिमाण मे बढे ही बढ जाता है जिससे अधिकाधिक न्यूरन्स इसमें सरलता से समा जाते हैं। यह ही समस्त ऐच्छिक क्रियाओं (voluntary actions) तथा चेतन सवेदनाओ (conscious sensations) का प्रमुख केन्द्र होता है। बुद्धि (intelligence), स्मरण शक्ति (memory), भावनाओं (emotions) तथा अनुभव द्वारा सीखने की शक्ति इन सभी का सम्बन्ध सेरिब्रम से होता है जिससे यह जितना छोटा होगा, वह प्राणी भी उतना ही कम बुद्धिमान् होगा। मनुष्य तथा अन्य उच्च कोटि के स्तनधारियो के मस्तिष्क का अध्ययन करने के परिणामस्वरूप अब यह सम्भव है कि सेरिब्रम के मानचित्र में विशिष्ट प्रकार की क्रियाओ के केन्द्र भी दिखाये जा सकें। इस प्रकार अब सेरिब्रम के मानचित्र में चालक (motor), दार्ष्टिक (visual) तथा वाक् (speech) क्षेत्रो को दिखा सकते हैं। चालक क्षेत्र अन्य क्षेत्रो में विभाजत किया जा सकता है जो अगली तथा पिछली टाँगो तथा अन्य अगो की गति पर नियन्त्रण रखते हैं। दार्ष्टिक क्षेत्र मे चोट लगने पर मनुष्य अधा हो जाता है, भले ही आँखे स्वस्थ हो। इसी प्रकार वाक्-क्षेत्र की क्षति प्राणी को गूंगा बना सकती है। समस्त चेतन-प्रेरणाओ (conscious impulses) जिनके फलस्वरूप हम चलते तथा कूदते-फिरते हैं, का जन्म सेरिब्रल हेमीस्फीयर में होता है। सक्षेप मे सेरिब्रम आदेश देता है किन्तु उनको कार्य-रूप में परिणत करने का भार सदैव सेरीबलम पर होता है।

सेरिबलम प्रमुख आसजन कर्त्ता (coordinating agent) हैं। सेरीबलम के कौर्टेक्स (cortex) में न्यूरन्स की सख्या बहुत ज्यादा होती है। ये कोशिकाएँ उन तन्त्रिका-तन्तुओ से जुडी रहती है जो त्वचा, सधियो (joints) नेत्रो, कानो, पेशियो तथा अर्धवृत्ताकार नलिकाओ (semicircular canals) से आते हैं। इसीलिए अनुमस्तिष्क का कार्य पेशी-आसजन (muscular-coordination) है। अनुमस्तिष्क की पेशी-क्रियाशीलता के बिना सामजस्य का सर्वथा अभाव होता है। सक्षेप में अनुमस्तिष्क रिफलेक्स आसजन (reflex coordination), सतुलन (equilibrium) तथा

मोटर-आसजन (motor coordination) का केन्द्र होता है। मनुष्य मे जब शराब के प्रभाव से अनुमस्तिष्क आहत हो जाता है तो चलने में पैर लड़खड़ाने लगते है, हाथ कांपने लगते हैं तथा बोलने में जीभ लड़खड़ाने लगती है।

मेड्यूला श्वसन, परिवहन, हृदय की गति, आहार नाल के क्रमाकुचन, निगलना, ग्रन्थियो का स्राव तथा अन्य अचेतन (unconscious) क्रियाओं पर नियत्रण रखता है।

(ख) पेरीफरल तन्त्रिका तन्त्र
(Peripheral nervous system)

इसमे क्रेनियल (cranial nerves) तथा स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (spinal nerves) होती हैं। सर्वप्रथम हम क्रेनियल-तन्त्रिकाओ को लेंगे।

(१) क्रेनियल-तन्त्रिकाएँ (Cranial nerves)

खरगोश में इनके १२ जोडे होते हैं। इनमें (i), (ii) तथा (vii) शुद्ध सवेदी (sensory) होती हैं। (iii), (vi) (xi) (xii) शुद्ध चालक (motor) और (v) (vii), (ix) तथा (x) मिश्रित तन्त्रिकाएँ होती हैं। इन सभी तन्त्रिकाओ का उद्भव (origin), स्वभाव (nature) तथा वितरण का सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है —

(१) **ऑलफैक्टरी तन्त्रिका (Olfactory nerve)**—ये दोनो घ्राण पिण्डको के अगले सिरो से निकलती हैं और इनकी अनेक शाखाएँ चालनी-पटल (cribriform plate) के छेदो से निकलकर नेजल कैविटी की श्लेष्म झिल्ली (mucous membrane) में फैली रहती हैं। यह केवल संवेदी होती है।

(२) **दृष्टि तन्त्रिका (Optic nerve)**—यह भी केवल सवेदी है। प्रत्येक दृष्टि पिंडक से निकलती है। दोनो ओर की ऑप्टिक तन्त्रिकाएँ पिट्यूटरी बॉडी के ठीक आगे एक दूसरे को पार करती हैं और इस प्रकार ऑप्टिक किएज्मा (optic chiasma) की रचना करती हैं। इसके बाद खोपडी के बाहर निकलकर नेत्रो के रैटीना में फैल जाती हैं।

(३) **आक्यूलोमोटर**—इसके निकलने का स्थान इनफण्डीबुलम के समीप स्थित कॉर्पस एल्बीकैन्स (corpus albicans) में होता है। क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह नेत्र कोटर में प्रवेश करती है और इसकी शाखाएँ नेत्र गोलक की चारो पेशियो से जुडी होती हैं। इन चारो पेशियो को सुपीरियर रेक्टस, एन्टीरियर रेक्टस, इन्फीरियर रेक्टस और इन्फीरियर ऑब्लीक कहते हैं। ये सभी शाखाएँ चालक (motor) होती हैं।

(४) **ट्रौकलियर तन्त्रिका** (Trochlear nerve)—यह केवल चालक (motor) होती है और **कार्पोरा क्वाड्रीजेमिना** के ठीक पीछे से निकलती है। क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह भी नेत्र कोटर में प्रवेश करती है और वहाँ नेत्र-गोलक की **सुपीरियर औब्लीक** पेशी में फैल जाती है।

(५) **ट्राइजेमिनल तन्त्रिका** (Trigeminal nerve)—यह मिश्रित-तन्त्रिका (mixed nerve) मेड्यूला के अगले सिरे से निकलती है और शाखाओ में विभाजित होने के पूर्व **गैसेरियन गैंगलिअन** (Gasserian ganglion) बनाती है। इसकी तीन शाखाएँ होती हैं —

(क) **औफ्थैल्मिक** (Ophthalmic nerve)—क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह नेत्र गोलक (eye ball) के आगे बढ़ती है और नाक, नेत्र कोटर तथा थूथन (snout) की त्वचा में फैली रहती है। यह केवल सवेदी होती है।

(ख) **मैक्जिलरी** (Maxillary)—क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह नेत्र कोटर की प्रतिपृष्ठ सतह पर आगे की ओर बढ़ती है। ऊपरी जबडे को पार कर इसकी शाखाएँ ऊपरी ओठ की त्वचा तथा **प्रश्मश्रुओं** (vibrissae) में विशेषरूप से फैली होती है। यह भी केवल **सवेदी** होती है।

(ग) **मैंडीब्युलर** (Mandibular)—क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह निचले जबडे की ओर जाती है और वहाँ पहुँचने के पूर्व यह एक शाखा जीभ में भेजती है। इसकी यह शाखा सवेदी होती है। निचले जबडे में पहुँचकर यह उसकी भीतरी सतह पर आगे बढती है। इसकी शाखाएँ ठोढी, निचले ओठ, मुखगुहा की भूमि की पेशियो तथा दाँतो को जाती हैं।
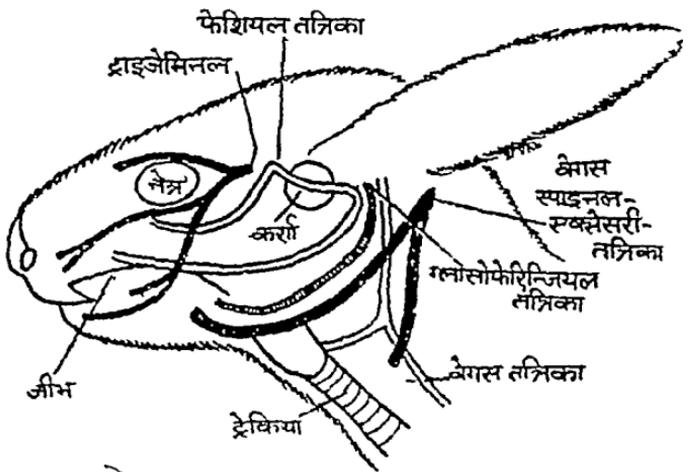
चित्र २०६—खरगोश की प्रमुख क्रेनियल तन्त्रिकाएँ

(६) एबड्यूसेन्स (Abducens)—यह मैड्यूला के निचले भाग से निकलती है और केवल चालक होती है। क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद यह नेत्र गोलक की एक्सटर्नल रेक्टस पेशी को जाती है।

(७) फेशिअल तन्त्रिका (Facial nerve)—यह मिश्रित-तन्त्रिका (mixed) होती है और मैड्यूला से निकलती है। यह क्रेनियम के बाहर टिम्पैनिक बुल्ला (tympanic bulla) के पीछे स्थित एक छेद में होकर बाहर निकलती है। पटह-गुहा (tympanic cavity) के पास यह निम्न तीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है —

(क) पैलेटाइन तन्त्रिका—यह मुखगुहा की छत तथा घ्राण कोषों (olfactory capsules) की श्लेष्म झिल्ली में बँटी होती है।

(ख) हायोमैन्डीबुलर (Hyomandibular nerve)—यह निचले जबड़े तथा गले की पेशियों को जाती है।

(ग) तीसरी शाखा सलाइवरी ग्रन्थियों (salivary glands) को जाती है।

(८) श्रवण-तन्त्रिका (Auditory nerve)—यह संवेदी होती है जो मैड्यूला से निकलती है और इसकी शाखाएँ मेम्ब्रेनस लेबिरिन्थ (membranous labyrinth) में फैली होती हैं।

(९) ग्लोसोफैरिंजियल (Glossopharyngeal)—यह भी मिश्रित-तन्त्रिका है। मैड्यूला (medulla) से निकलने के बाद यह एक गैंगलिअन (ganglion) बनाती है। इसी के उद्गम के समीप वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) का भी जन्म-स्थान होता है। वेगस तन्त्रिका के साथ ही यह क्रेनियम के बाहर निकलती है। इसकी एक शाखा फैरिंक्स की प्रतिपृष्ठ दीवारों को जाती है तथा जिह्वा की पेशियों और फैरिंक्स की श्लेष्म झिल्ली में फैली होती हैं।

(१०) वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve)—इसका न्यूमोगेस्ट्रिक (Pneumogastric) भी कहते हैं। यह मिश्रित-तन्त्रिका होती है जो मैडयूला से निकलती है। क्रेनियम के बाहर निकलने के बाद ईसोफेगस (oesophagus) के इधर-उधर गर्दन के नीचे जाती है। इसकी प्रमुख शाखाएँ तथा उनका वितरण निम्न प्रकार है —

(क) सुपीरियर लैरिन्जीयल उपतन्त्रिका (Superior laryngeal)—यह प्राणेशा या वेगस तन्त्रिका से लैरिंक्स के पास निकलती है और लैरिंक्स से सबंधित पेशियों को जाती है।

(ख) रेमस कॉर्डी (Ramus cardiae)—यह ऊपर लिखित शाखा
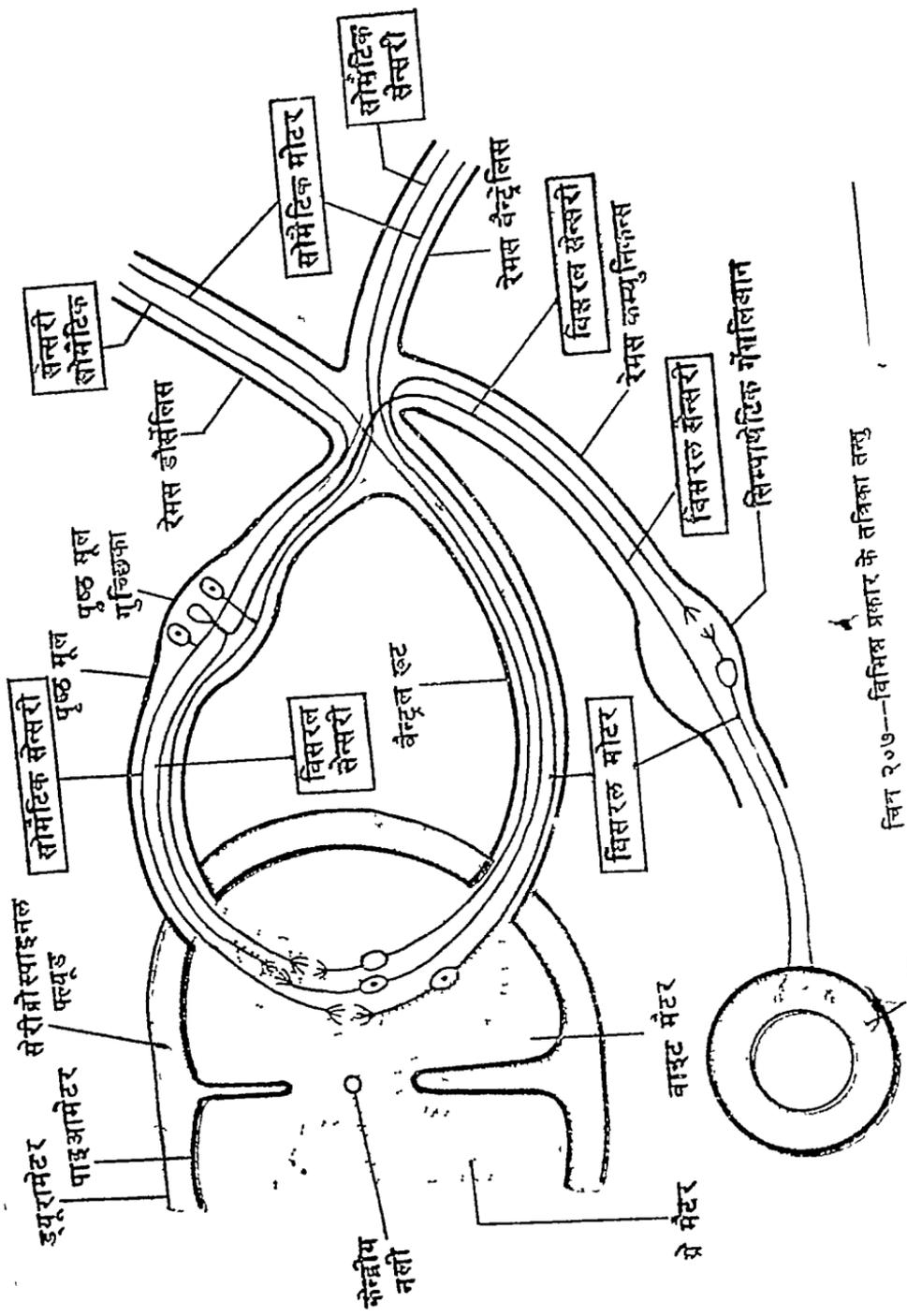
चित्र २०७—विभिन्न प्रकार के तन्त्रिका तन्तु

के समीप निकलती है और गर्दन के नीचे पहुँचने के बाद हृदय में जाती है।

(ग) **रिकरेन्ट लैरिंजियल** (Recurrent laryngeal)—यह मुख्य वेगस से हृदय के पास निकलती है किन्तु ट्रेकिया के समीप गर्दन में आगे की ओर बढती है और अन्त मे लैरिक्स की पेशियो मे बँट जाती है।

(घ) **मुख्य वेगस** (Main vagus)—यह वक्ष गुहा और उदर गुहा मे पहुँचती है। इसकी शाखाएँ हृदय, फेफडो तथा आमाशय को जाती हैं।

(११) **ग्यारहवीं क्रेनियल या स्पाइनल एक्सेसरी तन्त्रिका** (Spinal accessory nerve)—यह चालक तन्त्रिका है जो स्पाइनल कौर्ड या रीढ रज्जु के अगले सिरे से निकलती है। इसकी शाखाएँ गर्दन की पेशियो में बँटी होती हैं।

(१२) **हाइपोग्लौसल** (Hypoglossal nerve)—यह भी चालक तन्त्रिका है जो रीढ रज्जु की प्रतिपृष्ठ सतह से निकलती है। क्रेनियम के बाहर आने के बाद यह जिह्वा की पेशियो में बँट जाती है।

(२) स्पाइनल तन्त्रिकाएँ
(Spinal nerves)

इनकी सख्या वरटिब्री की सख्या पर निर्भर होती है। जैसा ऊपर लिख चुके हैं, खरगोश में स्पाइनल तन्त्रिकाओ के ३७ जोडे होते हैं। स्थिति के अनुसार इनकी सख्या इस प्रकार है —

सर्वाइकल तन्त्रिकाएँ	...	८
थोरैसिक ,,	...	१२
लम्बर ,,	..	७
सेकरल ,,	...	४
कॉडल ,,	..	६

इनमें से अधिकाश स्पाइनल तन्त्रिकाएँ जिन क्षेत्रो में निकलती हैं, उन्ही क्षेत्रो की पेशियो तथा त्वचा में फैली होती हैं किन्तु इनमें से कुछ का उल्लेख आवश्यक है। तीसरी सर्वाइकल स्पाइनल तन्त्रिका की एक बडी शाखा वाह्य कर्ण (pinna) को जाती है। चौथी सर्वाइकल स्पाइनल तन्त्रिका की एक शाखा पाँचवी तथा छठी तन्त्रिकाओ की शाखाओ के साथ डायफ्राम मे फैली होती है। यदि यह नष्ट हो जाती है तो डायफ्राम अपना कार्य नही कर पाता जिससे

श्वसन क्रिया के वन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है। पाँचवी, छठीं, सातवी तथा आठवीं (सर्वाइकल स्पाइनल) तन्त्रिकाएँ और प्रथम थोरेसिक स्पाइनल तन्त्रिका (first thoracic spinal nerve) मिलकर एक प्रकार का जाल बनाती हैं जिसे ब्रैकियल प्लेक्सस (brachial plexus) कहते हैं। इस से अगली टाँगो तथा कधे की पेशियो के लिए शाखाएँ आती हैं। ठीक इसी प्रकार अन्त की दो लम्बर स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (lumbar spinal nerves) तथा प्रथम सेक्रल स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (sacral spinal nerve) मिलकर एक जाल वनाती हैं जिससे लम्बो-सेक्रल प्लेक्सस (lumbo-sacral plexus) कहते हैं। इस प्लेक्सस से निकलनेवाली सवसे वडी साइएटिक तन्त्रिकाएँ (sciatic nerves) पिछली टाँगो में जाती हैं।

(अ) आटोनौमिक तन्त्रिका तन्त्र

(Autonomic Nervous System)

स्पाइनल तथा क्रेनियल तन्त्रिकाओ का सम्वन्ध आमतौर पर रेखित या ककाल पेशियो (skeletal muscles) से होता है जिससे प्राणी को अपने को पर्यावरण (surrounding) के अनुकूल वनाये रखने में सुविधा होती है। इसके विपरीत आटोनौमिक तन्त्रिका तन्त्र (A N S) के गेंगलिआ या तन्त्रिका तन्तु आतरग (viscera) के सभी अगो की अरेखित पेशियो तथा ग्रथियो से सम्वन्धित होते है और इन्ही की क्रियाओ पर नियत्रण रखते हैं।

आतरग (viscera) के सभी अगो की क्रियाओ पर दोहरा नियत्रण होता है। इन सभी अगो को जानेवाले तन्तु दो प्रकार के होते हैं—विसरल सेन्सरी (visceral sensory) तथा विसलर मोटर (visceral motor)। साथ में दिये चित्र २०७ को ध्यान से देखो। विसरल सेन्सरी तन्तुओ के न्यूरन्स पृष्ठमूल गेंगलिआ (dorsal root ganglia) में स्थित होते हैं किन्तु विसरल मोटर तन्तुओं के न्यूरन्स स्पाइनल कौर्ड के ग्रे मैटर (grey matter) के वेन्ट्रल हौर्न (ventral horns) में स्थित होते हैं। इनके एक्जौन्स (axons) छोटे तथा मैडयूलेटेड होते हैं और आटोनौमिक गेंगलिया में समाप्त हो जाते हैं। इन एक्जौन्स की अन्तिम शाखाएँ उन न्यूरन्स के डेन्ड्रौन्स की शाखाओ के साथ सिनैप्स (synapse) वनाती हैं जो कि आटोनौमिक गेंगलिआ और आतरग में सम्वन्ध स्थापित करते हैं। इस प्रकार विसरल मोटर तन्तु दो प्रकार के होते है —

(१) प्रीगेंगलिऔनिक तन्तु (preganglionic fibre) तथा (२) पोस्ट-गेंगलिऔनिक तन्तु (postganglionic fibre)।

आटोनौमिक तन्त्रिका तंत्र को दो भागो में बाँट सकते हैं —

(i) सिम्पाथेटिक उपतंत्र (sympathetic system)

(ii) पैरासिम्पाथेटिक उपतंत्र (parasympathetic system)
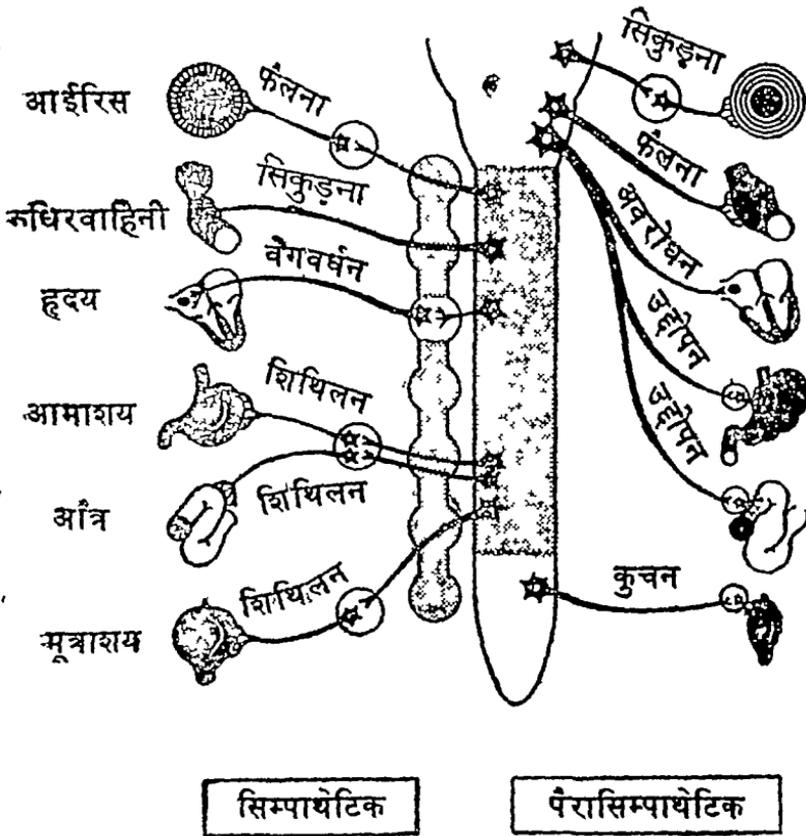
चित्र २०८—आटोनौमिक तन्त्रिका तंत्र

(१) सिम्पाथेटिक तन्त्रिका उपतंत्र—जिस प्रकार मेढक में वरटिब्रल कॉलम के इधर-उधर गेंगलिया की एक एक लडी होती है, ठीक उसी प्रकार खरगोश में भी सिम्पाथेटिक गेंगलिआ की दो लडियाँ होती हैं जो गर्दन से लेकर उदरगुहा के पिछले सिरे तक फैली होती हैं। प्रत्येक आटोनौमिक या सिम्पाथेटिक गेंगलिअन अपनी ओर की स्पाइनल तन्त्रिका से रेमस कम्युनिकेन्स (ramus communicans) द्वारा जुडा

रहता है। इफरेन्ट (efferent) या विसरल मोटर तन्तु जो कि स्पाइनल कौर्ड से निकलते हैं प्रीगेंगलिऔनिक तन्तु के रूप में रेमस कम्युनिकैन्स में होते हुए आटोनौमिक गेंगलिया मे प्रवेश करते हैं और फिर वहाँ से पोस्टगेंगलिऔनिक तन्तु के रूप में वाहर निकलकर अन्य इसी प्रकार के तन्तुओ से मिलकर प्लेक्सस (plexus) बनाते है और उसके वाद आतंग्ग के विभिन्न अगो में वँट जाते हैं। एफरेन्ट या विसरल सेन्सरी फाइवर्स जिनका आरभ आतरग (visceral organs) में होता है, स्पाइनल तन्त्रिकाओ की पृष्ठ मूल में होते हुए स्पाइनल कौर्ड मे पहुँच जाते हैं। सिम्पायेटिक केन्द्र कधो (shoulder) तथा कमर (waist) के वीच स्थित स्पाइनल कौर्ड मे मिलते हैं, इसीलिए इस उपतत्र को आटोनौमिक तत्र थोरैको-लम्बर (thoraco-lumbar) भाग भी कहते हैं।

प्रत्येक सिम्पायेटिक लडी (chain) में गर्दन में दो गेंगलिआ (*ganglia*) *होते हैं। इनमे से सुपीरियर सर्वाइकल* (*superior* cervical) गेंगलिअन कैरोटिड धमनी के दो शाखाओ में विभाजित होनेवाले स्थान की पृष्ठ सतह पर होता है। इससे निकलने वाले पोस्ट गेंगलिऔनिक तन्तु नेत्र तथा सेलाइवरी ग्लैण्डस में जाते हैं। इन्फीरियर सर्वाइकल गेंगलिआ सवक्लेवियन धमनी के निकट स्थित होते हैं और इनसे निकलनेवाले तन्तु फेफडो तथा हृदय में पहुँचते हैं।

खरगोश में स्पाइनल तन्त्रिकाओ के ३७ जोडे होते हैं। इनकी सख्या के अनुसार प्रत्येक ओर की सिम्पायेटिक लडी में भी ३७ आटोनौमिक गेंगलिआ होते हैं। इनके पोस्टगेंगलिऔनिक तन्तु मिलकर वक्ष तथा उदर में सीलिअक (coeliac) तथा एन्टीरियर मीसैन्टरिक गेंगलिआ वनाते हैं। इन दोनो गेंगलिआ से निकलनेवाले तन्तु आमाशय, यकृत, पेंक्रीएस, तथा छोटी आँत की अरेखित पेशिओ तथा रुधिर वाहिनियो में फैले रहते हैं। हाइपोगेंस्ट्रिक (hypogastric) गेंगलिआ से निकलनेवाले तन्तु कोलन, रैक्टम, वृक्क, मूत्राशय इत्यादि अगो में फैले होते हैं।

(२) पैरासिम्पायेटिक (parasympathetic) उपतत्र—इसके केन्द्र मैडयूला, गर्दन तथा कटि (sacral) प्रदेश में स्थित स्पाइनल कौर्ड में होते हैं जिससे इसे आटोनौमिक तत्रिका तत्र का क्रेनियोसेक्रल कौर्ड में होते हैं जिससे इसे आटोनौमिक तत्रिका तत्र का क्रेनियोसेक्रल (craniosacral) भाग कहते हैं। इसके तन्तु कुछ क्रेनियल तन्त्रि-

काओ के साथ विभिन्न अगो मे पहुँचते है। औक्युलोमीटर के साथ इसके तन्तु नेत्रो के आइरिस (iris) मे, ट्राइजेमिनल (v) तथा फेशियल (vii) के साथ इसके तन्तु सेलाइवरी ग्लैण्ड्स तथा मुखगुहा के म्यूकस मेम्ब्रेन मे पहुँचते है और वेगस तन्त्रिका (x) के साथ इसके तन्तु हृदय, फेफडो, आमाशय तथा छोटी आँत के ऊपरी भाग में पहुँचते हैं। सेक्रल तन्त्रिकाओ के साथ पैरासिम्पाथेटिक तन्त्रिका उपतन्त्र के तन्तु उदर गुहा में स्थित कुछ आतरगो में भी पहुँचते है।

कुछ अगो मे सिम्पाथेटिक तथा पैरासिम्पाथेटिक इन दोनो उपतन्त्रो ही के तन्तु मिलते हैं किन्तु इन दोनो की क्रियाएँ विरोधी होती हैं। उदाहरण के लिए पैरासिम्पाथेटिक के तन्तु सैलाइवा तथा अन्य पाचक रस वनाने की क्रिया को तेज कर देते हैं और आँत मे क्रमाकुचन (peristalsis) की गति वढाते है, ब्रौंकाई (bronchi) सिकोडते हैं तथा हृदय-गति (heart beat) धीमी कर देते हैं। इसके विपरीत सिम्पाथेटिक उपतन्त्र के तन्तु हृदय-गति वढा देते हैं, ब्रौंकाई को फैला देते हैं, आमाशय तथा आँत की क्रियाओ को मद कर देते हैं और एडरीनल ग्लैण्ड्स को अधिक मात्रा मे एपिनैफरिन (epinephrin) वनाने के लिये उद्दीपन देते हैं। एपिनैफरिन हारमोन के प्रभाव से त्वचा तथा आतरग की रुधिर वाहिनियाँ सिकुड जाती हैं। हृदय तथा पेशियो से जुडी वाहिनियाँ फैल जाती है। मैटावौलिक क्रियाएँ तेजी से होती है तथा रुधिर मे थक्का वनाने की क्षमता वढ जाती है। इस प्रकार सिम्पाथेटिक उपतन्त्र स्तनधारियो को आकस्मिक घटनाओ के लिए पूरी तौर पर तैयार कर देता है। ये दोनो उपतन्त्र एक साथ कार्य करके एक प्रकार से सतुलन वनाये रखते हैं जिससे शरीर को हानि नही पहुँचने पाती।

(१) अवाहिनी ग्रन्थियाँ
(Ductless glands)

इस प्रकार की ग्रन्थियो में वाहिनियाँ नही होती जिससे इन्हे **अवाहिनी-ग्रन्थियाँ** (ductless glands) भी कहते है। इनके द्वारा वनाये गये **हारमोन्स** सीधे रुधिर-प्रवाह में पहुँचते हैं। रुधिर-प्रवाह से ही इन ग्रन्थियो को हारमोन्स वनाने के लिए सभी आवश्यक पदार्थ मिलते हैं। पहले लोगो का विचार था कि ये हारमोन्स केवल उत्तेजक पदार्थो का कार्य करते हैं किन्तु नये अन्वेषणो से यह सिद्ध हो चुका है कि ये कुछ अगो पर उत्तेजक तथा कुछ पर निरोधक (inhibitory) प्रभाव डालते हैं। इसीलिए अव इन्हे **हारमोन्स**

न कहकर ऑटोक्वाएड (autocoid) कहते हैं जो इनका अधिक उपयुक्त नाम है। वरटिब्रेट प्राणियो में निम्नलिखित अवाहिनी ग्रन्थियां मिलती हैं —
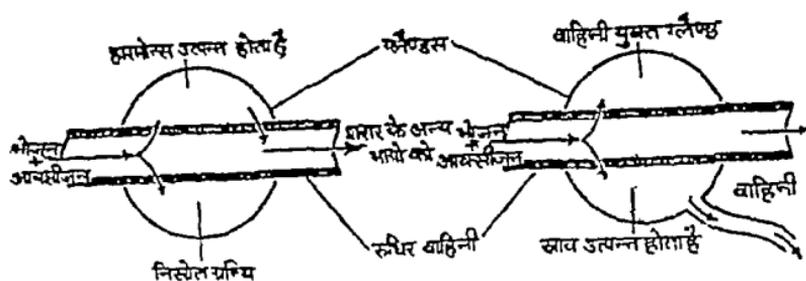
चित्र २०९—अवाहिनी तथा वाहिनी-ग्रन्थियो की कार्य-प्रणाली में अन्तर

(१) थाइरोयड (Thyroid)
(२) पैराथाइरोयड (Parathyroid)
(३) थाइमस (Thymus)
(४) पिट्यूटरी बौडी (Pituitary body)
(५) लैंगरहैन्स की ग्रन्थियां (Islets of Langerhans)
(६) इन्टेस्टाइन की श्लेष्म झिल्ली
(७) जनन पिंड (Gonads)
(८) ऐड्रीनल्स (Adrenals)

इनमें अग्न्याशय तथा गोनड्स (gonads) के अतिरिक्त अन्य सभी अन्त स्रावी (endocrine) ग्रन्थियां होती हैं।

(१) थाईरोयड (Thyroid)—खरगोश तथा मनुष्य जैसे उच्चकोटि के वरटिब्रेटो में थाइरोयड ग्रन्थियां लैरिंक्स के दोनो किनारो पर मिलती हैं। इसकी रचना सरल होती है। इस ग्रन्थि द्वारा वनाये गये हारमोन को थाइरौक्सिन (thyroxine) कहते हैं। इस हारमोन में आयोडीन (iodine) की काफी मात्रा मिलती है।

थाइरौक्सिन शरीर की वृद्धि और क्रियाओ को नियत्रित करता है और श्वसन-क्रिया द्वारा एनर्जी उत्पन्न करने में सहायता देता है। इसकी उपस्थिति से ही टैडपोल्स का मैटामोर्फोसिस होता है। यदि टैडपोल्स में से थाइरोयड निकाल ली जाय तो उनका मैटामोर्फोसिस रुक जाता है और उन्हें थाइरोयड ग्लैण्ड खिलाने पर रूपान्तरण समय के पूर्व ही होने लगता है।

मनुष्य मे जब थाइरौक्सिन (thyroxine) कम मात्रा में वनती है तो वाल्यावस्था में एक विशेष प्रकार का रोग हो जाता है जिसे क्रिटोनिज्म

(cretinism) या बाल्य कहते है। इस रोग में बालक का शारीरिक तथा मानसिक विकास रुक जाता है और बालक जडबुद्धि हो जाता है। ऐसे बालको को क्रिटिन (cretin) कहते हैं। प्रौढ मनुष्य में थाइरौक्सिन के प्रभाव से **मिक्सोडीमा** (myxodema) नाम का रोग हो जाता है। इस रोग में शरीर-का भार बढ़ने लगता है, बाल झडने लगते हैं, पेशियाँ कमजोर पडने लगती हैं, सर में सदैव पीडा रहती है, और कब्जियत हो जाती है। रोगी का **बेसल मैटाबौलिज्म** (basal metabolism) धीमा हो जाता है जिससे रोगी आलसी तथा चिडचिडी प्रकृति का हो जाता है। इस रोग का उपचार थाइ-रौक्सिन की उचित मात्रा देकर किया जाता है।
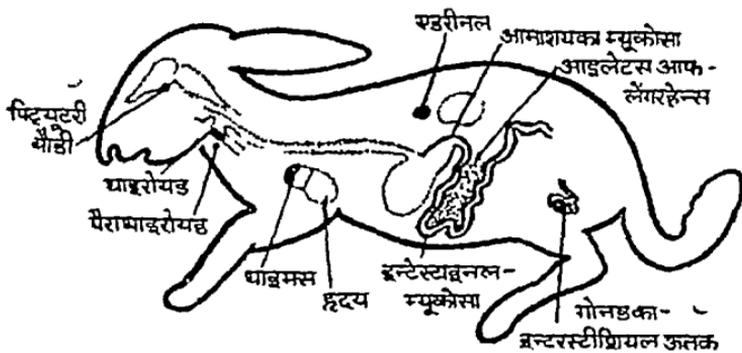
चित्र २१०—खरगोश में प्रमुख अन्त स्रावी-ग्रन्थियो की स्थिति

थाइरोयडस के बहुत बढ़ जाने से **घेघा** निकल आता है। भोजन या पानी में आयोडीन की कमी होने पर यह रोग विशेषरूप से हो जाता है। गोंडा, गोरखपुर तथा अन्य तराई के नगरो में यह रोग अधिक होता है। ऐसे स्थानो मे पानी उबालकर पीना चाहिए और डाक्टर की सलाह से उचित मात्रा में **पुटैशियम आयोडाइड** (Potassium iodide) खाना चाहिए। जब थाइरोयड् (thyroid) बहुत बढ जाती है तो थाइरौक्सिन की मात्रा भी रुधिर प्रवाह में बढ जाती है। इस रोग में मैटाबौलिज्म तेजी से होने लगता है, ऊतको में भोजन का जारण (combustion) तेजी से होने लगता है, शरीर का भार तेजी से घटने लगता है, त्वचा का रग लाल हो जाता है, शरीर अधिक गर्म रहता है और पसीना भी अधिक मात्रा में निकलने लगता है। कभी-कभी **अनिद्रा रोग** (insomnia) भी हो जाता है। प्राय नेत्र गोलक नेत्र कोटरो (orbits) के बाहर उभर आते हैं जिससे मुख-की आकृति बडी भयानक हो जाती है।

(२) **पैराथाइरोयड**—मनुष्य मे ये ग्रन्थियाँ चार गोल पिंडको के रूप में थाइरोयड की पृष्ठसतह पर होती हैं। इन ग्रन्थियों के कार्य का ठीक-ठीक पता नही

है। इसमे एक **हारमोन** होता है। बालको के रुधिर-प्रवाह में जब इस हारमोन की कमी होती है तो उन्हें **टिटेनी या प्रागग्रह** (tetany) नाम का रोग हो जाता है जिसका मुख्य कारण कैलशियम-मैटाबौलिज्म की कमी है। जब इस ग्रन्थि के हारमोन की रुधिर में कमी होती है, तो रुधिर में कैलशियम तथा फौमफेट्स उचित मात्रा मे इकट्ठे नही होने पाते। ऐसी दशा में हड्डियो की उचित वृद्धि नही होती।

(३) **ऐडरीनल ग्रन्थियाँ** (Adrenal glands)—मनुष्य तथा अन्य स्तनधारियो मे ये दोनो वृक्को के समीप स्थित होती है जिससे इन्हे ऐडरीनल (adrenal) कहते हैं किन्तु मेढक में ये प्रत्येक वृक्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर होती हैं जिससे इन्हें **सुप्रारीनल** (suprarenal) कहते है।

प्रत्येक **ऐडरीनल ग्लैण्ड** दो भागो मे विभाजित की जा सकती है—बाहरी भाग को **कौरटैक्स** (cortex) तथा बीच के भाग को **मैडयूला** (medulla) कहते हैं। कौरटैक्स में जो हारमोन (hormone) बनता है उसे **कौरटिन** (cortin) कहते हैं। यह अन्य अगो के सहयोग से रुधिर में मिलनेवा लवणो में समतोल (balance) बनाये रखता है। यह भ्रूण के परिवर्धन (growth) में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। शकर के मैटाबौलिज्म (sugar metabolism) और लैंगिक कार्य पर भी इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। **गौण लैंगिक लक्षणों** (secondary sexual characters) का परिवर्धन भी इसी कौरटिन पर निर्भर होता है। इस हारमोन की कमी के कारण **ऐडीसन-व्याधि** (*Addison's disease*) हो जाती है।

मैडयूला के हारमोन को ऐंडरिनेलीन (adrenaline) कहते हैं। सर्वप्रथम यही हारमोन निकाला गया था। यह हारमोन सभी अगो की अरेखित पेशिओ के कुचन पर नियन्त्रण रखता है। अधिक मात्रा में होने पर धमनियो की पेशियो के कुचन के फलस्वरूप **ब्लड प्रेशर** (blood pressure) बढ जाता है और हृदय की गति तेजी से होने लगती है। श्वसन-क्रिया तेजी से होने लगती है, खून में शकर की मात्रा बढ जाती है तथा सैलाइवा, आँसू, पित्त और पसीना ये सभी अधिक मात्रा मे निकलने लगते हैं। सक्षेप में ऐंडरीनेलिन (adrenaline) सिम्पाथेटिक तन्त्रिका तन्त्र (sympathetic nervous system) को अधिक शक्तिशाली बनाकर शारीरिक क्रियाओ को प्रबल बना देता है। इसके प्रभाव से रुधिर-वाहिनियो का कुचन हो जाता है। इसलिए इसके स्थानीय प्रतिचारण (local administration) द्वारा रुधिर का **थक्का** (clot) बन जाता है। **कैनन** (*Cannon*) ने जो इस दिशा में कार्य

किया है, उससे पता चलता है कि एडरिनेलीन (adrenaline) की मा तथा मनुष्य के सवेगो (emotion) जैसे भय, पीडा, क्रोध इत्यादि वडा निकट सम्वन्ध होता है। ऐसा देखा गया है कि सिम्पाथेटिक तत्रिका तत्र के तन्तुओ से निकलनेवाले हारमोन जिसे सिंपैथिन कहते हैं, तथा एडरिनेलिन की क्रियाओ में निकट समानता होती है।

(४) पिट्यूटरी ग्लैण्ड (Pituitary gland)—यह मस्तिष्क की प्रति-पृष्ठ सतह पर औप्टिक किएज्मा (optic chiasma) के पीछे तथा इनफण्डी-वुलम से मिली होती है। इसका अगला भाग मुखपथ (stomodeum) की छत से और पिछला भाग डाइयेनसेफलान (diencephalon) से वनता है। ये दोनो भाग एक दूसरे से मिल जाते हैं।

पिट्यूटरी ग्लैण्ड १० या और उससे भी अधिक हारमोन्स पैदा करती है। अग्र-भाग ६ हारमोन्स उत्पन्न करता है जो शरीर के विभिन्न अगो की अरेखित पेशियो तथा विशेषकर गर्भाशय की पेशियो की क्रियाशीलता में और जल-मेटावोलिज्म पर महत्त्वपूर्ण नियत्रण रखते है।

जव पोस्टीरीयर लोव द्वारा वनाये हारमोन्स की रुधिर प्रवाह मे कमी होती है तो वामनता (dwarfism) तथा मोटापे के रोग हो जाते हैं। इसमें शरीर ठिगना हो जाता है और अधिक चर्वी के इकट्ठे होने से शरीर वहुत मोटा तथा भद्दा हो जाता है। चर्वी विशेपकर कूल्हो तथा पेट पर इकट्ठी हो जाती है। पोस्टीरीयर लोव की हीन-कार्यता से मस्तिष्क तथा ककाल (skeleton) का भी विकास नही होता। इसके अतिरिक्त जननेन्द्रियाँ भी पूर्णरूप से नही वढती तथा गौण लिंगी-लक्षण (secondary sexual characters), जिनकी सहायता से नर तथा मादा सहज ही मे पहचाने जा सकते हैं, का भी ठीक-ठीक परिवर्धन नही होने पाता।

पोस्टीरियर लोव की अतिकार्यता (hyperfunction) के परिणामस्वरूप अतिकायत्व (gigantism) का रोग हो जाता है। वच्चो में या आरम्भ से ही इसकी अतिकार्यता के फलस्वरूप हड्डियो की विशेष वृद्धि होती है जिससे प्रौढ मनुष्य की लम्वाई लगभग ९ फुट तक पहुँच जाती है। प्रौढ मनुष्यो मे इस भाग की अतिकार्यता के फलस्वरूप एक्रोमिगैली (acromegaly) रोग हो जाता है। इस रोग मे हाथ-पाँव, निचले जवडे इत्यादि की हड्डियाँ फूल जाती हैं जिससे चेहरा वडा हो जाता है, नीचे का ओठ मोटा होकर कुछ लटक जाता है, त्वचा मोटी हो जाती है, वाल मोटे तथा घने हो जाते हैं। इस भाग के अल्प-विकास के फलस्वरूप मूत्रातिसार रोग हो जाता है। इसके उपयोग से गर्भाशय

की दीवारो का प्रवल कुचन हो सकता है। प्रसव के पूर्व इसके प्रतिचारण से शिशु आसानी से उत्पन्न हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर की समस्त अन्त-स्रावी ग्रन्थियो मे पिटयूइटरी ग्लैण्ड की क्रियाशीलता का क्षेत्र सवसे अधिक व्यापक है। यही नही, यह शरीर की सभी अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियो की क्रिया पर नियन्त्रण रखती है। इसीलिए पिटयूइटरी ग्लैण्ड को **"अन्त स्रावी ग्रन्थियों के दल का सचालक"** कहते हैं।

चित्र २११—मनुष्य की अन्त स्रावी ग्रंथियाँ
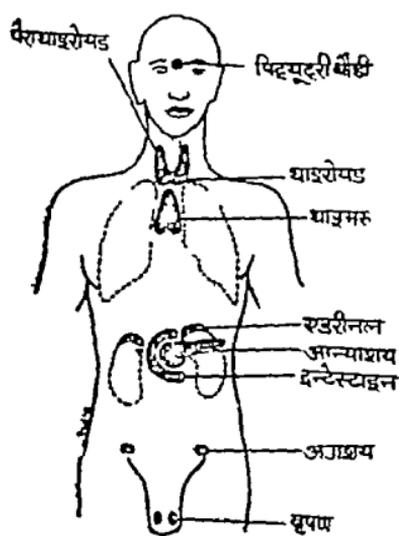
(५) **लेंगरहेन्स की ग्रन्थियाँ** (Islets of *Langerhans*)—ये अग्न्याशय में छितरी हुई होती हैं। ये ग्रन्थियाँ **इनसुलिन** (insulin) नाम का हारमोन वनाती हैं जिसके अभाव से मवुमेह हो जाता है।

(६) **गोनड्स** (Gondas)—शुक्राणुओ तथा अडो को वनाने के अतिरिक्त ये कुछ विशेप प्रकार के हारमोन्स उत्पन्न करते है। जहाँ तक जीवन-क्रियाओ का सम्वन्व है ये हारमोन्स वहुत उपयोगी नही होते किन्तु फिर भी शरीर-व्यापार पर इनका प्रभाव किसी प्रकार कम नहीं होता। ये गौणलैंगिक लक्षणो को उत्पन्न करते हैं जिससे स्त्री तथा पुरुष का भेद स्पष्ट हो जाता है।

११—ज्ञानेन्द्रियाँ
(Sense organs)

अधिकाश लोगो की यही धारणा है कि हमारे शरीर में केवल पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं जिनके द्वारा स्पर्श करने, देखने, सूंघने, स्वाद लेने तथा सुनने का ज्ञान होता है। इन पाँचो ज्ञानेन्द्रियो—त्वचा, नेत्र,

चित्र २१२—हमारी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ

नाक, जीभ, कान—के कार्यों के अलावा हममें सर्दी गर्मी, दवाव, पीडा, भूख, प्यास, गति, स्थिति तथा संतुलन का अनुभव करने की भी शक्ति होती है। अत यह कहना कि हमारे शरीर में केवल पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं ठीक नही है।

(१) कर्ण (Ear)

स्तनधारियो का प्रत्येक कान तीन भागो में वांटा जा सकता है —

(क) वाह्य कर्ण (external ear)
(ख) मध्य कर्ण (middle ear)
(ग) आन्तरिक कर्ण (internal ear)

तुम पढ चुके हो कि मेढक में वाह्य-कर्ण (pinna) का पूर्ण अभाव होता है। खरगोश में तुरही (trumpet) के आकारवाला पिन्ना कार्टीलेज (cartilage) का वना होता है। कार्टिलेज के इस ढांचे के ऊपर खाल मढी होती है। खरगोश तथा अन्य अनेक स्तनधारियो में प्रत्येक पिन्ना मे ऐसी पेशियां होती हैं जो आवश्यकतानुसार उसे विभिन्न दिशाओ में घुमा-फिरा सकती हैं जिससे ध्वनि-तरगो को इकट्ठा करने में तथा ध्वनि आने की दिशा को जानने में विशेष सहायता मिलती है। प्रत्येक वाह्य-कर्ण में एक नली के आकार का कर्ण-मार्ग (auditory meatus) होता है जो सिर मे कुछ दूर भीतर तक जाता है। इसके अन्तिम भाग में कर्ण-पटह (ear drum) होता है। इसके दूसरी ओर मध्य-कर्ण होता है। इसकी विशाल गुहा को पटह-गुहा (tympanic cavity) कहते हैं। मेढक में इस गुहा में केवल एक लम्वी हड्डी होती है जिसे कालूमेला (columella) कहते हैं। खरगोश में कर्ण-पटह के फीनेस्ट्रा ओवेलिस तक तीन कर्ण अस्थिकाओ (auditory ossicles) की एक कतार होती है। कर्ण-पटह से जुडी T के आकार की मेलियस (malleus या hammer), वीच में ऐनविल (incus या anvil) और फीनेस्ट्रा ओवेलिस से जुडी हुई घोडो के पादाधान (stirrup) के आकार की स्टेपिज (stapes) होती हैं।

कर्ण पटह-गुहा तथा मुखगुहा के वीच एक पतली तथा लम्वी नली होती है जिसे युस्टेकियन नलिका कहते हैं। इस नली का छेद आमतौर पर वन्द रहता है और प्राय भोजन निगलते समय या जमुहाई (yawning) लेते समय ही खुलता है जिससे पटह-गुहा में वायु प्रवेश कर सकती है। इसी विधि से कर्ण-पटह के दोनो ओर वायु का दवाव वरावर हो जाता है।

कान का भीतरी भाग सबसे कोमल तथा महत्त्वपूर्ण होता है। मेढक की भाँति खरगोश के आन्तरिक कर्ण में भी मैम्ब्रेन्स लैबिरिन्थ होती है। इस जटिल थैली में युट्रीकुलस (utriculus), सैक्यूलस (sacculus) तथा तीन अर्घ-वृत्ताकार नलिकाएँ (semicircular canals) होती हैं। सैक्यूलस के पीछे की ओर से एक रचना निकलती है जिसे कौकलिया (cochlea) कहते हैं। मेढक में कौकलियां अल्प विकसित होती हैं किन्तु स्तनधारियो में यह अधिक विकसित तथा कुडलित होती हैं। खरगोश में इसमे २½ कुडल होते हैं।
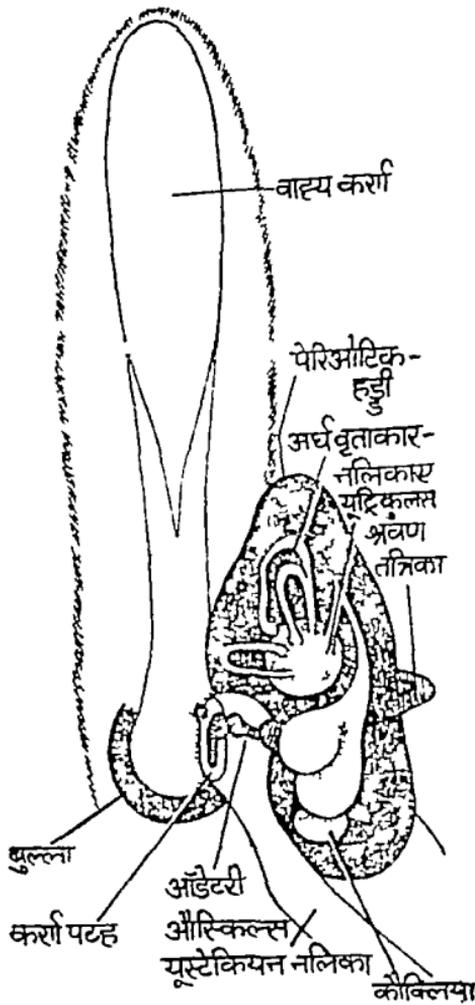
चित्र २१३—खरगोश के कान की भीतरी रचना

कौकलिया के भीतर की गुहा एक सिरे से दूसरे सिरे तक तीन भागो में वॅटी होती हैं जिनमें एक तरल पदार्थ भरा रहता है। सबसे ऊपर या पृष्ठ सतह पर वेस्टिवुलर नली (vestibular canal), वीच में कौकलियर नली (cochlear canal) तथा प्रतिपृष्ठ सतह पर टिम्पैनिक नली (tympanic canal) होती है। वेस्टिवुलर तथा मध्य कर्ण की गुहा के वीच झिल्ली (membrane) से ढका हुआ गोल फीनेस्ट्रा ओवैलिस होता है जिसमें स्टेपीज (stapes) जुडा रहता है। टिम्पैनिक नली तथा मध्य कर्ण के वीच फीनेस्ट्रा रोटण्डम (fenestra rotundum) होता है। कौकलिया के सिरे पर एक सँकरे पथ द्वारा वेस्टिवुलर नली टिम्पैनिक नली से मिल जाती है जिससे दोनो के अन्दर एक ही तरल पदार्थ होता है। कौकलियर नली (cochlear duct) में भी तरल पदार्थ भरा रहता है। यह वेस्टिवुलर नली से एक तिर्यक कला या रेशिनर्स मेम्वरेन (*Ressiner's membrane*) द्वारा तथा टिम्पैनिक नली के अधिकाश भाग में वेसिलर मेम्वरेन (basilar membrane) तथा शेप थोडे से भाग में अस्थिमय भाग द्वारा अलग

रहता है। इन तीनों में कौकलियर नली एपिथीलियम द्वारा ढकी रहती है। बेसिलर एपिथीलियम विशेष प्रकार की संवेदी सेल्स का बना होता है। यह लम्बी तथा सँकरी सेल्स की एक पंक्ति के रूप में होती है। इस पंक्ति में आधार सेल्स (supporting cells) तथा रोम-कोशिकाएँ (hair cells) होती हैं। ये दोनों मिलकर ऑर्गन ऑफ कोर्टाई (organ
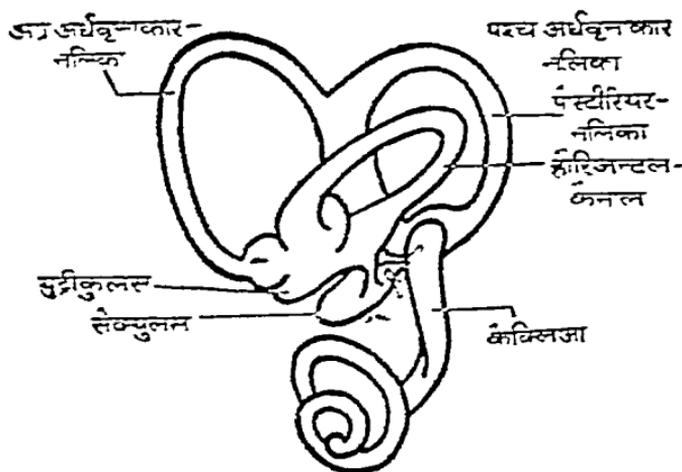
चित्र २१४—भीतरी कान के विभिन्न भाग

of corti) बनाती हैं। रोम कोशिकाओं की स्वतन्त्र सतह पर स्थित रोम कौकलियर कैनाल की एण्डोलिम्फ में हिल-डुल सकते हैं। इन्हीं के ऊपर एक छदि कला या टेक्टोरियल मेम्ब्रेन (tectorial membrane) होता है। श्रवण तन्त्रिका (auditory nerve) की शाखाएँ बेसिलर मेम्ब्रेन के सहारे आगे बढ़कर ऑर्गन आफ कोर्टाई (organ of Corti) की संवेदी कोशाओं से मिल जाती हैं।

श्रवण विधि (Working of the ear)

ध्वनि तरंगें कर्ण-पटह (tympanum) से टकराती हैं जिससे वह हिलने लगती है। इस कम्पन को मध्य कर्ण की तीनों हड्डियाँ भीतरी कान (internal ear) में पहुँचाती हैं। स्टेपीज (stapes), जो कि फीनेस्ट्रा ओवेलिस से जुड़ा रहता है, कम्पन को वेस्टिबुलर गुहा में स्थित पेरीलिम्फ में पहुँचा देता है। ये कम्पन परिलसीका गुहा-मार्ग (helecotrama) में होकर अधोपरिलसीका गुहा (scala tympani) में पहुँचते हैं और अन्त में फीनेस्ट्रा ओवेलिस (fenestra ovalis) तक पहुँचते-पहुँचते इनकी तेजी कम हो जाती है। वेस्टिबुलर गुहा में स्थित पेरीलिम्फ के कम्पन से कौक-

लियर नली की एण्डोलिम्फ में भी कम्पन होने लगता है। एण्डोलिम्फ के कम्पन से टेक्टोरियल मेम्ब्रेन (tectorial membrane) ऊपर-नीचे हिलने लगता है जिससे ऑर्गन ऑफ कॉर्टाई की रोम कोशिकाओं का उद्दीपन होता है। इन कोशिकाओं से प्रेरणाएँ लेकर श्रवण तंत्रिका (auditory nerve) मस्तिष्क को जाती है और इस प्रकार प्राणी को सुनाई पड़ता है।

चित्र २२५—ऑर्गन आफ कॉर्टाई का विन्यास
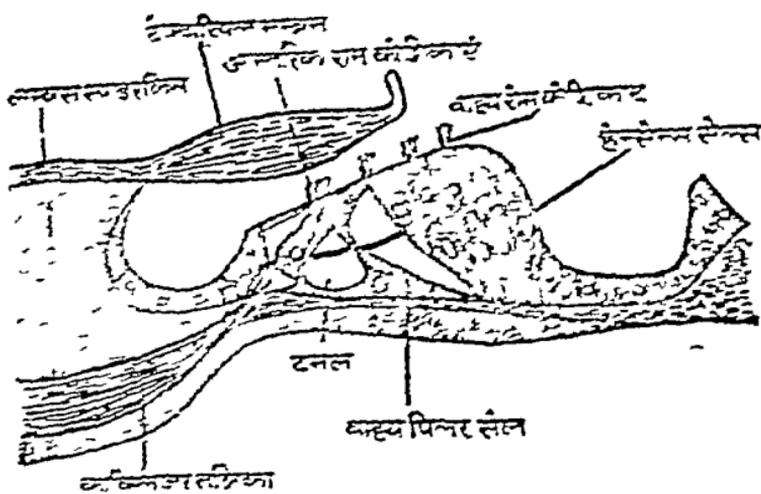
(२) नेत्र (Eyes)

स्तनधारियों के नेत्र की रचना मेंढकों के नेत्रों जैसी होती है। इनमें प्रत्येक नेत्र अस्थिमय नेत्र कोटर (bony orbit) में स्थित होता है और इस प्रकार भली भाँति सुरक्षित रहता है। यही नहीं इनकी रक्षा के लिए ऊपरी तथा निचली पलकें होती हैं जो पूरे नेत्र को आवश्यकतानुसार ढक सकती हैं। मनुष्य में पलकों से लगे पक्ष्म या बरौनी तथा ऊपरी पलक के ऊपर भवें (eye brows) होती हैं। प्रत्येक नेत्र-गोलक (eye-ball) का दो-तिहाई भाग नेत्र कोटर के भीतर और एक तिहाई भाग बाहर होता है। बाहर से दीखनेवाला भाग एक पतली झिल्ली से ढका रहता है जिसे कनजंक्टाइवा (conjunctiva) कहते हैं। इसी का भाग ऊपरी तथा निचली पलकों की भीतरी सतह से चिपका रहता है। इसको नम तथा पारदर्शी बनाये रखने के लिए ऊपरी पलक के नीचे तथा बाहर की ओर अश्रु-ग्रन्थियाँ (lachrymal glands) होती हैं जो अपने स्राव द्वारा कन्जंक्टाइवा को नम बनाये रखती हैं। आवश्यकता से अधिक आँसू, अश्रु-नासावाहिनी (naso-lachrymal duct) द्वारा नाक में चला जाता है।

प्रत्येक नेत्र गोलक से जुडी हुई छ पेशियाँ होती हैं जिनकी सहायता से इसे घुमाया-फिराया जा सकता है। इनमे चार **रेक्टाई पेशियाँ** (recti muscles) और दो **ऑब्लीक पेशियाँ** (oblique muscles) होती हैं। मेढक के सम्बन्ध मे तुम इनका विस्तारपूर्वक वर्णन पढ चुके हो।

नेत्र गोलक के लॉगिट्यूडिनल सेक्शन की सहायता से इसकी भीतरी रचना आसानी से समझी जा सकती है। नेत्र गोलक का सबसे बाहरी भाग एक पारान्ध (opaque) पर्त का बना होता है, जिसे शुक्ल पटल या **स्क्लीरौटिक** (sclerotic) कहते है। मेढक मे यह कार्टिलेज का बना होता है किन्तु मनुष्य मे यह सयोजी ऊतक का बना होता है। इसका अगला उभरा हुआ तथा पारदर्श भाग **कोर्निया** (cornea) कहलाता है।

कोरोइड (choroid) कोमल और सवहनीय होता है। इसमें एक प्रकार का रग होता है। नेत्र गोलक के अगले सिरे पर यह शुक्लपटल या स्क्लीरौटिक (sclerotic) से अलग होकर **आइरिस** (iris) बनाता है। मनुष्य में नेत्र का काला, भूरा या नीला रग आइरिस के रग पर निर्भर रहता है। आइरिस के बीचोबीच में एक गोल छेद होता है जिसे तारा (pupil) कहते हैं। तारा के व्यास का नियत्रण दो प्रकार की पेशियाँ करती है—**सरकुलर पेशियाँ** (circular muscles) के कुचन से तारा का व्यास घट जाता है किन्तु **रेडियल पेशियों** (radial muscles) के कुचन से बढ जाता है। प्रकाश की कमी या अधिकता के अनुसार तारा का व्यास अपने आप घटता-बढता रहता है।

कोरोइड के भीतर **रेटिना** (retina) होता है। इसकी रचना तुम मेढक के नेत्रो के सम्बन्ध मे पढ चुके हो।

आइरिस के पीछे पारदर्श, क्रिस्टेलाइन (crystalline) तथा लचीला लैन्स होता है। मेढक में यह आकार में लगभग गोल होता है, किन्तु स्तनधारियो मे यह बाइकौनवैक्स (biconvex) होता है। **ससपेन्सरी लिगामेन्ट** द्वारा **लैन्स सीलिएरी पेशी** (ciliary muscle) से जुडा रहता है। सीलिएरी बौडी अरेखित पेशी तन्तुओ का बना होता है। लैन्स की इस स्थिति के फलस्वरूप नेत्र गोलक दो भागो में विभाजित किया जा सकता है। लैन्स के आगेवाले भाग को अग्र-वेश्म (anterior chamber) तथा पीछेवाले को पश्च-वेश्म कहते हैं। अग्र वेश्म में पानी के समान एक द्रव भरा रहता है जिसे **एेकुअस ह्यूमर** कहते हैं। पश्च-वेश्म में जेली (jelly) के सदृश एक पारदर्श पदार्थ भरा रहता है जिसे **विट्रियस ह्यूमर** (vitreous humour) कहते हैं।

रेटिना (retina) में वह स्थान जहाँ पर ऑप्टिक-तन्त्रिका (optic nerve) नेत्र गोलक में प्रवेश करती है, अन्ध-विन्दु (blind spot) कहलाता है। रेटिना के अन्य सभी भागों में दो प्रकार की सवेदी सेल्स होती हैं जिन्हें दृष्टि शलाका (rods) तथा दृष्टि शकु (cones) कहते हैं किन्तु अन्ध-विन्दु में इनका अभाव होता है जिससे यह स्थान अचेतन (non-sensory) होता है। मनुष्य के नेत्र में यदि लैन्स के बीचोबीच से एक सीधी रेखा खींची जाय तो वह रेटिना में स्थित पीत विन्दु (yellow spot) के बीचोबीच में समाप्त होती है। पीत-विन्दु में सबसे अधिक स्पष्ट प्रतिमूर्त्ति
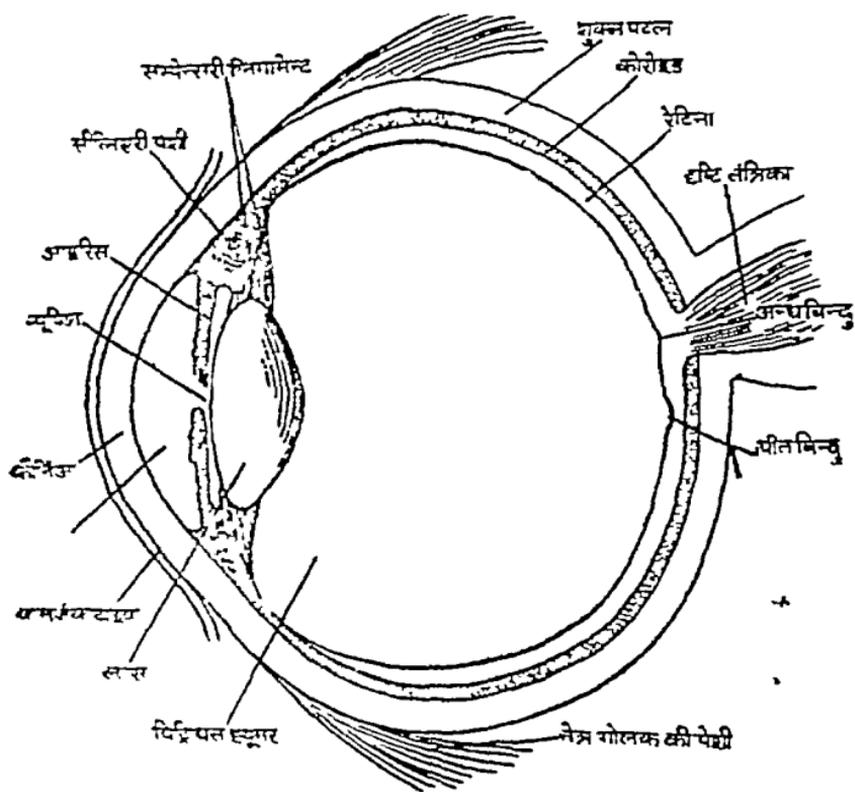
चित्र २१६—मनुष्य के नेत्र गोलक का सेक्शन

(image) बनती है। इस भाग में विशेष तौर पर शलाका (rods) तथा शकु (cones) होते हैं और अन्य सभी स्तर जिनमें होकर प्रकाश-किरणें शलाका तथा शकु तक पहुँचती हैं बहुत ही पतले हो जाते हैं

नेत्रों की कार्यिकी (Working of the eyes)

मेढक के नेत्रों के विभिन्न भागों की क्रिया तुम पढ चुके हो। स्तनधारियों में भी रेटिना पर प्रतिमूर्त्ति (image) बनने की वही विधि है। उल्लेखनीय अन्तर निम्न प्रकार है —

(१) स्तनधारियो में प्रकाश-किरणो का नाभीयन (focussing) लैन्स की अपेक्षा कौर्निया द्वारा अधिक होता है।

(२) मेढक के नेत्रो में थोडा बहुत व्यवस्थापन या ऐकोमोडेशन (accommodation) लैन्स को आगे पीछे खिसकाने से ही हो जाता है किन्तु इसके विपरीत स्तनधारियो मे लचीले और बाइकौनवैक्स लैन्स के आकार में परिवर्तन होने के फलस्वरूप व्यवस्थापन हो जाता है।
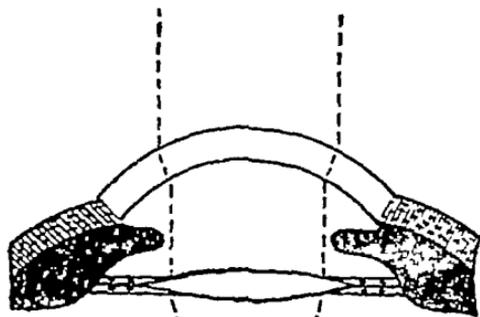
(अ) आदमियो में द्विनेत्रीय दृष्टि (binocular vision) होती है किन्तु मेढको मे ऐसी कोई क्षमता नही होती।

चित्र २१७—व्यवस्थापन की विधि दूर की वस्तु देखने के लिए लेन्स चपटा हो जाता है किन्तु पास की वस्तुओ को देखने के लिए मोटा।

व्यवस्थापन या एकोमेडेशन (Accomodation)

आमतौर पर सस्पेन्सरी लिगामेन्ट तनकर लैन्स को चपटा बनाये रखता है जिससे वह दूर पर स्थित वस्तुओ से आनेवाली प्रकाश-किरणो का नाभीयन (focussing) कर सकता है। इस प्रकार नेत्रो की विश्रामावस्था में दूर की वस्तुएँ सबा से साफ दिखाई देती हैं।

निकट-वस्तुओ को साफ साफ देखने के लिए लैन्स को अधिक बाइ-कौन्वेक्स (biconvex) होना पडता है। ऐसा करने के लिए सस्पेन्सरी लिगामेन्ट का तनाव कम करना आवश्यक होता है। तनाव को कम करने के लिए **सीलियरी बौडी** (ciliary body) में दो प्रकार की पेशियाँ होती हैं—**सरकुलर सीलिएरी पेशी** तथा **लौंगिट्यूडिनल सीलियरी पेशी**।

[illegible] के कुंचन से इस छेद का [illegible] रहता है और बन्द हो जाता है। [illegible] पेशी के कुंचन से यह छेद [illegible] (gastro-oesophageal junction) को [illegible] है। इस प्रकार [illegible] दोनों पड़ जाता है [illegible] हो जाता है।

(३) स्वाद तथा गंध के ग्राहक अंग

स्वाद तथा गन्ध इन दोनों के ग्राहक अंगों में बहुत निकट सम्बन्ध है क्योंकि दोनों ही गन्ध व घुलनशील पदार्थों द्वारा उद्दीप्त होते हैं। इसलिए मानव के लिए न किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती क्योंकि मुखगुहा तथा घ्राण कक्ष की [illegible] में खुलती है। इस प्रकार दोनों ही रसोग्राहियाँ (chemoreceptors) होते हैं।

(क) घ्राणेन्द्रियाँ (Olfactory organs)—गन्ध पता लगाने का मुख्य स्थान नाक है जिसमें बाहरी नासा-छिद्र तथा आन्तरिक नासा-छिद्र (internal nares) होते हैं। स्तनी तथा अन्य स्तनधारियों में तालु (palate) के होने से आन्तरिक नासा-छिद्र मुखगुहा से बहुत पीछे फैरिन्क्स (pharynx) में खुलते हैं। स्तनी में दोनों घ्राण कक्ष नाक के पिछले भाग में क्रेनियम के ठीक सामने स्थित होते हैं। इस भाग में इथ्मो टर्बाइनल (ethmo turbinal) नाम की कोमल तथा कागज के समान पतली और बहुत ज्यादा मुड़ी-मुड़ाई हड्डियाँ होती हैं जिनकी बाहरी सतह ऑल्फैक्टरी एपिथीलियम से ढकी होती है। इथ्मो-टर्बाइनल के विशेषरूप से मुड़ी-मुड़ाई होने के कारण ऑल्फैक्टरी एपिथीलियम का क्षेत्रफल कई गुना बढ़ जाता है जिससे इन प्राणियों में सूंघने की शक्ति भी बढ़ जाती है। ऑल्फैक्टरी एपिथीलियम में निम्न तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं —

(१) श्लेष्म-कोशिकाएँ (mucous cells)
(२) संवेदी-कोशिकाएँ (sensory cells)
(३) आधार-कोशिकाएँ (supporting cells)

इसमें संवेदी-कोशिकाएँ ही सबसे महत्त्वपूर्ण होती हैं। प्राय ये लम्बी तथा सँकरी होती हैं। प्रत्येक संवेदी-कोशिका की स्वतन्त्र सतह पर संवेदी रोम (sensory hair) होते हैं किन्तु निचला तट घ्राण तन्त्रिका के तन्तुओं से जुड़ा रहता है।

ये सभी प्राणी सूंघने की शक्ति का उपयोग केवल अपने भोजन की खोज-

बीन के लिए ही नही करते वरन् इसी की सहायता से ये अपने शत्रुओ का भी आसानी से पता लगा लेते हैं जिससे अपनी रक्षा करने में इन्हे बडी सहायता मिलती है। जनन-काल (breeding season) में अपनी घ्राण शक्ति की सहायता से नर-मादा एक दूसरे को ढूंढ निकालते है।

(ख) स्वाद ग्राहक अगो को **स्वाद-कोशिकालय** (taste buds) कहते हैं जो जीभ की ऊपरी सतह तथा दोनो किनारो पर मिलती है। स्वाद कोशिकालय के समूह प्राय बहुत ही नन्हे-नन्हे उभारो या अकुरो (papillae) के रूप मे होते हैं। इन अकुरो को तुम बिना माइक्रोसकोप की सहायता के भी देख सकते हो। ये अकुर जीभ की सतह पर समानरूप से नही बिखरे होते। **शंक्वाकार** (conical) तथा तन्तुवत् (filiform) अकुर जीव के सभी भागो में मिलते हैं। **प्राकारावृत** (circumvallate) अकुर आकार में गोल होते हैं।

प्रत्येक स्वाद कोशिकालय सँकरी तथा सवेदी कोशिकाओ (sensory-cells) का एक समूह होता है जिसके चारो ओर आधार कोशिकाएँ (supporting cells) होती हैं। सवेदी-कोशिकाओ की स्वतन्त्र सतह-पर पक्ष्मो (cilia) के गुच्छ होते है किन्तु निचले भाग उन तन्त्रिका तन्तुओ से जुड़े रहते हैं जो मिलकर VII, IX तथा X क्रेनियल तन्त्रिकाएँ बनाते हैं। प्रत्येक स्वाद-कली एक छोटे से छेद द्वारा बाहर खुलती है। भोजन में मिलनेवाले पदार्थ सर्वप्रथम म्यूकस या श्लेष्मि में घुल जाते हैं और फिर स्वाद-कोशिकालय के छेद मे होकर सवेदी-कोशिकाओ को उद्दीप्त करते हैं। इस उद्दीपन द्वारा तन्त्रिका तन्तुओ द्वारा प्रेरणा मस्तिष्क में पहुँचती हैं।
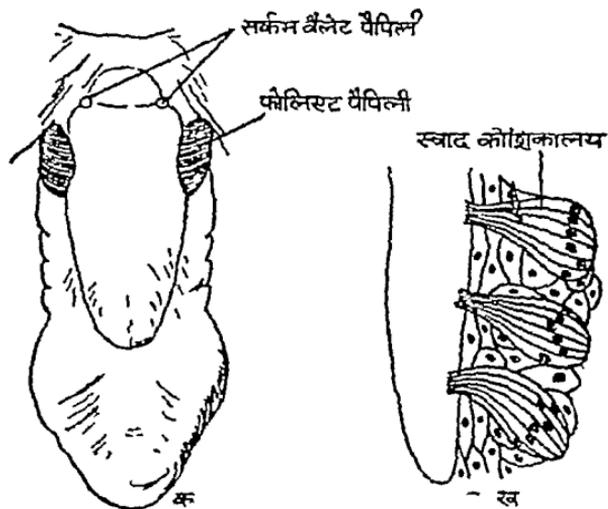
चित्र २१८—क खरगोश की जीभ की ऊपरी सतह, ख, फोलियट (foliate) अकुरो का सेक्सन

(४) स्पर्श

स्पर्श का ज्ञान हमें त्वचीय ग्राहक (cutaneous receptor) अगो द्वारा होता है। स्तनधारियो में ये अडाकार **स्पर्श-कौर्पसल्स** (touch corp-

uscles) के रूप में त्वचा के विभिन्न भागो में स्थित होते हैं। प्रत्येक स्पर्श-कॉर्पसल की बाहरी सतह पर सयोगी ऊतक का एक पतला आवरण होता है जिसके भीतर तन्त्रिका की अन्तिम शाखाएँ मिलती हैं।

प्रश्न

१—खरगोश के नेत्रो की सरचना चित्र बनाकर समझाओ।

२—मेढक और खरगोश के कानो की सरचना में क्या अन्तर होता है?

३—हारमोन्स क्या हैं और ये शारीरिक क्रियाओं का आसजन किस प्रकार करते हैं? दो उदाहरण देकर समझाओ।

अध्याय १७

जन्तुओं का वर्गीकरण

ससार मे लगभग ८५०,००० प्रकार के छोटे-बडे जन्तु मिलते हैं। जन्तु-विज्ञान के किसी भी विद्यार्थी के लिए इन सभी प्रकारो के जन्तुओ का अध्ययन पूरे जीवन मे भी समाप्त करना असम्भव है। अध्ययन की सुविधा के लिए वैज्ञानिको ने जन्तुओ का वर्गीकरण का सहारा लिया है। तुम पढ चुके हो कि खरगोश **क्लास मैमेलिया** का प्राणी है। इस क्लास में लगभग ४००० प्रकार के प्राणी मिलते हैं जिनमें अनेक लक्षण समान होते हैं। इस प्रकार सभी स्तनधारियो (mammals) की आधारभूत सरचना एक समान है जिससे इस वर्ग के किसी एक प्राणी की मौर्फोलोजी, हिस्टौलोजी तथा फिजियालोजी ठीक-ठीक समझ लेने पर अन्य सभी का समुचित ज्ञान हो जाता है।

फायलम कौर्डेटा की विशेषताएँ

(Characteristics of Phylum Chordata)

(१) **नोटोकौर्ड (notochord) की उपस्थिति**—नोटोकौर्ड एक कठोर शलाका (rod) के रूप में होता है जो शरीर के पृष्ठ भाग में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला होता है। अधिकाश प्रौढ कौर्डेट्स में नोटोकौर्ड गायब हो जाता है और इसके स्थान पर कार्टिलेज (cartilage) या हड्डियो का बना वरटिब्रल कॉलम (vertebral column) बन जाता है।

(२) **पृष्ठ नालाकार नर्व कौर्ड (dorsal tubular nerve cord) की उपस्थिति**—यह सदैव एक्टोडर्म से बनता है। आरम्भ में यह भ्रूण की पृष्ठसतह पर एक सँकरी पट्टी के रूप में होता है जिसे न्यूरल प्लेट (neural plate) कहते हैं। क्रमश यह पट्टी नीचे धँसती जाती है और इसके दोनो किनारे न्यूरल फोल्ड के रूप मे ऊपर उठ आते हैं। धीरे-धीरे न्यूरल फोल्ड एक दूसरे की ओर बढते हैं और अन्त में परस्पर मिलकर **न्यूरल कैनाल** (neural canal) का निर्माण करते है। अधिकाश कौर्डेटा में तन्त्रिका-नाल का अगला सिरा

थोड़ा-सा फैलकर मस्तिष्क का निर्माण करता है और शेष भाग स्पाइनल कौर्ड (spinal cord) बनाता है।

(३) फैरिंजियल स्लिट्स की उपस्थिति (presence of pharyngeal slits)—गिल स्लिट्स (gill slits) के होने से फैरिंक्स की दीवारों में दोनों ओर छेद होते हैं। इन छेदों की दीवारों में गिल्स होती हैं जो जल में साँस लेने में सहायता देती हैं। उच्च कोटि के कौर्डेट्स (अर्थात् वरटिब्रेट्स) में ये स्लिट्स केवल भ्रूणावस्था (embryonic stage) में मिलती हैं।

कौर्डेट्स को निम्न चार सब-फाइला (su -phyla) में विभाजित करते हैं.—

(क) हेमीकौर्डेटा (*Hemichordata*)
(ख) यूरोकौर्डेटा (*Urochordata*)
(ग) सेफलोकौर्डेटा (*Cephlochordata*)
(घ) वरटिब्रेटा (*Vertebrata*)
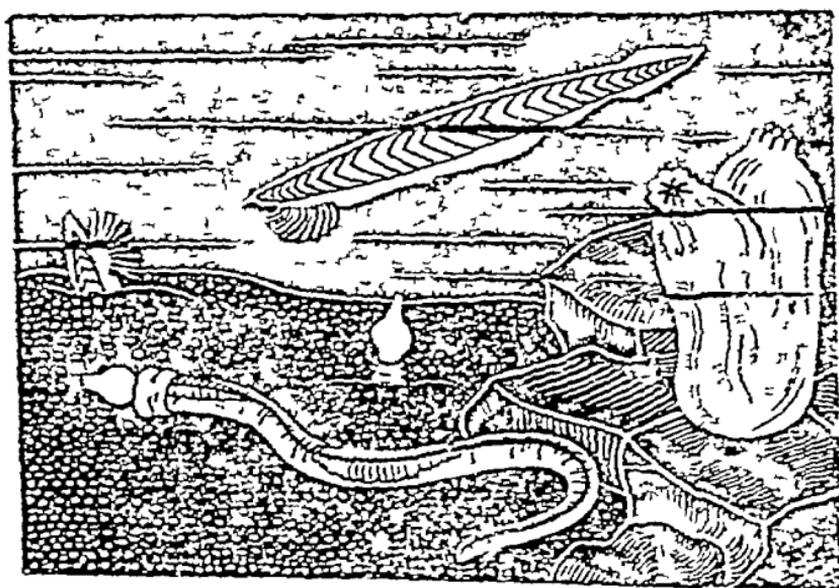
चित्र २१९—निम्नश्रेणी के प्रमुख कौर्डेट्स

ऊपरी तीन सब-फाइला में बलानाग्लौसस (Balanaglossus), एसिडीयन (Ascidian), एम्फिओक्सस (Amphioxus) नाम के सामुद्रिक जन्तु मिलते हैं।

(घ) सब-फाइलम वरटिब्रेटा (Sub-phylum Vertebrata)—इस समुदाय में मिलनेवाले प्राणियों में निम्न विशेषताएँ होती हैं —

(१) प्रौढ वरटिब्रेट्स में नोटोकौर्ड का स्थान वरटिब्रल कॉलम ले लेता है जो अनेक वरटिब्री (vertebrae) का वना होता है।

(२) इनमे सदैव हड्डियो का बना ऐन्डोस्कैलिटन (endoskeleton) मिलता है।

(३) इनमें अवयवो (appendages) के केवल दो जोडे होते हैं। मछलियो में ये युग्मित पक्षतों (paired fins) के रूप में किन्तु अन्य उच्चकोटि के वरटिब्रेट्स में ये अगली तथा पिछली टाँगो के रूप में मिलते हैं।

(४) इनका हृदय सदैव शरीर की प्रतिपृष्ठ सतह के निकट स्थित होता है।

(५) हीमोग्लोबिन (haemoglobin) नाम का रग प्लाज्मा में घुला न होकर सदैव लाल रुधिर कणिकाओ में मिलता है।

(६) शरीर के पृष्ठभाग में एक नर्व कौर्ड मिलता है जिसका अगला सिरा फैलकर मस्तिष्क का निर्माण करता है।

(७) इन सभी में सिर प्राय स्पष्ट होता है और उसमें कई विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियाँ मिलती हैं।
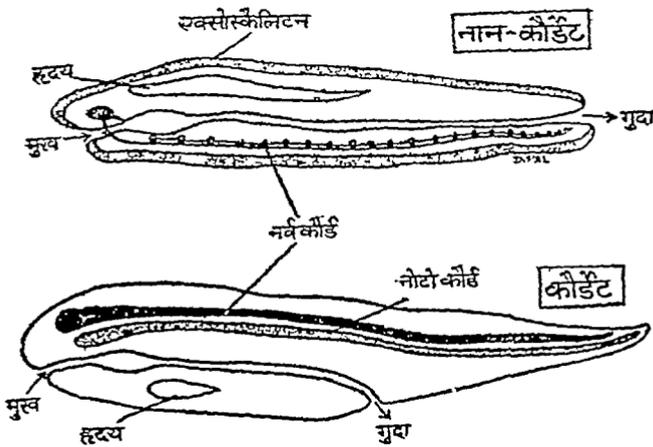
चित्र २२०—वरटिब्रेट तथा उच्चकोटि के इनवरटिब्रेट प्राणियो के प्रमुख शारीरिक (anatomical) अन्तरो का चित्रीय निरूपण।

(८) ऊपरी तथा निचले जबडो के बीच में एक कोर-संधि (hinge-joint) होती है जिसकी सहायता से मुख बन्द किया जा सकता है।

(९) इन सभी प्राणियो में एक विशाल देह-गुहा या सीलोम (coelom) होती है जिसका अधिकाश भाग जननाग, आहार-नाल,

इत्यादि घेरे रहते हैं। बचे हुए भाग मे देह-गुहा द्रव (coelomic fluid) होता है।

(१०) इन प्राणियो में पूंछ होती है। गुद-द्वार के पीछे स्थित शरीर की अक्ष के भाग को पूंछ कहते हैं।

(११) इनका परिवहन तन्त्र बन्द (closed) होता है जिससे रुधिर प्रवाह केवल धमनियो, शिराओ तथा केशिकाओं में होता है।

(१२) इन सभी प्राणियो में हिपैटिक पोर्टल वेन अवश्य मिलती है।

कुछ समय पूर्व वरटिब्रेट्स निम्न पांच क्लासेस में विभाजित किये जाते थे —पिसीज (Pisces), ऐम्फिबिया (Amphibia), रेप्टीलिआ (Reptilia), एवीस (Aves) तथा मैमेलिआ (Mammalia)। इनमें से नीचे के चार क्लासेस अब भी ज्यो के त्यो हैं। अन्तर केवल इतना है कि अब पिसीज (Pisces) को निम्न तीन क्लासेस मे विभाजित किया जाता है —

(१) साइक्लोस्टोमेटा (Cyclostomata)

(२) कौन्ड्रिकियीज (Chondrichthyes)

(३) ऑस्टिकियीज (Osteichthyes)

इस प्रकार अब सब-फाइलम वरटिब्रेटा को ७ क्लासेस (classes) में विभाजित करते हैं।

(१) पिसीज क्लास
(Pisces)

मछलियो की गणना असमतापी प्राणियों (cold blooded animals) में है। ये अपना पूरा जीवन जल ही में व्यतीत करती है। आमतौर पर इनका शरीर तर्कुवत् (spindle shaped) होता है। यहां पर यह समझ लेना चाहिए कि मछलियो के शरीर के आकार में पाई जानेवाली विभिन्नता का सीधा सम्बन्ध उनके चलन (locomotion) से है। उदाहरण के लिए, तेजी के साथ तैरनेवाली मछलियो का शरीर जल को चीरने के लिए साधारण स्फान (wedge) के आकार का होता है। सरोवर, सरिताओ तथा सागरो के पेंदे (bottom) में निवास करनेवाली मछलियो का शरीर चपटा (flattened) होता है जिससे रेंगने में उन्हे सहायता मिलती है। जिन मछलियो का शरीर जल में खड़ा रहता है, उनका शरीर दोनो पार्श्वों में चपटा होता है। बिलेशय मछलियाँ (burrowing fishes) दरारो तथा छेदो में रहती हैं। जिससे उनका शरीर सांपो के समान लम्बा तथा रम्भाकार होता है।

आमतौर पर मछलियो के शरीर के दोनो सिरे क्रमश पतले तथा नुकीले होते हैं। शरीर का सबसे चौडा भाग शरीर के मध्य-भाग के कुछ आगे होता

है। शरीर के इस आकार के फलस्वरूप इनका शरीर पूरी तौर पर धारा-रेखी (streamlined) हो जाता है जिससे ये बडी तेजी से तैर सकती हैं।

मछलियो का लगभग समस्त शरीर अनेकानेक छोटे-छोटे शल्को या स्केल्स (scales) द्वारा निर्मित एक्सोस्कैलिटन से ढँका रहता है। कुछ मछलियो
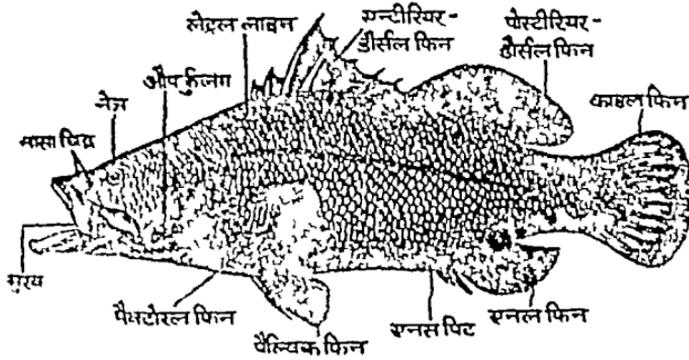
चित्र २२१—भेटकी (Lates) की बाह्य-आकृति

का शरीर प्लेकोएड स्केल्स (placoid scales) से ढँका रहता है। कुछ मछलियो मे गोल या अडाकार, चपटे तथा पतले स्केल्स होते है जो छत की खपरैल (tiles) की भाँति खर्परीछादन (overlapping) करते है। मछली की त्वचा में श्लेष्म-ग्रन्थियां (mucous glands) होती हैं जो चिकना म्यूकस (mucus) उत्पन्न करती हैं। इसी से दोनो प्रकार के शल्को का उपस्नेहन (lubrication) हुआ करता है। शल्को की उपस्थिति से मछली की त्वचा की रक्षा होती है तथा इनके उभरे न होने से शरीर का लचीलापन तथा गति में किसी प्रकार की बाधा नही होने पाती।

मछलियो के अवयव (appendages) पक्षतो या फिन्स (fins) के रूप में होते हैं। पैक्टोरल फिन्स (pectoral fins) तथा पैल्विक फिन्स (pelvic fins) हमेशा जोडे में होते है। इनके अतिरिक्त पृष्ठ-पक्षत, प्रतिपृष्ठ पक्षत तथा पुच्छ पक्षत (caudal fin) भी होते हैं। इनके नासाछिद्र मुख-गुहा में नही खुलते। इसलिए मछलियो के नासा-छिद्र केवल घ्राण अगो (olfactory organs) का कार्य करते हैं। मछलियो मे जबडे (jaws) होते हैं किन्तु

चित्र २२२—लैम्प्रे

कर्ण-पटह (tympanum) तथा पलकों (eye-lids) का पूर्ण अभाव होता है। मछलियों के शरीर के इधर-उधर एक एक पार्श्व-रेखा (lateral line) होती है जो एक विशिष्ट संवेदांग (sense organ) का कार्य करती है।

श्वसन के लिए गिल्स (gills) चार या पाँच जोड़े होते हैं। कुछ शार्क (shark), रे (ray) डॉग फिश (dog fish) कॉर्टिलेजिनस मछलियों के सामान्य उदाहरण हैं और रोहू (*Labeo robita*), महासेर, कतला (*Catla catla*), पूती (*Barbus tincto*), भेटकी (*Lates calcarifer*) सता (*Ophiocephalus*) इत्यादि बोनी फिसेज के सामान्य उदाहरण हैं।

(२) क्लास एम्फिबिया
(Class Amphibia)

एम्फिबिया के सामान्य लक्षण—

(१) त्वचा पूरी तौर पर नंगी और ग्रन्थिल होती है, जिससे बहिर्कंकाल (exoskeleton) का सदैव अभाव होता है।

(२) इनके लार्वा (larva) सदैव जल में रहते हैं तथा गिल्स से साँस लेते हैं। कुछ एम्फिबिया में तो गिल्स आजीवन बने रहते हैं।

(३) इस क्लास के अधिकांश प्राणियों में दो जोड़ी टाँगें होती हैं जिनमें अँगुलियाँ स्पष्ट होती हैं।

(४) इस क्लास के सभी प्रौढ प्राणी फेफड़ों से साँस लेते हैं और इसी लिए इनके आन्तर नासा छिद्र (internal nares) मुख-गुहा में खुलते हैं।

(५) इनकी खोपड़ी में दो ऑक्सिपिटल कॉण्डाइल्स होते हैं जो एटलस (atlas) के अगले सिरे पर स्थित दो अंडाकार गड्ढों से जुड़े होते हैं।

(६) इनका हृदय त्रिवेश्मी (three chambered) होता है, और इनका शारीरिक ताप सदैव पर्यावरण के अनुकूल बदला करता है।

(७) इनकी आहार-नाल के अन्तिम भाग को क्लोएका कहते हैं। इसी में मूत्र-वाहिनियाँ (ureters) तथा अंड-वाहिनियाँ (oviducts) खुलती हैं। क्लोएका की वेन्ट्रल सतह से जुड़ा हुआ मूत्राशय (urinary bladder) होता है।

(८) ये अनेकानेक छोटे-छोटे एकत पीती (telolecithal) तथा रंगीन (pigmented) अंडे पैदा करते हैं। अंडरोपण (oviposition), संसेचन और अधिकांश प्राणियों में पानी ही में भ्रूण का परिवर्धन होता है।

(९) इनके लार्वा प्रौढ प्राणियों से रचना तथा स्वभाव में पूरी तौर पर भिन्न

होते है। इसीलिए इनके परिवर्धन में रूपान्तरण (metamorphosis) की आवश्यकता पड़ती है।

क्लास एम्फीबिया के आधुनिक प्राणियों को हम निम्नलिखित तीन ऑर्डर्स (orders) में विभाजित कर सकते हैं —

(१) एपोडा (Apoda)

(२) यूरोडिला (Urodela)

(३) एन्योरा (Anura)

१—एपोडा (Apoda)—इस ऑर्डर के प्राणियों का शरीर लम्बा, पतला तथा कृमिरूप (wormlike) होता है। इनमें अगली तथा पिछली टांगों का ही नहीं बल्कि उनको सहारा देनेवाली गर्डिल्स का भी पूर्ण अभाव होता है। इनकी त्वचा चिकनी होती है। बिलकारी प्राणी (burrowing animal) होने के कारण इनकी आँखें छोटी होती हैं तथा अपारदर्शी (opaque) त्वचा से ढकी रहती हैं जिससे ये अकार्य (functionless) होती हैं। इसके अतिरिक्त इन प्राणियों में कर्ण पटह (tympanum) का अभाव होता है। कुछ प्राणियों में लार्वल अवस्था भी नहीं मिलती तथा अंडों से, जिन्हें मादा नम स्थानों में देती है, शिशु निकलते है। इस ऑर्डर के प्राणी

चित्र २२३—एशियाटिक सिसीलिया अंडों के साथ

विशेषरूप से उष्णकटिबन्ध प्रदेशों में ही मिलते हैं। सामान्य प्राणियों के नाम इकथियोफिस (*Ichthyophis*), हाइपोजिओफिस (*Hypogeophis*) तथा सिसीलिया (*Cecilia*) हैं।

२—यूरोडिला (*Urodela*)—इस ऑर्डर के प्राणियों में पूंछ आजीवन बनी रहती है। लार्वल अवस्था में गिल्स तथा गिल-क्लेफ्ट होते हैं जो कुछ प्राणियों में आजीवन बने रहते हैं और कुछ में गायब हो जाते है। इनकी अगली तथा पिछली टांगें लम्बाई में एक समान होती हैं तथा एन्योरा (Anura) के प्राणियों की अपेक्षा अधिक कमजोर होती है। कुछ प्राणियों में पिछली टांगों का पूर्ण अभाव होता है। इस श्रेणी को निम्न चार फैमिलीज (families) में विभाजित किया जाता है —

(क) फैमिली एमफ्यूमिडी (*Amphiumidae*)—इनके प्राणियों में दो जोड़ी अल्पविकसित (rudimentary) टांगें होती है। एक गिल क्लेफ्ट

प्रौढ प्राणियों में भी मिलता है। इस फैमिली के सामान्य प्राणी एमफ्यूमा (*Amphiuma*) तथा क्रिप्टोब्रैन्कस जापॉनीकस (*Cryptobranchus japonicus*) हैं।
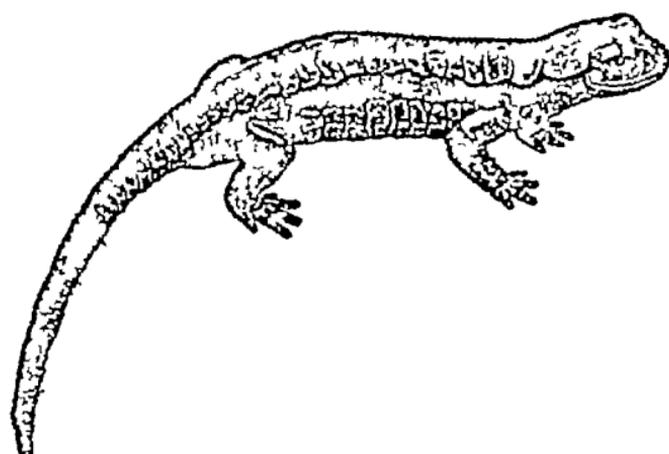
चित्र २२४—सामान्य सैलामैण्डर

(ख) फैमिली सैलेमैन्ड्राइडी (Family *Salamandridae*)—यह एक विशाल फैमिली है जिसमें यूरोडिला (Urodela) के अधिकांश प्राणी मिलते हैं। इस फैमिली के प्रौढ (adult) प्राणियों में गिल्स गायब हो जाते हैं। इस फैमिली में सेलेमैन्डर, न्यूट्स, ट्राइटन इत्यादि मिलते हैं।
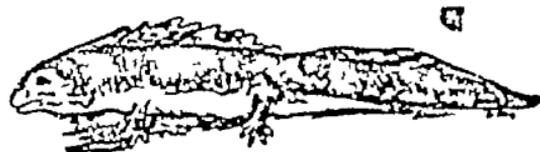
(ग) फैमिली प्रोटिडी (Family *Proteidae*)—इसके सभी प्राणियों में एक्सटर्नल गिल्स के तीन जोडे होते हैं, साथ ही साथ इनमें अगली तथा पिछली टाँगें भी होती हैं। इस फैमिली के प्राणी प्रोटियस (*Proteus*) तथा नेक्ट्यूरस (*Necturus*) हैं।

चित्र २२५—शिखरयुक्त न्यूट
क, मादा तथा ख, नर

(घ) फैमिली साइरिनिडी (Family Sirenidae)—इस फैमिली के प्राणियों में तीन जोडी गिल्स होती हैं किन्तु केवल अगली टाँगें होती हैं। इसमें साइरिन (*Siren*) तथा सूडोब्रैन्कस (*Pseudobranchus*) नाम के दो जेनरा होते हैं। ये दोनों ही उत्तरी अमेरिका में मिलते हैं और प्रत्येक जीनस में केवल एक ही स्पेशीज होती है। साइरिन (*Siren*) का आकार साँप के समान लम्बा होता है। इसकी अगली टाँगें अल्पविकसित होती हैं और एक्सटर्नल गिल्स के ठीक पीछे होती हैं। एक्सटर्नल गिल्स के समीप प्रत्येक ओर तीन गिल क्लेफ्ट (gill slits) होते हैं। सूडो-

चित्र २२६—प्रोटियस

ब्रेन्कस (*Pseudobranchus*) मे प्रत्येक ओर केवल दो ही गिल क्लेफ्ट्स होते हैं और प्रत्येक अगली टाँग में केवल तीन पादागुल (toes) होती हैं।

३—एन्योरा (Anura)—इस ऑर्डर में मेढक तथा टोड (toad) होते हैं। प्रौढावस्था मे इनमें गिल्स का पूर्ण अभाव होता है। अगली और पिछली टाँगें दोनो ही होती हैं। वरटिव्रल कालम वहुत छोटा होता है और इसमें केवल १० वरटिव्री होती है। इस ऑर्डर को निम्न दो सब-ऑर्डर्स में विभाजित करते हैं—

(क) सब-ऑर्डर फैनरोग्लौसा (*Phaneroglossa*)—इस समुदाय के प्राणियो मे जीभ होती है और इनकी यूस्टेकियन नलिकाएँ (Eustachian tubes) अलग-अलग फैरिक्स मे खुलती हैं। इस समुदाय में विभिन्न प्रकार के मेढक तथा टोड होते है।

(ख) सब-ऑर्डर एग्लौसा (*Aglossa*)—इस समुदाय के सभी प्राणियो में जीभ नही होती तथा दोनों यूस्टेकियन नलिकाएँ एक ही छेद द्वारा फैरिक्स मे खुलती है। पाइपा अमेरिकाना (*Pipa americana*) इस समुदाय का सबसे रोचक उदाहरण है।

(३) क्लास रेप्टीलिया
(Class Reptilia)

अपने नाम के अनुकूल इस क्लास के सभी प्राणियो का प्रमुख लक्षण रेंगना है। इसलिए इस क्लास के अधिकाश प्राणी न तो ठीक से चल ही पाते है और न दौड ही सकते है। इन्हे पहचानना अत्यन्त सरल है। क्योंकि इनका सम्पूर्ण शरीर स्केल्स (scales) से ढँका रहता है। मछलियो के स्केल्स इनके स्केल्स से बिल्कुल भिन्न होते हैं। ये श्रृंगिक (horny) होते है और एपिडर्मिस (epidermis) के परिवर्तन से बनते हैं। इस क्लास के प्राणियो की त्वचा सूखी (dry) होती है तथा उसमें ग्रन्थियाँ नही होती। ये असमतापी (poikilothermal) होते हैं और इनमे अपूर्ण-चार-वेश्मी हृदय होता है। खोपडी में केवल एक ही ऑक्सिपीटल कॉंडाइल (occipital condyle) होता है। ये फेफडों से साँस लेते है।

भारत मे इस क्लास के प्राणियो का बाहुल्य है। इस क्लास को निम्न चार ऑर्डर्स में विभाजित करते है —

(१) ऑर्डर लैसर्टीलिया (*Lacertilia*)
(२) ऑर्डर ओफीडिया (*Ophidia*)
(३) ऑर्डर कीलोनिया (*Chelonia*)
(४) ऑर्डर क्रोकोडीलिया (*Crocodilia*)

(१) ऑर्डर लेसर्टीलिया (Lacertilia)—इस ऑर्डर में विभिन्न प्रकार की गोधिकाएँ (lizards) मिलती हैं। ये सभी सूखे स्थानों में रहती हैं। इनका शरीर आमतौर पर छोटा होता है और असंख्य छोटे-छोटे शल्कों से ढँका रहता है। सामान्य घरेलू छिपकली या बिसतुइया (*Wall lizard*) को तुम सभी ने देखा होगा। भारतीय ड्रैको (*Draco*) पेड़ों की एक शाखा से दूसरी
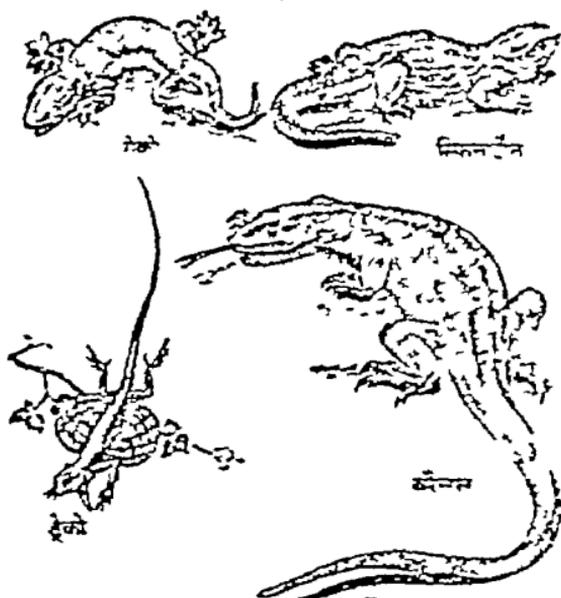
चित्र २२७—विभिन्न प्रकार की गोधिकाएँ (lizards)

पर उड़कर जा सकती है। उड़ने में सहायता देने के लिए इसके शरीर के दोनों पार्श्व तटों की त्वचा के उभार बाहर निकले रहते हैं जो हवा में फैल जाते हैं और उन्हें थोड़ी दूर तक उड़ने में सहायता देते हैं। **साँडा** (*Uromastix hardwickii*) तथा गोह (*Varanus bengalensis*) भी इसी ऑर्डर में होते हैं।

(२) ऑर्डर ओफीडिया (Ophidia)—इसमें सर्प होते हैं जिनका शरीर लम्बा तथा रम्भाकार (cylindrical) होता है और तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) सिर (२) धड़ तथा (३) पूँछ। जिस स्थान पर सर्प का धड़ समाप्त होता है वहीं प्रतिपृष्ठ सतह पर क्लोअकल छेद (cloacal aperture) होता है। मल, मूत्र, तथा अंडे इसी छेद से बाहर निकलते हैं। धड़ की प्रतिपृष्ठ सतह सदैव चपटी होती है। इनकी पूँछ क्रमशः पतली होती जाती है और इसका पिछला सिरा नुकीला होता है। शरीर के सभी भाग अनेकानेक छोटे-छोटे शृंगिक (horny) स्केल्स से ढँके रहते हैं। दोनों नासा-छिद्र सिर के अगले सिरे पर होते हैं। इसके नेत्र गोल होते हैं किन्तु पलकों का पूर्ण अभाव होता है। प्रत्येक नेत्र एक पारदर्शी शल्क (transparent

तथा पीछे के छेदों को कसकर बंद कर लेते हैं। कछुए अंडे देते हैं और उन्हें मिट्टी में गाड़ देते हैं। अंडा का प्रकवच (shell) कोमल होता है और ये सूर्य की गर्मी से ही सेवित (incubate) होते हैं।

(४) ऑर्डर क्रोकोडीलिया (Crocodilia)—हमारे देश में जो स्पीशीज मिलती है उन्हें नाका और घड़ियाल कहते हैं। 'नाके' का तुंड (snout) या नाक लम्बी होती है और घड़ियाल की छोटी। घड़ियाल को ही लोग आमतौर पर मगर कहते हैं। भारतीय नाका (*Gavialis gangeticus*) लगभग २० फुट लम्बा-होता है। भारतीय मगर (*Crocodylus porosus*) लगभग १८ फुट लम्बा होता है।
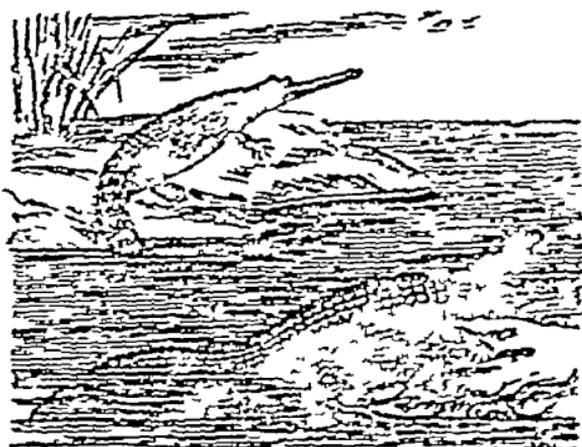
चित्र २२०—नाका तथा घड़ियाल या मगर

रेप्टाइल्स (*reptiles*) में मगर तथा नाका सबसे अधिक बड़े और सबसे अधिक प्राचीन टाइप के प्राणी होते हैं। इनकी पूंछ लंबी, टाँगें छोटी और चौड़ी तथा शरीर भारी होता है। शरीर के ऊपर श्रृंगिक शल्क (horny scales) होते हैं जो समान्तर पंक्तियों में क्रम से लगे रहते हैं। ये दलदलों में या नदियों के किनारे रहते हैं।

(५) क्लास एवीज
(Class—Aves)

पक्षी समतापी होते हैं। इनकी शारीरिक रचना उड़ने (flight) के लिए विशेषरूप से उपयुक्त होती है। इस वर्ग के सभी प्राणियों का शरीर कोमल परों (feathers) से ढँका रहता है। इनकी टाँगें शल्कों से ढँकी रहती हैं। इनका हृदय चार-वेश्मी (four-chambered) होता है। इनकी अगली टाँगें पक्षों (wings) में बदल जाती हैं। न उड़नेवाली चिड़ियों में दोनों पक्ष ह्रासित (reduced) होते हैं। उड़ने की शक्ति पक्षियों के लिए बहुत ही उपयोगी होती है। इससे इन्हें आत्म-रक्षा करने में बड़ी सुविधा होती है क्योंकि वे अपने घोंसले ऐसे स्थानों में बना सकते हैं जहाँ उनके बच्चे अनेक प्रकार के शत्रुओं से सुरक्षित

रहते हैं। ये अपने भोजन तथा जल की खोज में दूर दूर तक सहज ही मे आ-जा सकते हैं। इसीलिए ये मनचाही ऋतुओवाले स्थानो मे रह सकते हैं। उत्तम भोजन-युक्त स्थानो तथा अभिजनन क्षेत्रो (breeding places) का चुनाव करने मे इन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होता।

पक्षियो के शरीर का ताप (temperature) स्तनधारियो की अपेक्षा २-१४ अश (degrees) तक अधिक होता है। इसका कारण यह है कि शरीर का अधिकाश भाग पेशियो का बना होता है और कुसवाही (non-conducting) परो से ढके होने के कारण उनके शरीर की गरमी बाहर नही निकलने पाती।

ये द्विपाद (bipeds) होते हैं। पिछली टाँगो के **पादागुल** (toes) नखयुक्त (clawed) होते है और विभिन्न प्रकार की चिडियो में ये चलने, डालो पर बैठने, फुदकने, दौडने अथवा तैरने के अनुसार बदल जाते हैं। इनका सिर छोटा तथा गोल होता है, गर्दन लम्बी होती है और शरीर सुवाही (streamlined) होता है। इनकी पूंछ छोटी होती है और पूंछ की वरटिब्री (caudal vertebrae) मिलकर एक **पाइगोस्टाइल** (pygostyle) बनाती है।
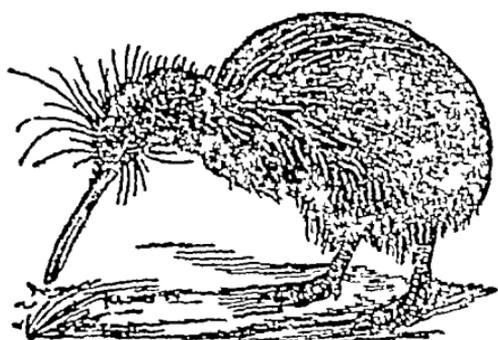
चित्र २३१—कीवी

चित्र २३२—शुतुरमुर्ग

पक्षियो में दाँत नही होते। दाँतो की कमी उनकी चोच पूरी करती है जो बहुत पैनी तथा कुछ गोलाई लिये होती है। अपनी चोच से ये वे सभी काम करते है जो स्तनधारी अपने हाथो से करते है। रेप्टाइल्स-की भाँति पक्षी भी अडज (oviparous) होते हैं।
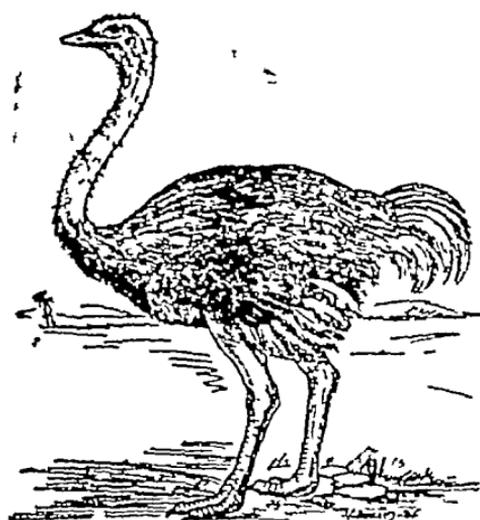
(५) क्लास मैमेलिया
(Class—Mammalia)

स्तनधारियों के सामान्य लक्षणों का उल्लेख हम कर चुके हैं। यहाँ पर हम केवल उनका वर्गीकरण लेंगे। इनको निम्न तीन सब-क्लासेस (sub-classes) में बाँटा जा सकता है —

(क) सबक्लास प्रोटोथीरिया (*Prototheria*)
(ख) सबक्लास मेटाथीरिया (*Metatheria*)
(ग) सबक्लास यूथीरिया (*Eutheria*)

(क) सबक्लास प्रोटोथीरिया (*Prototheria*)—इस सब-क्लास में सबसे नीची श्रेणी के स्तनधारी होते हैं। रेप्टाइल्स तथा पक्षियों की भाँति प्रोटोथीरिया के प्राणी भी अण्डज (oviparous) होते हैं। वास्तव में ये उस पुरातन काल के स्मारक हैं जब पृथ्वी पर रेप्टीलिया समुदाय के विकटाकार प्राणियों का एकछत्र राज्य था। इसी समुदाय के जीवों से इनका विकास हुआ है।
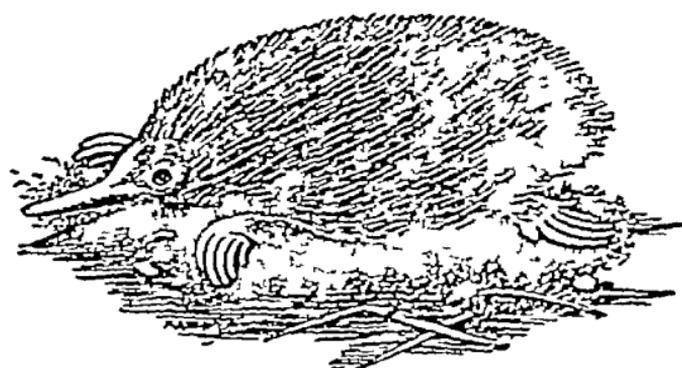
चित्र २३३—प्रोटोथीरिया इकिडना

इस सब-क्लास के प्राणी—डकबिल (duckbill) तथा इकिडना (*Echidna*) आस्ट्रेलिया तथा पास-पड़ोस के टापुओं में ही मिलते हैं। अण्डज होते हुए भी इन प्राणियों में **स्तन-ग्रन्थियाँ** (mammary glands) होती हैं किन्तु चूचुक (teats) नहीं होते।

(ख) सब-क्लास मैटाथीरिया (Metatheria)—इस समुदाय के प्राणी भी आस्ट्रेलिया के विस्तृत द्वीप तथा दक्षिणी अमेरिका में मिलते हैं। इस सब-क्लास के प्राणियों की मुख्य विशेषता यह है कि उनकी उदर-गुहा की प्रतिपृष्ठ सतह पर दो लम्बी सँकरी हड्डियाँ होती हैं जो मादाओं में खाल की एक पतली थैली या **मारसूपियम** (marsupium) को सहारा देती हैं।

ये प्राणी **जरायुज** (viviparous) होते हैं किन्तु इनके बच्चे अपरिपक्व अवस्था में पैदा होते हैं। बच्चों के उत्पन्न होते ही माँ बच्चों को मुँह में दबाकर उन्हें थैली में रख लेती है तथा उनका मुँह अपने स्तन में

लगा लेती है। इसके स्तन स्वय बच्चो के मुँह में दूध टपकाया करते हैं। लगभग ८–९ महीनो में बच्चे थैली के बाहर निकलते हैं।
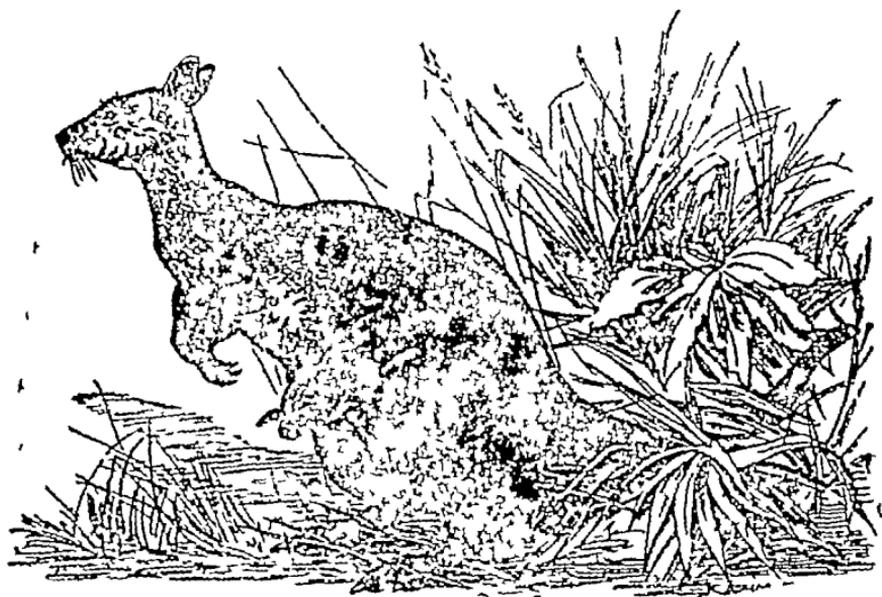
चित्र २३४—मेटाथीरिया कगारू

इस सब-क्लास का सुविख्यात प्राणी कंगारू (*Kangaroo*) है।

(ग) **सब-क्लास यूथीरिया** (Eutheria)—यह सबसे बड़ा सब-क्लास है। इसमें गर्भस्थ शिशु (foetus) का पोषण **एलैन्टोइक प्लैसेन्टा** (allantoic placenta) द्वारा होता है और बच्चे परिपक्व अवस्था में उत्पन्न होते हैं। इसके सभी प्राणियो में गुदा (anus) तथा **मूत्र-जनन छिद्र** (urinogenital aperture) अलग अलग होते हैं और मस्तिष्क में **कौरपस कैलोशम** (corpus callosum) होता है। इस सब क्लास के प्राणियो को निम्नलिखित **ऑर्डर्स** में विभाजित करते हैं —

(१) **ऑर्डर इडेन्टेटा** (Edentata)—जैसा कि नाम से स्पष्ट है इस ऑर्डर के सभी प्राणियो के जबड़ो मे **इन्साइजर्स** (incisors) नही होते हैं तथा शेष दाँत भी प्रह्रासित अवस्था में तथा बिना ऐनामेल (enamel) के होते हैं। हमारे देश में मिलने-वाले **पंगोलिन** (*Pangolin* या Indian scaly anteater) के दाँत होते ही नही।

उदाहरण—पंगोलिन (*Manis crassicaudata*), स्लौथ (sloth) आर्डिमेंलो (*Armadillo*)

चित्र २३५—इडेन्टेटा आर्मेडिलो

(२) **ऑर्डर इनसैक्टीवोरा** (Insectivora)—इसमें छोटे-छोटे प्राणी होते हैं जिनका निर्वाह कीडे-मकोडो पर होता है। इनका सिर छोटा किन्तु तुड (snout) पतला तथा लम्बा होता है। ये **पदतलचर** (plantigrade) होते हैं। इस समुदाय के कुछ प्राणियो के शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियाँ होती हैं जिसके कारण मासभक्षी प्राणी इन्हे खाना नही पसद करते।

उदाहरण—छछूंदर, मोल, हेजहॉग (*Erinaceous collaris*)

चित्र २३६—ऑर्डर इडेन्टेटा पैंगोलिन

(३) **ऑर्डर रोडेंशिया** (Rodentia)—इसमें अनेक स्पेशीज मिलती हैं। इन सभी में इन्साइजर्स (incisors) लम्बे, झुके हुए और मजबूत होते हैं। ये रुखानी के समान सदैव तेज रहते हैं और आजीवन वढते रहते हैं। शाकभक्षी होने के कारण इनमें केनाइन नही होते। अनेक प्राणी भूमि में विल वनाकर रहते है। ये वहुजनन-शील होते हैं और प्राय इनकी मादाएँ वर्ष में ३-४ वार वच्चा देती हैं। इस ऑर्डर में **चूहे, गिलहरी, साही, वीवर** इत्यादि प्राणी होते हैं।

(क) **ऑर्डर लोगोमोर्फा** (Logomorpha)—ये रोडेन्ट्स से वहुत मिलते जुलते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि इनके ऊपरी जवडे में इन्साइजर्स की दो पक्तियाँ आगे पीछे होती हैं। आगे के इन्साइजर्स पीछेवाले छोटे दाँतो को छिपाये रहते हैं। इनकी अगली टाँगो में पाँच और पिछली टाँगो में केवल चार अँगुलियाँ होती हैं।

उदाहरण—खरगोश (*Hare*), शशक (*Rabbit*)।

चित्र २३७—ऑर्डर काइरोप्टरा चमगादड

(४) **ऑर्डर काइरॉप्टरा** (Chiroptera)—इस ऑर्डर के प्राणी सबसे अनोखे होते हैं। इसी ऑर्डर के प्राणी हवा मे उड सकते है। चमगादड के शरीर के दोनो पार्श्वो की त्वचा वढकर भुजाओ और हाथो की अँगुलियो पर मढी होती है। हाथो की अँगुलियाँ बहुत लम्बी तथा छाते की तीलियो के समान होती हैं। समस्त शरीर में बाल होते है किन्तु त्वचा का वह भाग जो उडने में सहायता देता है विना वाल के होता है।

(५) **ऑर्डर कार्निवोरा** (*Carnivora*)—इसमें हिंसक और शिकारी जन्तु होते हैं।

इनका शरीर प्राय शक्तिशाली और प्रकृति भीषण, क्रूर और रक्तप्रिय होती है। इस ऑर्डर के प्राणियो मे इन्साइजर्स छोटे होते है और प्रत्येक जवडे में इनकी सख्या ६ होती है। इनके **केनाइन** लम्बे, और नुकीले होते हैं। प्रत्येक जवडे में एक ओर प्राय चार **प्रीमोलर** और तीन **मोलर** होते हैं। और इनकी टाँगो की अँगुलियो में वडे तथा नुकीले नख (claws) होते हैं।

ऑर्डर कार्निवोरा निम्नलिखित फेमिलीज में विभाजित किये जा सकते हैं —

(क) **फैमिली फेलिडी—शेर बबर** (*Felis leo*), **बाघ** (*Felis tigris*), **तेंदुआ** (*Felis pardus*), **चीता** (*leopard*) **काला तेंदुआ, बिल्ली** (*Felis domestica*), **वन-बिलाव, प्यूमा आदि।**

(ख) **केनाइडी** (*Canidae*)—विभिन्न जाति के **कुत्ते, स्यार, भेडिया, लोमडी।**

(ग) **सिवेट-वंश** (*Viverridae*)—**सिवेट, नेवला।**

(घ) **मस्टिलिडी** (*Mustilidae*)— **वीजल, जर्मिन, स्कंक, ऊदबिलाव।**

(प) **लकडवग्घा-वंश** (*Hyenidae*)—**लकड़बग्घा।**

(फ) **उर्सिडी** (*Ursidae*)—(*Ursus*) **भालू।**

(६) **ऑर्डर सटेशिया** (Cetacea)—इसमें मछली के आकार के विशालकाय जलीय स्तनधारी होते हैं जो जल व स्थल के प्राणियो में सबसे अधिक वडे होते हैं। अन्य स्तनधारियो की भाँति ये समतापी होते हैं, फेफडो से साँस लेते हैं और अपने स्तनो से दूध पिलाकर अपने वच्चो का पोषण करते हैं। इनका सिर वडा तथा आकार मछली-सा होता है। आँखें बहुत छोटी, त्वचा रोमरहित तथा चिकनी होती है। इनमें पिछली टाँगें नही होती और अगली टाँगें पतवार सरीखे पक्षतो (fins) का रूप धारण कर लेती हैं।

चित्र २३८—ऑर्डर सटेशिया ह्वेल

उदाहरण—ग्रीनलैंड ह्वेल, रारक्वाल, केचेलाट, डौलफिन (*Dolphin*) पारपोईज (*Porpoise*), सूंस (*Gangetic porpoise*), नारवाल (*Narwbal*) इत्यादि।

(७) ऑर्डर साईरीनिया (Sirenia)—इसमें शाकभक्षी (herbivorous) जलीय स्तनवारी होते हैं। ये प्राणी केवल सामुद्रिक निवार या एल्गी (algae) खाकर जीते हैं। सिटेशिया के विपरीत इनमें दांत होते हैं। इसकी अगली टांगें चपटी और नाव के डांडों के समान होती हैं किन्तु पिछली टांगें नहीं होती।

चित्र २३९—ऑर्डर अन्यूलेटा जिरैफ

उदाहरण—मनैटी (*Manatee*), ड्यूगोंग (*Dugong*)।

(८) ऑर्डर पिन्नीपीडिया (Pinnepedia)—इस ऑर्डर के प्राणियों में प्रत्येक टांग में पांच अंगुलियां होती हैं जो एक झिल्ली द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं। इस प्रकार इनकी टांग तैरने में पतवारों के समान काम करती हैं। इनकी दोनों टांगें पिछली पूंछ के साथ इस प्रकार जुड़ी

होती हैं कि वे पतवार सरीखी लगती हैं और तैरने में बडी सहायक होती है। अन्य सभी बातो में ये कार्नीवोरा (*Carnivora*) के ही समान होते हैं। अभिजनन (breeding) के लिए ये जमीन पर आते हैं। इनके शरीर पर घने बाल होते हैं।

उदाहरण—वालरस, सील (*Seals*)

(९) **ऑर्डर अग्यूलेटा** (Ungulata)—यह खुरवाले स्तनधारियो का एक विशाल समूह है। इसमें हर्विवोरस प्राणी होते हैं जिनकी अगुलास्थियाँ खुरो मे समाप्त होती हैं। इसे निम्न दो सब-ऑर्डर्स में विभाजित करते हैं —

(क) **आरटियोडैक्टाइला** (*Artiodactyla*)
(ख) **पैरीसोडैक्टाइला** (*Perissodactyla*)

(क) **आरटियोडैक्टाइला**—इनकी अगुलास्थियो की सख्या सम (even) होती है। इसमें जिरैफ (*Giraffe*), नदघोटक (*Hippopotamus*), ऊँट (*camel*), भेड़, वकरी, गाय, बैल, भैंस, सुअर, याक (*yak*), आदि होते हैं। जिरैफ १८-२० फुट ऊँचे होते हैं। वर्तमान समय के स्तनधारियो में ये सबसे ऊँचे होते हैं। सिर पर छोटे-छोटे सीग होते हैं किन्तु ये त्वचा से ढँके रहते हैं। इसके शरीर का रग मटमैला होता है जिस पर नारगी रग के धब्बे होते हैं। खतरे के समय ये लगभग ३० मील की रफ्तार से दौड सकते हैं। अफ्रीका के केवल उसी भाग में ये मिलते हैं जो कि सहारा मरुस्थल के दक्षिण में है।
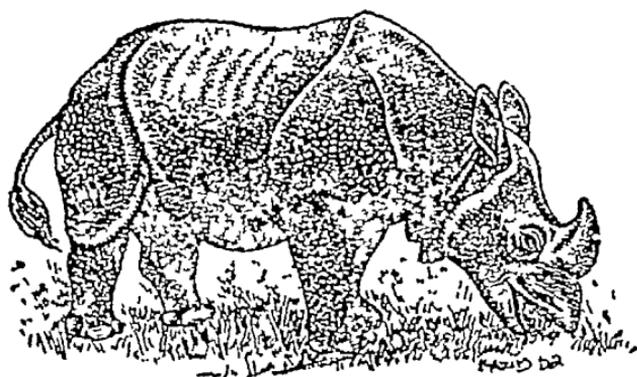
चित्र २४०—सब-ऑर्डर पैरीसोडैक्टायला भारतीय गैंडा

दरियाई घोड़ा (Hippopotamus) अर्धजलेशय (semi-aquatic) होता है। वह भी केवल अफ्रीका में पाया जाता है।

(ख) **पैरीसोडैक्टाइला**—इस सब-ऑर्डर में मिलनेवाले प्राणियो की टाँगो की अगुलास्थियो की सख्या विषम (odd) होती है। इस समुदाय में

घोड़े, गधे, जीब्रा (*Zebra*), गेंडा (*Rhinoceros*) होते हैं। भारतीय गेंडे (*Rhinoceros unicornis*) के नासा प्रदेश पर एक सींग होता है। इसकी त्वचा बहुत मोटी होती है और इसमें कई स्थानों पर झुर्रियाँ पड़ी होती हैं। ये असम के घास से ढके प्रदेश में पाये जाते हैं जहाँ ये दलदलों में लोटते हुए दिखाई देते हैं।

(१०) **ऑर्डर प्रोबोसाइडिया** (Proboscidea)—इसमें सूंडवाले **स्तनधारी** होते हैं। सूंड ही के कारण ये दीर्घकाय जीव देखने में सबसे निराले होते हैं। स्थल के प्राणियों में यह सबसे बड़े होते हैं। **उदाहरण**—हाथी।

(११) **प्राइमेट्स** (Primates)—इस ऑर्डर के प्राणी प्राणि-सृष्टि के शिरोमणि हैं। इनकी रचना सर्वोत्कृष्ट होती है और स्कैलिटन (skeleton) तथा दाँतों की संख्या एवं रचना मनुष्य से बहुत कुछ मिलती है। इन सभी में मुख और हथेली मनुष्य के समान ही बिना बाल की होती हैं और इनके हाथ-पैर के अँगूठे अँगुलियों से मिल सकते हैं। इनके हाथों की उपयोगिता बहुत कुछ इसी विशेषता पर निर्भर होती है। इस ऑर्डर में विभिन्न प्रकार के वानर (*monkeys*), लाँगूली कपि (*Himalayan langur*), हनुमान कपि (*Hanuman monkey*), बबून, गिबन, औरंग ओटान, चिम्पैन्जी, गोरिल्ला होते हैं।
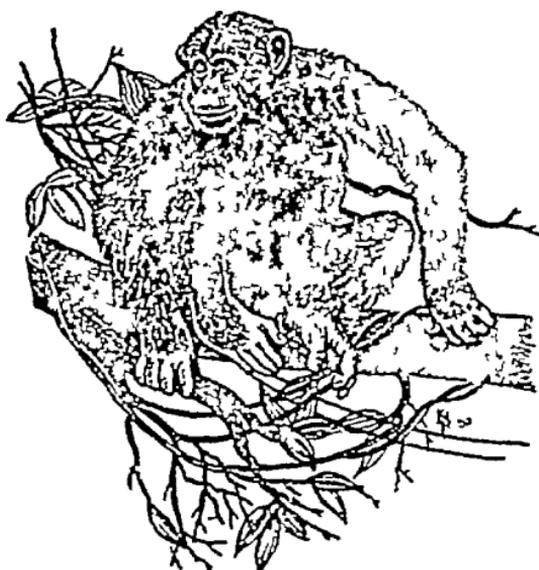
चित्र २४१—ऑर्डर प्राइमेट चिम्पैन्जी

अध्याय १८

फाइलम प्रोटोजोआ

प्रोटोजोआ के सामान्य लक्षण (Characters of Protozoa)—प्रोटोजोआ (Protozoa) ऐसेल्युलर (acellular) अणुप्राणी हैं। प्राणिजगत् में सरचना की दृष्टि से अन्य सब जातियो के जीवो की अपेक्षा ये सरलतम होते हैं। रचना में प्रोटोजोआ की तुलना किसी **मैटाजोअन** (metazoan) जन्तु की एक कोशिका से की जा सकती है। इसी एक कोशिका में जीवित प्राणियों के सभी कार्य हुआ करते हैं। इन एककोशिकीय जन्तुओं में प्राशन, पाचन, सीक्रीशन, जनन इत्यादि जीवन क्रियाओं के लिए कोई विशेषित अग नही पाये जाते। प्रोटोजोआ **स्वतन्त्र-जीवी** (free living), **परजीवी** (parasitic) या **मृतोपजीवी** (saprophytic) होते हैं। इन सभी के पर्यावरण (environment) में नमी का होना बहुत आवश्यक है।

प्रोटोजोआ अपने चलन अगो के आधार पर निम्न चार **क्लासेस** में विभाजित किये जा सकते हैं —

(१) **क्लास सारकोडिना** (*Sarcodina*)—इस क्लास के प्रोटोजोआ कूटपादो (pseudopodia) की सहायता से चलते हैं।

(२) **क्लास मास्टीगोफोरा** (*Mastigophora*)—इस क्लास के प्राणी फ्लैजिला (flagella) की सहायता से तरल माध्यम में चलते हैं।

(३) **क्लास सीलियेटा** (*Ciliata*)—इसमें सूक्ष्म डोरे के समान पतली प्रोटोप्लाज्म की रचनाएं होती हैं जिन्हे **सीलिया** (cilia) कहते हैं।

(४) **क्लास स्पोरोजोआ** (*Sporozoa*)—इनमें किसी भी प्रकार के चलनाग (locomotory organs) नहीं होते और ये सभी पैरासाइट्स होते हैं।

१—अमीबा प्रोटियस

(Amoeba proteus)

प्राकृतवास (Habitat)—**क्लास सारकोडिना** वर्ग का एक सुविख्यात जन्तु है। यह ऐसे स्थानो पर मिलता है जहां पर जल, अनुरूप ताप तथा भोजन सरलता से मिल जाते हैं। यह प्राय तालावो, नदी, वर्षाकालीन नालियो

के पेंदे पर एकत्रित कीचड में मिलता है। तालावो में लगे कमल और अन्य जलीय पौधो की जडो में भी प्राय यह चिपका रहता है। प्रयोगशाला में सरलता से इनका सवर्धन (culture) किया जा सकता है।

सरचना (Structure)

अमीवा लगभग ०२५-०६ मिलीमीटर (१/१०० इच) वडा होता है। विना माइक्रोसकोप के इसको देखना और इसकी मरचना को समझना अत्यन्त कठिन है। माइक्रोसकोप के द्वारा देखने पर यह प्रोटोप्लाज्म के एक अनियमित आकार के विन्दु के समान दिखाई पडता है। इसका रग प्राय हल्का सलेटी होता है। सक्रिय अवस्था मे इसका आकार सदैव वदला करता है। आकार में परिवर्तन का मुख्य कारण कूटपादों (pseudopodia) का वरावर वनते-विगडते रहना है।
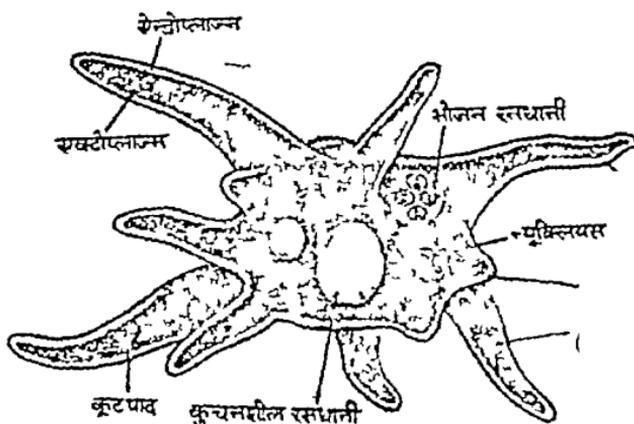
चित्र २४२—अमीवा प्रोटियस का वाह्य दृश्य (external view)

अमीवा के प्रोटोप्लाज्म में सवसे वाहर एक वहुत पतली तथा लचीली झिल्ली होती है जिसे प्लाज्मालीमा (plasmalemma) कहते हैं। इसके शरीर के प्रोटोप्लाज्म के दो भाग किये जा सकते हैं। प्लाज्मालीमा के नीचे कणहीन और स्पष्ट दीखनेवाले भाग को एक्टोप्लाज्म कहते हैं। यह वीचवाले कणात्मक और अर्धपारदश (translucent) ऐन्डोप्लाज्म को चारो ओर से घेरे रहता है। एण्डोप्लाजम का भीतरी भाग सौल अवस्था (sol state) मे और वाहरी भाग जेल अवस्था (gel state) मे होता है। माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर एण्डोप्लाज्म के इस भाग मे असख्य छोटी-छोटी कणिकाओ की चचल गति सदैव दिखाई पडती है।

एन्डोप्लाजम में अनेकानेक रसधानियाँ (vacuoles) तथा एक गोल न्यूक्लियस होता है। जीवित अवस्था में न्यूक्लियस साफ नही दिखाई पडता।

की सहायता से चलता-फिरता है। कूटपाद के निर्माण के सम्बन्ध मे अनेक मत हैं। हाल ही में मास्ट (*Mast*) ने अमीवा के चलन के सम्बन्ध
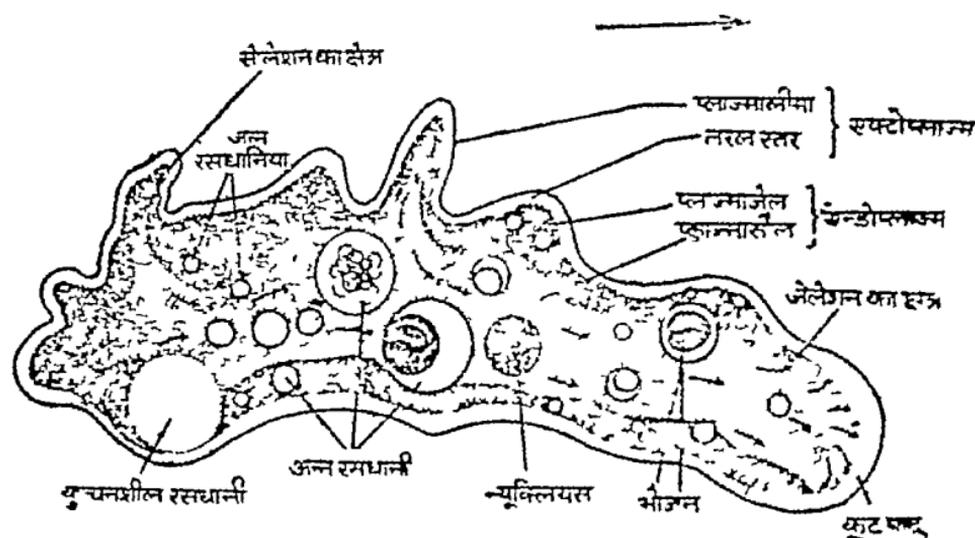
चित्र २४३—अमीबा प्रोटियस की आन्तरिक रचना

में एक विचारपूर्ण और विस्तृत वर्णन दिया है। मास्ट के मतानुसार अमीवा के शरीर को ४ भागो में बांटा जा सकता है। ये चारो भाग
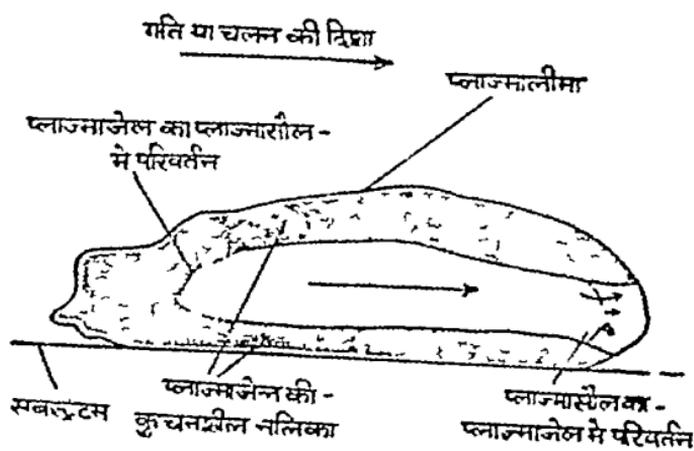
चित्र २४४—अमीवा के चलन में कूटपादो के निर्माण की विधि

निम्न प्रकार है—(१) पहला प्लाजमालीमा (plasmalemma) है जो बहुत ही पतली और लचीली झिल्ली के रूप में होता है (२) इसके नीचे स्वच्छ एक्टोप्लाज्म की एक पतली पर्त होती है। (३) तीसरा प्लाज्माजेल (plasmagel) है जो कि ऐन्डोप्लाज्म (endoplasm) के वाहरी भाग में होता है। (४) चौथा तथा अन्तिम भाग प्लाज्मासौल (plasmasol) कहलाता है। मास्ट के मतानुसार कूटपादो का वनना और उनके द्वारा अमीवा का चलना जेल (gel) के सौल (sol)

में और सौल के जेल में वदलने के फलस्वरूप होता है। सर्वप्रथम कूटपाद के वनाने के लिए किसी एक स्थान पर एन्डोप्लाज्म जेल से सौल मे वदल जाता है। अव लचीले जेल के सिकुडने से सौल प्रवाहित
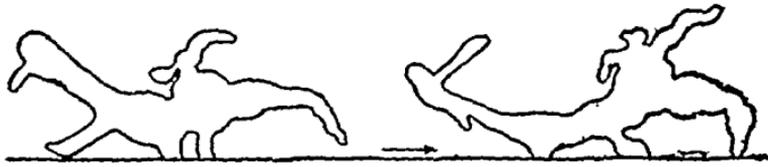
चित्र २४५—कूटपाद द्वारा अमीवा में चलन

होकर एक उभार (projection) वनाता है। इस उभार का बाहरी किनारा फिर से प्लाज्माजेल (plasmagel) में वदल जाता है और इस प्रकार प्लाज्माजेल एक नली का रूप धारण कर लेता है। इस नली के भीतर तरल प्लाज्मासौल (plasmasol) सुगमता से आगे वढ सकता है। इसी समय पिछले सिरे पर प्लाज्माजेल प्लाज्मासौल में वदलता रहता है और धीरे धीरे आगे वढने लगता है। इस प्रकार अमीवा के पूरे शरीर का प्रोटोप्लाज्म एक या एक से अविक कूटपादो में घुस जाता है जिससे अमीवा धीरे-धीरे आगे वढ जाता है।

उत्तेजनशीलता (Irritability)

अमीवा के चलने का सम्वन्ध वहुत कुछ पर्यावरण (environment) में होने वाले परिवर्तन से होता है। वनते समय यदि कूटपाद वालू आदि के सम्पर्क में आता है तो अमीवा उस कूटपाद को तुरन्त नष्ट करके दूसरा कूटपाद या सूडोपोडिया किसी दूसरी दिशा में वनाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अमीवा के प्रोटोप्लाज्म मे पर्याप्त उत्तेजनशीलता (sensitivity) होती है। प्रोटोप्लाज्म में सवाहन (conductivity) की भी शक्ति होती है। अमीबा का कोई भी भाग उद्दीपन (stimulus) ग्रहण कर सकता है किन्तु उसके प्रभाव के फलस्वरूप सपूर्ण शरीर में क्रिया हो सकती है।

पर्यावरण में किसी प्रकार का परिवर्तन अमीवा के लिए उद्दीपन का कार्य करता है। प्रकाश, गर्मी (heat), अम्ल (acid), क्षार (alkali), विद्युत् (electricity), गुरुत्व (gravity), जल-प्रवाह और स्पर्श, ये सभी उद्दीपन का कार्य करते हैं। प्रतिचेष्टा (response) दो प्रकार की हो सकती है। उद्दीपन के सपर्क में आने पर जव कभी अमीवा उससे दूर भागने या समीप आने का प्रयत्न करता है तो ऐसी प्रतिचेष्टा को टैक्सिस (taxis) कहते हैं किन्तु जव वह केवल अपने कूटपादो को

खीचकर अपने शरीर की सतह का कम से कम क्षेत्रफल उद्दीपन के सपर्क में आने देता है तो ऐसी प्रतिचेष्टा को ट्रोपिज्म (tropism) कहते हैं। जब अमीबा उद्दीपन से दूर भागता है तो उसे निगेटिव प्रतिचेष्टा (negative response) और जब वह उसकी ओर खिच जाता है तब उसे पोज़िटिव प्रतिचेष्टा (positive response) कहते हैं। बहुधा विभिन्न उद्दीपनो की उपस्थिति में निगेटिव प्रतिचेष्टा ही होती है।

भोजन तथा प्राशन (Food and Feeding)

तालाब के पेंदे मे जहाँ पर अमीबा रहता है भोजन की कमी नही रहती। यहाँ यह सदैव छोटे-छोटे पौध तथा जन्तुओ को खाता है। जल में काई (*Agae*) के छोटे-छोटे टुकडे, जीवाणु (*bacteria*) तथा अनेक प्रकार के प्रोटोजोआ (*Protozoa*) मिलते हैं। अमीबा में भोजन का चुनाव करने की क्षमता होती है। अगर ऐसा न होता तो बालू तथा अन्य दुष्पाच्य (indigestible) पदार्थों से, जिनकी इसके प्राकृतवास में कमी नही होती, इसका शरीर शीघ्र ही भर जाता।

यद्यपि अमीबा के मुख (mouth) नही होता फिर भी यह अपने शरीर की सतह के किसी भाग से अन्तर्ग्रहण (ingestion) कर सकता है।

चित्र २४६—अमीबा द्वारा भोजन के अन्तर्ग्रहण की विधि

भोजन के समीप आने पर अमीबा का वह भाग जो भोजन के ठीक पीछे होता है, आगे की ओर खिसकना बन्द कर देता है किन्तु इधर-उधर और ऊपर-नीचे कूटपाद (pseudopodia) बनने लगते हैं। धीरे धीरे इन कूटपादो के मिलने से एक छिछला प्याला (food cup) सा बन जाता है। अन्त में कूटपाद आहार के चारो ओर कुछ इस प्रकार से मुडते हैं कि जिससे उनके सिरे अन्त में मिल जाते हैं। इस प्रकार भोजन जल के साथ रस-धानी (food vacuole) में पहुँच जाता है। भोजन के अन्तर्ग्रहण में

१ या २ मिनट लगते है। यदि अमीबा तेजी से अन्तर्ग्रहण (ingestion) करता है तो एक साथ कई एक जठर-धानियाँ (gastric vacuoles) बन जाती हैं।

भोजन के जठर-धानी में पहुँचने के बाद चारो ओर का एंन्डोप्लाज्म (endoplasm) पाचक रस (digestive juice) बनाकर उसमे डालता है। इसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) और कुछ एन्जाइम्स (enzymes) होते हैं। इनमें से एक जठर रस में मिलनेवाले पेंप्सिन से किसी प्रकार भिन्न नही होता। इसके अतिरिक्त और भी एन्जाइम होते हैं। सर्वप्रथम अम्लीय माध्यम मे पाचन होता है। जब माध्यम क्षारीय (alkaline) हो जाता है तब ट्रिपसिन (trypsin) मिलता है। इस प्रकार प्रोटीन, शक्कर (sugar) और चर्बी का पाचन होता है। कुछ लोगो का विश्वास है कि अमीबा मे माडी का पाचन नही हो सकता। तुम पढ चुके हो कि मेढक में इन्टरसेल्युलर पाचन (intercellular digestion) होता है, किन्तु अमीबा के समान अणुप्राणी मे पाचन की क्रिया सेल के भीतर होती है इस प्रकार के पाचन को अन्त कोशिकी या इन्ट्रासेल्युलर (intracellular digestion) कहते है।

प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट और लवण ये सभी घोल के रूप मे सोखे जाकर अन्त में प्रोटोप्लाज्म मे पहुँचते है। अमीबा में परिवहन तत्र की आवश्यकता नही पडती क्योकि पचा हुआ भोजन केवल विसरण (diffusion) द्वारा ही कोशिका के सभी भागो मे पहुँच जाता है। जठर-धानियाँ
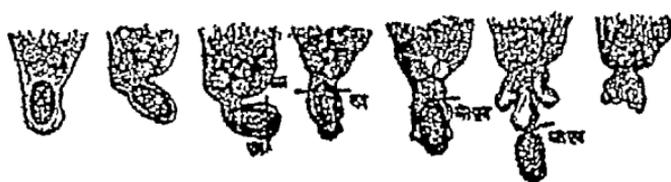
चित्र २४७—अमीबा में अपच पदार्थ के बाहर निकलने की अवस्थायें

एन्डोप्लाज्म में चक्कर लगाया करती हैं और इस प्रकार अमीबा के सभी भागो को भोजन मिलने में सुविधा होती है।

अमीबा मे कोई ऐसी विशेष अग-रचना नही मिलती जिसके द्वारा अपच पदार्थ बाहर निकाला जा सके। ऐसे पदार्थ किसी भी स्थान से बाहर निकल सकते हैं। अपच पदार्थ का निष्कासन प्राय जठर धानी के समीप स्थित एक्टोप्लाज्म (ectoplasm) द्वारा होता है। न पच सकनेवाले पदार्थ भारी होते हैं और जैसे-जैसे अमीबा आगे बढता है वैसे वैसे ये पीछे खिसकते जाते हैं और अन्त में बाहर निकल जाते हैं।

श्वसन (Respiration)

ऑक्सीजन (O_2) पानी में घुलनशील होती है। अमीवा इसी घुली हुई ऑक्सीजन को अपने शरीर की सतह द्वारा सोख लेता है। प्रोटो-प्लाजम में पहुँचकर ऑक्सीजन कार्बोनिक पदार्थो (carbonic compounds) का ऑक्सीडेशन (oxidation) करती है जिसके फलस्वरूप काई-नेटिक ऊर्जा (kinetic energy) और ऊष्मा (heat) दोनो उत्पन्न होती हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप एनर्जी के अलावा जल, यूरिया (urea) तथा कार्बन-डाई-आक्साइड (CO_2) इत्यादि वर्ज्य पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं।

उत्सर्जन या एक्सक्रीशन (Excretion)

अमीवा में अपचय या कैटाबोलिज्म के फलस्वरूप जल, यूरिया, कार्बन, डाईआक्साइड आदि वर्ज्य पदार्थ (waste matter) पैदा होते है। इनका बाहर निकल जाना बहुत आवश्यक है क्योकि सभी जीवो में इनके एकत्र होने पर हानि पहुँचने की सभावना होती है। घुलनशील वर्ज्य पदार्थों का लगभग ९९·९% भाग विसरण (diffusion) द्वारा अमीवा की प्लाज्मा-लीमा से बाहर निकल जाता है।

औस्मो-रेग्युलेशन (Osmo-regulation)

प्रत्येक कुचनशील धानी (contactile vacuole) एक स्वच्छ बुल-बुले के रूप में दिखाई पडती है। प्रत्येक धानी में एक तरल द्रव्य, भरा रहता है जिसका घनत्व (density) चारो ओर के प्रोटोप्लाजम की अपेक्षा कम होता है। इसे कुचनशील धानी इसीलिए कहते हैं क्योंकि कुछ समय बाद इसका कुचन होता है जिसके परिणामस्वरूप इसमें एकत्र तरल पदार्थ बाहर निकल जाता है।

बहुत समय तक कुचनशील धानी को अधिकाश लोग एक्सक्रीटरी अग (excretory organ) समझते थे किन्तु अब यह निश्चत हो गया है कि यह केवल औस्मो-रेग्युलेशन (osmo-regulation) में ही सहायता देती है अर्थात् यह प्रोटोप्लाज्म में जल की मात्रा का नियन्त्रण (control) करती है। यह प्रश्न उठता है कि अमीवा अपनी आवश्यकता से अधिक जल क्यों सोख लेता है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। अमीवा प्रोटियस अलवण जल (fresh water) में मिलता है जिसमें लवण की मात्रा अमीवा के प्रोटोप्लाज्म में उपस्थित लवण की मात्रा से कम होती है। इसलिए तालाब का पानी औस्मोसिस (osmosis) द्वारा भीतर

पहुँचता रहता है और इसका आवश्यकता से अधिक भाग कुचनशील पानी में इकट्ठा होता रहता है जिससे वह वढती जाती है। जब वह एक निश्चित परिमाण (size) की हो जाती है तो उसके चारो ओर का ऐन्डोप्लाज्म (endoplasm) एकाएक कुचित होने लगता है जिसके फलस्वरूप कुचनशील धानी में एकत्र जल वाहर निकल जाता है। थोडी ही देर में दूसरी वनने लगती है। यह सभव है कि कुचनशील पानी से वाहर निकाले गये जल मे थोडा यूरिया तथा कार्बन-डाईआक्साइड (CO_2) भी मिले किन्तु इससे धानी के कार्य के सम्वन्ध मे भ्रम नही होना चाहिए। कुचनशील धानी यदि समय समय पर अनावश्यक जल को वाहर निकालने में सहायता न करती तो अमीवा फट जाता। इसलिए **प्रोटोप्लाज्म में जल की मात्रा का नियन्त्रण करना ही इसका मुख्य काम है।**

जनन
(Reproduction)

अमीबा में जनन केवल द्विविभजन या वाइनेरी फिशन (binary fission) द्वारा होता है।
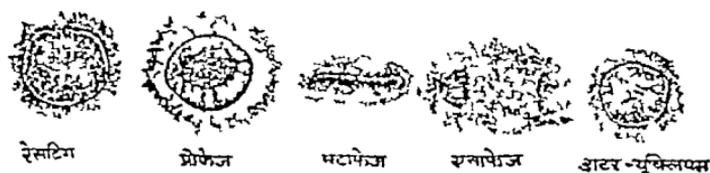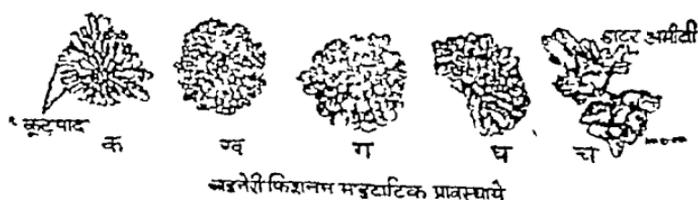
चित्र २४८—अमीवा मे द्विविभजन या वाइनेरी फिशन की प्रावस्थाएँ

ऊपरी, वाह्य दृश्य, नीचे, न्यूक्लियस का विभाजन।

अनुकूल पर्यावरण मे अमीवा जव पूरी तौर पर बढ़ जाता है तो द्विविभजन (binary fission) द्वारा दो अमीवो में वँट जाता है। द्विविभजन एक प्रकार का अलैंगिक जनन (asexual reproduction) है।

द्विविभजन के पूर्व अमीवा गोल हो जाता है और अनेक छोटे-छोटे कूटपादो से ढँक जाता है। कुछ लोगो का अनुमान था कि न्यूक्लियस एमाइटोसिस

(*Amitosis*) द्वारा दो भागों में बँट जाता है। परन्तु अब निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि न्यूक्लियस सदैव माइटोसिस (mitosis) द्वारा विभाजित होता है। न्यूक्लियस के विभाजन के साथ साइटोप्लाज्म का भी विभाजन होता है। कोशिकारस के विभाजन के लिए कोशिका (cell body) के मध्यभाग का आकोचन (constriction) होता है जिसके फलस्वरूप एक नाली (groove) बन जाती है। यह धीरे-धीरे गहरी होती जाती है और इसी समय अमीबा द्वि-मुंडाकार (dumbbell shaped) दीखता है। अन्त में दोनों मुंडों के बीच का सबंध (bridge) टूट जाता है और दो डाटर अमीबा बन जाते हैं। ये धीरे-धीरे बढ़ते हैं और पूरी तौर पर बढ़ जाने पर ये स्वयं द्वि-विभाजन करते हैं। यदि वातावरण अनुकूल होता है तो कुछ ही दिनों में हजारों अमीबा उत्पन्न हो जाते हैं।

इनसिस्टमेंट या परिकोष्ठन (Encystment)—प्रतिकूल-वातावरण का सामना करने के लिए एक सुन्दर साधन मिलता है। कड़ी गर्मी पड़ने के पूर्व अमीबा अपने कूटपादों को सिकोड़कर गोल हो जाता है। **अन्न-धानियाँ और कुंचनशील** धानी गायब हो जाती है। साइटोप्लाज्म अपेक्षाकृत तरल और अपारदर्शी (opaque) हो जाता है। इस समय अमीबा अपने चारों ओर एक सुदृढ़ तथा रोधी (resistant) **फाइटिनस सिस्ट** (chitinous cyst) बनाता है। इस **परिकोष्ठित दशा** (encysted condition) में अमीबा निष्क्रिय हो जाता है और तालाब की तह में इकट्ठी कीचड़ में पड़ा रहता है। कीचड़ के सूख जाने पर हवा परिकोष्ठित अमीबा (*Amoeba*) को धूल के कणों की भाँति उड़ा ले जाती है। इनमें से जो सिस्ट (cyst) अनुकूल पर्यावरण में दूसरे तालाबों में पहुँच जाते हैं उनमें से अमीबा निकल कर सक्रिय जीवन विताने लगते हैं। **अमीबा के समान निस्सहाय प्राणी में परिकोष्ठन न केवल रक्षा का ही साधन है वरन् उनके विकिरण में भी पर्याप्त सहायता देता है।**

अमीबा का अमरत्व (Immortality of Amoeba)

अमीबा के समान सरलतम एसेल्युलर जीवों में स्वाभाविक मृत्यु (natural death) नहीं होती। इसका कारण यह है कि इस जीव में टूट-फूट (wear and tear) द्वारा उत्पन्न होनेवाले वर्ज्य पदार्थ इकट्ठे नहीं होने पाते। एसेल्युलर होने के कारण अमीबा विदेह "without body" होता है। अत अमीबा में जो कुछ टूट-फूट होती रहती है उसकी पूर्ति भी साथ ही साथ होती जाती है। इसके विपरीत मल्टीसेल्युलर (multicellular) जन्तुओं में टूट-फूट की पूर्ति कभी भी पूरी तौर पर नहीं होने पाती जिसके परिणाम-

स्वरूप वर्ज्य पदार्थ धीरे-धीरे इकट्ठे होते रहते है और अन्त मे एक समय ऐसा आता है जब उसकी मृत्यु हो जाती है। अत यह सत्य है कि शरीर की देन का मूल्य प्राणियो को मृत्यु के रूप में चुकाना पडता है। इसके अतिरिक्त अमीबा के समान प्रोटोजोआ में जनन की विधि भी सरलतम होती है। द्वि-विभजन के फलस्वरूप एक अमीबा दो डाटर-अमीबी (daughter amoebae) मे विभाजित हो जाता है। डाटर-अमीबी के बनते ही जनक (parent) अमीबा का जीवन समाप्त हो जाता है। उसका प्रोटोप्लाज्म नष्ट नही होता, वरन् डाटर अमीबी में पहुँच जाता है। इस प्रकार इन सरलतम अणु-जीवो में, यदि किसी दैवी घटना से मृत्यु न हो, तो स्वाभाविक मृत्यु का कोई स्थान नही होता।

२—मलेरिया परजीवी

(Malaria parasite)

प्राचीन काल में लोगो का अनुमान था कि मलेरिया दलदल से निकलने वाली विषैली गैसो से होता है। **मलेरिया** इटैलियन (Italian) शब्द है जिसका अर्थ (*mala*=वायु, *aria*=दूषित) दूषित वायु है। ऐसा भी विचार था कि रात्रि की हवा दिन की हवा की अपेक्षा अधिक घातक होती है। सामान्यरूप से लोग मलेरिया को **"जूडी-बुखार"** ही कहते है। इसके बाद जब व्याधिजनक जीवो (pathogenic organisms) का पता चला तो, लोगो ने हवा में उडनेवाले तथा पानी मे पाये जानेवाले इन जीवो से मलेरिया का सम्बन्ध जोडा।

मलेरिया परजीवी के आविष्कार का सक्षिप्त इतिहास

मलेरिया परजीवी (Malaria parasite) या **प्लाज्मोडियम** (Plasmodium) का पता सर्वप्रथम १८८० में फ्रासीसी सेना के एक डाक्टर-**चार्ल्स लैविरन** (*Charles Laveran*) ने लगाया था।

लैविरन की खोज को **गॉल्जी** (Golgi) तथा **सेल्ली** (Celli) ने और भी पक्का कर दिया। सदेह तो बहुत पहले से ही था कि मच्छरो से इसका सम्बन्ध अवश्य है, क्योकि मच्छर और रोग दोनो ही साथ-साथ एक ही प्रदेश और एक ही ऋतु में मिलते हैं। **पैट्रिक मानसन्** (*Patric Manson*) ने यह सुझाव सामने रखा कि मच्छरो के काटने के बाद मलेरिया परजीवी मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं।

रौस ने १८९५ में इस समस्या को अपने हाथ में लिया। लगभग दो वर्ष निरन्तर परिश्रम करने के बाद २९ अगस्त १८९७ को **एनौफिलीज** के ऊतको मे मलेरिया परजीवी (*Malaria parasite*) के ऊसाइट्स

(oocytes) उन्हे मिले जिससे यह सिद्ध हो गया कि मच्छर ही मलेरिया फैलाते हैं।

आधुनिक खोज—१९४८ के पूर्व लोगों का विश्वास था कि एनोफिलीज के काटने पर जैसे ही स्पोरोजोआइट्स (sporozoites) मनुष्य के रुधिर-प्रवाह में पहुँचते हैं वे तुरन्त रुधिर कणिकाओं में घुस जाते हैं और इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी (erythrocytic schizogony) प्रारम्भ करते हैं। आधुनिक खोज के अनुसार यह गलत है।

मलेरिया परजीवी का जीवन-चक्र

आधुनिक खोज के अनुसार मलेरिया परजीवी, प्लाज्मोडियम के जीवन-चक्र में निम्नलिखित चार अवस्थाएँ (stages) मिलती हैं।

(१) प्री-इरीथ्रोसाइटिक चक्र (pre-erythrocytic cycle)
(२) एक्सो-इरीथ्रोसाइटिक चक्र (exo-erythrocytic cycle)
(३) इरीथ्रोसाइटिक चक्र (erythrocytic cycle)
(४) लैंगिक चक्र (sexual cycle)

(१) प्री-इरीथ्रोसाइटिक चक्र

मादा एनोफिलिस के काटने पर उसके सैलाइवा के साथ असंख्य स्पोरोजोआइट्स (sporozoites) रुधिर-प्रवाह में पहुँच जाते हैं। प्रत्येक स्पोरोजोआइट बहुत ही छोटा, पतला तथा हँसिया के आकार का होता है। उसकी लम्बाई १४ म्यू (μ) और चौडाई लगभग एक म्यू होती है। स्पोरोजोआइट का वाह्य त्वक (cuticle) दृढ तथा लचीला (elastic) होता है और इस प्रकार यह अपना एक निश्चित आकार बनाये रखने में समर्थ होता है।

पहले लोगों का विश्वास था कि स्पोरोजोआइट्स (sporozoites) मनुष्य के रुधिर प्रवाह में पहुँचते ही लाल-रुधिर कणिकाओं (red blood corpuscles) में प्रवेश करते हैं और इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी (erythrocytic schizogony) आरम्भ करते हैं। आधुनिक खोज के अनुसार ऐसा नहीं होता। एनोफिलिस के काटने के लगभग आध घंटे बाद ये रुधिर-प्रवाह से पूरी तौर पर गायब हो जाते हैं। सभी स्पोरोजोआइट (sporozoite) यकृत में पहुँचते ही याकृत-कोशिकाओं में घुसकर बडी तेजी से बढते हैं और साइजोन्ट (schizont) का निर्माण करते हैं। इसके विभाजन के फलस्वरूप लगभग १००० क्रिप्टोमीरोजोआइट्स (cryptomerozoites) की उत्पत्ति होती है। साइजोन्ट के फट जाने

पर ये याकृत-केशिकाओ (sinusoids) मे पहुँच जाते हैं तथा साइजोन्ट के अवशेष को फैगोसाइट्स (phagocytes) नष्ट कर देते हैं। इस अलैंगिक-चक्र को **प्रीइरीथ्रोसाइटिक साइकिल** (pre-erythrocytic cycle) कहते है।

(२) एक्सो-इरीथ्रो साइटिक चक्र

इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले **क्रिप्टोमीरोजोआइट** में से कुछ तो लाल- रुधिर कणिकाओ में प्रवेश करते हैं जिससे **इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी** (erythrocytic schizogony) का प्रारभ होता है तथा ज्वर का आक्रमण होता है। शेष **क्रिप्टोमीरोजोआइट** (cryptomerozoite) यकृत की अन्य कोशिकाओ मे घुसकर उनके भीतर **एक्सो-इरीथ्रोसाइटिक चक्र** (exo-erythrocytic) चलाते हैं। इस चक्र में क्रिप्टोमीरोजोआइट याकृत-कोशिकाओ (liver cell) के भीतर धीरे-धीरे बढता है और अन्त में अनेक **मेटाक्रिप्टोमीरोजोआइट** (Metacryptomerozoite) उत्पन्न करता है जो मलेरिया रोग के अच्छे हो जाने पर फिर से इस रोग को दोहराने (relapse) में सहायता देते हैं।

(३) इरीथ्रोसाइटिक चक्र (Erythrocytic Cycle)

यकृत में प्री-इरीथ्रोसाइटिक चक्र में लगभग १० दिन का समय लगता है। इसीलिए मलेरिया-परजीवियो के मनुष्य के रुधिर में पहुँचने के लगभग १० दिनो बाद ही हमें उस मनुष्य में मलेरिया या जूडी-बुखार के लक्षण दिखाई देते है। क्रिप्टोमीरोजोआइट (cryptomerozoite) याकृत-केशिकाओ में होते हुए शरीर मे रुधिर वाहिनियो में पहुँच जाते हैं और वहाँ लाल-रुधिर कणिकाओ (erythrocytes) मे घुस जाते हैं। इनमें प्रवेश करने के बाद उनका आकार गोल हो जाता है और अब उनकी वृद्धि आरम्भ होती है। अपना आहार ये अपने शरीर की सतह (body surface) द्वारा ही ग्रहण करते हैं। आरम्भ में इनमें एक अकुचनशील-धानी (non-contractile vacuole) बन जाती है जिसके फलस्वरूप ये **नगदार अँगूठी** की भाँति दिखाई देने लगते हैं। इसीलिए इस अवस्था को **मुद्रिकावस्था** (signet ring stage) कहते हैं। कुछ और बढने पर धानी (vacuole) गायब हो जाती है और कूटपाद (pseudopodia) बनने लगते हैं जिससे इसे अब **अमीबॉयड अवस्था** (amoeboid stage) कहते हैं। अमीबॉयड अवस्था में यह अपने कूटपादो की सहायता से हीमोग्लोबिन खाता है और **हीमोजोइन** (haemozoin) **नाम** के भूरे या काले रग के वर्ज्य पदार्थ के कण बनाता है जो अब मलेरिया परजीवी के साइटोप्लाज्म में

स्पष्टरूप से दिखाई पडते हैं। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के वाद ट्रोफोजोआइट (trophozoite) गोल हो जाता है और लाल-रुधिर कणिका भर में फैल जाता है। अलैंगिक जनन के लिए पूर्णरूप से तैयार इस अवस्था को **साइजोन्ट** (schizont) कहते हैं।

साइजोन्ट (schizont) में न्यूक्लियस के कई वार विभाजित होने के फलस्वरूप ६-२४ न्यूक्लियाई (nuclei) वन जाते हैं। हीमोजोइन कणिकाएँ साइजोन्ट के वीचोवीच मे इकट्ठी हो जाती हैं। साइटोप्लाजम की कुछ मात्रा सभी न्यूक्लियाई के चारों ओर इकट्ठा हो जाती है। इस प्रकार **इरीथ्रोसाइटिक मीरोजोआइट्स** (erythrocytic-merozoites) वन जाते हैं। लाल-रुधिर कणिका की दीवार अव फट जाती है जिससे ये मीरोजोआइट्स रुधिर में फैल जाते हैं।

इसके वाद मीरोजोआइट्स नई-नई लाल रुधिर कणिकाओं में घुसकर **इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी** वार-वार दोहराते हैं जिससे लाखों की संख्या में लाल-रुधिर कणिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और मनुष्य के रुधिर में उपस्थित परजीवियों (parasites) की संख्या का तो अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। जिस समय मादा एनोफिलिस अपनी लार के साथ मनुष्य के शरीर में मलेरिया परजीवियों को डालती है उसी समय से ज्वर नहीं आने लगता। ८–१० दिन वाद ज्वर आता है। इनके मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने तथा ज्वर आने की वीच की अवधि को जिसमें **इरीथ्रोसाइटिक साइकिल** होती है, **सम्प्राप्ति काल** (incubation period) कहते हैं। इसके वाद इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी शुरू होती है। प्रत्येक साइजोगोनी के अन्त में जव मीरोजोआइट्स लाल रुधिर कणिकाओं के वाहर निकलते हैं और **हीमोजोइन** (haemozoin) नाम का विषैला पदार्थ खून में मिलता है तभी वुखार आता है। मलेरिया परजीवी की विभिन्न स्पेशीज में इरीथ्रोसाइटिक साइजोगोनी में २४ से लेकर ७२ घंटे लगते हैं। इसी अवधि के आधार पर मलेरिया ज्वर को **अतरा** या **टरशियन** (tertian), **चौथिया** या **क्वार्टन** (quartan) तथा **मिश्रित** कहते हैं।

(४) लैंगिक चक्र (Sexual Cycle)

जव मनुष्य के रुधिर में मलेरिया परजीवियों की संख्या वहुत वढ जाती है तो इनके सामने केवल दो ही रास्ते रह जाते हैं। इनकी संख्या के अधिक होने के फलस्वरूप इतनी अधिक लाल रुधिर कणिकाओं का संहार

हो जाता है कि पोषक (host) का जीवन खतरे मे हो सकता है। इसके अतिरिक्त पोषक की प्राकृतिक **रोगक्षमता** (natural resistance) इतनी प्रवल हो सकती है कि मलेरिया परजीवियो का सहार आरम्भ हो जाय। इन दोनो दशाओ में इन परजीवियो के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे किसी दूसरे **पोषक** या **होस्ट** (host) की खोज करें। ऐसी परिस्थिति मे मीरोजोआइट्स लाल रुधिर कणिकाओ में प्रवेश करके **गैमीटोसाइट** या **जन्यु-माता** (gametocyte) बनाते हैं। इनमें लैंगिक भेद होता है —

(१) **मैक्रोगैमीटोसाइट्स** (macrogametocytes)—**माइक्रोगमी-टोसाइट्स** की अपेक्षा ये वडे होते हैं किन्तु इनका न्यूक्लियस **माइक्रोगमीटो-साइट्स** की अपेक्षा अधिक ठोस होता है। इनके साइटोप्लाज्म मे भोजन की मात्रा अधिक होती है। इसीलिए रँगने के वाद इनका रग अधिक गहरा पड जाता है।

(२) **माइक्रोगैमीटोसाइट्स** (microgametocytes)—ये अपेक्षा-कृत छोटे होते हैं किन्तु इनका न्यूक्लियस माइक्रोगैमीटोसाइट्स की अपेक्षा वडा होता है और वीचोवीच में स्थित होता है। साइटोप्लाज्म का रग भी गहरा नहीं होता।

गैमीटोसाइट्स का इससे अधिक परिवर्धन मानव-शरीर में नही होता। इस समय यदि मादा एनोफिलीज मलेरिया से पीडित मनुष्य का रक्त चूसती है तो उसके पेट में रक्त के साथ-साथ दोनो प्रकार के गैमीटोसाइट्स और मीरो-जोआइट्स पहुँच जाते हैं किन्तु गैमीटोसाइट्स के अलावा अन्य सभी का पाचन हो जाता है। गैमीटोसाइट्स अव लाल-रुधिर कणिकाओ के बाहर निकल जाते है।

माइक्रोगैमीटोसाइट्स (microgametocytes) सक्रिय हो जाते हैं और फिर उनके न्यूक्लियस के विभाजन से प्राय ६ छोटे किन्तु लम्बे न्यू-क्लियाई बन जाते हैं। प्रत्येक न्यूक्लियस माइक्रोगैमीटोसाइट की दीवार के समीप आ जाता है। इसके बाद प्रत्येक न्यूक्लियस के निकट साइटोप्लाज्म एक फ्लैजिलम (flagellum) के आकार का उभार वनाता है जिसमें यह न्यूक्लियस खिसक जाता है। इस प्रकार फ्लैजिलम के आकार के छ **मेल गैमीट** या **माइक्रोगैमीट्स** बन जाते हैं।

मैक्रोगमीटोसाइट में वहुत कम परिवर्त्तन होता है। इसका न्यूक्लियस दो भागो मे वँट जाता है जिसमे से एक भाग साइटोप्लाज्म के वाहर निकल जाता है। इस प्रकार आधे न्यूक्लियस के बाहर निकल जाने के वाद यह **फीमेल गैमीट** (female gamete) या **मैक्रोगैमीट** का रूप ग्रहण कर लेता है।

ससेचन (Fertilization)—मेल गैमीट चल (motile) होते हैं। इनमें से एक फीमेल गैमीट से चिपक जाता है और फिर उसमें घुस जाता है जिससे एक **जाइगोट** (zygote) वन जाता है। कुछ समय तक तो जाइगोट निष्क्रिय रहता है किन्तु शीघ्र ही उसमें एक स्वच्छ कूटपाद (pseudo-podium) दिखाई देने लगता है। कूटपाद धीरे-धीरे वढकर जाइगोट को **कृमवत्** (worm-like) बना देता है। यही कारण है कि इस अवस्था में जाइगोट (zygote) को **वर्मिक्यूल** (vermicule) या **ओकिनीट** (*ookinete*) कहते हैं। यह आमाशय की भीतरी सतह पर रेंगता है और अन्त में किसी उपयुक्त स्थान में छेद करके म्यूकोसा (mucosa) तथा अन्य ऊतको के बीच पहुँच जाता है। यहाँ पर यह गोल हो जाता है और फिर अपने चारो ओर एक कोष्ठ-भित्ति (cyst wall) बना लेता है। इस अवस्था में इसे **स्पोरोन्ट** (sporont) या ऊसिस्ट कहते हैं।
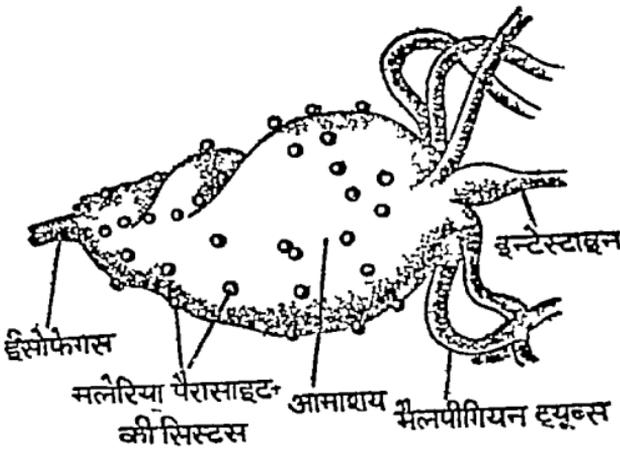
चित्र २५०—आमाशय की भित्ति पर मलेरिया परजीवी की ऊसिस्ट्स

स्पोरोगोनी (Sporogony)—ऊसिस्ट आमाशय में एकत्रित रुधिर को सोखकर धीरे-धीरे वढती है। इस वृद्धि के फलस्वरूप आमाशय की बाहरी दीवार पर ये सिस्ट फफोलो के सदृश फूली हुई दिखाई देती हैं। किसी-किसी मादा एनोफिलीज के आमाशय पर लगभग ५००० ऐसे सिस्ट दिखाई देते हैं। ६-७ दिनो में प्रत्येक सिस्ट के न्यूक्लियस का वारम्वार विभाजन होता है जिससे अनेक न्यूक्लियाई वन जाते हैं। प्रत्येक न्यूक्लियस के चारो ओर साइटोप्लाज्म इकट्ठा हो जाता है और इस प्रकार प्रत्येक सिस्ट के अन्दर अनेक यूनीन्यूक्लियेट **स्पोरोब्लास्ट** (sporoblasts) वन जाते हैं। प्रत्येक स्पोरोब्लास्ट की सतह से अनेक छोटे-छोटे तकुए के आकार के प्रोटोप्लाज्मिक उभार निकलते हैं। न्यूक्लियस का वारम्वार विभाजन होता

है और इनमें से एक-एक न्यूक्लियस प्रत्येक उभार में चला जाता है। इस प्रकार प्रत्येक ऊसिस्ट के अन्दर अनेक तकुए के आकार के **स्पोरोजोआइट्स** (sporozoites) वन जाते हैं। अव प्रत्येक ऊसिस्ट की दीवार फट जाती है जिमसे स्पोरोजोआइट्स मच्छर के हीमोसील (haemocoel) में मुक्त हो जाते हैं। यहाँ से ये सैलाइवरी ग्रन्थि (salivary gland) में पहुँच जाते हैं। **स्पोरोगोनी** (sporogony) में लगभग १२ दिन लगते हैं।

इस समय मादा एनौफिलीज में मलेरिया फैलाने की क्षमता आ जाती है मनुष्य का रक्त चूसते समय जव वह अपनी लार प्रोवौसिस (proboscis) द्वारा रुविर में पहुँचाती है तो स्पोरोजोआइट्स (sporozoites) मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र में फिर उसी स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ से उनका श्रीगणेश हुआ था।

मलेरिया परजीवी दो **पोषकों** में रहता है—मनुष्य और मादा एनौफिलीज। अपने जीवन-चक्र का थोडा-थोडा भाग यह दोनो ही में पूरा करता है। अपनी वश-परम्परा को वनाये रखने के लिए इसे दो होस्टस (hosts) का सहारा लेना पडता है। मादा-मच्छर और मनुष्य के बीच इस प्रकार का साथ, इसके जीवन-चक्र को पूरा करने में सहायता देता है। मादा एनौफिलीज एक मनुष्य से दूसरे में मलेरिया परजीवी पहुँचाती है और इस प्रकार मलेरिया आसानी से फैल जाता है। मनुष्य **प्राइमरी होस्ट** (primary host) और **मादा एनोफिलीज सेकेंडरी होस्ट** (secondary host) हैं। मादा मच्छर रोग-प्रसारक (*vector*) का कार्य करता है और एक प्रकार से वह रोग का सरक्षक भी है।

मलेरिया का आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

मलेरिया एक वुरा रोग है जिसने विभिन्न राष्ट्रो के इतिहास में भी अच्छा-भला हिस्सा लिया है। यूनान और विशेषरूप से रोम के पतन का थोडा-वहुत श्रेय मलेरिया द्वारा किये गये जन-सहार को भी है। जव अफ्रीका से गुलाम वलपूर्वक रोम में लाये गये तो वे अपने साथ-साथ मलेरिया परजीवी भी लेते आये और इस प्रकार इन देशो में भी मलेरिया का प्रसार हुआ। विषुवत्-रेखा के उत्तर तथा दक्षिण ४०° अक्षाश तक मलेरिया का क्षेत्र फैला है। यही कारण है कि अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के पास जो अमूल्य प्राकृतिक सपत्ति है वह वस्तुत आज तक अविकसित तथा गर्भस्थ अवस्था में पडी है। विश्व में आज भी मानव जाति की सवसे वडी स्वास्थ्य समस्या मलेरिया ही है। ससार की एक चौथाई जन-सख्या, कदाचित् उससे भी अधिक मलेरिया से पीडित रहती है।

भारतवर्ष में ही प्रत्येक वर्ष लगभग १० लाख से ऊपर प्राणी मलेरिया से मरते हैं। विडवना तो यह है मलेरिया से मरनेवालो के अतिरिक्त जो मलेरिया से पीडित होते हैं उनका स्वास्थ्य इतना विगड जाता है कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति उदासीन हो जाते हैं। भारत के श्रमिक काहिल और सुस्त हो जाते हैं। क्यो? अगर जाँच की जाय तो इनमें से अधिकाश ऐसे होंगे जिनको कभी न कभी मलेरिया हुआ था और जिसके कारण उनके शरीर अशक्त हो गये हैं। दुर्बलता के कारण उनका काम करने को जी नही चाहता और उनसे परिश्रम नही होता। मलेरिया से मनुष्य की रोगनाशक शक्ति घट जाती है जिसके फलस्वरूप वह सहज ही में क्षय, प्लेग, हैजा, न्यूमोनिया आदि रोगो के शिकार हो जाते हैं। मलेरिया की पकड में आने के बाद बेचारे की आमदनी पर भी आ बनती है। उत्तर देश की ५ करोड से कुछ ऊपर की जन-सख्या मे एक चौथाई आवादी साल में कम से कम दो महीने काम करने के लिए विल्कुल वेकार हो जाती है। गरीब लोगो के लिए, जो रोज कमाते खाते हैं जूडी-बुखार का भी आ जाना घातक है क्योंकि उनसे वे काम नही कर पाते और भूख से मरने का प्रश्न उनके सामने आ जाता है।

मलेरिया की रोक-थाम

भारत में मलेरिया की रोक-थाम की समस्या राष्ट्रीय समस्या है। मलेरिया से सफलतापूर्वक मोर्चा लेने के लिए आवश्यक हो जाता है कि मच्छरो के विषय में हमारी कुछ विशेष जानकारी हो। यह स्पष्ट है कि यदि मच्छरो की सख्या कम कर दी जाय तो मलेरिया की अपने आप रोक-थाम हो जायगी। लार्वा (larva) तथा प्यूपा का परिवर्तन किस प्रकार रोका जा सकता है तथा मच्छरो के काटने से किस प्रकार बचा जा सकता है इस विषय में हम आगे लिखेंगे।

जहाँ तक मनुष्य मे मलेरिया परजीवों के सहार का प्रश्न है कुनैन अमोघ है। इसके अतिरिक्त आजकल तो नई-नई सश्लिष्ट (synthetic) ओषधियाँ जैसे **प्लाजमोकीन** (Plasmochin), **ऐटेब्रिन** (Atebrin), **पैल्युड्रिन** (Paludrin), **पेमाक्विन,** (Pamaquin) इत्यादि निकली हैं। ये सबकी सब एक प्रकार से कुनैन की ही पूरक हैं। कुनैन सिनकोना वृक्ष की छाल से निकाली जाती है जो पेरु, भारत, लका तथा जावा में पाये जाते हैं। हालैण्ड देश के उपनिवेश ईस्ट इडीज को एक प्रकार से कुनैन का एकाधिकार प्राप्त है। दुनिया की सारी उपज का ८०% भाग यही उत्पन्न होता है। कुनैन के द्वारा **साइजोन्ट** तो शीघ्र मर जाते हैं किन्तु गैमीटोसाइट्स (gametocytes) पर इसका कोई प्रभाव नही पडता। **प्लाजमोडियम**

फाल्सीपरम (*Plasmodium falciparum*) के गैमीटोसाइट्स पर कुनैन का कोई प्रभाव नही होता। यहाँ तक कि रोगी मलेरिया के आक्रमणो से मुक्त होने पर भी गैमीटोसाइट्स से छुट्टी नही पाता जिसके परिणामस्वरूप वह मच्छरो के लिए सक्रामक बना रहता है और जन-सख्या के लिए सदैव खतरनाक होता है। **एटेब्रिन** (atebrin) का भी कुनैन की ही भाँति प्रभाव होता है किन्तु **प्लाजमोकीन** (plasmochin) का प्रभाव साइजोन्ट्स पर कम और गैमीटोसाइट्स पर अधिक होता है। प्लाजमोडियम फाल्सीपेरम के गैमीटोसाइट्स के लिए तो यह विशेषरूप से विष का काम करती है। अत कुनैन के साथ-साथ इसको भी प्रयोग में लाना चाहिए। **पैल्युड्रिन** (paludrin) का तो मलेरिया परजीवी की सभी अवस्थाओ पर विनष्टकारी प्रभाव पडता है। **यही कारण है कि यह सर्वोत्कृष्ट औषधि समझी जाती है।**

अन्य स्पोरोजोआ (Other Sporozoa)

प्रोटोजोआ का यह एक विशेष क्लास है, जिसमें केवल परिजीवी प्रोटोजोआ होते है। "**स्पोरोजोआ**' (*Sporozoa*) शब्द केवल इस बात का द्योतक है कि इस वर्ग के एसेल्युलर जीव कुछ विशेष प्रकार के स्पोर्स (spores) पैदा करते हैं जो केवल अलैगिक जनन करते है। इस क्लास के जीवो के चलनाग (locomotor organs) का पूरा अभाव होता है और साथ ही इनमें ऐसी रचनाएँ भी नही होती जिनकी सहायता से यह भोजन का अन्तर्ग्रहण (ingestion) कर सकें। अत ये जीव तरल भोजन सोखा करते हैं। इस क्लास के जीवो के जीवनचक्र को पूरा करने के लिए वरटिब्रेट और इनवरटिब्रेट होस्टस (hosts) के एकान्तरण (alternation) की आवश्यकता पडती है।

मवेशियो में **टेक्सास ज्वर** (Texas fever), **बबीसिया** (*Babesia*) इत्यादि रोगो के कारण स्पोरोजोआ क्लास के ही प्राणी हैं।

प्रश्न

१—(क) प्रोटोप्लाज्म के भौतिक (physical) तथा रासायनिक गुणो का सविस्तर वर्णन करो।

(ख) अमीबा का जीवनचक्र विस्तारपूर्वक समझाओ।

२—(क) प्रयोगशाला में किस प्रकार अमीबा का सवर्धन किया जा सकता है ?

(ख) "अमीबा के समान जीवो में स्वाभाविक (natural) मृत्यु नही होती" इसे विस्तारपूर्वक समझाओ।

३—अमीवा की उन सभी क्रियाओं का वर्णन करो जिनके आधार पर तुम उसे जीवधारी कह सकते हो।

४—अमीवा के पोषण (nutrition), चलन, एक्सक्रीशन तथा जनन की विधि को विस्तारपूर्वक समझाकर लिखो।

५—एक्सक्रीशन (excretion) का क्या अर्थ है? इसकी क्यों आवश्यकता पड़ती है? अमीवा में यह क्रिया किस प्रकार होती है?

६—मलेरिया परजीवी (Malaria parasite) के जीवन-चक्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। मादा एनोफिलीस मलेरिया को फैलाने में किस प्रकार सहायता देती हैं।

७—मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र में प्रमुख बातों का वर्णन करो। इसे सेकेंडरी होस्ट (secondary host) से क्या-क्या लाभ है?

८—मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए दो होस्टस की क्यों आवश्यकता पड़ती है?

९—मलेरिया का आर्थिक महत्त्व विस्तारपूर्वक समझाओ। मलेरिया के निदमन (control) के लिए तुम किन-किन उपायों को काम में लाओगे?

१०—मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र का सक्षेप में वर्णन करो। प्लाज-मोडियम की कौन-कौन सी स्पेशीज मनुष्य में ज्वर उत्पन्न करती हैं?

११—मलेरिया पर एक छोटा-सा लेख लिखो जिसमें निम्न बातों पर प्रकाश डालो —

(क) मनुष्य में साइजोगोनी।
(ख) आविष्कार का सक्षिप्त इतिहास।
(ग) मलेरिया का निदमन।

१२—निम्न बातों पर सक्षिप्त तथा सचित्र टिप्पणी लिखो — साइजोगोनी, स्पोरोगोनी, सम्प्राप्ति काल, मलेरिया की रोकथाम तथा मलेरिया का इतिहास।

अध्याय १९

फाइलम सीलनट्रेटा : हाइड्रा

फाइलम सीलनट्रेटा (Coelenterata) में मिलनेवाले सभी प्राणी द्विस्तरीय (two layered) तथा मल्टीसेल्युलर (multicellular) होते हैं। इनकी रचना में निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं —

(१) इन सभी जन्तुओ में केवल एक ही गुहा होती है जिसे **आन्तरगुहा** या **सीलन्ट्रौन** (coelenteron) कहते हैं। यह गुहा द्विस्तरीय या **डिप्लोब्लास्टिक** (diploblastic) दीवार से घिरी रहती है और इसमें केवल एक ही छेद होता है।

(२) इनके शरीर में **निमैंटोसिस्ट** (nematocysts) मिलते हैं।

(३) ये **एसीलोमेट** (acoelomate) होते है अर्थात् इन जन्तुओ में **सीलोम** (coelom) का पूर्ण अभाव होता है।

(४) इनमें बहुत से **टैन्टेकिल्स** (tentacles) होते हैं। प्रत्येक टैन्टिकिल में अनेक दश-कोशिकाएँ या निमैंटोब्लास्ट (Nematoblasts) होती हैं।

सीलन्नट्रान
एपिडर्मिस
गैस्ट्रोडर्मिस
मीसौग्लिया

चित्र २५१—डिप्लोब्लास्टिक जन्तुओ की सरचना की आधारभूत रूपरेखा

(५) इनका शरीर अर-समितीय (radially symmetrical) होता है।

हम हाइड्रा (Hydra) को सीलनट्रेटा फाइलम के प्रतिनिधि के रूप में लेंगे और इसका सविस्तार वर्णन करेंगे।

हाइड्रा
(Hydra)

प्राकृतवास तथा सामान्य व्यवहार (Habitat and habits)

हाइड्रा (Hydra) आमतौर पर तालाव, पोखर, झील, नदी इत्यादि के पानी में जलीय पौधो से चिपका हुआ मिलता है। तालाब के जल में इन्हे

ढूंढना आसान नही है। सरलता से ढूंढ निकालने के लिए पानी में उगनेवाले पेड-पौधो (aquatic plants) को किसी कांच के ट्रफ (trough) में रखना चाहिए। ट्रफ मे पानी भरकर उसे किसी प्रकाशित स्थान पर रख देना चाहिए। यदि हाइड्रा होगे तो वे ट्रफ के पेंदे, दीवारो या पानी के पौधो से चिपके दिखाई देंगे। सामान्यरूप से ये जल की सतह के पास ही पाये जाते है क्योकि वहाँ उन्हे ऑक्सिजन तथा प्रकाश दोनो ही प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ट्रफ के पेंदे में चिपके हाइड्रा सीधे खडे होते है और ट्रफ की दीवारो से चिपके हाइड्रा तिरछे लटके रहते हैं। कभी-कभी स्थिर पानी की सतह से भी ये उल्टे लटके रहते है। इस प्रकार लटकने में सरफेस टेन्सन (surface tension) सहायता देता है। ऐसी अवस्था में ये उल्टे टंगे रहते है।

हाइड्रा की विभिन्न स्पेशीज—हाइड्रा की कई एक स्पेशीज मिलती है किन्तु इनमें से निम्न जातियाँ सुविख्यात है। **हाइड्रा फस्का** (*Hydra fusca*), **हाइड्रा विरीडिस** (*Hydra viridis*), **हाइड्रा ओलीगेंक्टिस** (*Hydra oligactis*) तथा **हाइड्रा वलगेरिस**। **हाइड्रा वलगेरिस** भूरा या बादामी होता है और यूरोप, उत्तरी अमेरिका और भारतवर्ष में बडी सख्या में मिलता है। **हाइड्रा ओलीगेंक्टिस** (*Hydra oligactis*) और **हाइड्रा फस्का** (*Hydra fusca*) दोनो एक ही स्पेशीज (species) माने जाते है और इन्हे **पैलमैटोहाइड्रा ओलीगेंक्टिस** (*Pelmatohydra oligactis*) कहते है। इन स्पेशीज के हाइड्रा पजाब में मिलते है। इसके शरीर का दूरस्थ भाग अधिक मोटा होता है और इसके टेन्टिकिल्स (tentacles) अन्य स्पेशीज के हाइड्रा के टेन्टेकिल्स की अपेक्षा लम्बे होते हैं। **हाइड्रा विरीडिस अब क्लोरहाइड्रा विरीडिसीमा** (*Chlorhydra viridissima*) कहलाता है। इस स्पेशीज के हाइड्रा योरप और अमेरिका में मिलते हैं किन्तु भारतवर्ष में नही पाये जाते।

बाह्याकृति (External features)

हाइड्रा का शरीर एक ऐसी सँकरी और लचीली नली की भाँति होता है जो एक सिरे पर बद तथा दूसरे सिरे पर खुली होती है। बद सिरा जिसकी सहायता से हाइड्रा किसी जलीय पौधे से चिपका रहता है, फुट (foot) या **बेसल डिस्क** (basal disc) कहलाता है। इसके शरीर का यही समीपस्थ (proximal) भाग होता है। दूरस्थ (distal) सिरे पर एक नुकीला उभार होता है जिसे **हाइपोस्टोम** (hypostome) कहते हैं। हाइपोस्टोम के ऊपरी सिरे पर बीचोबीच में एक अनियमित आकार का मुंह (mouth) होता है। हाइपोस्टोम के चारो ओर बहुत ही पतले,

कुञ्चनशील और नालाकार टैन्टेकिल्स (tentacles) होते है जिनकी सख्या ६ से १० तक होती है। पूरी तौर पर फैले होने पर हाइड्रा लगभग २ से २५ सेन्टीमीटर (लगभग १ इञ्च) लम्बा होता है। टैन्टेकिल्स में सिकुडने और फैलने की आश्चर्यजनक क्षमता होती है। सिकुडने पर ये केवल छोटे और मोटे उभारों के रूप मे दीखते है किन्तु फैलने पर ये ही बहुत लम्बे और
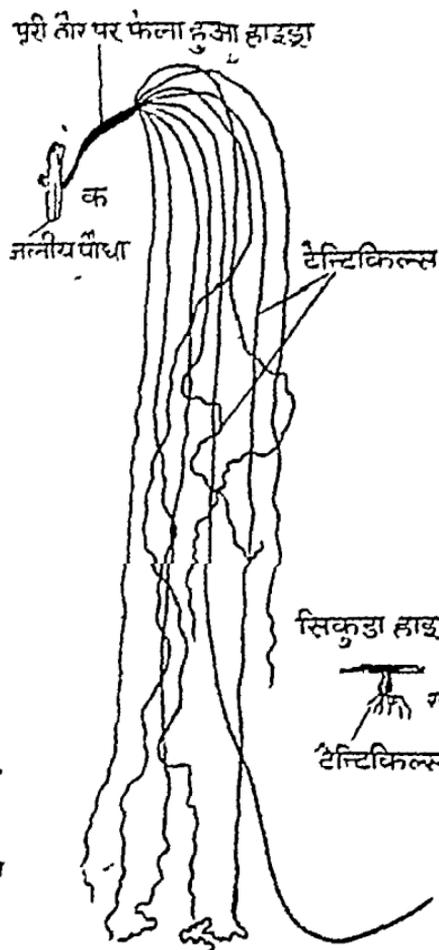
चित्र २५२—हाइड्रा—क, फैला हुआ तथा ख, सकुचित अवस्था में

चित्र २५३—हाइड्रा की बाह्य आकृति, क, पूरी तौर पर फैला हुआ हाइड्रा, ख, सकुचित अवस्था मे

डोरे के समान पतले हो जाते है। उस समय इनकी लम्बाई ७ सेण्टीमीटर या और अधिक होती है। पूरी तौर पर फैले होने पर ये कभी-कभी इतने पतले और पारदर्श हो जाते हैं कि हस्तवीक्ष (hand lens) द्वारा भी इनको देखना आसान नही होता।

भोजन के काफी मात्रा में मिलने तथा जल के गरम होने पर शरीर के समीपस्थ (proximal) भाग मे छोटे-छोटे हाइड्रा दिखाई पडते है। ये

(४) नर्व सेल्स (nerve cells)
(५) संवेदी सेल्स (sensory cells)
(६) ग्लैण्ड सेल्स (gland cells)
(७) जर्म सेल्स (germ cells)

(१) मायोएपिथीलियल सेल्स (myoepithelial cells)—इन कोशिकाओं का आधार-तल या समीपस्थ (proximal) भाग संकरा किन्तु दूरस्थ (distal) भाग मोटा होता है। समीपस्थ सतह से निकले दो या अधिक कुंचनशील प्रवर्ध (contractile processes) निकले रहते हैं जो कि पेशी पुच्छ (muscle tails) कहलाते हैं। ये शरीर की लम्बाई के समान्तर फैले होते हैं और सभी मिलकर अनुदैर्घ्य पेशी बनाते हैं जिनके सिकुड़ने से पूरे शरीर की लम्बाई कम हो जाती है किन्तु सीलेन्ट्रान (coelenteron) अधिक चौड़ा हो जाता है। इस प्रकार ये सेल्स एपिथीलियम और पेशी (muscle) दोनों का काम एक ही साथ करती हैं। इसीलिए इन्हें मायोएपिथीलियल सेल्स कहते हैं।

प्रत्येक मायोएपिथीलियल कोशिका के बीचोंबीच में न्यूक्लियस होता है। एपिडर्मिस का अधिकांश भाग इसी प्रकार की कोशिकाएँ बनाती हैं।
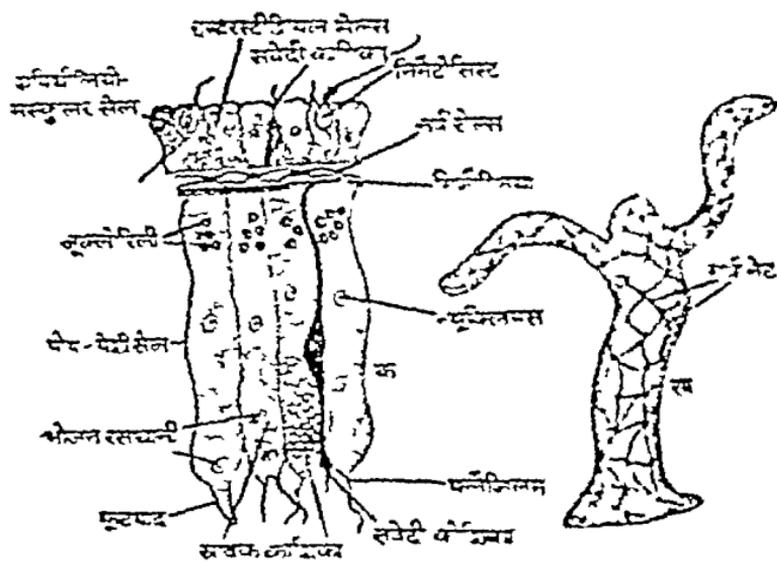
चित्र २५५—क, हाइड्रा की कायभित्ति (body wall) में मिलनेवाले सेल्स ख, हाइड्रा के शरीर में तन्त्रिका जाल (nerve net)

इनके दूरस्थ भाग एक दूसरे से मिलकर एक पूरी पर्त बनाते हैं। इन कोशिकाओं के बाहरी तलों से एक प्रकार का चिपचिपा (viscous) रस पैदा होता है जो जल के सम्पर्क में आते ही कड़ा क्यूटिकुलर आवरण

(cuticular covering) वनाता है। टेन्टेकिल्स (tentacles) की मायोएपिथीलियल सेल्स का आकार कुछ भिन्न होता है। ये चपटी होती हैं और इनके दोनो सिरे पतले किन्तु वीच का हिस्सा अधिक मोटा होता है।

(२) **इन्टरस्टीशियल कोशिकाएँ** (interstitial cells)—मायोएपिथीलियल सेल्स के भीतरी सिरो के सँकरे होने के कारण इनके वीच-वीच में खाली जगह मिलती है। इन्ही जगहो में गोल इन्टरस्टीशियल सेल्स के समूह मिलते हैं। इनका वरावर विभाजन हुआ करता है। इस प्रकार जो नई कोशिकाएं वनती हैं वे धीरे-धीरे निमैटोब्लास्ट (nematoblasts) तथा अन्य प्रकार की कोशिकाएँ वनाती हैं। किसी एक निश्चित स्थान पर इकट्ठी होकर ये जर्म सेल्स का भी निर्माण करती हैं।

(३) **निमैटोब्लास्ट** (nematoblasts)—एपिडर्मिस में, विशेषरूप से टेन्टेकिल्स तथा शरीर के दूरस्थ (distal) भाग में छोटी-छोटी विशेष प्रकार की कोशिकाएँ मिलती हैं जिन्हे निमैटोब्लास्ट (nematoblasts) कहते हैं। प्रत्येक निमैटोब्लास्ट में निमैटोसिस्ट एक छोटी-सी थैली के रूप में वनती है। इसका एक सिरा एक नली के समान तन्तु वनता है जो थैली के अन्दर कुडलित (coiled) हो जाता है। निमैटोसिस्ट (nematocyst) और निमैटोब्लास्ट की दीवारो के वीच मे साइटोप्लाज्म मिलता है जिसमें एक न्यूक्लियस होता है। साइटोप्लाज्म के भिन्नन से अनेक लौंगिट्यूडिनल फिब्रिल्स वन जाते हैं जो निमैटोसिस्ट को चारो ओर घेरे रहते हैं। अव निमैटोब्लास्ट अपने जन्म-स्थान से धीरे-धीरे खिसककर एपिडर्मिस की सतह के समीप पहुँच जाते हैं। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिये कि निमैटोब्लास्ट टेन्टेकिल में नही वनते। ये सदैव वॉडी वॉल (body wall) में वनते हैं और वहाँ से धीरे-धीरे खिसकते-खिसकते
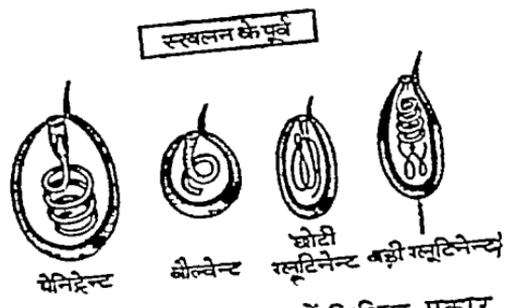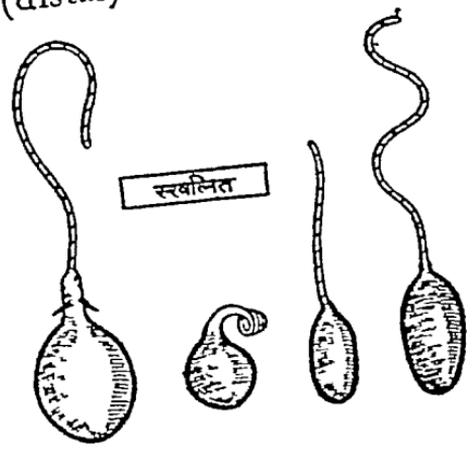
चित्र २५६—हाइड्रा में विभिन्न प्रकार के निमैटोसिस्टस

टेन्टेकिल्स में पहुँच जाते हैं। एपिडर्मिस की सतह के समीप पहुँचने पर प्रत्येक निमैटोब्लास्ट से नीडोसिल (cnidocil) निकल आता है। यह वाह्यत्वक (cuticle) में छेद करके वाहर निकला रहता है।

हाइड्रा में चार प्रकार की निमैटोसिस्ट (nematocysts) होती हैं—

(क) पैनीट्रेन्ट निमैटोसिस्ट (penetrant nematocysts)

(ख) वॉल्वेन्ट निमैटोसिस्ट (volvent nematocyst)

(ग) स्ट्रिप्टोलाइन ग्ल्यूटीनैन्ट (streptoline glutinant)

(घ) स्टिरोलाइन ग्ल्यूटीनैन्ट (steroline glutinant)

(क) पैनीट्रेन्ट निमैटोसिस्ट (penetrant)—ये अपेक्षाकृत वडी तथा गोल होती हैं। इनमें एक लम्वा डोरा-सा होता है जो सदैव कुंडलित रहता है। इस डोरे के आधारलग्न (basal) भाग में तीन वडे और नुकीले काँटे (barbs) और अनेक छोटे-छोटे काँटो (spines) की तीन पंक्तियाँ होती हैं। स्खलित (discharged) निमैटोसिस्ट में ये काँटे साफ दिखाई देते हैं। इनकी सहायता से शिकार का भेदन किया जाता है और वाद में हिपनोटॉक्सिन (hypnotoxin) नाम का विषैला रस नालवत् तन्तुओ में होकर शिकार के शरीर में पहुँच जाता है। इस विष की सहायता से शिकार सुन्न और अचेत हो जाता है।

(ख) वॉल्वेन्ट निमैटोसिस्ट (volventnematocysts)—आकार में ये नाशपाती के समान होते
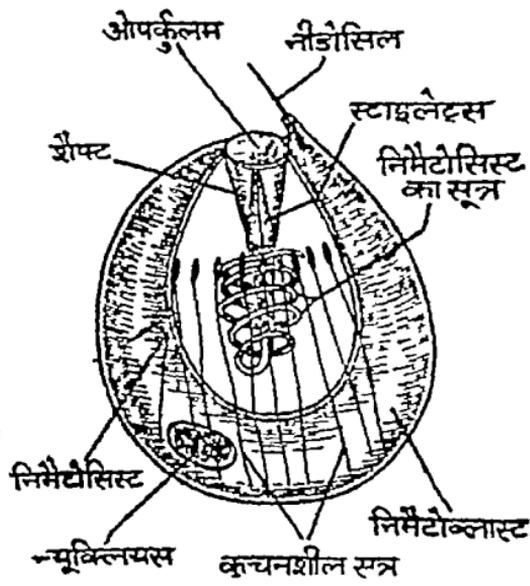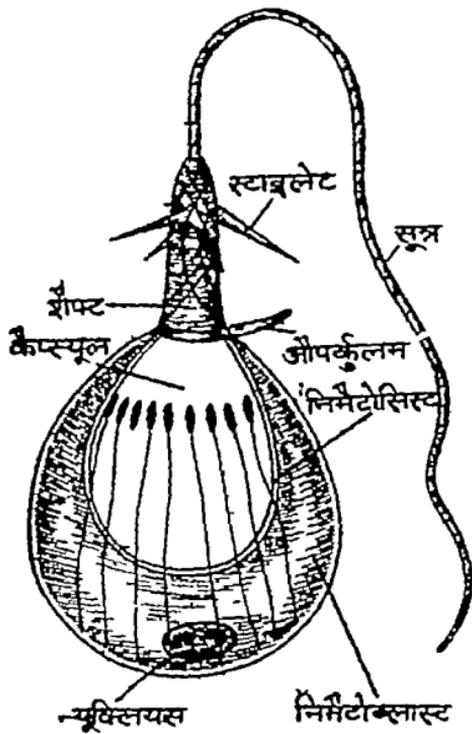
चित्र २५७—पैनीट्रेन्ट निमैटोसिस्ट; वाई ओर स्खलित, दाहिनी ओर अस्खलित

हैं। इनमें एक छोटा किन्तु मोटा तन्तु होता है जिसमें केवल एक फंदा (loop) बन सकता है। स्खलित अवस्था में यह तन्तु बाहर निकलते ही फंदा बनाकर शिकार के शरीर पर मिलनेवाले बालो के चारो ओर लिपट जाता है।

(ग) **स्ट्रिप्टोलाइन ग्ल्यूटीनैन्ट** (streptoline glutinant)—ये अडाकार होते हैं। इनमे एक लम्बा डोरा होता है जिसमें तीन या चार कुडल होते हैं। इस कुडलित डोरे में अनेक बहुत छोटे-छोटे कांटे होते हैं। स्खलित होने पर इसके तन्तु शिकार के चारो तरफ लिपट जाते हैं।

(घ) **स्टिरोलाइन ग्ल्यूटीनैन्ट** (steroline glutinant)—ये निमैटोसिस्ट सबसे छोटे होते हैं। निष्क्रिय अवस्था में इनके तन्तु निमैटोसिस्ट के भीतर खडे पडे रहते हैं और स्खलित होने पर ये सीधे निकलते हैं और इनमें किसी प्रकार के कांटे भी नही होते।

इन चारो प्रकार के निमैटोसिस्ट में पैनीट्रैन्ट (penetrants) शिकार को सुन्न कर देते हैं। जहाँ तक **वौल्वेन्ट निमैटोसिस्ट** (volvents) का सबंध है वे अपने तन्तुओ को शिकार के चारो ओर लपेटकर उसे पकडने में सहायता देते हैं। ग्ल्यूटीनैन्ट (glutinants) से एक प्रकार का लसलसा रस निकलता है जिससे हाइड्रा को चलने में और शिकार पकडने में सहायता मिलती है।

(४) **नर्व सेल्स** (nerve cells)—कुछ लोगों के मतानुसार इन्टर-स्टीशियल सेल्स के आकार की एक एपिडर्मल सेल्स धीरे-धीरे खिसककर मिजोग्लिया (mesogloea) में पहुँच जाती हैं और वहाँ नर्व सेल्स में बदल जाती हैं। प्रत्येक नर्व सेल से अनेक शाखाएँ निकली रहती हैं। ये शाखाएँ पडोसी नर्व सेल्स की शाखाओ से मिलकर एक प्रकार का तन्त्रिका जाल (nerve net) बनाती हैं। तन्त्रिका-जाल द्वारा उद्दीपन शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में तुरन्त पहुँच जाता है। तन्त्रिका-कोशिकाओ की छोटी-छोटी शाखाएँ या तन्त्रिका तन्तु एपिडर्मिस और गैस्ट्रोडर्मिस की कोशिकाओ की पेशीय-पुच्छो (muscle tails) और सवेदी कोशिकाओ की शाखाओ से जुडी रहती हैं।
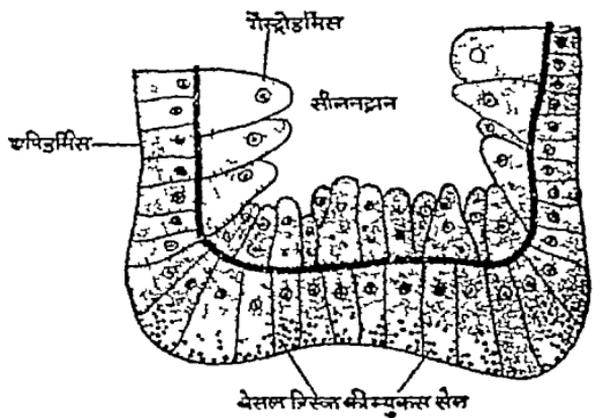
चित्र २५८—बेसल डिस्क की ग्रन्थिल कोशिकाएँ

(५) सवेदी कोशिकाएँ—मायोएपियीलियम कोशिकाओं के बीच-बीच में लम्बी तथा सँकरी सवेदी कोशिकाएँ होती हैं जो ग्राहक (receptor) का कार्य करती हैं।

(६) ग्रन्थिल कोशिकाएँ (gland cells)—बेसल डिस्क (Basal disc) की एपिडर्मल सेल्स आकार और रचना में अन्य भागों की एपिडर्मल कोशिकाओं से भिन्न होती हैं। ये अधिक लम्बी होती हैं और उनके साइटो-प्लाज्म में अनेक छोटी-छोटी कणिकाएँ होती हैं जो एक प्रकार का म्यूकस पैदा करती हैं जिसकी सहायता से हाइड्रा आसानी से पौधों और अन्य ठोस चीजों से चिपक जाता है। बाह्यत्वक (cuticle) का अभाव होने से ये कोशिकाएँ आवश्यकतानुसार कूट-पाद (pseudopodia) भी बना सकती हैं जिनकी सहायता से हाइड्रा धीरे-धीरे चलता है। कुछ ग्रन्थिल कोशिकाएँ एक प्रकार की गैस (gas) बनाती हैं जो म्यूकस में उलझकर एक गुब्बारा (baloon) बनाती हैं। यह गुब्बारा हाइड्रा को अधिक हल्का बना देता है और इस प्रकार वह आसानी से तालाब के पेंदे से उठकर पानी की सतह तक पहुँच जाता है।

(७) जर्म सेल्स (germ cells)—गर्मी के महीनों में इन्टरस्टीशियल सेल्स बार-बार विभाजन करके शरीर के कुछ भागों में जर्म सेल्स उत्पन्न करती हैं जो वृषण (testis) तथा अंडाशय (ovary) का निर्माण करती हैं।

गैस्ट्रोडर्मिस (Gastrodermis)

यह स्तर देहभित्ति का ⅔ भाग घेरता है और इसमें पांच प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं —

(१) पोषक-पेशी कोशिकाएँ (nutritive muscular cells)
(२) सिक्रीटरी कोशिकाएँ (secretory cell)
(३) सवेदी कोशिकाएँ (sensory cells)
(४) नर्व सेल्स (nerve cells)
(५) इन्टरस्टीशियल कोशिकाएँ—(interstitial cells)

(१) पोषक-पेशी कोशिकाएँ—अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा इनकी संख्या सबसे अधिक होती हैं। प्रत्येक सेल स्तम्भाकार (columnar) होती है। इसके समीपस्थ (proximal) सिरे से पेशी-पुच्छ (muscle-tail) निकलती हैं। एपिडर्मिस की मायोएपियीलियल कोशिकाओं (myoepithelial cells) की पेशी-पुच्छों के विपरीत इनकी पेशी पुच्छ अनुप्रस्थ समतल में फैली होती हैं। इस प्रकार ये एक पेशी की सर्कुलर लेयर (circular muscle) बनाती हैं जिसके कुंचन के फलस्वरूप हाइड्रा

की लम्बाई बढ़ जाती है किन्तु सीलन्ट्रोल का व्यास घट जाता है। टॅन्टेकिल्स की पोषक-पेशी कोशिकाओ में पेशी-पुच्छ का अभाव होता है जिससे इनकी लम्वाई केवल सीलन्ट्रौल मे मिलनेवाले द्रव मे दवाव के वढने से वढ जाती है। टॅन्टेकिल्स के आधार मे स्थित पोषक-पेशी कोशिकाओ की पेशी-पुच्छ (muscle-tails) टॅन्टेकिल और सीलन्ट्रीन के वीच के द्वार को वन्द करने के लिए एक प्रकार से स्फिकटर पेशी (sphincter muscle) का कार्य करती हैं।

चित्र २५९—गैस्ट्रोडर्मिस की पोषक पेशी कोशिका

पोषक पेशी कोशिकाओ के दूरस्थ सिरो पर कूटपाद होते हैं। और साथ ही साथ उनमें एक से लेकर पाँच फ्लैजिला (flagella) भी होती हैं। प्रत्येक फ्लैजिलम का जन्म एक **ब्लिफैरोप्लास्ट** (blepharoplast) में होता है। भूखे हाइड्रा की पोषक पेशी या पाचन कोशिकाओ में अनेक धानियाँ (vacuoles) होती हैं। कूटपादो (pseudopodial) की सहायता से भोजन के छोटे-छोटे टुकडो का अन्तर्ग्रहण (ingestion) करने के वाद साइटोप्लाज्म मे अनेक **अन्न-धानियाँ** (food vacuoles) दिखाई देती हैं। **हाइड्रा विरीडिस** (*Hydra viridis*) की पाचन-सेल्स में अनेक एक-कोशिकीय ऐल्गल (algal) कोशिकाएँ मिलती हैं। इनको **जूक्लोरिली** (*Zoochlorellae*) कहते हैं। इनमें क्लोरोफिल (chlorophyll) होता है।

(२) **सिक्रीटरी सेल्स** (secretory cells)—ये ग्रन्थिल कोशिकाएँ पोषक पेशी कोशिकाओ की अपेक्षा छोटी और मुद्गराकार (club-shaped) होती हैं। इनके समीपस्थ सिरो पर पेशी-पुच्छ नही होते और स्वतन्त्र सतह पर केवल १ या २ फ्लैजिला मिलती हैं। इनका साइटोप्लाज्म कणात्मक

(granular) होता है। ये सेल्स अधिकतर हाइड्रा के दृग्न्य भाग में मिलती हैं और एक प्रकार का पाचक रस बनाती हैं जिसकी सहायता से सीलन्ट्रॉन में भोजन का पाचन होता है। हाइपोस्टोम (hypostome) में स्थित ग्रन्थिल कोशिकाएँ एक ऐसा रस उत्पन्न करती हैं जो पाचक रस को अधिक क्रियाशील बना देता है। कुछ लोगों के मतानुसार ये ग्रन्थिल सेल्स एक प्रकार का लसलसा और विषैला पदार्थ बनाती हैं जिसमें टेन्टेकिल्स द्वारा लाया हुआ शिकार उलझ कर मर जाता है।

(३-५) संवेदी (sensory), नर्व (nerve) और इन्टरस्टीशियल (interstitial) कोशिकाएँ—अपने आकार और रचना में ये सभी एपीडर्मिस में मिलनेवाली कोशिकाओं के समान होती हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि ये उनकी अपेक्षा बड़ी और फ्लैजिलेटेड (flagellated) होती हैं।
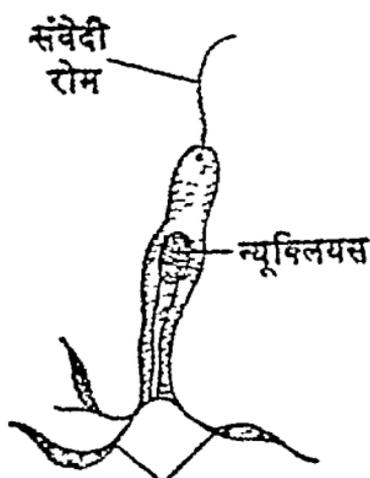
चित्र २६०—गैस्ट्रोडर्मिस की संवेदी कोशिका

चलन (Locomotion)

आमतौर पर हाइड्रा अपनी बेसल डिस्क (basal disc) की सहायता से ठोस वस्तुओं से चिपका रहता है। इसकी भूरी और सफेद जातियाँ तो एक ही स्थान पर बहुत समय तक चिपकी रहती हैं। इसके विपरीत हरी स्पेशीज के हाइड्रा उपयुक्त प्रकाश की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर चक्कर लगाया करते हैं। हाइड्रा में चलन (locomotion) के केवल दो ही कारण होते हैं—(१) भोजन की खोज या (२) उद्दीपन (stimulus) के प्रति प्रतिचेष्टा (response)।

(१) शरीर का सामान्य कुंचन तथा विस्तार (expansion)—एपिडर्मिस की मायोएपिथीलियल सेल्स की पेशी-पुच्छ (muscle tails) मीजोग्लिया की बाहरी सतह पर शरीर की लम्बाई के समान्तर फैली होती है। इसके विपरीत एण्डोडर्मल सेल्स की पेशी-पुच्छ ट्रांसवर्स समतल होती हैं। जब एपिडर्मिस की कोशिकाओं की पेशी-पुच्छों का कुंचन होता है, तो हाइड्रा छोटा किन्तु मोटा होने लगता है। इसके विपरीत जब एण्डोडर्मल सेल्स की पेशी-पुच्छों (muscle tails) का कुंचन होता है तो वह लम्बा हो जाता है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि टेन्टेकिल्स की कोशिकाओं में पेशी-पुच्छ का

अभाव होता है और इसीलिए इनकी लम्बाई सीलन्ट्रौन में भरे द्रव के दवाव के कारण बढती है। हाइड्रा का झुकना शरीर के एक किनारे के सिकुडने और
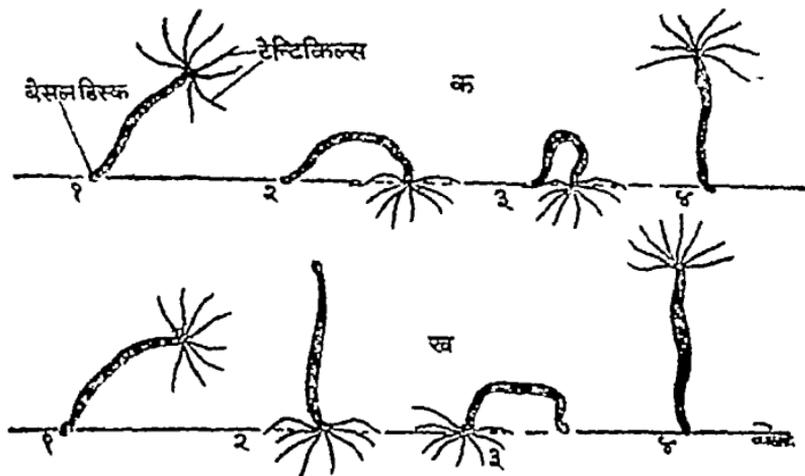
चित्र २६१—हाइड्रा का चलन, क, लूपिंग कैटरपिलर के समान चलन, ख, कलाबाजी करते हुए चलना।

विरोधी दिशावाले किनारे के फैलने के परिणामस्वरूप होता है। इस प्रकार की गति केवल शिकार को पकडने में सहायता देती है।

(१) **लूपिंग कैटरपिलर के समान चलना** (like looping caterpillar)—जब हाइड्रा के शरीर का एक ही किनारा सिकुडता है और दूसरा शिथिल अवस्था मे रहता है तो शरीर एक ओर इतना झुक जाता है कि टैन्टेकिल्स (tentacles) सबस्ट्रेटम या भूमि को छूने लगते हैं और उससे चिपक जाते हैं। चिपकने में **ग्ल्यूटीनैन्ट निमैटोसिस्ट** (glutinants) सहायता देते हैं। इसके बाद बेसल डिस्क अपनी पकड छोडकर टैन्टकिल्स के समीप खिंच आती है और फिर से पास ही सबस्ट्रेटम से चिपक जाती है। अब टैन्टेकिल्स सबस्ट्रेटम से अलग हो जाते हैं और हाइड्रा सीधा खडा हो जाता है। इस क्रम को बारम्बार दोहराने के फलस्वरूप हाइड्रा काफी तेजी से चलता है।

(२) **कलाबाजी खाना** (somersaulting)—सर्वप्रथम हाइड्रा अपनी बेसल डिस्क (basal disc) के सहारे सीधा खडा हो जाता है। इसके बाद वह शरीर को मोडकर टैन्टेकिल्स (tentacles) को भूमि के सम्पर्क मे लाकर उन्ही के सहारे खडा हो जाता है। फिर शरीर को आगे की ओर झुकाता है और इस बार बेसल डिस्क के सहारे खडा हो जाता है। बारबार ऐसा करके कलाबाजी खाता हुआ हाइड्रा तेजी से आगे बढता है।

(३) **फिसलना** (gliding)—बेसल डिस्क के सहारे सीधा खडा

हुआ हाइड्रा धीरे-धीरे एक तरह से फिसलता चलता है। बेसल डिस्क की एपिडर्मल (epidermal) सेल्स बाहरी सतह पर कूटपाद (pseudopodia) बनाती हैं। इन कूटपादो और साथ ही साथ बेसल डिस्क (basal-disc) के सिकुडने और फैलने से भी ये जीव महज ही मे फिसलते हुए चलते हैं।

(४) कटिलफिश (cuttlefish) के समान चलन—कभी कभी हाइड्रा अपने टैन्टेकिल्स के सहारे औधा खडा हो जाता है और फिर उन्हे टांगो की तरह काम मे लाकर चल लेता है।

(५) जल में उतराना (floating)—कभी कभी पानी की सतह के समीप स्थित हाइड्रा पानी की सतह पर उतराने लगता है।

भोजन तथा अनुप्राशन (Food and Feeding)

हाइड्रा पूरी तौर पर मासभक्षी होता है। यह प्राय कीडे-मकोडा, कीडो के लार्वा (insect larvae) तथा मछलियों के अडे इत्यादि पर जीवन-निर्वाह करता है। आमतौर पर हाइड्रा अपनी बेसल डिस्क को किसी जलीय पौधे से चिपका कर उल्टा लटक जाता है और अपने टैन्टेकिल्स (tentacles) को पूरी तरह फैला लेता है। यह स्थिति हाइड्रा के लिए वडी सुविधाजनक होती है क्योंकि इस दशा मे उसके शिकार करने का क्षेत्र बहुत दूर तक फैला होता है।

जैसे ही कोई छोटा मोटा पानी का कीडा टैन्टेकिल्स को छूता है, उस स्थान पर नीमैंटोसिस्ट फौरन स्खलित हो जाते हैं। पैनीट्रेन्ट निमैंटोसिस्ट (penetrant) के कांटे शिकार की त्वचा में छेद कर देते हैं और फिर जख्मी स्थान मे निमैंटोसिस्ट के तन्तु घुस जाते है। ग्ल्यूटीनैन्ट (glutinant) तथा वौलवैन्ट निमैंटोसिस्ट (volvent) शिकार को टैन्टेकिल से चिपका देते है और इसी बीच पैनीट्रेट निमैंटोसिस्ट के तन्तु हिप्नोटौक्सिन को शिकार के शरीर में डाल देते हैं। कुछ लोगो के मतानुसार यह विष तन्तु की बाहरी सतह पर होता है। यह शिकार को एक प्रकार से वेहोश कर देता है। इसके बाद शिकार को पकड मे रखनेवाला टैन्टोकिल धीरे-धीरे सिकुडकर मुंह की ओर बढता है और फिर तो सभी मिलकर शिकार को उठाकर मुंह की ओर बढते हैं। प्राय शिकार के समीप आने से पूर्व ही मुंह पूरी तौर पर खुल जाता है और शिकार के समीप आते ही उसे दृढतापूर्वक पकड लेता है। इस प्रकार सभी टैन्टेकिल्स के समवेत (coordinated) प्रयत्न से आखेट पकड में आ जाता है और अन्त में हाइपोस्टोम की पेशी पुच्छो के सिकुडने से वह सीलन्ट्रौन में ढकेल दिया जाता है।

शिकार को निगलने के वाद ही सीलनट्रीन के चारो ओर स्थित ग्रन्थिल कोशिकाओ का साइटोप्लाजम तुरन्त कणात्मक (granular) हो जाता है और उनसे पाचक रस निकलने लगता है। पाचक रस के सम्पर्क में आते ही शिकार मर जाता है। देह भित्ति (body wall) की पेशी-पुच्छो के कुचन के फलस्वरूप मथन क्रिया (churning) होती है। पाचक रस की क्रिया और साथ ही साथ मथन के फलस्वरूप भोजन के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं। पाचक रस की सहायता से जो पाचन क्रिया हाइड्रा के सीलन्ट्रीन में होती है, उसे **एक्स्ट्रासेल्युलर पाचन** (extracellular digestion) कहते है।

पाचन-कोशिकाएँ (digestive cells) अपने कूटपादो की सहायता से भोजन के छोटे-छोटे टुकडो को निगल जाती हैं। भोजन के ये टुकडे अन्न-धानियो (food vacuoles) में पहुँच जाते है जहाँ पर अमीवा की भाँति इनमे भी अत.कोशिकी या इन्ट्रा-**सैल्युलर पाचन** (intracellular digestion) होता है। इस प्रकार पाचन क्रिया के दृष्टिकोण से हाइड्रा की स्थिति अमीवा और मेटाजोअन जन्तुओ के बीच की है। इस प्रकार के पाचन का कारण केवल यही हो सकता है कि खुले मुँह में होकर पानी हाइड्रा की सीलन्ट्रीन में घुस जाता है जिससे पाचक रस पतला हो जाता है और एन्जाइम्स (enzymes) की तेजी कम हो जाती है।

चित्र २६२—हाइड्रा के प्राशन का ढग।

भोजन का न पचनेवाला भाग, जैसे कीडो का वहिर्कंकाल (exoskeleton) मुख द्वारा बाहर फेंक दिया जाता है। भोजन का पचा हुआ भाग विसरण (diffusion) द्वारा गैस्ट्रोडर्मिस की कोशिकाओ मे होता हुआ एपिडर्मिस की कोशिकाओ में पहुँच जाता है। इस प्रकार इन जन्तुओ में परि-वहन तत्र की कोई आवश्यकता नही पडती। गैस्ट्रोडर्मिस की कोशिकाओ की फ्लैजिला (flagella) हिलने-डुलने के कारण सीलन्ट्रीन के द्रव में प्रवाह पैदा करती है जिसके फलस्वरूप पचा हुआ भोजन सीलन्ट्रीन के चारो ओर स्थित

गैस्ट्रोडर्मिस की सभी कोशिकाओ में पहुँच जाता है। इस प्रकार हाइड्रा की सीलन्ट्रोन भोजन का केवल पाचन ही नही वरन् परिवहन भी करती है।

श्वसन और उत्सर्जन (Respiration and Excretion)

जीवित प्रोटोप्लाजम को आक्सीजन (O_2) लेने तथा कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) बाहर निकालने की आवश्यकता पडती है। हाइड्रा मे इस लेन देन के लिए किसी विशेष अग की आवश्यकता नही पडती। जल में घुली ऑक्सीजन सभी कोशिकाओ में विसरण (diffusion) द्वारा पहुँच जाती है और इसी प्रकार कार्बन डाईआक्साइड भी बाहर निकल जाती है।

जनन (Reproduction)

हाइड्रा में जनन निम्न प्रकार होता है—

(१) बडिंग (budding)
(२) लौंगिट्यूडिनल विभाजन (longitudinal division)
(३) लैंगिक जनन (sexual reproduction)

(१) बडिंग (budding)—इस प्रकार के लैंगिक जनन में केवल सोमैटिक सेल्स भाग लेती है। अनुकूल परिस्थिति में अर्थात् जब भोजन काफी मात्रा में मिलता है और ताप भी उपयुक्त होता है तो भोजन शरीर के बीचोबीच में या कुछ नीचे गैस्ट्रोडर्मिस की सेल्स में इकट्ठा होने लगता है। इन्ही स्थानो पर एपिडर्मल कोशिकाओ के बारम्बार विभाजित होने के कारण एक उभार-सा बन जाता है जिसे बड (bud) कहते है। इसी बड में सीलन्ट्रोन घुस जाती है जिससे यह एक अन्धी शाखा (outgrowth) के रूप मे दीखने लगती है। इसके दूरस्थ सिरे पर अब पतली पतली शाखाएँ टैन्टेकिल्स के रूप में निकल आती हैं और अन्त में इनसे घिरे हुए स्थान या हाइपोस्टोम के बीचोबीच में मुख बन जाता है। अगर भोजन की कमी न हुई तो बड पूरी तौर पर बन जाने पर भी हाइड्रा से अलग नही होती और कभी-कभी असाधारण अवस्था में तो इसी बड पर दूसरी बड बनने लगती हैं। प्रत्येक बड के निचले भाग के चारो ओर एक छिछली खाई-सी बनने लगती है। यह बराबर गहरी होती जाती है जिससे अन्त में यह नन्हा हाइड्रा जनक हाइड्रा (parent hydra) से अलग हो जाता है और स्वय ही अपनी जीवन-क्रियाओ को करने लगता है। इस अवस्था में इसके टैन्टेकिल्स और मुख दोनो ही सक्रिय हो जाते हैं।

(२) लौंगिट्यूडिनल विभाजन (Longitudinal Division) कभी-कभी हाइड्रा का पूरा शरीर लौंगिट्यूडिनल या ट्रासवर्स विभाजन द्वारा दो भागो में बँट जाता है। प्रत्येक भाग आवश्यक अगो का पुनर्जनन (regeneration) करके हाइड्रा का रूप ले लेता है।

(३) **लैंगिक जनन** (sexual reproduction)—प्रतिकूल वयविरण मे इस प्रकार का जनन होता है। इसमें नर और मादा गैमीट्स (gametes) का मेल या सायुज्यन (fusion) होता है। वरटिब्रेट्स की भाँति इनका **नर गैमीट** सदैव बहुत छोटा और सक्रिय होता है किन्तु **मादा गैमीट** अपेक्षाकृत बडा और निष्क्रिय होता है। नर गैमीट को शुक्राणु और मादा गैमीट को अडा (ova) कहते हैं। शुक्राणुओ का निर्माण **वृषण** (testes) मे और अडो का निर्माण **अडाशय** (ovary) में होता है।

आमतौर पर वृषण (testes) और अडाशय (ovary) दोनो एक ही हाइड्रा में पाये जाते हैं जिससे हाइड्रा प्राय **उभयलिंगी** (hermaphrodite) होता है। कुछ स्पेशीज एकलिंगी (unisexual) भी होती है। प्राय अडाशय (ovary) एक ही होता है और वह शरीर के बीचोबीच में या और नीचे स्थित होता है। इसके विपरीत वृषण (testes) की सख्या

चित्र २६३—हाइड्रा मे बडिग की स्टेजेस १—४।

अधिक होती है और ये शरीर के ऊपरी भाग मे मिलते हैं। आरभ में दोनो का परिवर्धन एक ही भाँति होता है।

सर्वप्रथम एपिडर्मिस की **इन्टरस्टीशियल सेल्स** (interstitial cells) के बराबर विभाजन के फलस्वरूप अनेक सेल्स इकट्ठी होकर एपिडर्मिस को जगह जगह ऊपर उठा देती हैं। इन इन्टरस्टीशियल सेलस में एक अमीबोएड (amoeboid) हो जाती है और अपने कूटपादो (pseudopodia) की सहायता से आसपास की कोशिकाओं को निगल करके धीरे-धीरे बढ़ती जाती हैं। इसके साइटोप्लाज्म मे **अडपीत** (yolk) की असख्य कणिकाएँ इकट्ठी हो जाती हैं। अब इसे **प्राइमरी ऊमाइट** कहते हैं। इसका **परिपक्वन**

(maturation) आरम्भ होता है। माइओसिस (meiosis) के परिणाम-स्वरूप एक परिपक्व-अड (mature egg) और दो या तीन पोलर बॉडी
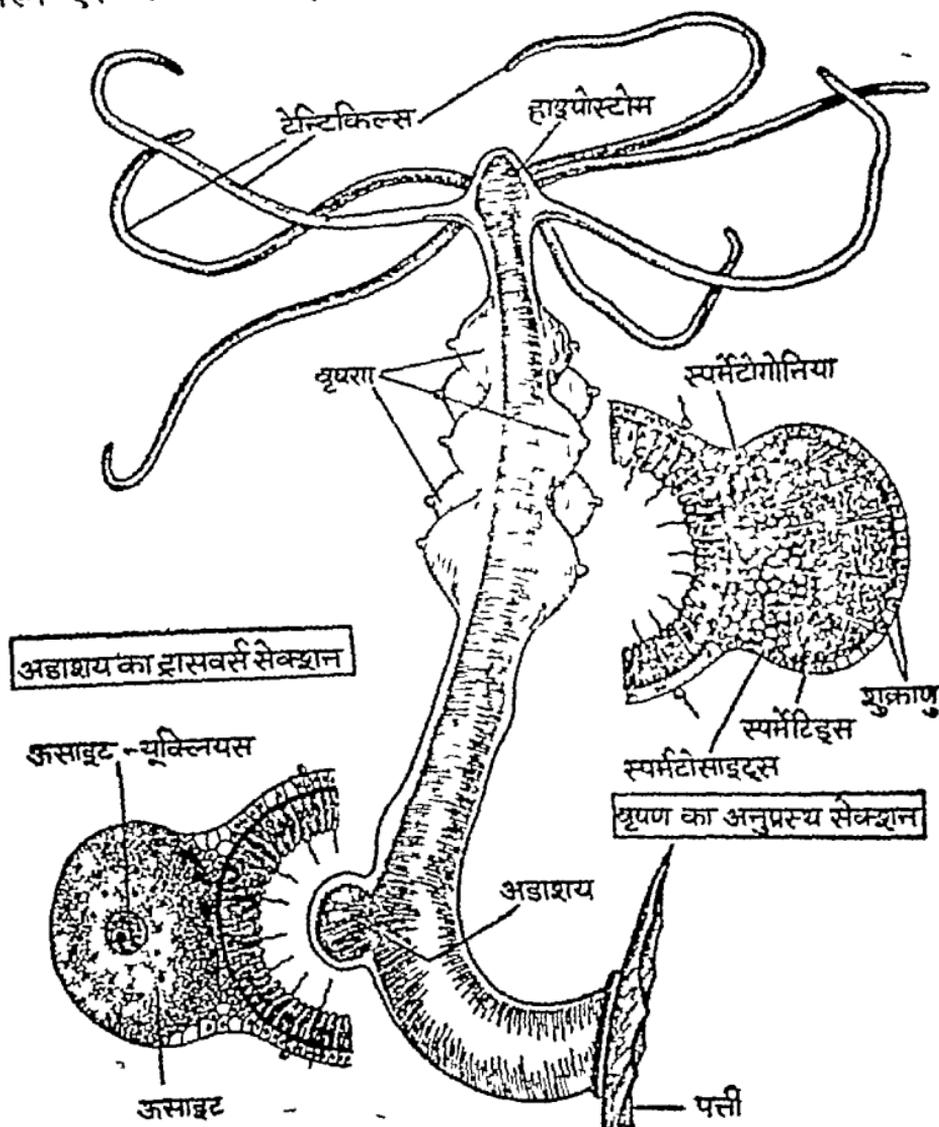
चित्र २६४—हाइड्रा में टेस्टीज और ओवरी की स्थिति तथा दोनो की भीतरी सरचना।

(polar body) बन जाते हैं। परिपक्व अड एपिडर्मिस को फाडकर बाहर की ओर उभर आता है और एक लसलसे आवरण से ढका रहता है।

अडाशय गोल होता है किन्तु वृषण की ऊपरी सतह की तरह इसमें नुकीला उभार-सा नही होता है जिससे दोनो को आसानी से पहचाना जा सकता है। आरम में प्रत्येक वृषण मे भी अनेकानेक इन्टरस्टीशियल सेल्स होती हैं और ये सभी प्राइमरी स्परमैटोसाइट्स (primary spermatocytes) का रूप ले लेती हैं। परिपक्व-प्रावस्था (maturation phase) में माइ-

ओसिस के फलस्वरूप प्रत्येक स्पर्मेटोसाइट से चार उपशुक्रकोशिकाएँ या स्परमैटिड्स (spermatids) बन जाते हैं। इस अवस्था मे प्रत्येक वृषण का नुकीला ऊपरी भाग फट जाता है और शुक्राणु जल में निकल आते हैं।

शुक्राणु जल में तैरते रहते हैं। अडा (ovum) इन्हे अपनी ओर आकर्षित करता है। जो शुक्राण सर्वप्रथम अडे के सम्पर्क में आता है वह उसके लसलसे आवरण मे घुसता है और आखीर में उसका निषेचन (fertilization)
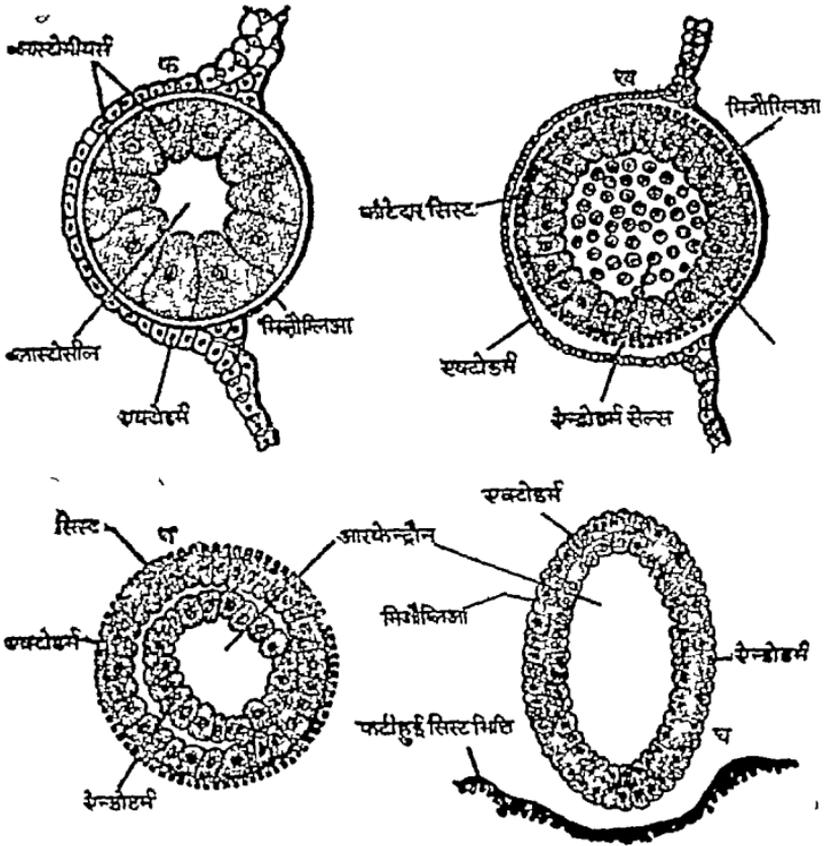
चित्र २६५—हाइड्रा मे भ्रूण परिवर्धन की अवस्थाएँ क, ब्लैस्टुला, ख, एन्डोडर्मल कोगिकाओ का निर्माण, ग, गैस्ट्रुला, घ, हाइड्रेयुला का सिस्ट के वाहर निकलना

कर देता है। इस प्रकार अडा जाइगोट (zygote) मे बदल जाता है जिससे अगली पीढी का श्रीगणेश होता है।

निषिक्त अडा (fertilized egg) हाइड्रा से चिपका रहता है और इसी दशा में परिवर्धन आरभ हो जाता है। वारम्वार विभाजन होने के कारण वह अनेक ब्लैस्टोमीयर्स में विभाजित होकर एक गोल गेंद के समान खोखली सरचना बनाता है जिसे ब्लैस्टुला कहते हैं। इसके बीच की कैविटी को ब्लैस्टोसील कहते हैं। इसके बाद गैस्ट्रुला (gastrula) बनना शुरू होता है। ब्लैस्टुला

की एक्टोडर्मल (ectodermal) सेल्स के भीतरी सिरे बारम्बार विभाजित होकर नई सेल्स बनाते हैं जो ब्लैस्टोसील में एकत्रित होती रहती है। इस प्रकार पृथक्स्तरण (delamination) का यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक कि ब्लैस्टोसील भर नही जाती। ये सभी नई सेल्स एन्डोडर्म (endoderm) बनाती हैं। एन्डोडर्मल सेल्स के समूह के मध्यभाग मे अब एक नई कैविटी बन जाती है जिसे आरकैन्ट्रान (archenteron) कहते हैं। इस द्विस्तरीय गोल तथा खोखले भ्रूण को गैस्ट्रूला (gastrula) कहते हैं। अब एक्टोडर्मल सेल्स अपने चारो ओर एक श्रृंगिक (horny) रक्षक आवरण बनाती हैं। इसी समय एक्टोडर्मल और एन्डोडर्मल सेल्स के बीच मीजोग्लिया (mesogloea) भी बन जाता है जो इन दोनो स्तरों या पर्त्तों को जोड देता है।

रक्षक श्रृंगिक (horny) आवरण या सिस्ट से घिरा हुआ गैस्ट्रूला अब हाइड्रा से अलग होकर तालाब के पेंदे पर पहुँच जाता है और वहां उपयुक्त पर्यावरण की प्रतीक्षा में कुछ काल तक निष्क्रिय अवस्था में पडा रहता है। अनुकूल परिस्थिति में श्रृंगिक-सिस्ट (horny cyst) को फाडकर हाइड्रूला (Hydraula) बाहर झाँकने लगता है। इसके एक सिरे पर मुँह और टैन्टकिल्स बन जाते हैं और यह छोटा-सा हाइड्रा अब बाहर निकलकर किसी ठोस वस्तु से चिपक जाता है।

पुनर्जनन (Regeneration)

यदि हाइड्रा के कई छोटे छोटे टुकडे कर दिये जायें तो ये सभी टुकडे फिर से नये नये हाइड्रा बना देते हैं। इन टुकडो में जिन अगो की कमी होती है उन सभी का पुनर्जनन हो जाता है और प्रत्येक टुकडा एक सम्पूर्ण हाइड्रा बन जाता है। हाइड्रा की इस असाधारण शक्ति का निरीक्षण सर्वप्रथम ट्रैम्बिली (*Trembly*) ने सन् १७४० में किया था। यदि किसी हाइड्रा का लौंगिट्यूडिनल भाजन उसके शरीर के मध्य भाग तक करके उन दोनों भागो को अलग रक्खा जाय तो दो सिरवाला हाइड्रा बन जायगा। हाइड्रा के $\frac{1}{6}$ मिलीमीटर के बराबर टुकडे भी पुनर्जनन करके हाइड्रा बन जाते हैं। यदि टुकडे और अधिक छोटे होते हैं, तो वे सभी आपस में मिलकर सम्पूर्ण हाइड्रा बना देते हैं।

हाइड्रा और सहजीवन (Hydra and Symbiosis)

सहजीवन (symbiosis) अथवा पारस्परीकरण (mutualism) दो विभिन्न जीवो का ऐसा साथ है जो एक दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार के जीवों को सहजीवो (symbionts) कहते हैं। जूक्लोरिलो (*Zoochlorellae*) नाम का एक एककोशिकीय (unicellular) एल्गा (*Alga*)

हाइड्रा की पाचन सेल्स (digestive cells) में मिलता है। प्रत्येक जूक्लोरिला में साइटोप्लाज्म, न्यूक्लियस और क्लोरोप्लास्ट (chloroplast) होते हैं।

जिन ऐण्डोडर्मल सेलस के भीतर जूक्लोरिली रहती हैं वे अपनी श्वसन तथा अन्य जीवन-क्रियाओ (vital activities) के फलस्वरूप कार्बन डाई-आक्साइड (CO_2), जल तथा अन्य एक्सक्रीटरी पदार्थ बनाती है। हाइड्रा प्रोटीन्स (proteins) को तोड फोड करके केवल अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) बनाते है जो मिलकर अमोनियम कार्बोनेट (Ammonium carbonate) का निर्माण करते हैं। उच्च कोटि के प्राणियो में अमोनियम कार्बोनेट यूरिया में बदल कर आसानी से शरीर से बाहर निकल जाता है किन्तु हाइड्रा में अमोनियम कार्बोनेट तथा अन्य लवणो का शरीर के बाहर निकलना वास्तव में एक समस्या है। कुछ लोगो के मतानुसार जूक्लोरिली कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) तथा जल का उपयोग प्रकाश-सश्लेषण (photosynthesis) में ग्लूकोज बनाने में करते हैं और अमोनियम कार्बोनेट के समान एक्सक्रीटरी पदार्थों को सोख लेते हैं। इस प्रकार ये जूक्लोरिली हाइड्रा के एक्सक्रीशन (excretion) मे सहायता देते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाश-सश्लेषण द्वारा आक्सीजन और शकर बनाते हैं जिसे ये हाइड्रा को देते है और इस प्रकार इन जन्तुओ के आहार में कार्बोहाइड्रेट की कमी पूरी हो जाती है।

हाइड्रा भी बदला चुकाने में पीछे नही रहता। सर्वप्रथम यह जूक्लोरिली जैसे असहाय जीवो को रहने के लिए सुरक्षित स्थान देता है। मासभक्षी होने के कारण इसके भोजन मे प्रोटीन की कमी नही होती। इसी प्रोटीन का कुछ भाग हाइड्रा इन जूक्लोरिली को देकर उनके भोजन मे प्रोटीन या नाइट्रोजन की कमी को पूरा करता रहता है। इस प्रकार दोनो एक दूसरे के साथ से लाभ उठाते हैं।

फिजियालोजिकल श्रमविभाजन तथा उससे संबद्ध हिस्टौलोजिकल भिन्नन

(Physiological division of labour and correlated histological differentiation)

अमीवा, एन्टअमीवा, ट्रिपैनोसोम, मलेरिया पैरासाइट आदि सभी जीव एककोशिकीय होते हैं। अर्थात् इन सभी का सम्पूर्ण शरीर केवल एक सेल का बना होता है। इसके विपरीत हाइड्रा, केचुआ (Earthworm), तिलचिट्टा (Cockroach), मेढक इत्यादि जीवो का शरीर असख्य सेल्स का बना होता है। इसीलिए इन सभी जीवो को मैटाजोआ कहते हैं। किसी भी मैटाजोअन

प्राणी की सेल्स की तुलना किसी मनुष्य-समुदाय या परिवार से की जा सकती है। यदि आज भी कोई मनुष्य आदिवासियो की भाँति अकेला रहे, समाज अथवा किसी दूसरे मनुष्य से उसका किसी प्रकार का सम्पर्क न हो तो वह भी आदि समाज के मनुष्य की भाँति आत्मोन्मुख होगा उसे स्वय ही अपना भोजन पकाना पडेगा, स्वय ही शिकार करना पडेगा, मकान वनाना पडेगा, खेत जोतना पडेगा और स्वय ही अपनी रक्षा करनी पडेगी। सक्षेप में अपनी अरथी या जनाजे की व्यवस्था को छोड उसे अपने सभी काम स्वय ही करने पडेंगे। अमीवा के समान सभी एक कोशिकीय जन्तुओ को पुरातन वन्य-पुरुष की भाँति रहना पडता है। इन्हें भी अपनी एक सेल के द्वारा ही सभी जीवन-क्रियायों जैसे भोजन की खोज, उसे निगलना, सिक्रीशन (secretion), भोजन को पचाना, साँस लेना, मल पदार्थों को वाहर निकालना, चलना और सन्तान उत्पन्न करना पडता है।

आधुनिक मानव-समाज मे कोई भी मनुष्य पूर्ण नही होता है। लोग समुदायो मे विभक्त होकर जीविकोपार्जन के लिए अलग-अलग प्रकार के काम करते हैं। किसान अन्न उपजाते हैं, वावर्ची खाना पकाते है, दर्जी कपडे सीते हैं और डाक्टर स्वास्थ्य की देख-भाल करते है। इसी प्रकार अन्य सभी कार्यों का विभाजन हो जाता है। समाज के सभी आवश्यक कार्यों का इस प्रकार बँटवारा तथा अलग-अलग लोगो अथवा समुदायो को सौंपना **श्रम-विभाजन** (division of lalour) कहलाता है।

मैटाजोअन जन्तु एक प्रकार से एक समाज (community) के समान होते हैं और उनकी प्रत्येक सेल समाज के एक प्राणी के समान होती है। समाज के विभिन्न वर्ग के लोग अपने-अपने कार्य में दक्ष हो जाते हैं और उनका जीवन तथा वेश-भूषा दोनो ही इन विशिष्ट कार्यों के अनुरूप हो जाता है। उदाहरणार्थ किसान खत गोडने, वीज वोने और फसल काटने में, रसोइया रोटी वनाने और आटा गूँथने की कला में, लिपिक (clerk) हिसाव लिखने में तथा चिकित्सक रोग-निवारण मे दक्ष हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार मैटाजोअन जन्तुओ की सेल्स में भी श्रम-विभाजन होता है और प्रत्येक वर्ग की सेल्स कुछ विशिष्ट कार्यों को दक्षतापूर्वक करने के लिए सरचना और आकार में विशेपरूप से बदल जाती हैं।

श्रम-विभाजन की एक और भी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। एक ही प्रकार का कार्य करनेवाले सभी मनुष्य प्राय पास-पास रहते हैं। उदाहरण के लिए कोयला खोदनेवाला प्राय खान (mine) के आस-पास ही रहते हैं। इसी प्रकार किसान देहातो में रहते हैं। साराश यह है कि मानव-समाज में कार्यानुसार वर्गीकरण हो

जाता है। मेटाजोअन प्राणियो की सेल्स का भी यही हाल होता है। यहाँ भी एक ही प्रकार का कार्य करनेवाली सेल्स ऊतक या टिशू (tissue) वनाती है और अपने कार्यों को अधिक निपुणतापूर्वक करने के लिए प्रत्येक ऊतक की सेल्स का हिस्टॉलोजिकल विभेदीकरण (histological differentiation) हो जाता है। सेल्स के इन समूहो को, जिनकी प्रत्येक सेल रचना तथा आकार में एक ही सी होती है, ऊतक (tissue) कहते है· इसी विधि से मौरफौलोजिकल विभेदीकरण (morphological differentiation) फिजियालोजिकल श्रम-विभाजन (physiological division of labour) से सवद्ध होता है।

श्रम-विभाजन से सवद्ध रचनात्मक या मौरफोलोजिकल भिन्नन के प्रारम्भिक रूप का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हाइड्रा (Hydra) में मिलता है। हाइड्रा की एपिडर्मल सेल्स (epidermal cells) विशेष तौर पर रक्षक तथा सवेदी (sensory) होती है। इसके विपरीत गैस्ट्रोडर्मिस की सेल्स पाचक और सवेदी (sensory) होती हैं। अपने कार्य के अनुरूप एक्टोडर्मल सेल्स आकार में तिकोनी या शक्वाकार और छोटी होती हैं और एक दूसरे से सटी हुई मिलती है। एन्डोडर्मल सेल्स अपेक्षाकृत वडी, लम्बी, अमीबौयड (amoeboid) और उसकी भीतरी सतह पर फ्लैजिला होती है। एपिडर्मिस तथा गैस्ट्रोडर्मिस दोनो ही एपिथीलियम का निर्माण करते हैं और दोनो ही मे पेशी ऊतक के विभेदीकरण का आरभ दिखाई देता है। हाइड्रा में न तो किसी प्रकार की सयोजी ऊतक है और न किसी प्रकार का वाहिनी या एक्सक्रीटरी-सिस्टम होता है क्योकि पचा हुआ भोजन विसरण (diffusion) द्वारा एक सेल से दूसरी सेल में पहुँच जाता है।

वर्गीकरण (Classification)

सीलन्ट्रेट प्राणियो (*Coelenterates*) को तीन वर्गों (classes) मे विभाजित किया जाता है —

(१) क्लास हाइड्रोजोआ (class *Hydrozoa*)
(२) क्लास स्काइफोजोआ (class *Scyphozoa*)
(३) क्लास एन्थोजोआ (class *Anthozoa*)

(१) **क्लास हाइड्रोजोआ** (*Hydrozoa*)—इसमें हाइड्रा (*Hydra*) अन्य प्रकार के पौलिप्स, छोटी-छोटी जेली मछलियाँ, ओबेलिया (*Obelia*) तथा कुछ कोरल्स (*Corals*) होते है। हाइड्रा के सम्बन्ध में तुम पढ

चुके हो। हाइड्रा के समान कुछ प्राणियों को छोडकर इस वर्ग के अन्य सभी प्राणी प्राय समुद्र में पाये जाते हैं।
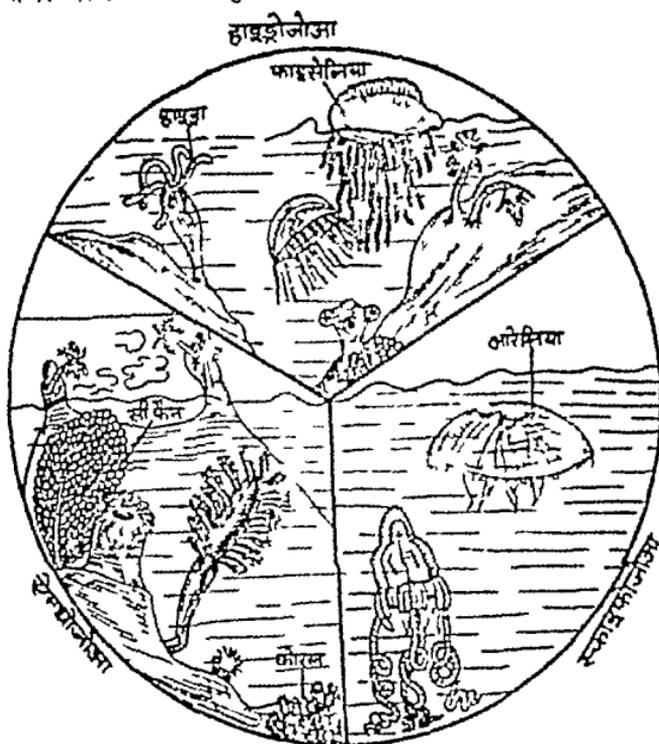
चित्र २६६—सीलन्ट्रेटा का वर्गीकरण

(२) क्लास स्काइफोजोआ (*Scyphozoa*)—इसमें बहुत सी बडी-बडी सामुद्रिक जेली मछलियाँ मिलती हैं जो एक इच से लेकर कई फुट तक चौडी होती हैं। इसी वर्ग में ऑरेलिया (*Aurelia*) होता है।

(३) क्लास एन्थोजोआ (Class *Anthozoa*)—इस वर्ग मे सामुद्रिक अनिलपुष्प या सी-एनीमोन (*Sea-anemones*), मूंगे और कोरल्स (corals) होते हैं।

प्रश्न

१—हाइड्रा की काय-भित्ति (body wall) मे मिलनेवाली विभिन्न प्रकार की सेल्स का सविस्तार वर्णन करो।

२—हाइड्रा के प्राकृतवास (habitat), सामान्य व्यवहार (behaviour) तथा बाहरी आकृति का वर्णन करो।

३—हाइड्रा में अनुप्राशन (feeding) तथा शत्रु से आत्मरक्षा की विधि को विस्तारपूर्वक समझाओ।

४—"फिजियालोजिकल श्रम-विभाजन तथा सबद्ध हिस्टोलोजिकल भिन्नन" ("Physiological division of labour correlated histological differentiation") का क्या अर्थ है? हाइड्रा का उदाहरण देकर इसे ठीक-ठीक समझाओ।

५—हाइड्रा के शरीर के बीचोबीच भाग के अनुप्रस्थ सेक्शन (transverse section) का चित्र खीचकर विभिन्न प्रकार की सेल्स की रचना

है और न पचा हुआ भोजन देहभित्ति तक। अत सीलोमेट (Coelomate) जन्तुओ में परिवहन तन्त्र की आवश्यकता पडती है जिससे आक्सीजन, भोजन आदि का उचित वितरण शरीर के कोने कोने में हो सके।

(३) इस फाइलम के प्राणियो के शरीर मे **समखडीय विभाजन** (metameric segmentation) मिलता है।

चित्र २६७—ट्रिप्लोब्लास्टिक जन्तु का सेक्शन

(४) इन जन्तुओ मे **द्विपार्श्व समिति** (bilateral symmetry) मिलती है। इसमे अधिकाश अग युग्मित (paired) होते हैं। अत इन प्राणियो की आधारभूत सरचना जन्तुओ के शरीर में केवल एक ही ऐसा समतल (plane) होता है जहाँ पर काटने से इनको दो समितीय अर्ध भागो में बाँटा जा सकता है।

(५) इन जन्तुओ के **केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र** (central nervous system) में पृष्ठ भाग पर स्थित दो **सेरिब्रल गैंगलिया** (cerebral ganglia) तथा प्रतिपृष्ठ सतह पर एक ठोस **वेन्ट्रल नर्व कॉर्ड** होता है जिसके प्रत्येक गैंगलियन में नर्व सेल्स मिलती हैं। नर्व कॉर्ड शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ होता है। इन जन्तुओं में शीर्ष निर्माण (head formation) की भी विशेष प्रवृत्ति (tendency) मिलती है। सिर में सामान्य तौर पर सवेदाग (sense organs) होते हैं जो इन जन्तुओ को पर्यावरण (environment) के सम्पर्क में रखने मे सहायता देते है। चलने के समय शरीर के उस सिरे में जो सबसे आगे होता है विशेषतौर पर सवेदाग भी पाये जाते हैं। इन्ही सवेदागो से सम्बद्ध जो तन्त्रिका कोशिकाएँ मिलती हैं उसी के सकेन्द्रण (concentration) के परिणामस्वरूप सेरिब्रल गैंगलिया की रचना होती है।
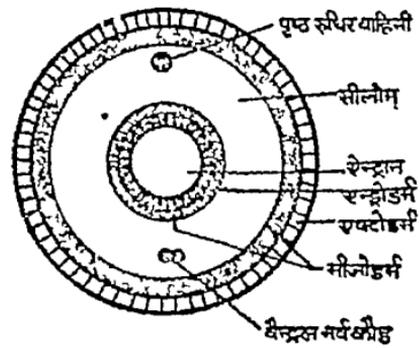
केंचुए
(Earthworms)

ससार के लगभग सभी भागो में केंचुए मिलते हैं यहाँ तक कि ऊँचे-ऊँचे

पहाड़ों पर १०,००० फुट की ऊँचाई तक भी ये मिलते हैं। ये मिट्टी खाते हुए भूमि में भीतर घुसते चले जाते हैं और सुरंगें (burrows) बनाते हैं जिनमें ये रहते हैं। इस प्राकृतवास के ही कारण इनको "अर्थ वर्म" (earthworm) कहते हैं। सुरंगें आमतौर पर ऐसी मिट्टी में ही बनती हैं जो मुलायम होती है तथा जिनमें धरण (humus) की भी काफी मात्रा होती है। ऐसी मिट्टी में सुरंग केवल शरीर के थोड़े से दबाव के ही फल-स्वरूप बन जाती है। मिट्टी को निगल जाने का स्वभाव इन जन्तु को विशेषतया ने मिट्टी में सुरंग बनाने में सहायता देता है। निगली हुई मिट्टी में अगर खाद्य पदार्थ हुआ तो आहार-नाल में उसका पाचन और अवशोषण हो जाता है और शेष मिट्टी शरीर के पिछले सिर पर स्थित गुदा से बाहर निकल जाती है। केंचुए का मल पुरीष पुञ्जों (castings) के रूप में दिखाई पड़ता है। कभी-कभी केंचुए अपनी विष्ठा को अपनी दुम से दबा-दबाकर सुरंग के चारों ओर अपनी त्वचा से निकलने वाले एक लसीले रस की सहायता से चिपकाते रहते हैं। इस प्रकार ये अपनी सुरंग की दीवारों को चिकनी और दृढ़ बना लेते हैं। इन प्राणियों के शरीर की सतह से एक प्रकार का कीटाणुनाशक (antiseptic) तरल द्रव निकला करता है जो मिट्टी में पाये जानेवाले हानिकारक जीवाणुओं (bacteria) से इनकी त्वचा की रक्षा करता है। कभी कभी इनकी सुरंगें एक या दो फुट गहरी होती हैं। कहीं-कहीं इनमें सूखी पत्तियाँ बिछी होती हैं। सुरंग का पेंदा (bottom) अपेक्षाकृत अधिक चौड़ा होता है जिसमें केंचुए आसानी से घूम फिर सकते हैं। ये कभी-कभी पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ों से सुरंग के द्वार को ढँक देते हैं जिससे वर्षा का जल, कनखजूरे (*Centipede*) इत्यादि भीतर नहीं घुस पाते।

वसंत तथा गर्मी में जब कभी जगह पानी की कमी होती है तो ये नम या गीली मिट्टी की खोज में कभी-कभी ६ से ८ फुट नीचे तक चले जाते हैं। वर्षा होने पर जब इनकी सुरंगें पानी से भर जाती हैं, तो इनको बाहर निकलना पड़ता है। यही कारण है कि वर्षा ऋतु में ये सभी जगह भूमि पर रेंगते हुए दिखाई पड़ते हैं।

केंचुओं के शत्रु

केंचुए के अनेक शत्रु होते हैं जिनमें से कुछ चिड़ियाँ तो इतनी घातक होती हैं कि वे इन्हें सुरंगों के बाहर खींच-खींचकर खा जाती हैं। भूमि पर रेंगते समय टोड (toad), मेढक, छिपकलियाँ, साही (hedgehog) तथा अन्य अनेक जीव इन्हें चट कर जाते हैं। कनखजूरे और छछूंदर तो सुरंग (burrow) के भीतर घुसकर इनका पीछा करते हैं। कभी-कभी सुरंग या बिल में घुसते समय

चिडियाँ इन्हे पकड लेती हैं और यदि ये इन्हें खीचने में असमर्थ हुई तो केवल **दुम** को ही कुतर लेती हैं। केंचुओ को इससे कोई विशेष हानि नही होती क्योकि कुछ समय में ये कटे हुए भाग का पुनर्जनन (regeneration) कर लेते हैं। इस पुनर्जनन के ही कारण अनेक प्रकार के शत्रुओ के होते हुए भी इनकी सख्या में कमी नही होने पाती।

केंचुओ का आर्थिक महत्त्व

केंचुए किसानो के बहुत बडे सहायक और मित्र हैं ये किसानो को निम्न प्रकार से सहायता देते हैं —

(१) केंचुओ की सुरगें, जो कभी कभी कई फुट गहरी होती हैं, पेडो की कोमल जडो और हवा को भूमि में प्रवेश करने का मार्ग देती हैं।

(२) जिन सूखी और सडी हुई पत्तियो को केंचुए खाने के लिए सुरगो में घसीट ले जाते हैं, वे सडकर मिट्टी को अधिक उपजाऊ बना देती हैं।

(३) केंचुए का **गिजर्ड** एक महत्त्वपूर्ण चक्की का काम करता है। यह निगली हुई मिट्टी को छोटे-छोटे टुकडो में पीस डालता है जिसके परिणामस्वरूप जल को अपनी क्रिया के लिए भूमि की अपेक्षाकृत अधिक सतह मिल जाती है जिससे लवण अधिक मात्रा में घुल सकते हैं।

(४) प्रसिद्ध प्राणिविज्ञानज्ञ **चार्ल्स डार्विन** (*Charles Darwin*) के अनुसार केंचुए धरती को जोतनेवाले (tillers) कहे जा सकते हैं। ये अपरिमित मात्रा में भूमि की गहराई से मिट्टी मल के रूप में ऊपर ले जाते है और इस प्रकार कुछ समय के बाद ये खेती के लिए उत्तम मिट्टी बनाते रहते हैं। डार्विन के अनुसार प्रत्येक एकड भूमि में लगभग ५,३०० केंचुए रहते हैं। एक वर्ष में ये नीचे से इतनी मिट्टी निकाल कर भूमि की सतह पर इकट्ठा कर देते है कि उस मिट्टी की लगभग १५ इच मोटी पर्त बन जाती है।

इस प्रकार केंचुए द्वारा जो भूमि की गुडाई होती है उसका मूल्य आँकना आसान नही है। मनुष्य द्वारा बनाई मशीनें और योजनाएँ इसकी समता नही कर सकती। यह बिल्कुल सही है कि यदि केंचुए भूमि की गुडाई और उसे अधिक उपजाऊ बनाने में किसानो की सहायता न करें तो किसान के लिए फसल का पैदा करना कठिन हो जाय। इस महान् उपकार के अतिरिक्त ये

कुछ जगली जातियो का भोजन भी हैं और इनके छोटे-छोटे टुकडे मछली पकडने के काम में भी लाए जाते हैं।

ससार में केंचुए की लगभग १८०० स्पेशीज मिलती है। इनमें से लगभग ५०० भारतवर्ष में ही पाई जाती हैं। उत्तरी भारत में वर्षा के दिनो में आमतौर पर **फ़ेरीटिमा पोस्थ्यूमा** (*Pheretima posthuma*) और **यूटाइफियस वाल्टोनाइ** (*Eutyphoeus waltoni*) दिखाई पडते हैं।

फ़ेरीटिमा पोस्थ्यूमा

(*Pheretima posthuma*)

बाह्याकृति (External features)

इस कचुए का शरीर लम्बा, पतला, रम्भाकार, लसलसा (slimy) और दोनो सिरो पर कुछ नुकीला होता है। अत इसकी आकृति सुरग खोदने के लिए उपयुक्त होती हैं। एक प्रौढ केंचुए की लम्बाई लगभग १५० मिलीमीटर और चौडाई ३ से ५ मिलीमीटर तक होती है। शरीर के अगले सिरे के कुछ ही पीछे इसके शरीर का सबसे अधिक मोटा भाग होता है। इसका रग गाढ़ा भूरा होता है। पृष्ठ सतह आमतौर पर प्रतिपृष्ठ सतह की अपेक्षा अधिक गहरे रग की होती है। त्वचा का यह रग "पोरफाइरिन" (porphyrin) नाम के रग की उपस्थिति से होता है। सडी-गली पत्तियाँ खाकर केंचुए जिन्दा रहते हैं। इन्ही पत्तियो के क्लोरोफिल (chlorophyll) की टूटफूट के फलस्वरूप यह रग बनता है। पचे हुए भोजन के साथ यह रग रुधिर प्रवाह में पहुँच जाता है और फिर एपिडर्मिस की कोशिकाओ में इकट्ठा हो जाता है। इस रग का कार्य कदाचित् त्वचा को प्रकाश के हानिकारक प्रभाव से बचाता है।

इसके शरीर का **समखडीय-विभाजन** (metameric segmentation) बाह्य आकृति में स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। इन खडो की सीमा अनेक छिछली प्रसीताएँ (grooves) निर्धारित करती हैं। शरीर में १०० से लेकर १२० खड (segments) होते है। आन्तरिक विभाजन के लिए शरीर के भीतर सेप्टा (septa) की शृखला (series) मिलती है। प्रथम खड जिसमे प्रतिपृष्ठ सतह के समीप **मुखद्वार** (mouth) होता है, **पेरीस्टोमीयम** (peristomium) कहलाता है। इस खड के ऊपरी भाग में एक छोटा-सा सवेदी लोब होता है जिसे **प्रोस्टोमीयम** (prostomium) कहते हैं। प्रौढ जन्तु के अगले सिरे से लगभग २० मिलीमीटर पीछे ग्रन्थिल ऊतक की एक उभरी हुई गोल पट्टी मिलती है जिसे

क्लाइटेलम (clitellum) कहते हैं। यह १४, १५ और १६ खडो में होता है।

प्रथम, अन्तिम और क्लाइटेलम के तीन खडो को छोडकर अन्य सभी खडो के मध्य भाग में अनेक सीटी (setae) एक वलय में मिलती हैं। प्रत्येक सीटा एक थैली (sac) में स्थित रहता है। यह सीटा, काइ-टिन (chitin) का बना होता है और आकार में कुछ-कुछ खिचे हुए ꞅ के समान होता है। इसका ऊपरी सिरा पीछे की ओर झुका रहता है। इसलिए यदि केंचुए के शरीर की सतह पर पीछे से आगे की ओर हाथ फेरा जाय तो एक प्रकार का खुर-दरापन मालूम होता है।

वैन्ट्रल सतह अपने हल्के रग के कारण डौर्सल सतह से सहज ही में पहचानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त वैन्ट्रल भाग में नर और मादा जनन-छिद्र (generative apertures) भी मिलते हैं। नारी जनन-छिद्र (female generative aperture) १४वें सेगमेन्ट के मध्य भाग में स्थित होता है। यह एक हल्के सफेद रग के धब्बे-सा दिखाई देता है। इसके विपरीत नर जनन-छिद्र दो होते है जो १८वें सेगमेन्ट की मध्य रेखा के इधर उधर स्थित होते हैं और आकार में अर्धचन्द्राकार होते हैं। इन्ही छेदो की सीध में १७वें और १९वें खडो में जनन अंकुर (genital papillae) मिलते हैं। स्परमैथीकल छेदों (spermathecal pores) के चार जोडे होते हैं जो क्रमश ५/६, ६/७, ७/८ और ८/९ इन्टरसेगमेन्टल ग्रूव्स (intersegmental grooves) के वन्ट्रोलेट्रल भागो में स्थित होते हैं। पृष्ठ सतह पर बीचोबीच में १२वे खड के बाद प्रत्येक खड में एक पृष्ठ छिद्र (dorsal pore) होता है जो देहगुहा में खुलता है।

चित्र २६८—फैरीटिमा पौस्थ्यूमा की वाह्याकृति क, पूर्ण शरीर, ख, प्रथम तीन खड का विशालित दृश्य

देहभित्ति (Body wall)

देहभित्ति में सबसे बाहर की ओर पतला, वेध्य (pervious) तथा

लचीला क्यूटीकल (cuticle) होता है। इसके नीचे एपिडर्मल सेल्स का एक एकहरा स्तर होता है जिसमें तीन प्रकार की सेल्स होती हैं —

(१) **आश्रय कोशिकाएँ** (supporting cells)

(२) **सवेदी कोशिकाएँ** (sensory cells)

(३) **ग्रन्थिल कोशिकाएँ** (glandular cells)

इनमें से अधिकाश कोशिकाएँ स्भाकार (columnar) होती हैं। सवेदी कोशिकाएँ विभिन्न प्रकार के ग्राहक अगो का निर्माण करती है। जो एककोशिकीय या बहुकोशिकीय होते हैं। **ग्रन्थिल कोशिकाएँ** भी दो प्रकार की होती हैं —**श्लेष्म** (mucous) और **एलब्युमिनस ग्रन्थिल सेल्स** (albuminous gland cells) **एपिडर्मिस** (epidermis) के नीचे पेशी-तन्तुओं की एक दोहरी पर्त होती है। बाहरी पर्त **वर्तुल पेशी** की और भीतरी **लौंगिट्यूडिनल पेशी** की होती है। लौंगिट्यूडिनल पेशी की पर्त वर्तुल-पेशी की पर्त से लगभग दो गुनी मोटी होती है। और इसके नीचे वर्तुल-पेशी का एक और पतला स्तर होता है जिसकी भीतरी सतह पर **सीलोमिक एपिथीलियम** होता है। प्रत्येक खड के मध्य भाग में जहाँ पर सीटी (setae) होती हैं **सीटल सैक** (setal sac) से जुडी हुई दो प्रकार की विशिष्ट पेशियाँ मिलती हैं। **प्रोट्रैक्टर्स** (protractors) सीटल सैक से निकलकर ऊपर की ओर वर्तुल-पेशी स्तर से जुडे रहते हैं और **रिट्रै-**
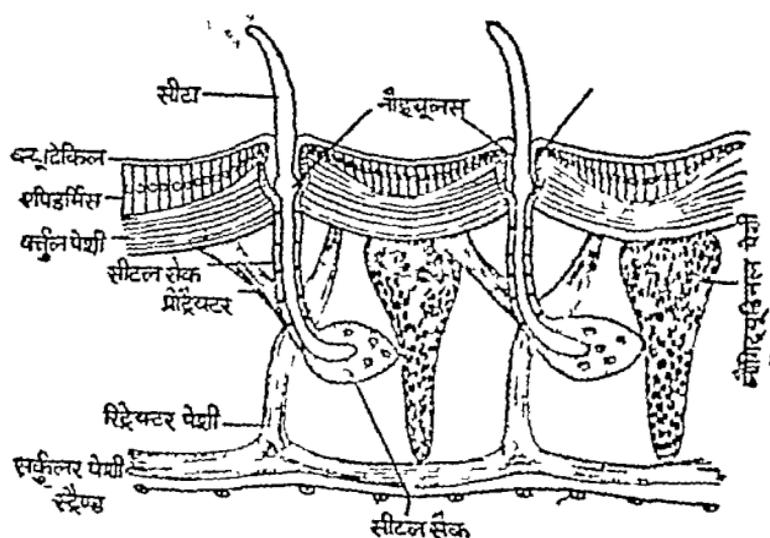
चित्र २६९—बौडी वॉल की सरचना (सेक्शन)

क्टर (retractor) सीटल सैक के निचले भाग से निकलकर वर्तुल पेशी के पट्ट (strand of circular muscle fibres) के उस पतले स्तर से जुडे रहते हैं जो कि सीलोमिक एपिथीलियम से जुडा होता है।

देहभित्ति के कार्य :—

(१) यह पूरे शरीर का महत्त्वपूर्ण रक्षक आवरण है। इसी की उपस्थिति के कारण सभी भीतरी अंग सुरक्षित रहते हैं। म्यूकस के कारण त्वचा लसलसी और स्वच्छ बनी रहती है और बैक्टीरिया आदि भी उस पर पनपने नही पाते।

(२) पतली, वेध्य (pervious) तथा सवहनीय (vascular) होने के कारण केंचुओं में देहभित्ति ही श्वसनअंग (respiratory organ) का कार्य करती है। त्वचीय-श्वसन (cutaneous respiration) के लिए इसका सदैव नम बना रहना आवश्यक है। कुछ हद तक भूमि की नमी द्वारा और कुछ हद तक पृष्ठ-छिद्रों (dorsal pores) से निकलनेवाली सीलोमिक फ्ल्यूड तथा श्लेष्म-ग्रन्थियों (mucous glands) के रस द्वारा त्वचा नम बनी रहती है।

(३) त्वचा एक सफल ग्राहक अंग (receptor organ) का भी कार्य करती है।

(४) सुरंग (burrows) की दीवारों को टीपने के लिए इसकी त्वचा की ग्रन्थियाँ म्यूकस बनाती हैं जो सीमेंट के समान काम करता है।

(५) सीटी (setae) केंचुओं के चलन में सहायता देती है।

चलन (Locomotion)

यद्यपि केंचुओं के हाथ-पैर नहीं होते फिर भी वे अपनी पेशियों तथा सीटी (setae) की सहायता से बडी तेजी से रेंगते हैं। चलन में ये अपनी मुख-गुहा (buccal cavity) को एक चूषक (sucker) की भाँति काम में लाते हैं। प्रोट्रैक्टर पेशियों के कुंचन से सीटी बाहर निकल आती है किन्तु रिट्रैक्टर (retractor) पेशियों के कुंचन से ये सीटल सैक के भीतर खिंच आती हैं।

इन जन्तुओं को सोखते के समान खुरदरे कागज पर रखकर देखने से इनके चलने का ढंग भली भाँति समझ में आ सकता है। ऐसा करने पर पता चलता है कि सर्वप्रथम ये शरीर के अगले भाग को लम्बा करके आगे बढाते हैं। इस भाग की वर्तुल पेशी के कुंचन से लम्बाई बढ जाती है। इसके बाद इसी भाग की लॉंगिट्यूडिनल तथा अग्राकर्षक (protractors) पेशियों का कुंचन होता है। लॉंगिट्यूडिनल पेशियों के कुंचन से यह भाग छोटा हो जाता है और तब बाहर की ओर निकली सीटी खूंटी की भाँति भूमि में धँसकर उसे दृढतापूर्वक पकडकर जन्तु को पीछे खिसकने से रोकती हैं। ठीक इसी समय शरीर का पिछला भाग अधिक लम्बा हो जाता है। इस भाग की सभी सीटी भीतर खिंच आती हैं और ऐसी दशा में यह भाग सुगमतापूर्वक आगे की ओर

खीच लिया जाता है। इस भाग के आगे की ओर खिंच जाने के पश्चात् सीटी फिर वाहर निकलकर भूमि को पकड लेती हैं। इस प्रकार जव शरीर का पिछला भाग दृढतापूर्वक भूमि को पकड लेता है तव अगला सिरा पुन लम्बा होकर आगे वढता है। इस प्रकार पूरे शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक लम्बे होने तथा सिकुडने की लहर-सी पैदा हो जाती है जो आगे से पीछे की ओर वढती है और रेंगने में सहायता देती है। इस प्रकार वर्त्तुल (circular) तथा लौंगिट्यूडिनल पेशियाँ और सीटी—ये सव चलन में सहायता देती हैं।

यदि आवश्यकता होती है तो सीटी की दिशा वदलकर केंचुआ पीछे की ओर भी चल सकता है। ऐसा करना कोई असाधारण वात नही है क्योंकि सुरग (burrow) में पीछे हटते समय प्राय उसे ऐसा ही करना पडता है। कभी-कभी उत्तेजित किये जाने पर यह झटको के साथ तेजी से इधर-उधर चलता है। ऐसी परिस्थिति में यह वास्तव में अपने दुश्मनो के चगुल से भाग निकलना चाहता है।

सीलोम (Coelom)

पृष्ठ सतह की मध्य रेखा के किनारे-किनारे अगर तुम **फैरिटीमा** की त्वचा को काटो तो इसके शरीर के भीतर एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली सीलोम दिखाई देगी। शरीर के भीतर सेप्टा (septa) की एक श्रृखला मिलती है। इन सेप्टा का विन्यास शरीर के समखडीय विभाजन के अनुरूप होता है। शरीर के प्रथम चार सैगमेन्टस में सेप्टा नही होते इसीलिए इस भाग की देहगुह अविभाजित दिखाई पडती है। पहला सेप्टम जो ४थे और ५वें सैगमेन्टस के वीच में होता है, पतली झिल्ली के समान (membranous) होता
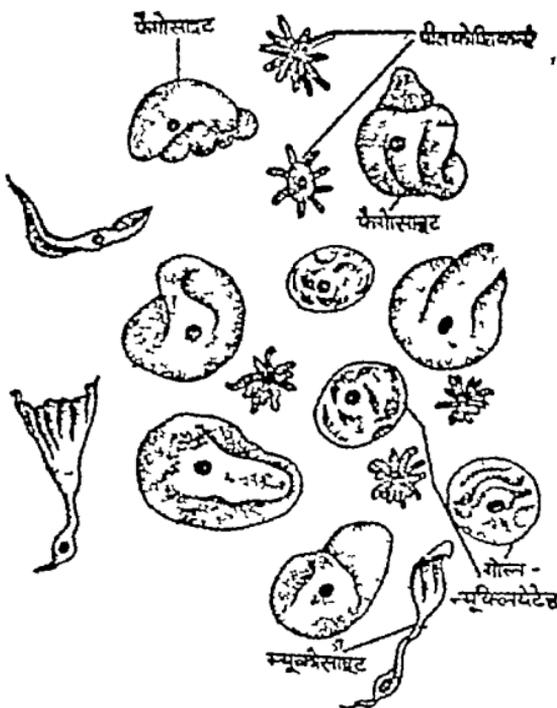
चित्र २७०—सीलोमिक फ्ल्यूड में मिलनेवाली विभिन्न प्रकार की सेल्स

है। इसके बाद वाले ५ सेप्टा (septa) जो ५/६, ६/७, ८/९ और १०/११ सैगमेन्टस के बीच में मिलते हैं अपेक्षाकृत मोटे और पेशीय (muscular) होते है और इन सभी में कुछ घुमाव (curvature) होता है। ये सेप्टा जिस स्थान पर देह-भित्ति से जुडे होते हैं, उसके कुछ दूर पीछे ये आहार-नाल से जुडे होते हैं। इस व्यवस्था के फलस्वरूप ये सभी शक्वाकार (conical) होते हैं और इन सभी के नुकीले सिरो के पीछे की ओर एक दूसरे के अन्दर रहते हैं। ११/१२ सेप्टम के पीछे स्थित अन्य सभी सेप्टा पतले और द्रासवर्स होते है। अगले १५ सेप्टा को छोडकर अन्य सभी निछिद्रित (perforated) होते है जिसके फलस्वरूप सीलोम में भरी हुई सीलोमिक फ्ल्यूड शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अवाध (uninterrupted) गति से प्रवाहित होती रहती है।

इस प्रकार विभाजित सीलोम के भीतर दूध के समान एक सफेद द्रव होता है। माइक्रोसकोप द्वारा देखने पर इसमें चार प्रकार की सेल्स मिलती है। इनमें **फैगोसाइट्स** (phagocytes) अन्य सेल्स की अपेक्षा सख्या में सब से अधिक, बडे और एमीबोएड (amoeboid) होते हैं। शरीर के भीतर घुसनेवाले बैक्टीरिया को ये अमीबा की भाँति निगलकर नष्ट कर देते है। दूसरे प्रकार की छोटी तथा पीली सेल्स को **पीत-कोशिकाएं** (yellow cells) या **क्लोरागोगन सेल्स** (chloragogen cells) कहते हैं। ये अपने गहरे पीले रग तथा विचित्र उभारो (vesicular swellings) के कारण आसानी से पहचानी जा सकती हैं। तीसरी प्रकार की **गोल न्यूक्लियेटेड सेल्स** (circular nucleated cells) फैगोसाइट्स (phagocytes) से छोटी और क्लोरागोगन सेल्स से वडी होती हैं। **म्यूकोसाइट्स** (mucocytes) का आकार विचित्र होता है। इनका एक सिरा पखे जैसा फैला होता है।

पृष्ठ छिद्र (dorsal pores) **द्वारा सीलोम बाहर से अपना संबध बनाये** रखती है। अगले बारह शरीर-खडो को छोडकर अन्य सभी खडो के पृष्ठ-सतह पर सीताओ (grooves) में पृष्ठ छिद्र (dorsal pores) होते हैं। इन छेदो से सीलोमिक फ्ल्यूड बाहर निकला करती है और त्वचा को नम बनाये रखने में तथा उसकी सतह पर एकत्रित बैक्टीरिया को मारने में सहायता देती है।

पाचक तंत्र

(Digestive system)

केंचुए की आहार-नाल एक सीधी नली के रूप में शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती है। प्रथम खड की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्थित मुखद्वार में इसका आरम्भ होता है और अतिम खड में स्थित गुदा (anus) में अन्त होता है। इसमें निम्न भाग होते हैं —
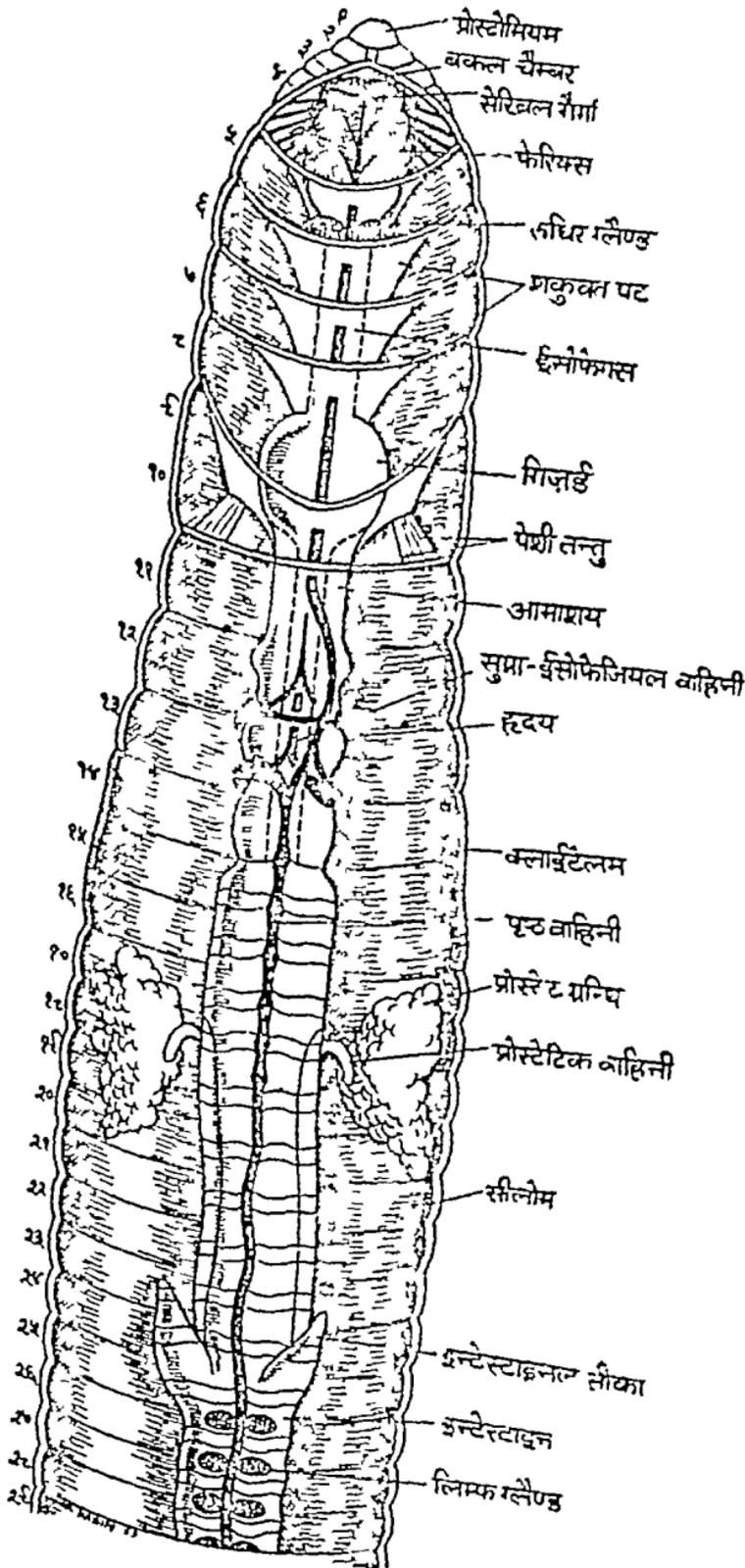
चित्र २७१—केंचुए की सीलोम तथा आहार-नाल

केचुए का अर्धचन्द्राकार मुंह, जो कि प्रतिपृष्ठ सतह पर होता है, मुख-गुहा (buccal cavity) में खुलता है जो कि तीन खडो (segments) में स्थित होती है। इसकी दीवारें पतली होती हैं और इसके चारो ओर रिट्रैक्टर (retractor) और प्रोट्रैक्टर (protractor) पेशियाँ होती हैं जिनके कुचन से चलन (locomotion) तथा अन्तर्ग्रहण (ingestion) के समय केचुए आवश्यकतानुसार मुख-गुहा को बाहर निकाल लेते हैं या भीतर खीच सकते है। मुखगुहा फैरिक्स (pharynx) में खुलती है। दोनो के बीच
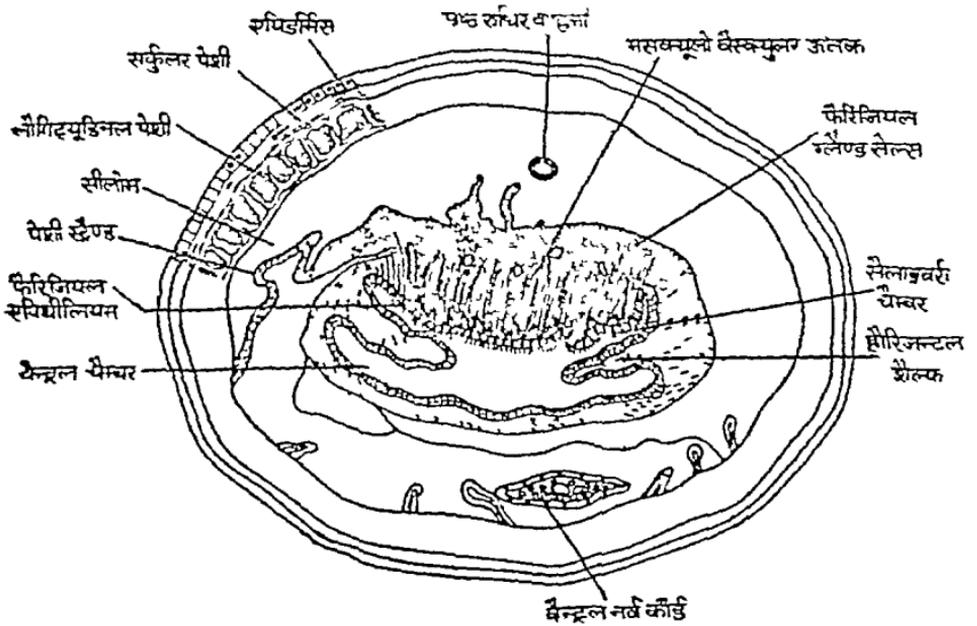
चित्र २७२—फैरिक्स (pharynx) का ट्रांसवर्स सेक्शन

में पृष्ठ सतह पर छिछली खाई (groove) होती है जिसमें सेरिब्रल गेंगलिआ (cerebral ganglia) मिलते है। आकार मे फैरिक्स नाशपाती के समान होता है। यद्यपि इसकी कैविटी या गुहा एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैली होती है किन्तु ऊपर से नीचे काफी सँकरी हो जाती है। इस प्रकार सँकरी होने का कारण है एक गाँठ सदृश रचना जिसे फैरिजियल वल्ब (pharyngeal bulb) कहते हैं। इसकी उपस्थिति के कारण फैरिक्स की छत नीचे की ओर धँस जाती है। इसके अलावा फैरिक्स की दोनो पार्श्व दीवारे (lateral walls) भीतर की ओर फैलकर दो हौरिजौन्टल शैल्फ (horizontal shelf) वनाती हैं।

फैरिजियल वल्व तीन भागो मे वाँटी जा सकती है। सवसे ऊपर गहरे रग की ग्लैण्डसेल्स होती हैं। ये श्लेष्मि (mucin) और प्रोटीन पर क्रिया करनेवाला एक एन्जाइम वनाती है। मध्य भाग पेशीय तथा सवहनीय

(musculo-vascular) होता है। इस भाग में अनेक छोटी-छोटी वाहिनियाँ होती हैं जो ग्लैण्ड सेलम द्वारा बनाये गये पाचक रसों को फैरिक्स की गुहा में उँडेलती रहती हैं। सबसे नीचे सीलिण्टेड एपिथीलियम होता है।

फैरिक्स की बाहरी सतह से अनेक पेशी-तन्तु निकलते हैं जो कि काय-भित्ति (body wall) से जुड़े होते हैं। इन्हीं पेशी तन्तुओं के कुचन से
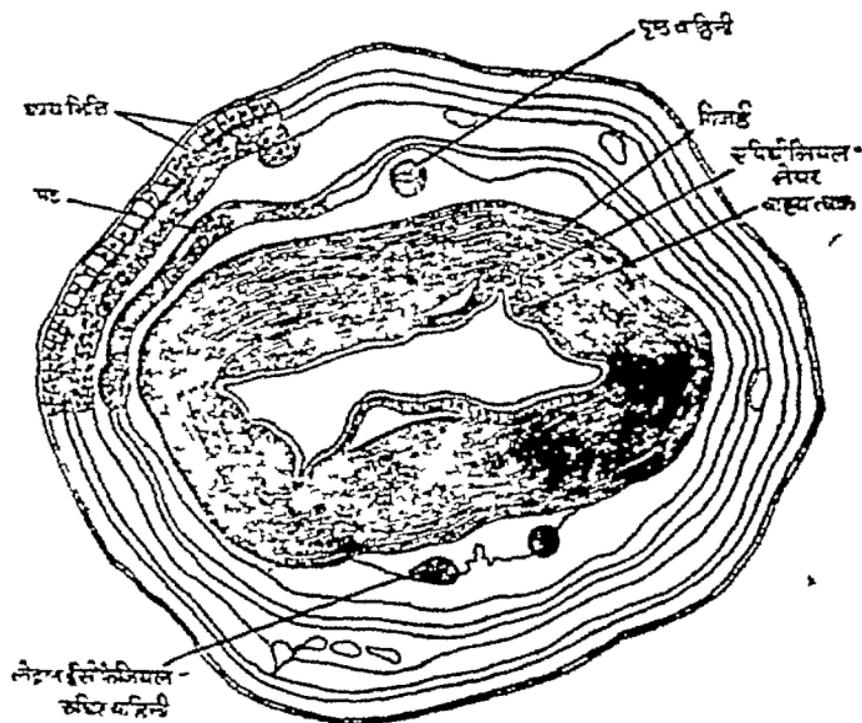
चित्र २७३—गिजर्ड (gizzard) का ट्रांसवर्स सेक्शन

फैरिक्स की गुहा फैल जाती है जिससे भोजन को भीतर खींचने में सहायता मिलती है।

फैरिक्स के पीछे चौथे सेगमेन्ट के अन्तिम भाग से लेकर आठवें खंड के आरम्भ तक इसोफेगस (oesophagus) होता है। यह अपेक्षाकृत सँकरा होता है। आठवें खंड में ईसोफेगस फैलकर एक अंडाकार, पेशीय तथा मजबूत रचना बनाता है जिसे गिजर्ड (gizzard) कहते हैं। इसकी मोटी दीवार का अधिकांश भाग वत्तुल या सरकुलर पेशी तन्तुओं का बना होता है किन्तु भीतरी सतह कॉलमनर एपिथीलियम द्वारा ढकी रहती है। इसकी भीतरी सतह पर क्युटिकल की एक पतली पर्त मिलती है।

गिजर्ड के बाद नवें से लेकर चौदहवें खंडों के बीच आमाशय (stomach) मिलता है। इसके प्रत्येक सिरे पर एक स्फिंक्टर (sphincter) पेशी होती है और इसकी दीवारें संवहनीय तथा ग्रन्थिल होती हैं। आमाशय

की भीतरी सतह लहरियादार होती है। आमाशय की दीवार में पेरिटोनीयम और वर्त्तुल पेशी (circular muscles) के बीच अनेकानेक ग्रन्थि-सेल्स मिलती हैं जो प्रोटीन्स पर क्रिया करनेवाला पाचक रस पैदा करती हैं।

चौदहवें खड के बाद आहार नाल का जो भाग मिलता है, उसे इन्टेस्टाइन (intestine) कहते हैं। आमाशय की अपेक्षा **इन्टेस्टाइन** अधिक चौडी होती है और इसकी दीवारें भी पतली होती हैं। यह शरीर के पिछले सिरे पर **गुदा** में खुलती है। अन्तिम २३ खडो में स्थित इन्टेस्टाइन के भाग को **रेक्टम** (rectum) कहते हैं। २६वें खड में इससे दो नुकीली नलिकाएँ निकलती हैं जो ३–४ खड आगे तक फैली रहती हैं। इन्हें **इन्टेस्टाइनल सीका** (intestinal caeca) कहते हैं। २६वें खड से लेकर अन्तिम के २३ खडो को छोडकर इन्टेस्टाइन की पृष्ठ भित्ति से एक उभार निकलता है जिसे **टिफलोसोल** (typhlosole) कहते हैं। यह इन्टेस्टाइन की भीतरी सतह का क्षेत्रफल बढाता है और इस प्रकार पचे हुए भोजन को सोखने में सहायता देता है।
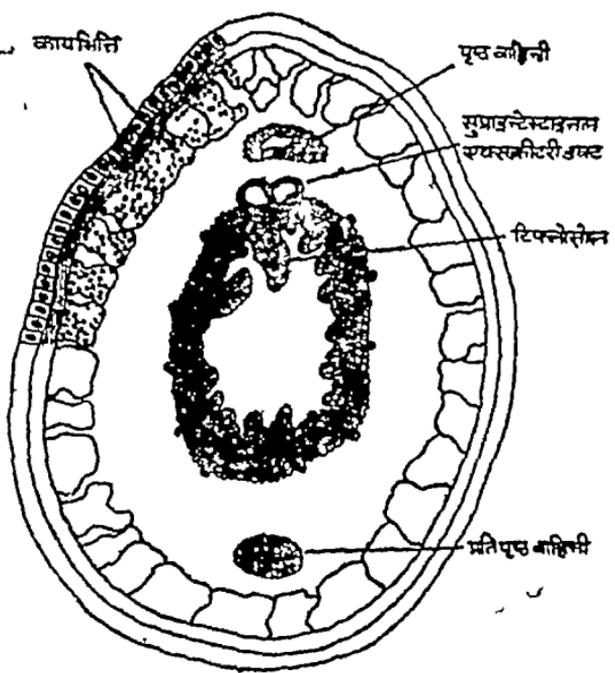
चित्र २७४—फेरीटिमा के टिफलोसोलर भाग का सेक्शन

भोजन तथा **पाचन** (Food and digestion)—केंचुए मिट्टी में मिलनेवाली सडी-गली पत्तियो और अन्य **ऑर्गेनिक पदार्थो** (organic matter) को खाकर जीवित रहते हैं। मिट्टी में मिलनेवाले सडे-गले जीव-जन्तुओ तथा पेड-पौधो को निगलकर अपना भरण-पोषण करते हैं। भूमि की मिट्टी में छोटे-छोटे बीजाणु (spores), अडे (eggs), बीज, लार्वा (larvae) तथा बहुत ही छोटे-छोटे जीवित और मृत जीवधारी होते हैं। ऐसी मिट्टी को ये केंचुए खाते जाते है और धीरे-

धीरे आगे बढते जाते हैं। निगली हुई मिट्टी मुखद्वार (mouth) मे फैरिंक्स में पहुँचती है जहाँ पर वह पाचक रस के सम्पर्क में आती है। इस भाग मे बने हुए पाचक रस में **श्लेष्मि** (mucin) और प्रोटीन पर क्रिया करनेवाला एक एन्जाइम होता है। **म्यूसिन** उपस्नेहक (lubricant) का कार्य करता है और एन्जाइम प्रोटीन्स का पाचन आरम्भ कर देता है। **ईसोफेगस** मे कोई भी पाचन क्रिया नही होती।

केंचुए का **गिजर्ड** एक सुन्दर चक्की के समान काम करता है। इसकी भीतरी सतह की क्यूटिकल (cuticle) और मिट्टी के साथ आये बालू के कण मिट्टी को अच्छी तरह पीसने में सहायता देते हैं। आमाशय में केवल प्रोटीन्स का पाचन होता है जिससे घुलनशील **पेप्टोन्स** (peptones) बन जाते हैं। कुछ लोगो के मतानुसार **इन्टेस्टाइनल सीका** एक **एमिलेटिक एन्जाइम** (amylatic enzyme) उत्पन्न करते हैं जो माडी (starch) के पचने में सहायता देता है।

इन्टेस्टाइन की भित्तियाँ **इन्टेस्टाइनल रस** पैदा करती हैं जिसमें कई प्रकार के एन्जाइम होते हैं। **प्रोटिओलिटिक** (proteolytic) एन्जाइम प्रोटीन पर क्रिया कर उसे **पेप्टोन** (peptone) में बदल देता है, **डायस्टेस** (diastase) माडी को घुलनशील शकर का रूप देता है, **लाइपेज-** (lipase) चर्बी को फैटी एसिड्स (fatty acids) और **ग्लिसरॉल** (glycerol) में तोड-फोड देता है तथा **इनवर्टाइन** (invertine) शकर पर क्रिया करता है। इस प्रकार भोजन मे मिलनेवाले सभी भागो का पाचन हो जाता है। पचे हुए भोजन का अवशोषण विशेषतौर पर इन्टेस्टाइन में स्थित **टिफ्लोसोल** द्वारा हुआ करता है।

मल शरीर के अन्य वर्ज्य पदार्थों के साथ गुदा के बाहर निकाल दिया जाता है। **फेरीटिमा पोस्थ्युमा** (*Pheretima posthuma*) के पुरीष पुंज (castings) उसके बिल के द्वार पर नन्ही-नन्ही गोलियो के रूप में मिलते हैं। इसके विपरीत **यूटाइफियस वाल्टोनाई** (*Eutyphoeus waltoni*) के पुरीष पुंज (castings) एक बडे स्तूप के आकार के होते हैं।

श्वसन
(Respiration)

त्वचीय-श्वसन (cutaneous respiration) के लिए गैसेस का लेन-देन (gaseous exchange) सदैव केंचुए की पतली, पारदर्श (transparent), सवहनीय (vascular) तथा नम देह-भित्ति द्वारा हुआ करता है। इसकी त्वचा एपिडर्मल श्लेष्म-ग्रन्थियो के रस तथा पृष्ठ-रध्रो

(dorsal pores) से निकलनेवाली सीलोमिक फ्ल्यूड द्वारा गीली बनी रहती है। अत ऑक्सीजन पानी में घुलकर विसरण द्वारा क्यूटिकल तथा एपीडर्मिस में होती हुई रुधिर-प्रवाह में पहुँच जाती है।

एक्सक्रीटरी सिस्टम
(Excretory system)

फैरिटिमा पौस्थ्यूमा के **एक्सक्रीटरी** अग (excretory organs) काफी विकसित होते हैं। सामान्य भारतीय केंचुए भी अँगरेजी केंचुए **लम्ब्राइक्स** की अपेक्षा नेफ्रीडिया की सख्या कही अधिक होती है किन्तु परिमाण (size) में भी ये बहुत छोटे होते हैं। प्रत्येक नेफ्रीडियम (nephridium) वास्तव में एक लम्बी कुडलित नली के रूप में होता है। इसकी दीवार ग्रन्थिल और प्रचुर मात्रा में सवहनीय होती है। शरीर के अगले दो खडो को छोड़कर नेफ्रीरीडिया अन्य सभी खडो में मिलते हैं। फैरीटिमा पौस्थ्यूमा के प्रत्येक खड (body segment) में तीन सौ से चार सौ तक तथा समस्त शरीर में लगभग ४०,००० नेफ्रीडिया होते हैं। अपनी स्थिति के अनुसार ये निम्न तीन प्रकार के होते हैं :—
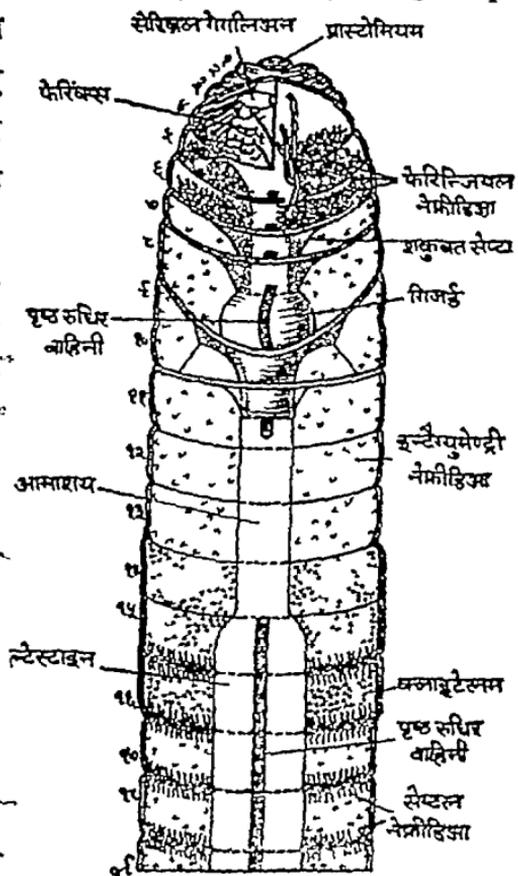
चित्र २७५—विभिन्न प्रकार के नेफ्रीडिया की स्थिति

(१) **इन्टेग्यूमेन्टरी नेफ्रीडिया** (integumentary nephridia)।

(२) **सैप्टल नेफ्रीडिया** (septal nephridia)।

(३) **फैरिंजियल नेफ्रीडिया** (pharyngeal nephridia)।

इन तीनो में सेप्टल नेफ्रीडिया पूर्ण (complete) होते है जिससे हम इन्हे टिपिकल नेफ्रीडिया कह सकते हैं। सर्वप्रथम हम इन्ही का वर्णन करेंगे।

(१) **सैप्टल नेफ्रीडिया** (septal nephridia)—प्रत्येक प्रारूपिक नेफ्रीडियम में, जो कि एक लम्बी कुडलित (coiled) नली के रूप में होता

है तीन मुख्य भाग होते हैं। सीलिएटेड फनल या नेफ्रीडियोस्टोम (nephridiostome) सीलोम में खुलता है और इनसे जुड़ी एक छोटी और सँकरी नली होती है जो कुछ झुकी रहती है और अन्त में बॉडी ऑफ नेफ्रीडियम (body of nephridium) में खुलती है। बॉडी आफ नेफ्रीडियम में एक छोटा सीधा लोब (stright lobe) तथा एक अपेक्षा कृत लम्बा सर्पिल लूप (twisted loop) होता है। सर्पिल लूप में समीपस्थ (proximal) और दूरस्थ (distal) अवयव (limb) होते हैं जो एक दूसरे के चारो ओर लिपटे रहते हैं। नेफ्रीडियम के बॉडी में एक पतली विशेष ढंग से कुंडलित नलिका होती है जिसे नेफ्रीडियल ट्यूबूल (nephridial tubule) कहते हैं। नलिका में कई स्थानो पर सीलिएटेड एपिथीलियम मिलता है। इन सीलिया की स्पदन गति एक्सक्रीटरी पदार्थ (excretory matter) को बाहर निकालने में सहायता देती है। नेफ्रीडियल ट्यूबूल का एक सिरा टर्मिनल नेफ्रीडियल डक्ट में खुलता है।
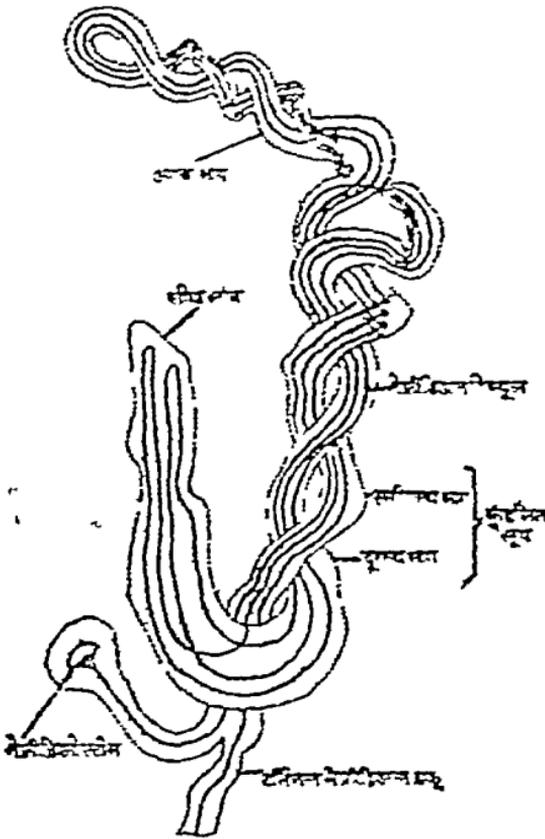
चित्र २७६—टिपीकल सेप्टल नेफ्रीडियम की रचना

१५वें खड के पीछे के सभी खडो में सेप्टल नेफ्रीडिया की दो पक्तियाँ होती हैं। प्रत्येक पक्ति में ४०–५० नेफ्रीडिया होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सीलोमिक विभाग (coelomic compartment) में ८० से लेकर १०० तक नेफ्रीडिया होते हैं। इनकी टर्मिनल नेफ्रीडियल डक्टस प्रत्येक ओर के सेप्टम की पिछली सतह पर स्थित सेप्टल एक्सक्रीटरी कैनाल (septal excretory canal) में खुलती है जो प्रत्येक सेप्टम के पिछले भाग पर स्थित कॉमीजरल वाहिनी (commissural vessel) के समान्तर स्थित होती हैं और अन्त में सुप्राइन्टेस्टाइनल एक्सक्रीटरी डक्ट (supra

intestinal excretory ducts) में खुलती है। दोनो सुप्राइन्टेस्टाइनल एक्सक्रीटरी डक्ट्स आहारनाल तथा पृष्ठ रुधिर वाहिनी (dorsal blood vessel) के बीच में होती हैं और १५वें खड से लेकर शरीर के पिछले सिरे तक फैली होती हैं। प्रत्येक खड में ये दोनो छोटी-छोटी वाहिनियो (ductules) द्वारा इन्टेस्टाइन में खुलती है।

इन्टेग्यूमेन्टरी नेफ्रीडिया (Integumentary nephridia)—तीनो प्रकार के नेफ्रीडिया मे इन्टेग्यूमेन्टरी नेफ्रीडिया सबसे छोटे होते हैं। ये कीपहीन (without funnel) होते हैं किन्तु इनकी सख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है। प्रथम दो खडो को छोड़कर अन्य सभी खडो में इनकी सख्या लगभग २०० से २५० तक होती है। क्लाइटेलम (clitellum) के तीन खडो में तो इनकी सख्या दस गुनी बढ जाती है। प्रत्येक इन्टेग्यूमेन्टरी नेफ्रीडियम की टर्मिनल नेफ्रीडियल डक्ट एक नन्हे से नेफ्रीडियल पोर (nephridial pore) द्वारा त्वचा की सतह पर खुलती है।

फैरिजियल नेफ्रीडिया केवल चौथे, पाँचवें तथा छठे सैगमेन्टस में आहारनाल के दोनो ओर गुच्छो के रूप में मिलते हैं। प्रत्येक खड में इनके गुच्छे का एक जोडा होता है। प्रत्येक गुच्छे में अनेक **नेफ्रीडिया**
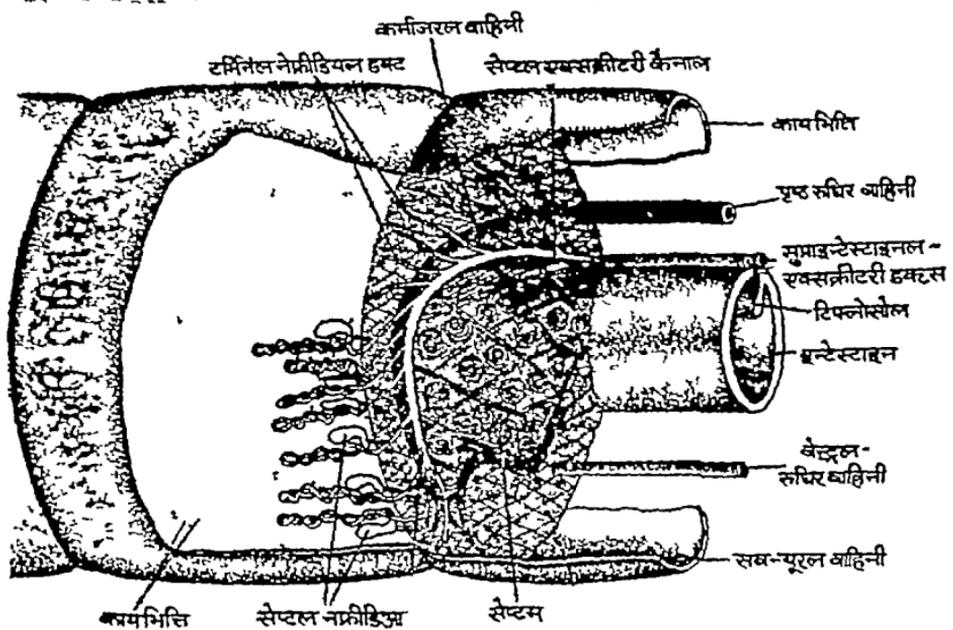
चित्र २७७—सेप्टल नेफ्रीडिया की स्थिति और साथ की अन्य रचनाएँ

(nephridia) होते हैं। इन सभी की **टर्मिनल डक्ट्स** परस्पर मिलकर **सामान्य एक्सक्रीटरी डक्ट्स** बनाती हैं। इस प्रकार आहारनाल के प्रत्येक ओर तीन तीन **सामान्य एक्सक्रीटरी डक्टस** (common excretory

ducts) होती है जो कि अन्त में फेरिंक्स (pharynx) तथा मुख-गुहा (buccal chamber) में खुलती हैं।

तीनों प्रकार के नेफ्रीडिया में केवल इन्टेग्यूमेन्ट्री नेफ्रीडिया नन्हें-नन्हें छेदों द्वारा शरीर की सतह पर खुलते हैं जिनसे इन्हें **एक्सोनेफरिक नेफ्रीडिया** (exonephric nephridia) कहते हैं। इनके विपरीत सेप्टल तथा फेरिंजियल नेफ्रीडिया मूत्र को सीधे सीधे बाहर न निकालकर आहार-नाल में उँडेलते रहते हैं। इसलिए इन दोनों को **एन्ट्रोनेफरिक नेफ्रीडिया** (enteronephric nephridia) कहते हैं।

उत्सर्जन की फिजियोलोजी (Physiology of Excretion)

तीनों प्रकार के नेफ्रीडिया (nephridia) को अपने चारों ओर स्थित केशिकाओं के जाल से काफी मात्रा में रक्त मिलता रहता है जिससे ये एक्स-क्रीटरी पदार्थ बराबर निकाला करते हैं। सेप्टल नेफ्रीडिया रक्त से और साथ ही साथ देह-गुहा द्रव (coelomic fluid) से भी एक्सक्रीटरी पदार्थों को सोखते रहते हैं। इस प्रकार ये दोहरा कार्य करते हैं। सेप्टल नेफ्रीडिया अपने नेफ्रीडियोस्टोम (nephridiostome) द्वारा देह-गुहा द्रव से एक्स-क्रीटरी पदार्थ खींच लेते हैं और फिर उसे आहार-नाल में पहुँचा देते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आखिर भारतीय केंचुए यूरोपीय केंचुओं के विपरीत वर्ज्य पदार्थों को सीधे-सीधे बाहर न निकालकर आहार-नाल में क्यों उँडेला करते हैं? जल की बचत के लिए ये अपने मूत्र का अधिकांश भाग आहार-नाल में पहुँचा देते हैं जहाँ पर इन्टेस्टाइन की दीवारें पानी सोख लेती हैं और फिर मूत्र का ठोस भाग मल के साथ बाहर निकल जाता है। इसीलिए एन्ट्रोनेफरिक नेफ्रीडियल सिस्टम (enteronephric nephridial system) जल के संरक्षण (conservation) की एक बहुत सुन्दर विधि है।

परिवहन तन्त्र

(Vascular system)

केंचुए के रुधिर परिवहन तन्त्र में रुधिर-वाहिनियाँ और रुधिर (blood) होते हैं। इन वाहिनियों में सदैव रुधिर का परिवहन हुआ करता है। मेंढक या अन्य वर्टिब्रेट्स और केंचुए के रुधिर में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर होता है। केंचुए के खून में हीमोग्लोबिन (haemoglobin) रुधिर कणिकाओं के अन्दर न मिलकर सदैव प्लाज्मा (plasma) में घुला रहता है। इस अन्तर के ही परिणामस्वरूप वर्टिब्रेट्स के रुधिर में केंचुए की अपेक्षा ऑक्सीजन में शोषण करने की शक्ति दुगनी होती है।

प्रथम १३ सैगमेन्टस

सुप्राईसोफे

पृष्ठ रुधिर वाहिनी

फारिक्स

गिजड
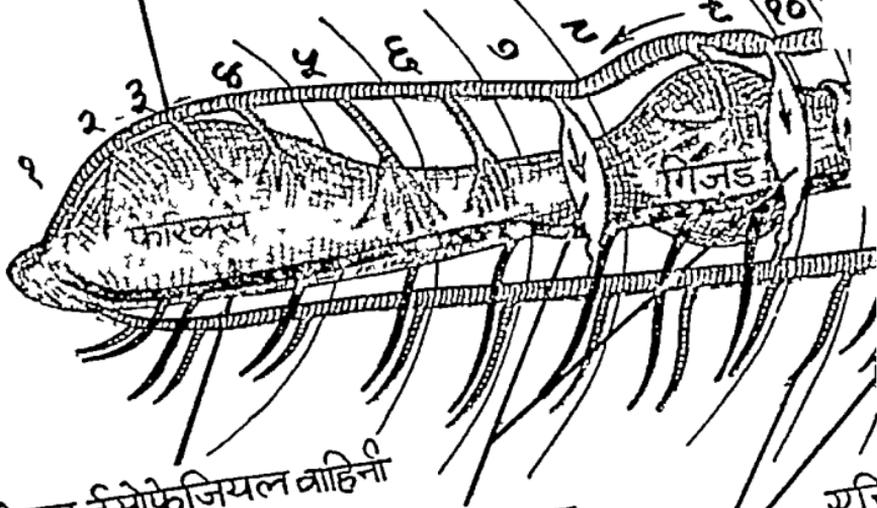
लेट्रल ईसोफेजियल वाहिनी

लेट्रल हृदय

एन्टि

वैन्ट्रो टेग्यूमेन्ट्री वाहिनी

यद्यपि रुधिर-वाहिनियो का विन्यास अत्यन्त जटिल है फिर भी उनकी सामान्य रूपरेखा निम्न प्रकार है। **लौंगिट्यूडिनल रुधिर वाहिनियाँ** (longitudinal blood vessels) शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती हैं और प्रत्येक खड में इनसे जुडी हुई ट्रासवर्स-वाहिनियाँ (transverse vessels) होती हैं जो अपने कार्य के अनुसार सकलक (collecting) या वितरक (distributing) कहलाती हैं।

मुख्य लौंगिट्यूडिनल वाहिनयो के नाम निम्न प्रकार हैं —

(१) **पृष्ठ रुधिर वाहिनी** (Dorsal blood vessel)
(२) **प्रतिपृष्ठ रुधिर वाहिनी** (Ventral blood vessel)
(३) **सबन्यूरल रुधिर वाहिनी** (Subneural blood vessel)

(१) **पृष्ठ रुधिर वाहिनी** (dorsal blood vessel)—यह सबसे बडी होती है और शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आहार-नाल के ठीक ऊपर मध्य-पृष्ठ रेखा के समान्तर फैली होती है। इसकी मोटी तथा पेशीय (muscular) दीवारो में पीछे से आगे की ओर क्रमाकुचन होता है जिससे रुधिर का प्रवाह सदैव पीछे से आगे हुआ करता है। सैगमेन्ट के सेप्टम के कुछ आगे इस वाहिनी में आगे की ओर झुके हुए वाल्व होते हैं जो कि रुधिर को पीछे की ओर बहने से रोकते हैं। १५वें सेप्टम के पीछे या इन्टेस्टाइनल प्रदेश में यह रुधिर-वाहिनी विभिन्न अगो से रक्त इकट्ठा करती है और फिर प्रथम १४ खडो में उसी रक्त को बाँटती है।

चित्र २७९—आत्र प्रदेश में डौर्सल, वेन्ट्रल तथा सबन्यूरल वाहिनियो की अनुप्रस्थ शाखाओ का विन्यास। दाहिनी ओर सेप्टम के साथ और बाईं ओर सैगमेन्ट के बीच में।

१४वें खड के पीछे स्थित भाग में रुधिर इकट्ठा करने के लिए प्रत्येक खड में इससे जुडी दो **कौमीजरल वाहिनियाँ** (commissural vessels) और चार (२ जोडे) **डौरसो इन्टेस्टाइनल वाहिनियाँ** (dorso - intestinal blood vessels) होती हैं। **कौमीजरल वाहिनियाँ** प्रत्येक सेप्टम की पिछली

सतह पर ऊपर से नीचे तक फैली होती है। नीचे ये सबन्यूरल (subneural) वाहिनी से मिली होती हैं और सैप्टल नेफ्रीडिया और देहभित्ति से रक्त इकट्ठा करके लाती हैं। प्रत्येक खंड में इन्टेस्टाइन के दोनों पार्श्वों में दो दो डौर्सो-इन्टेस्टाइनल वाहिनियाँ (dorso-intestinal vessels) होती हैं। ये अनुप्रस्थ शाखा (transverse branch) तथा टिफ्लोसोलर (typhlosolar) शाखाओं के मिलने से बनती है। ये दोनों शाखाएँ इन्टेस्टाइन की दीवार से रक्त इकट्ठा करती हैं।

प्रथम १३ खंडों में पृष्ठ रुधिर वाहिनी (dorsal blood vessel) इकट्ठा करने के बजाय इन्टेस्टाइनल प्रदेश में इकट्ठा किये हुए रक्त के बँटवारे का काम करती है। यही कारण है कि इस भाग में कौमीजरल (commissural) और डौर्सो इन्टेस्टाइनल वाहिनियाँ नहीं मिलती। रक्त-सचार के लिए ९वें खंड से लेकर १४वें खंड तक फैली हुई एक नई वाहिनी होती है जिसे सुप्राईसोफेजियल वाहिनी* (supra-oesophageal vessel) कहते हैं। यह आमाशय की पृष्ठ-भित्ति से बिल्कुल सटी हुई मिलती है। इन्टेस्टाइनल प्रदेश में एकत्रित रुधिर का अधिकांश भाग पृष्ठ-रुधिर-वाहिनी चार जोड़े पेशीय तथा वालव्युलर हृदयों (hearts) द्वारा प्रतिपृष्ठ रुधिर वाहिनी (ventral blood vessel) में पहुँचा देती है। हृदय के दो जोड़े, जो १२वें तथा १३वें खंडों में होते हैं, लेट्रो ईसोफेजियल हार्ट (lateral-oesophageal hearts) कहलाते हैं। पृष्ठ-रुधिर वाहिनी और सुप्राईसोफेजियल-वाहिनी के रुधिर को ये अपनी स्पदन क्रिया (pulsation) द्वारा प्रतिपृष्ठ रुधिर वाहिनी में भेजा करते हैं। हृदय के दो जोड़े, जो ७वें और ९वें खंडों में होते हैं तथा पृष्ठ रुधिर वाहिनी के रुधिर को प्रतिपृष्ठ रुधिर वाहिनी में पहुँचाते हैं, लेट्रल हृदय (lateral hearts) कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त पृष्ठ रुधिर वाहिनी (dorsal blood vessel) तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे तथा आठवें खंडों में स्थित फेरिंजियल नेफ्रीडिया (pharyngeal nephridia) ईसोफेगस (oesophagus) तथा गिजर्ड (gizzard) को भी रक्त पहुँचाती है। इन अंगों को रुधिर बाँटने का काम इसकी कुछ पेशीय तथा कुंचनशील शाखाएँ करती हैं जिनका एक एक जोड़ा २, ३, ४, ५, ६ और ९वें खंडों में होता है।

(२) वेन्ट्रल रुधिर वाहिनी (ventral blood vessel)—यह भी शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती है। इसकी स्थिति आहार नाल

*वास्तव में इसका यह नाम ठीक नहीं है क्योंकि यह आमाशय की पृष्ठ सतह पर होती है।

तथा वेन्ट्रल नर्व कौर्ड के बीच में होती है, इस पेशीय वाहिनी में वाल्व नही होते फिर भी इसके कुचन से रक्त का प्रवाह आगे से पीछे की ओर हुआ करता है। यह रुधिर-वाहिनी केवल रक्त बांटती है।

प्रथम तेरह खडो में प्रत्येक खड में इस वाहिनी से वेन्ट्रो-टेग्यूमेन्ट्री वाहिनियो (ventro-tegumentary vessels) का एक जोडा निकलता है। ये वाहिनियां जिस खड मे निकलती हैं उसी खड की देह-भित्ति (body wall) तथा उससे जुडे नेफ्रीडिया (nephridia) को रक्त पहुँचाती हैं। किस प्रकार पृष्ठ-रुधिर वाहिनी से रक्त वेन्ट्रल-रुधिर वाहिनी (ventral blood vessel) में हृदयो द्वारा पहुँचता है इसका वर्णन तुम ऊपर पढ चुके हो।

१४वें खड के पीछे शरीर के प्रत्येक खड में सेप्टम (septum) के ठीक सामने प्रतिपृष्ठ-रुधिर-वाहिनी से दोनो ओर एक एक वेन्ट्रोटेग्यूमेन्ट्री वाहिनी निकलती है। कुछ दूर पीछे जाने के वाद, सेप्टम में छेद करके ये ठीक पीछेवाले खड में प्रवेश करती हैं और वहाँ देह-भित्ति तथा इन्टेग्यूमैन्ट्री नेफ्रीडिया को रक्त पहुँचाती हैं। सेप्टम में छेद करने के पहले प्रत्येक वेन्ट्रोटेग्यूमैन्ट्री वाहिनी से एक छोटी-सी शाखा निकलती है। जिसे सैप्टो-नेफ्रीडियल शाखा (septonephridial branch) कहते हैं। यह सेप्टम की अगली सतह पर स्थित होती है और सैप्टल नेफ्रीडिया को रक्त पहुंचाती है। इन्टेस्टाइनल प्रदेश में प्रत्येक खड में प्रतिपृष्ठ-रुधिर वाहिनी (ventral blood vessel) से एक वेन्ट्रो इन्टेस्टाइनल वाहिनी (ventro-intestinal vessel) निकलती है जो इन्टेस्टाइन की वेन्ट्रल भित्ति को रुधिर पहुँचाती है।

(३) सवन्यूरल रुधिर वाहिनी (subneural blood vessel)—यह वेन्ट्रल नर्व कौर्ड के ठीक नीचे प्रतिपृष्ठ देहभित्ति से सटी हुई मिलती है और पिछले सिरे से लेकर १४वें खड तक फैली होती है। यह रक्त इकट्ठा करती है और इसमें भी रक्त का प्रवाह आगे से पीछे की ओर होता है। इन्टेस्टाइनल प्रदेश में यह कोमल तथा छोटी छोटी शाखाओ द्वारा प्रतिपृष्ठ देहभित्ति से रुधिर इकट्ठा करती है। इस सचित रक्त का कुछ भाग कौमीजरल वाहिनियो (commissural vessels) द्वारा पृष्ठ-रुधिर वाहिनी में चला जाता है।

१४वें खड में सवन्यूरल वाहिनी की दो शाखाएँ हो जाती हैं। इन दोनो शाखाओ को लेट्रल ईसोफेजियल (lateral oesophageal) वाहिनियां कहते हैं। ये दोनो आहार-नाल के वैन्ट्रो लेट्रल भागों में होती हैं और ९वें खड से लेकर १३वें खड तक तो आमाशय की दीवार से विल्कुल सटी होती हैं किन्तु आगे चलकर गिजर्ड तथा ईसोफेगस से अलग हो जाती हैं। १०वें तथा

११वें खडो में इनको तथा सुप्राईसोफेजियल वाहिनी या वाहिनियों (supra-oesophageal vessels) को मिलाने के लिए एन्टीरियर-लूप (anterior loop) के दो जोड़े होते हैं। ये पेशीहीन, वाल्वहीन और अकुचनशील होते हैं। इनके द्वारा लेट्रल ईसोफेजियल (lateral oesophageal) वाहिनियो से रक्त वहता हुआ सुप्राईसोफेजियल वाहिनियो मे पहुँचता रहता है और वहाँ से १२वे तथा १३वे खडो में स्थित लेट्रो-ईसोफेजियल में होकर प्रतिपृष्ठ-वाहिनी में पहुँच जाता है।

केचुए के परिवहन-तत्र की रूप-रेखा नीचे दिखाई गई है —
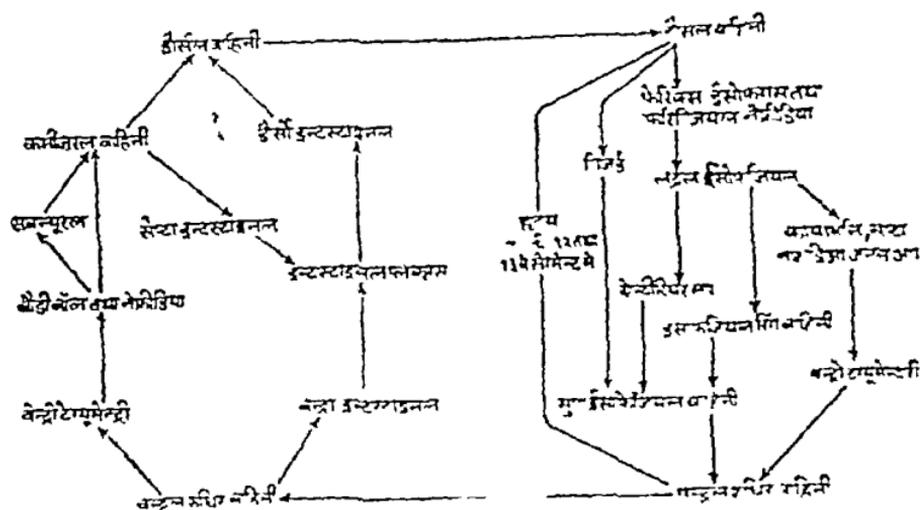
चित्र २८०—केचुए मे रक्त-परिवहन का चित्रीय निरूपण

तन्त्रिका तंत्र

(Nervous system)

केंचुओ का तत्रिका तत्र दो भागो में बाँटा जा सकता है —

(१) केन्द्रीय तत्रिका तत्र (central nervous system)

(२) पेरिफेरल तत्रिका तत्र (peripheral nervous system)

केन्द्रीय तत्रिका तत्र में वेन्ट्रल नर्व कौर्ड होता है। इसका आरम्भ केंचुए के अगले सिरे के समीप होता है और यह देह गुहा की प्रतिपृष्ठ सतह के मध्यभाग में आहार-नाल के ठीक नीचे केंचुए के पिछले सिरे तक फैला होता है। प्रत्येक खड में इसका मध्यभाग कुछ फैलकर एक गैंगलिअन वनाता है। तीसरे खड के पिछले तथा चौथे खड के अगले भाग में फैरिक्स के ठीक नीचे वेन्ट्रल नर्व-कौर्ड विभाजित होकर एक गोल नर्व कौलर (nerve collar) वनाता है जो फैरिक्स को घेरे रहता है। इसका पृष्ठ भाग फैलकर सेरीब्रल गैंगलिआ (cerebral ganglia) वनाता है जिन्हें केंचुए का "मस्तिष्क" (brain)

कहते हैं दोनो सेरीब्रल गैंगलिया आहार-नाल की पृष्ठ सतह पर एक छिछले गढे में मिलते हैं जो मुखगुहा को फैरिक्स से अलग करता है। नर्व कौर्ड के अगले सिरे पर जो गैंगलिया मिलते हैं उन्हे **सब-फैरिंजियल गैंगलिआ** (sub-pharyngeal ganglia) कहते हैं।

पैरीफरल तंत्रिका तंत्र (Peripheral Nervous system)

इसमे वे सभी तन्त्रिकाएँ होती हैं जो कि सेरीब्रल गैंगलिया (cerebral ganglia), नर्व-कौलर (nerve-collar), सब-फैरिंजियल गैंगलिया तथा शरीर के प्रत्येक खड में **सेग्मेन्टल गैंगलिऑन** (segmental ganglia) से निकलती हैं। प्रत्येक सेरीब्रल गैंगलिऑन से ८-१० तन्त्रिकाएँ निकलती हैं जो छोटी-छोटी शाखाओ में बँटकर प्रौस्टोमियम तथा मुखगुहा की दीवारो को जाती हैं। सरकमफैरिंजियल कन्केटिव से निकलनेवाली तन्त्रिकाएँ पहले
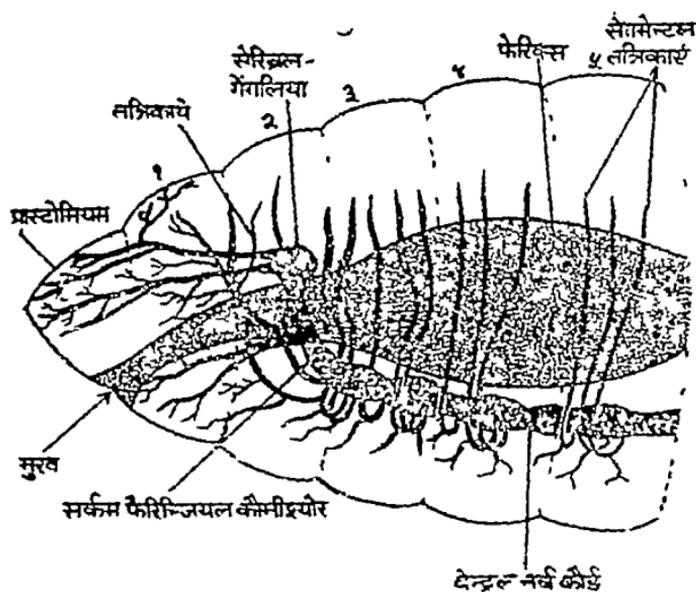
चित्र २८१—केंचुए का केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (पार्श्व-दृश्य)

खड की देह-भित्ति तथा मुखगुहा की दीवारो को जाती हैं। सबफेरिन्जियल गेंगलिया से जो तन्त्रिकाएँ निकलती हैं वे दूसरे, तीसरे तथा चौथे खडो की विभिन्न रचनाओ को जाती हैं। चौथे खड के पीछे प्रत्यक खड में नर्व कौर्ड के गेंगलिअन से तन्त्रिकाओ के तीन जोडे निकलते हैं। इनमें से दो जोडे तो गैंगलिअन से जुडे रहते हैं और एक जोडा गैंगलिअन के कुछ आगे नर्व कौर्ड से निकलता है। ये सभी तन्त्रिकाएँ मिश्रित (mixed) होती हैं क्योकि इनमें **अभिवाही**

(afferent) तथा अपवाही (efferent) दोनों प्रकार के तन्त्रिका तन्तु मिलते हैं।

माइक्रोस्कोप द्वारा नर्व कोर्ड के पतले ट्रानवर्स सेक्शन को देखने पर पता चलता है कि यह जो कि बाहर से देखने में इकहरा मालूम पड़ता है, वास्तव में दोहरा (double) होता है। नर्व कोर्ड के वेन्ट्रो-लेट्रल भागों में अनेकानेक नर्व सेल्स होती हैं जब कि मध्य तथा पृष्ठ भागों में केवल तन्त्रिका तन्तु होते हैं। इनके मध्य-पृष्ठ भाग में चार विशेष प्रकार के तन्त्रिका तन्तु होते हैं जिन्हें जायन्ट फाइबर्स कहते हैं। इनमें से एक मध्यमीडियन दूसरा इनके ठीक ऊपर
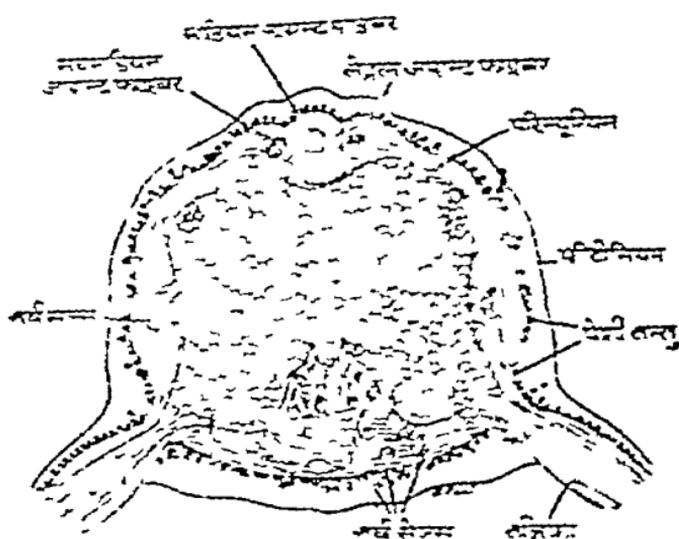
चित्र २८२—नर्व कोर्ड की माइक्रोस्कोपिक संरचना (अनुप्रस्थ काट)

मीडियन और दो लेट्रल जायन्ट फाइबर्स होते हैं। ये चारों नर्व कोर्ड के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले होते हैं।

सम्पूर्ण नर्व कोर्ड के चारों ओर संयोजी ऊतक का एक आवरण (covering) होता है जिसे एपीन्यूरियम (epineurium) कहते हैं। इसी का एक भाग वेन्ट्रल नर्व कोर्ड को दो बराबर बराबर भागों में बांट देता है। यह आवरण लॉंगिट्यूडिनल पेशी तन्तुओं की एक पर्त तथा पेरिटोनियम द्वारा ढंका रहता है।

तन्त्रिका तंत्र के कार्य

केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र के बाहर जो संवेदी सेल्स मिलती हैं, उन्हीं से संवेदी तन्तु निकलते हैं। इन सभी सेल्स का कार्य विभिन्न प्रकार की प्रेरणाओं (impulses) को ग्रहण करना है। इसीलिए यह आवश्यक है कि बाहरी जगत् के सम्पर्क में रहनेवाली त्वचा में इनकी संख्या अधिकाधिक हो। प्रत्येक

खंड में तंत्रिकाओं के तीन जोड़े होते हैं। इन्हीं के द्वारा संवेदी सेल्स के अभिवाही (afferent) तन्तु केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँच जाते हैं। यहाँ पर सिनैप्स (synapses) द्वारा व्यवस्थापक न्यूरन्स (adjustor neurons) से सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। व्यवस्थापक न्यूरन्स शरीर के विभिन्न खंडों से और वेन्ट्रल नर्व कोर्ड के दाहिने और बाएँ भागों से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता देते हैं। मोटर न्यूरन्स (motor neurons) स्वयं तो नर्व कोर्ड में स्थित होते हैं किन्तु इनके अपवाही तन्तु (efferent fibres) बाहर निकलकर पेशियों तथा अन्य अंगों (organs) से जुड़े होते हैं। कुछ ऐसे भी मोटर तन्तु (motor fibres) होते हैं जिनके अपवाही तन्तु (efferent fibres) नर्व कोर्ड को छोड़ने के पहले दूसरी दिशा में चले जाते हैं। इन संवेदी सेल्स (sensory cells) द्वारा ग्रहण की हुई प्रेरणाएँ सहज ही में उसी खंड की पेशियों में और यदि आवश्यकता
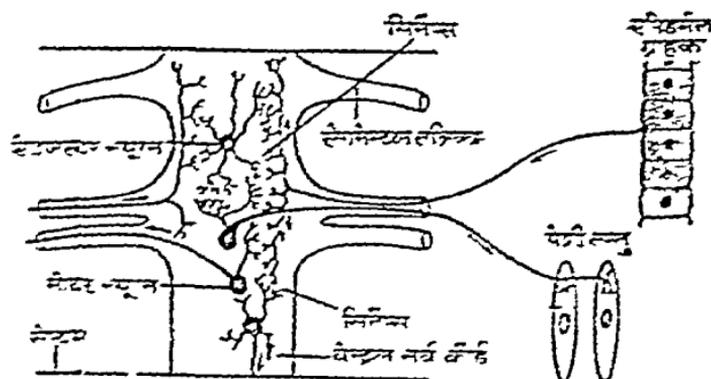
चित्र २८३—केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की क्रिया

हुई तो नर्व कोर्ड द्वारा आगे पीछे के गैंगलिआ में पहुँचकर अन्य खंडों की पेशियों में पहुँच जाती हैं। इस प्रकार शरीर के विभिन्न खंडों की गति या अन्य क्रियाओं को सहज ही में आसंजित (coordinate) किया जा सकता है।

जायन्ट फाइबर्स केंचुए के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले होते हैं और शरीर के प्रत्येक खंड में इनकी शाखाएँ होती हैं। ऐसी धारणा है कि इस प्रकार के सभी तन्तुओं के कोशिका काय (cell body) प्रथम खंड या शरीर के अन्तिम खंड में स्थित होते हैं। सामान्य तन्तुओं द्वारा जो प्रेरणाएँ भेजी जाती हैं उनकी अपेक्षा कहीं अधिक तेज गति से ये प्रेरणाओं को नर्व कोर्ड के एक सिरे से दूसरे सिरे को ले जाते हैं। मीडियन तथा सबमीडियन जायन्ट फाइबर्स प्रेरणाओं को शरीर के पिछले सिरे से अगले सिरे की ओर ले जाते हैं। इसके विपरीत लेट्रल जायन्ट फाइबर्स प्रेरणाओं को आगे से पीछे ले जाते हैं। इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर शरीर के सभी खंड एक ही साथ सिकुड़ सकते हैं जिससे केंचुए हानिकारक उद्दीपनों के सम्पर्क से तत्काल दूर हट जाते हैं।

ग्राहक-अग या रिसैप्टर ऑर्गन्स
(Receptor organs)

जो अग बाहरी जगत् के उद्दीपनों को ग्रहण करने में महायता देते हैं, उन्हे ग्राहक-अग (receptor organs) कहते हैं।
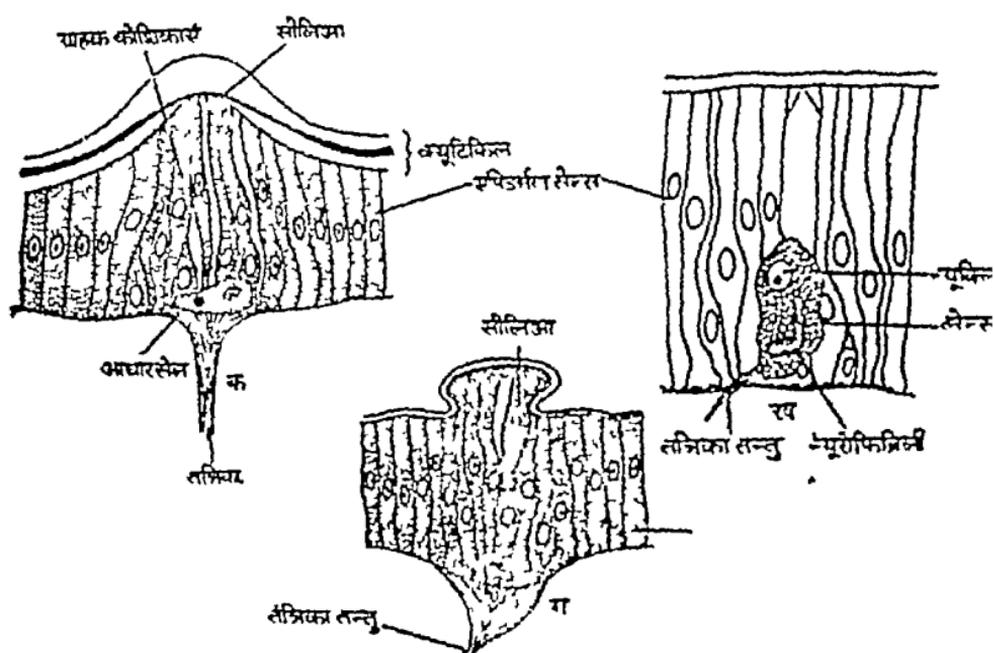
चित्र २८४—विभिन्न प्रकार के ग्राहक-अग क, टॅगोरिसैप्टर, ख, फोटोरिसैप्टर, ग, गस्टोरिसैप्टर या औलफैक्टोरिसैप्टर

रचना की दृष्टि से केंचुए के ग्राहक-अग एककोशिकीय या वहुकोशिकीय (multicellular) होते हैं। वहुकोशिकीय ग्राहक-अग कुछ विशेष प्रकार की रम्भाकार (cylindrical) एपिडर्मल सेल्स के समूह होते हैं। प्रत्येक सेल के आधारलग्न (basal) भाग से एक सवेदी तन्तु (sensory fibre) निकलकर विना किसी वाधा के सीधा केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र में चला जाता है। जहाँ यह व्यवस्थापक न्यूरन्स (adjustor neurons) के तन्तुओ के साथ सिनैप्स (synapse) द्वारा जुडा रहता है। इन सेल्स के दूरस्थ भाग में अनेक वहुत ही महीन वालो के समान (hair-like) सवेदी रोम (sensory hair) होते हैं।

वहुकोशिकीय एपिडर्मल ग्राहक-अग तीन प्रकार के होते हैं —

(१) **टॅगोरिसैप्टर** (tangoreceptors)
(२) **गस्टोरिसैप्टर** (gustoreceptors)
(३) **औलफैक्टोरिसैप्टर** (olfactoreceptors)

इनमें से टैंगोरिसैंप्टर्स की सख्या कॅचुए के वेन्ट्रल और पार्श्व भागो में अपेक्षाकृत अधिक होती है। ये केवल स्पर्श द्वारा ही प्रभावित नही होते वरन् कुछ लोगो के मतानुसार इन पर रासायनिक पदार्थों का भी प्रभाव पडता है। इसके अलावा भूमि के प्रकपन (vibration) से भी ये प्रभावित होते हैं। सभव है कि ये गर्मी तथा सर्दी के उद्दीपनों को ग्रहण करने का भी कार्य करते हो।

मुखगुहा के **एपिथीलियम** में पाये जानेवाले ग्राहक-अग भी रचना में एपिडर्मल सवेदागो के समान होते हैं। सख्या में ये कही अधिक होते हैं। इनका दूरस्थ भाग अधिक चौडा होता है और इनके **संवेदी रोम** (sensory hair) भी अपेक्षाकृत अधिक लम्बे होते हैं। इनकी स्थिति से स्पष्ट है कि ये रासायनिक उद्दीपनो से प्रभावित होते हैं। इनमें से जो स्वाद के लिए होते हैं उन्हे **गस्टोरिसैंप्टर्स** और जो गध से प्रभावित होते हैं उन्हें **औलफैक्टोरिसैंप्टर्स** कहते है।

फोटोरिसैंप्टर सेल्स (photoreceptor cells) पृष्ठ भाग की त्वचा और प्रौस्टोमियम (prostomium) में मिलती हैं। वैन्ट्रल सतह की अपेक्षा पृष्ठ सतह पर इनकी सख्या अधिक होती है। प्रत्येक सेल में एक न्यूक्लियस और एक लेन्स (lens) होता है। यह पारदर्श लेन्स न्यूरोफिब्रिली पर प्रकाश का नाभीयन (focussing) करता है। फोटोरिसैंप्टर द्वारा केंचुओ को प्रकाश में होनेवाले परिवर्तनो का ज्ञान सहज ही में होता रहता है। केंचुए स्वभाव से निशाचर होते हैं अत ये इन्ही ग्राहक अगो की सहायता से प्रकाश से हटकर अँधेरे स्थानो को खोज निकालने में समर्थ होते हैं।

जननांग

(Reproductive organs)

प्रत्येक केंचुए में नर तथा मादा दोनो ही जननेन्द्रियाँ होती हैं, अत यह उभयलिंगी (hermaphrodite) होता है। इनके जननाग रचना में जटिल होते हैं। उपरचनाओ (accessory structures) की उपस्थिति के कारण इनकी जटिलता और अधिक वढ जाती है। उभयलिंगी होने पर भी दो केंचुओ में सदैव क्रौस-फर्टिलाइजेशन होता है।
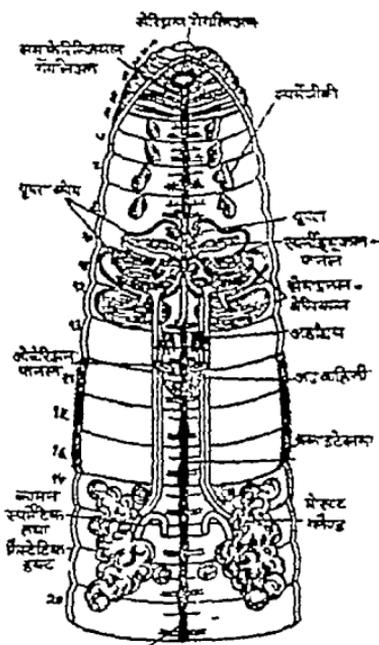
(क) नर जननाग

इसमे दो जोडे वृषण (testes)

चित्र २८५—केंचुए के जननाग

होते हैं जिनमें शुक्राणु बनते हैं। वृषण का एक जोडा १०वें तथा दूसरा जोडा ११वें खड में होता है। प्रत्येक खड के दोनो वृषण अपने-अपने टेस्टिस सैक (testis sac) की भीतरी सतह पर आगे की ओर चिपके रहते हैं। प्रत्येक वृषण में अँगुली के आकार के ४ से ८ तक प्रोसेस होते हैं जिनमें अनेकानेक स्पर्मेटोगोनिया होती हैं। तरल द्रव से भरा हुआ टेस्टिस सैक आकार में बाइलोब्ड (bilobed) होता है। इसका मध्य भाग आमाशय की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्थित होता है किन्तु पार्श्व भाग बाहर तथा ऊपर की ओर उभरे रहते हैं। प्रत्येक टेस्टिस सैक मे दोनो ओर एक-एक स्पर्मीड्यूकल फनल (spermiducal funnel) होता है। १०वें खड में स्थित टेस्टिस सैक ११वें खड के दोनो सेमाइनल वेसीकिल्स (seminal vesicles) से जुडा होता है किन्तु ११वें खड में मिलनेवाला टेस्टिस सैक १२वें खड में स्थित सेमाइनल वेसीकिल से जुडा होता है।

वृषण से अलग होकर स्पर्मेटोगोनिया (spermatogonia) टेस्टीज सैक में गिरती हैं। यहाँ से वे अपनी ओर के सेमाइनल वेसीकल (seminal vesicle) में इकट्ठी होती रहती हैं और वही धीरे-धीरे शुक्राणुओ में
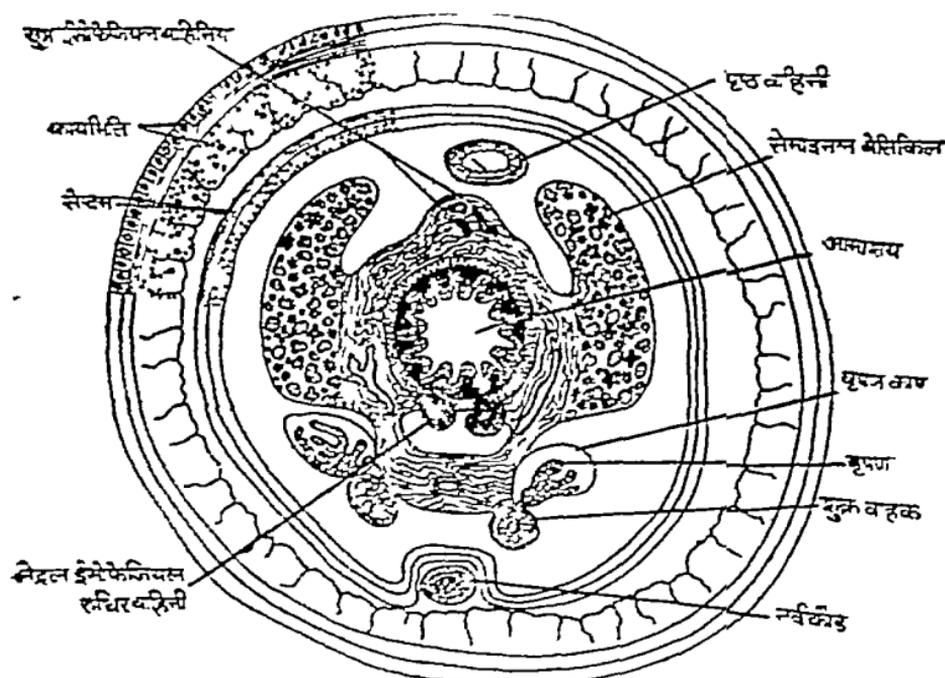
चित्र २८६—केंचुए के सेमाइनल वेसीकिल का और आमाशय ट्रासवर्स-सेक्शन

बदल जाती हैं। सेमाइनल वेसीकिल्स में परिपक्व होने के बाद शुक्राणु फिर टेस्टीज सैक में लौट आते हैं और स्पर्मीड्यूकल फनल द्वारा अपनी ओर की

वास-डेफरेंस (vas deferens) में प्रवेश करते हैं। एक दूसरे से सटी हुई, समान्तर और वेन्ट्रल काय-भित्ति (body wall) चिपकी हुई एक ओर की दोनो **वासा डेफरेंशिया** अपनी ओर की **प्रौस्टेट ग्रन्थि** (prostate gland) में प्रवेश करती हैं। प्रौस्टेट ग्रन्थियाँ बडी, चपटी, ठोस तथा बडी असमितीय (irregular) आकार की होती हैं और १६वें या १७वें खड से लेकर २०वें या २१वें खड तक आहार नाल के दोनो ओर फैली होती हैं। प्रौस्टेट के अन्दर दोनो वासा डेफरेंशिया और प्रौस्टेटिक वाहिनियाँ (prostatic duct) एक **सामान्य प्रौस्टेटिक तथा स्पर्मेटिक वाहिनी** (common prostatic and spermatic duct) बनाती हैं। इस पेशीय दीवार के अन्दर दोनो **वासा डेफरेंशिया** और एक प्रौस्टेटिक डक्ट पास-पास पडी होती हैं। प्रौस्टेट ग्लैंड के बाहर निकल आने पर सामान्य प्रौस्टेटिक और स्परमेटिक डक्ट घोडे की नाल के आकार की-सी दिखाई देती हैं और १८वें
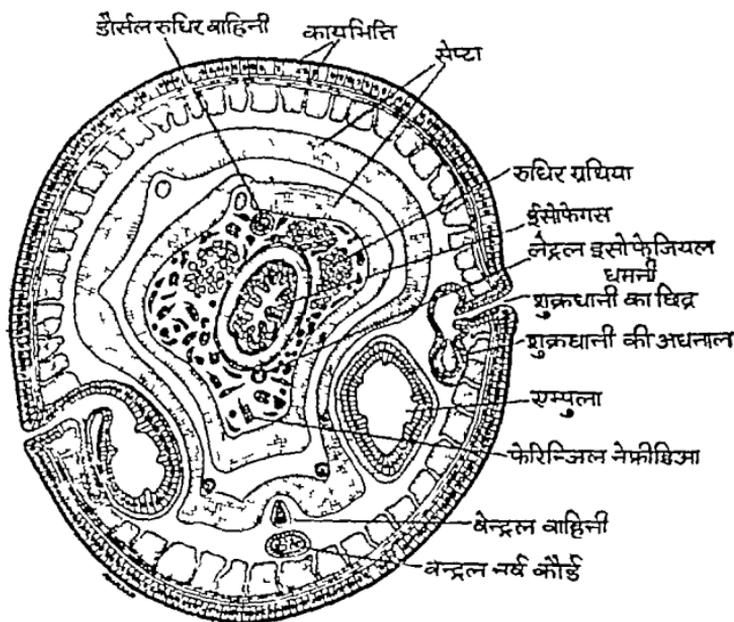
चित्र २८७—स्पर्मेथीकी और ईसोफेगस का ट्रासवर्स सेक्शन

खड की काय-भित्ति (body wall) की प्रतिपृष्ठ सतह पर नर जनन छिद्रो (male generative apertures) द्वारा दोनो बाहर खुलती है।

(ख) मादा जननाग

मादा-जननागो में दो **अडाशय** (ovary), दो अड-वाहिनियाँ (oviducts) तथा **स्पर्मेथीकी** (spermatheacae) के चार जोडे होते हैं।

अडाशय का एक जोडा १३वें खड में मिलता है। ये वेन्ट्रल नर्व कौर्ड के इधर-उधर १२/१३ सेप्टम के पिछले भाग से चिपके हुए मिलते हैं। प्रत्येक अडाशय में अनेक प्रोसेस होते हैं और प्रत्येक प्रोसेस में अनेक अडे अपने परिवर्तन के अनुसार एक पक्ति में मिलते हैं। अड-वाहिनियाँ दो छोटी नलिकाओं के रूप में होती हैं। प्रत्येक अड-वाहिनी (oviduct) के अगले सिरे पर एक चौडा ओवीडयूकल फनल (oviducal funnel) होता है। दोनो अड-वाहिनियो (oviducts) के पिछले सिरे नर्व कौर्ड के नीचे एक दूसरे से मिल जाते हैं और १४वें खड के मध्य में प्रतिपृष्ठ (mid-ventral) भाग पर स्थित नारी जनन छिद्र (female generative aperture) द्वारा वाहर खुलते हैं।

केंचुए में स्पर्मेथीकी (spermathecae) के चार जोडे होते हैं। छठे खड से लेकर नवें तक प्रत्येक खड में स्पर्मेथीकी का एक-एक जोडा होता है। आकार में प्रत्येक स्पर्मेथीकी फ्लास्क (flask) के समान होती है। इसमें
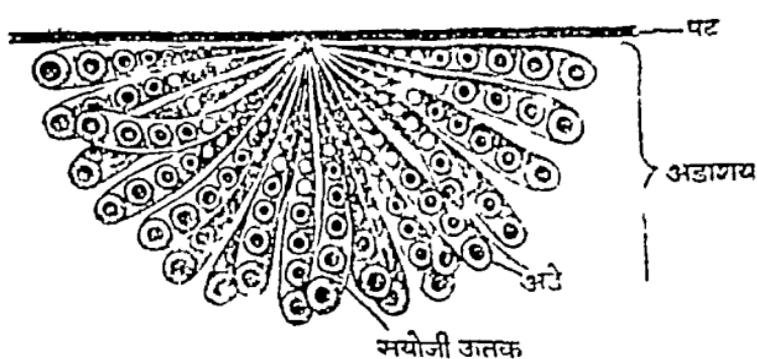
चित्र २८८—केंचुए की फैली हुई एक ओवरी का विशालित दृश्य

नाशपाती के आकार की एक रचना होती है जिसे ऐम्प्यूला (ampulla) तथा दूसरी अपेक्षाकृत छोटी किन्तु लम्बी रचना को डाइवर्टीकुलम (diverticulum) कहते हैं। फेरीटिमा पोस्थ्यूमा में मैथुन के फलस्वरूप दूसरे केंचुए से प्राप्त शुक्राणु डाइवर्टीकुलम ही में इकट्ठे होते हैं। स्पर्मेथीकी (spermathecae) देहभित्ति के वेन्ट्रो-लेट्रल भाग में स्थित स्पर्मेथीकल छेदो (spermathecal pores) द्वारा वाहर खुलती है। ये छेद ५/६ ६/७, ७/८ और ८/९ खडो के वीच की खाइयो (grooves) में खुलते हैं।

मैथुन (Copulation)

वर्षाकाल में, जव गर्मी तथा नमी दोनो ही होती हैं, केंचुए अपने-अपने विलो (burrows) से रात के समय निकलकर जोडा खाते (copulate) हैं। दो केंचुए इस प्रकार एक दूसरे से सट जाते हैं कि एक का सिर दूसरे के सिर की विपरीत दिशा

में होता है। साथ ही साथ एक के **नर-जनन-छिद्र** (male generative apertures) दूसरे के स्पर्मेथीकल छेदो (spermathecal pores) के ठीक सामने आ जाते हैं। प्रत्येक नर-जनन-छिद्र के चारो ओर प्याले-जैसी एक रचना बन जाती है और स्पर्मेथीकी के आस पास का भाग कुछ उभरकर पैपिली (Papillae) का रूप ले लेता है। ये पैपिली नर-जनन छेदो के प्याले में सट जाती हैं। वासा डेफरेंशिया (vasa deferentia) और प्रोस्टेटिक डक्ट के सिरे अब कुछ इस प्रकार ऊपर उठ जाते हैं कि शिश्न (penis) के समान रचना बन जाती है। कुछ केंचुओ में तो इन शिश्नो में सीटी (setae) भी होती हैं। एक केंचए के शिश्न दूसरे के स्पर्मेथीकी में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार सटे हुए केंचुए के शुक्राणु दूसरे केंचुए के स्पर्मेथीकी में पहुँच जाते हैं। मैथुन के बाद दोनो केंचुए एक दूसरे से अलग होकर अडो के निषेचन की तैयारी करते हैं।
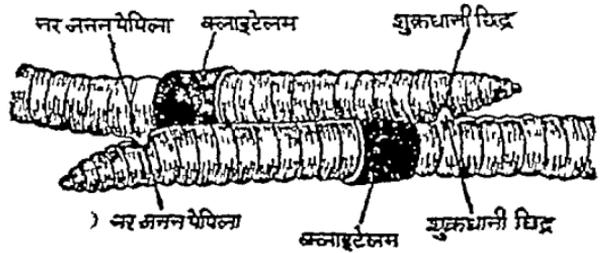
चित्र २८९—केंचुए में मैथुन की विधि

चित्र २९०—केंचए में कोकन (cocoon) का निर्माण
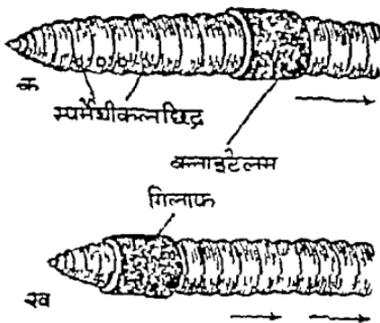
निषेचन (Fertilisation)

निषेचन में सहायता देने के लिए **क्लाइटेलम** की ग्रन्थियां सक्रिय हो जाती हैं और एक प्रकार का रस उत्पन्न करने लगती हैं जो हवा के सम्पर्क में आते ही क्लाइटेलम के चारो ओर एक लचीली झिल्ली की नली बनाता है। केंचुआ जब पीछे की ओर रेंगने की चेष्टा करता है तो यह नली आगे की ओर खिसकती है। पहले नारी जनन-छेद से अडे निकलकर इस नली के अन्दर एकत्रित हो जाते हैं। केंचुए के धीरे-धीरे पीछे की ओर खिसकने पर जब यह नली स्पर्मेथीकी के छेदो के ऊपर पहुँचती है तो स्पर्मेथीकी में से शुक्राणु निकल आते हैं। इस प्रकार अडों का निषेचन हो जाता है। केंचुआ जब अपने को पूरी तौर पर इस नली के बाहर निकाल लेता है तो इसके लचीले सिरे परस्पर मिल जाते हैं और इस प्रकार हल्के पीले रग का गोल कोकन (cocoon) बन

जाता है। इसके भीतर सभी अडो का निषेचन हो जाता है किन्तु केवल एक ही निषेचित अडे (fertilized egg) का परिवर्धन होता है जिससे एक शिशु (young one) बनता है और अन्य सभी अडे नष्ट हो जाते हैं। एपिडर्मल ग्रन्थियो से जो एलब्यूमन (albumen) निकलकर काकन में इकट्ठा हो जाता है उससे भी भ्रूण का पोषण होता है।

अन्य ऐनिलिडा (Other Annelida)

ऐनीलिडा फाइलम के प्राणियो को हम चार क्लासेस मे विभक्त कर सकते हैं —

(१) क्लास आरकीऐनीलिडा (*Archiannelida*)
(२) क्लास पौलीकोटा (*Polychaeta*)
(३) क्लास हिर्यूडीनिया (*Hirudinea*)
(४) क्लास ऑलीगोकीटा (*Oligochaeta*)

(१) क्लास आरकीऐनीलिडा (*Archiannelida*)—इस क्लास मे थोडे ही जन्तु होते हैं जो कि अपेक्षाकृत कम विकसित होते हैं। इस वर्ग मे सामुद्रिक ऐनीलिडा होते है जिनमें सीटी (setae) तथा पैरापोडिया (parapodia) का पूर्ण अभाव होता है। पैरापोडिया इन जन्तुओ के चलन तथा श्वसन दोनो ही में सहायता देते हैं। इन जन्तुओ का शरीर लम्बा तथा सँकरा होता है और बाहरी सतह पर यद्यपि समखडीय विभाजन का कोई स्पष्ट चिह्न नही होता फिर भी आन्तरिक विभाजन बहुत स्पष्ट होता है। सामान्यतया ये सभी जन्तु उभयलिंगी (hermaphrodite) होते हैं।

(२) क्लास पौलीकोटा (*Polychaeta*)—इसके सभी प्राणी सामुद्रिक होते हैं। इन जन्तुओ का शरीर लम्बा होता है और इनमें बाह्य तथा आन्तरिक समखडीय विभाजन (metameric segmentation) दोनो ही स्पष्ट होते हैं। इस क्लास के सभी जन्तुओ में पैरापोडिया (parapodia) भली भाँति विकसित होते हैं और पैरापोडिया में अनेक सीटी (setae) होते हैं। सिर बडा और स्पष्ट होता है। सिर पर आँखें (eyes) और टेन्टेकिल्स (tentacles) भी मिलते हैं। क्लाइटेलम का अभाव होता है। ये जन्तु एकलिंगी (unisexual) होते हैं। इस क्लास का सबसे अधिक परिचित प्राणी नेरिस (*Nereis*) है।

(३) क्लास हिर्यूडीनिया (*Hirudinea*)—इसके सभी जन्तु जलीय (aquatic) अथवा स्थलीय और उभयलिंगी (*hermaphrodite*) होते हैं। इनका शरीर लम्बा या छोटा और अडाकार होता है। शरीर प्राय चपटा होता है और सैगमेन्ट्स (segments) की सख्या निश्चित रूप से ३४ होती

है। प्रत्येक खड की बाहरी सतह पर २ से लेकर ५ तक गौण प्रसीताएँ (secondary grooves) भी दीखती हैं। शरीर के अगले सिरे पर स्थित कुछ खड मिलकर एक चूषक (sucker) का निर्माण करते हैं। चूषक के भीतर ही मुखद्वार होता है। शरीर के पिछले सिरे पर एक बडा, गोल तथा शक्तिशाली चूषक (sucker) होता है जो सदैव सात खडो के मिलने से बनता है। ये दोनो चूषक इन जीवो के चलन में अथवा किसी वस्तु से चिपकने में सहायता देते हैं। विभिन्न प्रकार की जोंकें (leeches) इसी क्लास के प्राणी हैं।

चित्र २९२—सामान्य भारतीय जोक, हिरियूडिनेरिया ग्रैन्यूलोसा

(४) **क्लास ओलीगोकीटा** (*Oligochaeta*)—इसमें केंचुए होते हैं। इनमे बाहरी तथा भीतरी दोनो ही प्रकार का **समखडीय विभाजन** (metameric segmentation) होता है। इस क्लास के जन्तुओ में न तो सिर होता है और न पैरापोडिया किन्तु मुखद्वार की पृष्ठ सतह पर एक सवेदी लोब अवश्य होता है जिसे **प्रौस्टोमियम** (prostomium) कहते हैं। यद्यपि सीटी की सख्या कम होती है फिर भी ये लगभग सभी खडो में मिलती हैं। इस क्लास के सभी प्राणी उभयलिंगी (hermaphrodite) होते हैं। आमतौर से सभी के शरीर के अगले सिर के समीप कौलर (collar) के समान **क्लाइटेलम** (clitellum) होता है।

प्रश्न

१—**फैरीटिमा** के जननागों (reproductive organs) का चित्रसहित वर्णन करो।

२—**फैरीटिमा पौस्थ्यूमा** में एक्सक्रीटरी अगो का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। मेढक के एक्सक्रीटरी अगो (excretory organs) से ये किस प्रकार भिन्न होते हैं?

३—(क) केंचुए तथा मेढक के रुधिर में क्या अन्तर होता है?

(ख) हाइड्रा तथा केंचुए में चलन (locomotion) किस प्रकार होता है?

४—पोषण (nutrition) की क्या आवश्यकता है? अमीवा, हाइड्रा तथा फैरीटिमा में पोषण किस प्रकार होता है?

५—फैरीटिमा पौस्थ्यूमा की काय-भित्ति (body wall) की रचना का वर्णन करो। रुधिर के ऑक्सिजिनेशन (oxygenation) में त्वचा किस प्रकार सहायता पहुँचाती है?

६—नेफ्रीडिया क्या हैं? फैरीटिमा में सेप्टल नेफ्रीडिया (septal-nephridia) की रचना, वटन (distribution) तथा कार्य विस्तार-पूर्वक समझाओ।

७—अमीवा, हाइड्रा तथा केंचुए में भोजन का पाचन किस प्रकार होता है इसे विस्तारपूर्वक समझाओ।

८—चित्र बनाकर केंचुए के रुधिर परिवहन-तन्त्र (blood-vascular system) का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

९—अमीवा, हाइड्रा तथा केंचुए में चलन (locomotion) की विधि का वर्णन करो। इन प्राणियो में चलन की क्या आवश्यकता है?

१०—हाइड्रा तथा केंचुए के शरीर के ट्रासवर्स सेक्शन के चित्र बनाओ और दोनो में क्या अन्तर है इसे स्पष्ट करो। इन प्राणियो में अडाशय (ovary) की क्या स्थिति होती है?

११—केंचुए के तन्त्रिका तन्त्र तथा ग्राहक अगो का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

१२—केंचुए के पाचन-तन्त्र तथा उससे सबद्ध रचनाओ का वर्णन करो।

अध्याय २१

फाइलम आर्थ्रोपोडा : तिलचट्टा

आर्थ्रोपोडा फाइलम मे मिलनेवाले प्राणियो की सख्या इतनी अधिक है कि यदि अन्य सभी फाइला के सब जन्तु एक साथ लिये जायँ तो भी उनकी सख्या इनसे किसी भी प्रकार अधिक न होगी। प्राणिजगत् का यह सबसे बडा फाइलम (phylum) है। लोगो का अनुमान है कि इस फाइलम में लगभग ७,००,००० स्पेशीज मिलती हैं।

फाइलम आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) की मुख्य विशेषताएं

(१) इनका शरीर खडयुत् (segmented) होता है और उसमे अनेक सधियाँ या जोड होते हैं।

(२) इनके शरीर में द्विपार्श्व समिति (bilateral symmetry) होती है।

(३) इनका शरीर एक कठोर, निर्जीव **बहिर्कंकाल** (exoskeleton) से ढका रहता है जो सदैव काइटिन (chitin) का बना होता है और एक रक्षक कवच (armour) का काम करता है। इसीलिए शरीर की वृद्धि के लिए कुछ समय के बाद **त्वक्पतन** या **मोल्टिग** होना आवश्यक हो जाता है।

(४) इन जतुओ का पेशी तत्र आमतौर पर बहुत ज्यादा विकसित होता है। पेशियाँ रेखित (striated) होती हैं और इनमें तेजी से कुचन करने की क्षमता होती है।

(५) मुख के चारो ओर **मुखभाग** (mouth parts) होते हैं। मुख के दोनो ओर **पार्श्व जबडे** (lateral jaws) होते हैं और **मुखभागो** से आवश्यकतानुसार चर्वण, भेदन (Piercing) तथा अवशोषण का काम लिया जा सकता है।

(६) इनका परिवहन तत्र खुला हुआ (open) होता है अर्थात् रुधिर का प्रवाह केवल धमनियो, शिराओ और केशिकाओ में न होकर **हीमोसील** (haemocoel) में भी होता है। इनका **हृदय** (heart) पृष्ठ सतह के समीप होता है।

(७) सीलोम गायव हो जाती है और उसका स्थान हीमोसील (haemocoel) ले लेती है।

(८) इनका तंत्रिका तंत्र ठीक ऐनिलीडा फाइलम के जन्तुओ के समान होता है। मुखगुहा (buccal cavity) की पृष्ठसतह पर दो सेरिब्रल गैंगलिया (cerebral ganglia) होते हैं। आहार-नाल के चारों ओर एक नर्व कौलर (nerve collar) होता है और प्रतिपृष्ठ सतह पर गैंगलिया की शृखला के रूप में एक नर्व कौर्ड होता है।

(९) इस फाइलम के सभी प्राणी एकलिंगी (unisexual) होते हैं। अडों का निषेचन शरीर के अन्दर होता है। अधिकाश आर्थ्रोपोडा के भ्रूण-परिवर्धन मे व्यापक मेटामौर्फोसिस होती है।

कीट वर्ग या क्लास इन्सेक्टा की विशेषताएँ

(Characters of Insecta)

इस क्लास में टिड्डे (grasshoppers), मक्खियाँ, टिड्डियाँ (locusts), मधु मक्षिकाएँ (honey bee), जुएँ (lice), तितलियाँ (butterflies) तथा अन्य प्रकार के अनेक प्राणी होते हैं। स्थलीय जन्तुओ (terrestrial animals) मे कीटो (insects) की सबसे अधिक सख्या है और साथ ही साथ इनका वितरण भी विस्तृत होता है। इनवरटिब्रेट प्राणियो में कीट ही ऐसे प्राणी हैं जिनमें उडने की क्षमता होती है।

इनका शरीर सदा तीन भागो—सिर, वक्ष तथा उदर—में विभाजित रहता है। सिर छ खडो के एकीकरण से बनता है और इसमें सदैव दो शृंगिकाएँ, (antennae) दो सयुक्त-नेत्र (compound eyes) तथा मुखभाग (mouth parts) होते हैं। वक्ष या थोरैक्स में सदैव तीन खड (segments) होते हैं। इसी भाग में तीन जोडी टाँगें और दो जोडे पक्ष (wings) होते हैं। उदर में ग्यारह या उससे कम खड (segments) होते हैं। जनन-छिद्र (genital apertures) के समीप उदर के पिछले सिरे पर गुदा होती है। कीटो में एक्सक्रीशन के लिए मैलपीगियन नलिकाएँ (malpighian tubules) होती हैं जो सदैव आहार-नाल में खुलती हैं। श्वसन-क्रिया के लिए कीटो में शाखान्वित तथा क्यूटिकल द्वारा आस्तरित ट्रेकी (tracheae) होती हैं जो आक्सीजन को सीधे ऊतको में पहुँचा देती हैं। ट्रेकी में बाहरी वायु के प्रवेश करने के लिए वक्ष तथा उदर के पार्श्व भागो में श्वास-रध्र (spiracles) होते हैं।

तिलचट्टा

(Cockroach)

कौकरोच की कई स्पेशीज मिलती हैं। आकार मे बडे और साथ ही साथ सरलता से मिलने के कारण कीट वर्ग के जन्तुओ की आधारभूत-रूपरेखा

ाझने के लिए तिलचट्टा सबसे अधिक उपयुक्त है। हमारे देश मे आम
र पर इसकी दो स्पेशीज सभी भागो में मिलती हैं। ये हैं—स्टाइलोपाइगा
ारिएन्टेलिस (*Stylopyga orientalis*) और पैरीप्लैनेटा अमेरिकैना
(*Periplaneta americana*)।
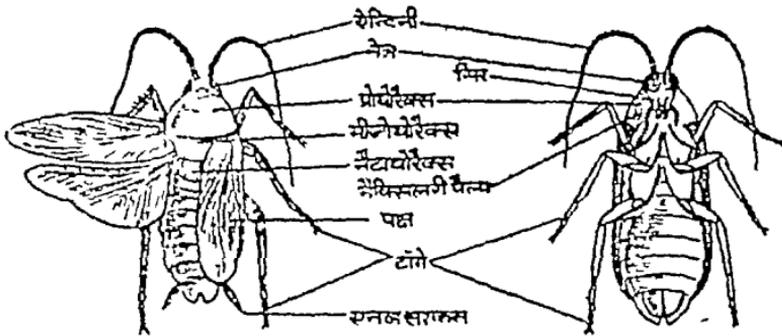
चित्र २९२—पैरीप्लैनेटा का पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ दृश्य

पैरीप्लैनेटा अमेरिकैना (*P americana*)

प्राकृतवास (Habitat)—तिलचट्टे आमतौर पर माल गोदाम, ावर्चीखाना, पाखाना, नानवाइयो की दूकान, नालियो तथा अन्य अँधेरे, रम और नम स्थानो मे पाये जाते है। अपने दृढ तथा कुतरनेवाले ावडो की सहायता से ये कागज, कपडे, भोजन इत्यादि काटकर काफी ानि पहुँचाते है।

वाह्याकृति (External features)

इनका शरीर चपटा, अडाकार, लम्बाई में १½ इच और चौडाई में ावल आध इच होता है। इनका खडयुत् शरीर (segmented body) ीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है—सिर (head), वक्ष (thorax) और उदर (abdomen)। सिर और वक्ष के बीच मे एक ाहुत छोटी, सँकरी और सुकुमार गर्दन होती है।

इसका नाशपाती के आकार का चपटा सिर (head) शेष शरीर के साथ ाम्बकोण वनाता हुआ जुडा होता है। यही कारण है कि शरीर के पृष्ठ-दृश्य (dorsal view) में सिर का केवल ऊपरी भाग दिखाई पडता है।

इसकी सयुक्त आँखें (compound eyes) कुछ उभरी हुई, काली ाथा वृक्काकार (kidney shaped) होती है। दोनो आँखे सिर ़ सवसे चौडे भाग में स्थित होती हैं। सिर की पृष्ठसतह का शेष ााग दो ऐपीक्रेनीयम पट्टियो (epicranium plates) से ढँका होता ै। ये पट्टियां अँगरेजी के उल्टे अक्षर λ के आकार की सीवन या स्यूचर

(suture) द्वारा परस्पर जुडी रहती है। इस सीवन के प्रत्येक ओर या निचला सिरा एक फीनेस्ट्रा (fenestra) से जुडा रहता है जो कि एक छोटी सी सफेद और गोल रचना होती है। कुछ लोगो के अनुसार ये सरल नेत्रों (simple eyes) के निष्क्रिय चिह्न मात्र (abortive representatives) हैं। दोना फीनेस्ट्री के ठीक नीचे ऐन्टिनल सॉकेट (antennal socket) होते है। प्रत्येक ऐन्टिनल सॉकेट से एक लम्बा, पतला खण्डयुक्त (segmented) ऐन्टिना (antenna) निकलता है जिसमें अनेक खण्ड होते हैं किन्तु इसमे प्रथम तीन खण्ड अपेक्षाकृत लम्बे होते है। ये इस प्रकार से जुडे होते हैं कि सरलता से मनचाही दिशा में हिलाये-डुलाये जा सकते है। जब तिलचट्टे भोजन की खोज में इधर-उधर, घूमते-फिरते हैं तो दोनो ऐन्टिनी भी आगे झुक कर भूमि को सतह कुरेदते चलते है। संवेदी होने के कारण इनकी इस क्रिया के परिणाम-स्वरूप भोजन खोजना सरल हो जाता है। ऐपीक्रेनीयम (epicranium) के ठीक नीचे क्लाइपियस (clypeus) नाम की
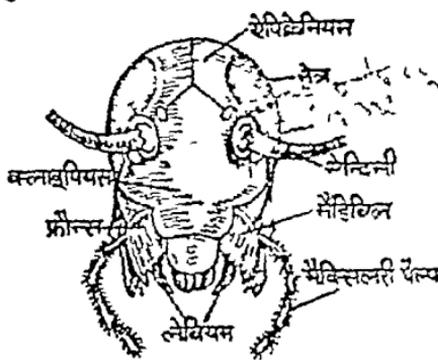
चित्र २९३—पैरीप्लैनिटा के सिर का अग्रदृश्य

एक चौडी, लगभग वर्गाकार (squarish) पट्टी होती है। यह पट्टी मुख का प्रतिपृष्ठ भाग बनाती है। इसके जेनी (genae), जो काइटिन की पट्टी के होते है, सयुक्त नेत्रो के ठीक नीचे स्थित होते है।

तिलचट्टे के मुखभाग (Mouth parts)

इसका मुखद्वार (mouth opening) सिर के निचले, अपेक्षाकृत सँकरे तथा नुकीले भाग में स्थित होता है। इसकी अनिश्चित प्रीओरल कैविटी के चारो ओर मुखभाग (mouth parts) मिलते है। इनका काम भोजन की खोज, उसकी पकड और फिर कुतर-कुतरकर टुकडे करने के बाद निगल जाने में सहायता देना है। मुखभागो के तीन जोडे होते है जो इसकी अनिश्चित तथा विशाल मुख-गुहा के प्रतिपृष्ठ तथा पार्श्व भागो में स्थित होते है।

मैंडिबल (mandibles) दो होते हैं। ये इधर-उधर चल-सन्धियो (movable joint) द्वारा जुडे होते हैं। प्रत्येक मैंडिबल के भीतरी सिरे पर अनेक नुकीले दाँत के समान उभार होते हैं, जिनकी सहायता से ये दोनों

अपनी अनुप्रस्थ गति के परिणामस्वरूप भोजन का चर्वण करते हैं। इसके ठीक नीचे प्रथम तथा द्वितीय मैक्सिला (first and second maxilla) के जोड़े मिलते हैं। प्रत्येक फर्स्ट मैक्जिला (first maxilla) के समीपस्थ भाग को प्रोटोपोडाइट (protopodite) कहते हैं। इसमें दो भाग होते हैं
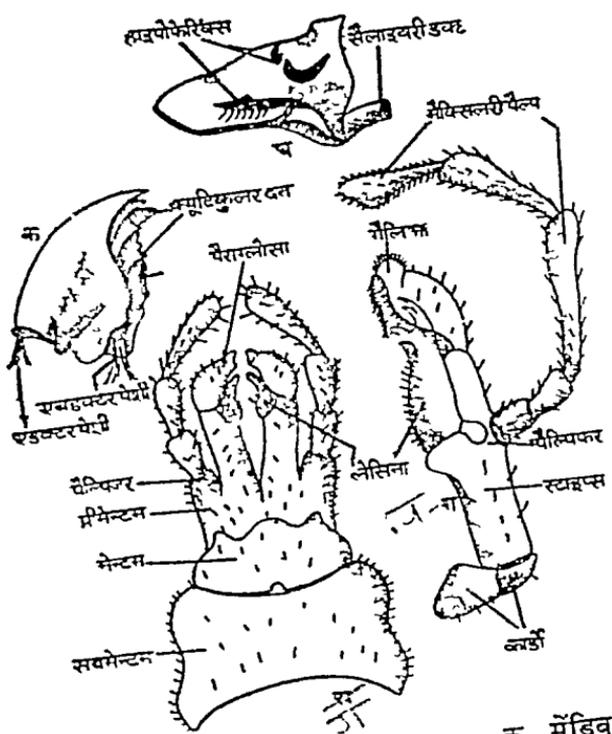
चित्र २९४—पैरीप्लैनेटा के विभिन्न मुखभाग क, मैंडिवल, ख, प्रथम मैक्सिला, ग, लेवियम, घ, हाइपोफैरिंक्स (hypopharynx)

जिन्हें कार्डो (cardo) तथा स्टाइप्स (stipes) कहते है। ये दोनो एक कोण बनाते है। फर्स्ट मैक्जिला का दूरस्थ भाग दो भागो में विभाजित होता है। बाहरी भाग एक्सोपोडाइट (exopodite) और भीतरी भाग को एन्डोपोडाइट (endopodite) कहते हैं। स्टाइप्स (stipes) की बाहरी सतह से निकलनेवाले एक्सोपोडाइट मे पाँच खड होते हैं। इसे मैक्जिलरी पैल्प (maxillary palp) कहते है। एन्डोपोडाइट मे दो भाग होते हैं। भीतरी भाग को लैसिनीया (lacinia) और बाहरी भाग को गैलिया (galea) कहते हैं। गैलिया आकार में हुड (hood) के समान होता है किन्तु लैसिनीया (lacinia) के अन्तिम भाग मे दो काँटे होते हैं और इसकी भीतरी सतह पर अनेक काइटिन के बाल होते हैं। जहाँ से मैक्जिलरी

पैल्प निकलते हैं ठीक वहीं पर काइटिन का एक मजबूत टुकड़ा होता है जिसे पैल्पीफर (palpifer) कहते हैं। लेबियम (labium) अथवा निचला ओठ मुख-गुहा की प्रतिपृष्ठ सतह बनाता है। यह फर्स्ट मैक्सिला के ठीक पीछे स्थित होता है। ऐसा विश्वास है कि यह रचना दोनों सेकंड मैक्सिली के आंशिक रूप में मिलने से बनती है। लेबियम का सबमेन्टम (submentum) ही सबसे अधिक चौड़ा
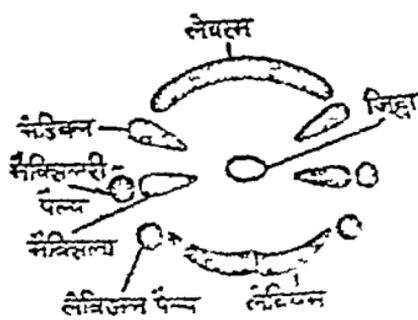
चित्र २९५—पैरीप्लेनेटा के मुख-भागों की सापेक्ष स्थिति

भाग होता है जो कि एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैला होता है। बीचवाले खंड को मेन्टम (mentum) कहते हैं। यह अपेक्षाकृत छोटा होता है। प्रोटोपोडाइट (protopodite) के दूरस्थ सिरे पर एक और छोटा सा भाग होता है जिसे प्रीमेन्टम (prementum) कहते हैं। लेबियम के एक्सोपोडाइट और एन्डोपोडाइट (endopodite) इसी से जुटे रहते हैं। प्रत्येक ओर के एक्सोपोडाइट को जिसमें तीन खंड होते हैं लेबियल पैल्प (labial palp) कहते हैं। एन्डोपोडाइट में भी प्रत्येक ओर दो भाग होते हैं जिन्हें ग्लोसा (glossa) और पैराग्लोसा (paraglossa) कहते हैं। ग्लोसा और पैराग्लोसा मैक्सिला के लैसिनिया (lacinia) और गैलिया (galea) के समजात (homologous) होते हैं। मुखगुहा की पृष्ठसतह पर एक पट्टी होती है जिसे उदोष्ठ या लेबरम (labrum) कहते हैं। यह एक चल-सन्धि द्वारा क्लाइपीयस (clypeus) से जुड़ा रहता है। लेबरम को वास्तव में मुखभाग नहीं मानते। इसकी वेन्ट्रल सतह पर स्वाद-ग्राहक-अंग (gustoreceptors) होते हैं।

मुखगुहा की पिछली दीवार से जुड़ी हुई जिह्वा या हाइपोफैरिंक्स (hypopharynx) मिलती है जो कि मुखगुहा में लटकी होती है। इसी के ऊपर इफरेन्ट सैलाइवरी डक्ट (efferent salivary duct) का छेद भी होता है।

थोरैक्स (Thorax)

अन्य कीटों (insects) की भाँति तिलचट्टे के वक्ष में तीन खंड होते हैं—पहला प्रोथोरैक्स (prothorax) दूसरा मीसोथोरैक्स (mesothorax) तथा तीसरा मेटाथोरैक्स (metathorax)। ये तीनों काइटिन (chitin) के चपटे वलय (ring) के बने होते हैं। इन वलयों (rings) की डोरसल

और वैन्ट्रल सतह पर काइटिन की मोटी लचीली पट्टियाँ होती हैं। पृष्ठ पट्टियो को **टर्गम** (tergum) और प्रतिपृष्ठ को **स्टर्नम** (sternum) कहते है। टर्गम तथा स्टर्नम के बीच के पार्श्व भाग को **प्ल्यूरोन** (pleuron) कहते हैं। थोरैक्स के टर्गा को प्राय नोटम् (notum) कहते हैं। प्रोथोरैक्स का नोटम् इतना बडा होता है कि वह गर्दन को पूरी तौर से किन्तु सिर तथा मीसोथोरैक्स (mesothorax) का भी कुछ भाग ढँक लेता है।

चित्र २९६—पैरीप्लेनेटा की टाँग की रचना

पक्षो (wings) के दोनो जोडे, जो वक्ष से जुडे रहते हैं, टाँगो (walking legs) की भाँति अवयव नही कहे जा सकते। अगले पक्षो का जोडा **मीसोथोरैक्स** से और पिछले पक्षो का जोडा मैटाथोरैक्स (metathorax) से जुडा रहता है। ये थैलियो के रूप में टर्गम तथा प्ल्यूरोन के बीच से निकलते हैं। आरम्भ में इनमें शाखान्वित नलिकाओ (tubules) का एक जाल होता है जो हीमोसील से सम्बन्धित होता है। इन नलिकाओ में तन्त्रिकाओ तथा ट्रैकिया की शाखाएँ भी मिलती हैं। क्रमश इन थैलियो की पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ भित्तियाँ आपस मे मिल जाती हैं और इस प्रकार झिल्लीदार (membranous) पक्षो का निर्माण होता है। अगले पक्षो का जोडा, जो मीसोथोरैक्स (mesothorax) से निकलता है, अपेक्षाकृत मोटा, गहरे भूरे रग का सुदृढ तथा आयताकार (oblong) होता है। ये उडने में सहायता नही देते वरन् पिछले पखो की रक्षा करते हैं। इसी लिए इन्हे **पक्षवर्म** या इलीट्रा (elytra) कहते हैं। मैटाथोरैक्स (metathorax) से निकलनेवाले पिछले पख पतले, पारदर्श तथा जापानी पखे की भाँति मुडे रहते हैं। ये थोडी दूर की उडान में सहायता देते हैं।
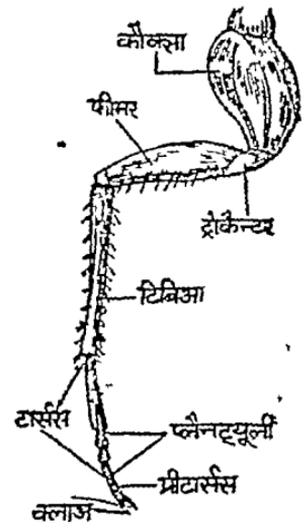
वक्ष के प्रतिपृष्ठ भाग से **टाँगों** (periopods) के तीन जोडे निकलते हैं। प्रत्येक टाँग में पाँच खड होते है जिनकी सख्या निश्चित होती है। प्रत्येक टाँग का समीपस्थ भाग **कौक्सा** (coxa) कहलाता है। यह चपटा और मजबूत होता है और वक्ष के प्रतिपृष्ठ भाग से जुडा रहता है। **कौक्सा** (coxa) के बाद एक पतला चपटा तथा तिकोना **ट्रोकैन्टर** (trochanter) होता है। यह कौक्सा पर स्वतन्त्रतापूर्वक हिल-डुल सकता है किन्तु **फीमर** (femur) से एक अचल सधि द्वारा जुडा रहता है। फीमर के बाद **टीबिआ**

(tibia) होती है जिसके दूरस्थ भाग पर टारसस (tarsus) होता है। इसमें पाँच चल खड (movable segments) एक कतार मे होते हैं। अन्तिम खड के पिछले सिरे पर दो छोटे छोटे नखर (claws) होते हैं। इस नखर-युक्त खड को प्रीटारसस (pretarsus) भी कहते हैं। दोनो नखरो के वीच में एक पोरस (porous) गद्दी होती है जिसे पुलविलस (pulvillus) कहते हैं। टिविआ की सतह पर मजवूत वाल होते हैं जिनकी सहायता से तिलचट्टे अपने शरीर की सफाई करते हैं। टारसस के प्रत्येक खड पर एक छोटी-सी लसलसी (adhesive) गद्दी होती है जिसे प्लैनट्यूला (plantula) कहते हैं। पुलविलस (pulvillus) और प्लैन्ट्यूली (plantulae) की सहायता से ये जन्तु चिकनी तथा सीधी खडी सतह पर, यहाँ तक कि खिडकियो के शीशो, छतो तथा इसी प्रकार के अन्य चिकने स्थानो के ऊपर सरलतापूर्वक चल-फिर सकते हैं।

चित्र २९७—गुल्फ या टारसस का अन्तिम खड

उदर या एवडोमन (Abdomen)

थोरैक्स के ठीक पीछे उदर (abdomen) होता है जो पूरे शरीर की आधी लम्बाई से वडा तथा अपेक्षाकृत अधिक चपटा होता है। निम्फ (nymph) के उदर मे ११ खड होते है किन्तु प्रौढ कोकरोच में १० खड होते हैं। वक्ष की ही तरह उदर मे भी प्रत्येक खड की पृष्ठ या ऊपरी प्लेट को टर्गम (tergum), निचली या प्रतिपृष्ठ प्लेट को स्टर्नम (sternum) और पार्श्व में स्थित पतली झिल्लीदार प्लेटो को प्ल्यूरोन (pleuron) कहते हैं। नर-कौकरोच मे नवाँ टरगम का अधिकतर हिस्सा ७वें टरगम से ढका रहता है। मादा-कौकरोच में ८वें और नवें टरगम के अधिकाश भाग ७वे टरगम से ढके रहते हैं और पृष्ठ-दृश्य में वहुत छोटे दिखाई पडते हैं। १० वाँ टर्गम पीछे की ओर दो पिंडको (lobes) में विभक्त रहता है। इसी के ठीक नीचे एनल सर्काइ या गुद-पुच्छिकाएँ (anal cerci) होती है। ये नुकीली होती हैं तथा इनमे १५ खड होते हैं। तन्त्रिका तन्तुओ की उपस्थिति के कारण ये

ग्राहक अगो का कार्य करती हैं। कुछ लोगो का ऐसा विचार है कि (sound) के उद्दीपनो को भी ग्रहण करती हैं।

उदर की पृष्ठ सतह पर नर कौकरोच में ७वाँ स्टर्नम (sterna) और मादा में ९वाँ स्टर्नम स्पष्ट दिखाई देते हैं। नर तथा मादा दोनो मे ही पहला स्टर्नम बहुत छोटा होता है। नर कौकरोच के नवे स्टर्नम से जुडे दो **एनल स्टाइल्स** (anal styles) मिलते हैं। मादा में इनका अभाव होता है। इस प्रकार नर तथा मादा सहज ही में पहचाने जा सकते हैं। मादा में ७वाँ स्टर्नम पीछे की ओर दो अडाकार रचनाएँ बनाता है जिन्हे **गाइनोवेलव्यूलर प्लेट्स** (gynovalvular plates) कहते हैं। मादा में ८वें तथा नवें स्टर्नम भीतर धँस जाते हैं।

१०वे खड के सिरे के समीप **जनन-छिद्र** होता है। इस छेद को घेरे हुए काइटिन की कुछ रचनाएँ मिलती हैं जिन्हे **गोनापोफाइसेस** कहते हैं। नर में ये ९वे खड से और मादा मे ८वें और ९वे खडो से निकलती हैं। नर और मादा में गोनापोफाइसेस के कार्य भी अलग अलग है, नर मे ये **एक्सटर्नल जेनीटेलिया** (external genitalia) का कार्य करते हैं किन्तु मादा में ये **ओवीपोजिटर** (ovipositor) का निर्माण करते हैं।

१०वे सेग्मेन्ट के टरगम के नीचे **गुदा** (anus) स्थित होती है। इसके इधर-उधर काइटिन की प्लेट्स होती हैं जिन्हे **पैराप्रोक्ट** (paraproct) या **पौडिकल प्लेट्स** कहते हैं। इन्हे ११वें खड का अवशेष समझा जाता है। नर-कौकरोच के उदर के पाँचवे और छठें टरगा के बीच की लचीली झिल्ली मे ग्रन्थियाँ होती हैं जो एक विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न करती हैं। इसी गन्ध द्वारा नर मादा कौकरोच को आकर्षित करता है।

बौडी वॉल (Body wall)

कौकरोच की बौडी वॉल में तीन पर्तें होती हैं—सबसे ऊपर क्यूटिकल या **वाह्य त्वक** (cuticle), बीच मे **हाइपोडर्मिस** (hypodermis) और सबसे नीचे **बेसमेन्ट मेम्बरेन** (basement membrane) होता है।

क्यूटिकल इन तीनो पर्तों में सबसे मोटा होता है और यही कौकरोच का **एक्सोस्कैलिटन** बनाता है। क्यूटिकल स्वय दो स्पष्ट पर्तो का बना होता है—बाहर की ओर **प्राइमरी क्यूटिकल** की पतली तथा रगीन पर्त होती है जिससे जगह जगह अचल **ब्रिसिल्स** (bristles) निकले रहते हैं। भीतर की ओर **सेकेंडरी क्यूटिकल** (secondary cuticle) होता है। वास्तव में यह स्वय कई पर्तो का बना होता है और प्राइमरी क्यूटिकल की अपेक्षा कही अधिक मोटा होता है। हाइपोडर्मिस स्तभी

(columnar) कोशिकाओं की एक पर्त के रूप में होता है। ये कोशिकाएँ एक प्रकार का रस उत्पन्न करती हैं जो कड़ा पड़कर निर्जीव क्यूटिकल बनाता है। हाइपोडर्मिस की कुछ कोशिकाएँ ट्राइकोजेन सेल्स (trichogen cells) कहलाती हैं क्योंकि ये विशेष प्रकार के चल काँटे या ब्रिसिल्स (movable bristles) उत्पन्न करती हैं। बेसमेन्ट मेम्बरन भी अकोशिकीय पर्त होती है।
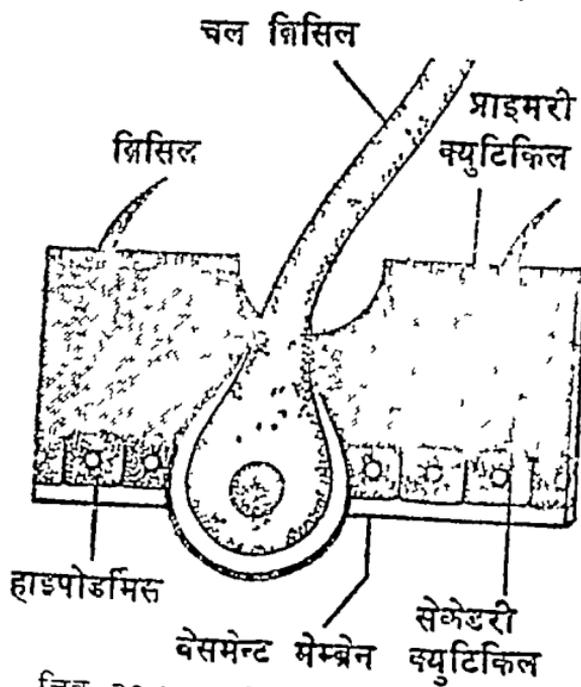
चित्र २९८—बाडी वॉल (Body wall) का ट्रांसवर्स सेक्शन

पाचक तंत्र
(Digestive System)

कौकरोच की आहार-नाल का अधिकांश भाग उदर मे मिलता है। यह अपारदर्शी सफेद **फैट-बॉडी** (fat body) से ढकी रहती है। इसकी आहार-नाल तीन प्रमुख भागों मे विभाजित की जा सकती है—(१) भ्रूणमुख या **स्टोमोडियम** (stomodeum), (२) मध्यान्त्र या **मीसेन्टरॉन** (mesenteron) तथा (३) भ्रूणगुद या **प्रोक्टोडियम** (proctodeum)। इन तीनों मे मीसेन्टरौन सबसे छोटी होती है और केवल इसी की भीतरी सतह एण्डोडर्म से ढकी होती है। स्टामोडियम तथा प्रोक्टोडियम (proctodeum) दोनों ही लम्बाई मे मीसेन्टरौन से कहीं अधिक लम्बे होते हैं और इनकी भीतरी सतह क्यूटिकल की एक पतली पर्त से ढकी रहती है।

मुखाग्र गुहा या **प्रीओरल-कैविटी** (preoral cavity) के पीछे एक छोटी-सी मुखगुहा होती है जो कि फेरिंक्स (pharynx) मे खुलती है। इस खड़ी नली को दो भागों में बाँट सकते हैं। इसका जो भाग सेरिब्रल गैंगलिया के आगे होता है उसे **एन्टीरियर फेरिंक्स** और जो इस गैंगलिया के पीछे होता
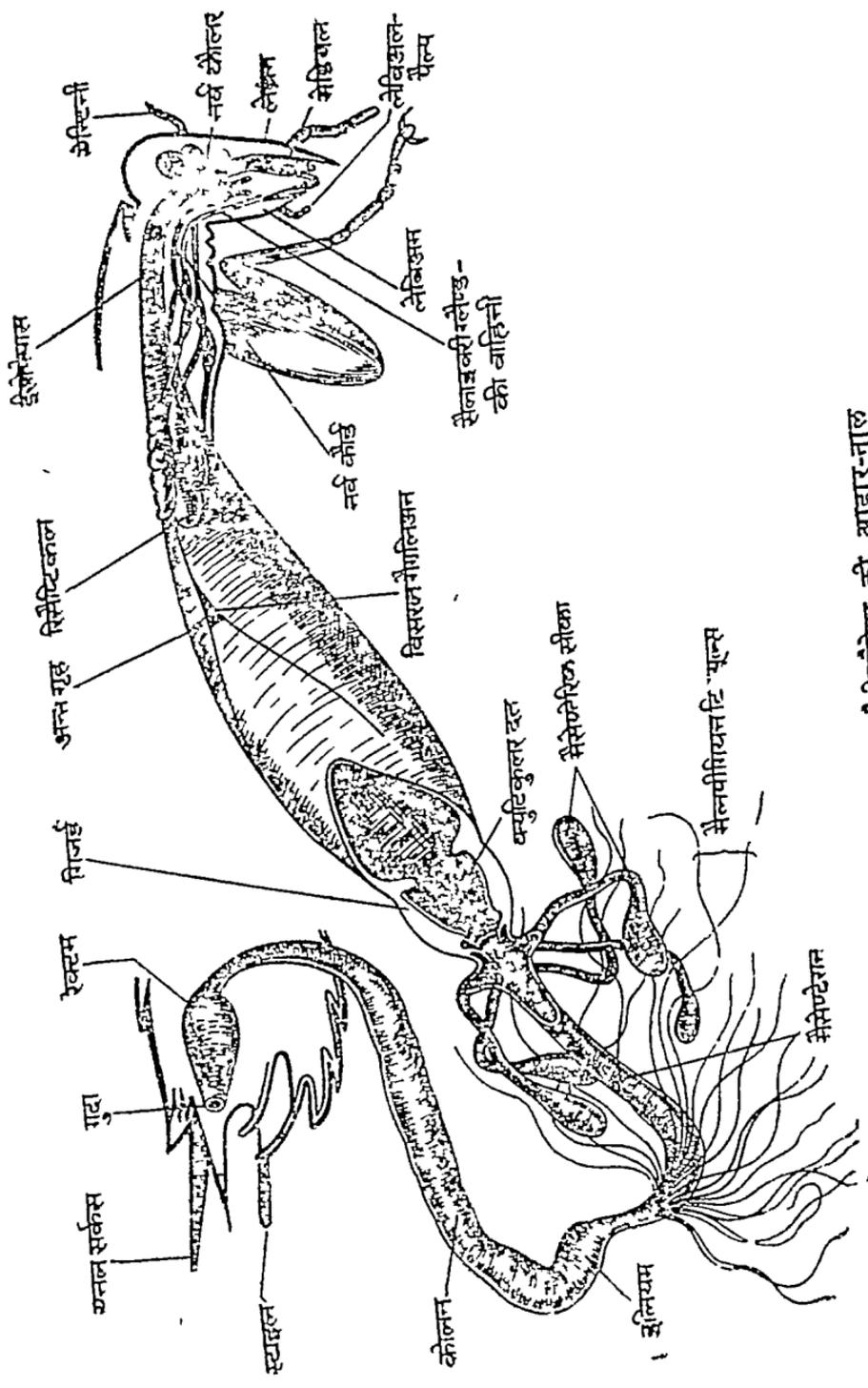
चित्र २९९—पैरीप्लैनेटा की आहार-नाल

है उसे **पोस्टीरियर फेरिक्स** कहते हैं। पोस्टीरियर फेरिक्स सिर में कुछ दूर ऊपर उठकर ईसोफेगस (oesophagus) बनाता है। यह एक सँकरी नली के रूप में गर्दन में होता हुआ वक्ष में पहुँचता है और क्रमश फूलने लगता है और एक लम्बी नाशपाती के आकार की थैली बनाता है जिसे अन्न-ग्रह या क्रौप (crop) कहते हैं। यह उदर के अगले भाग तक फैला होता है। इसके पिछले सिरे पर गिजर्ड या पेषणी (gizzard) होता है। इसकी रचना
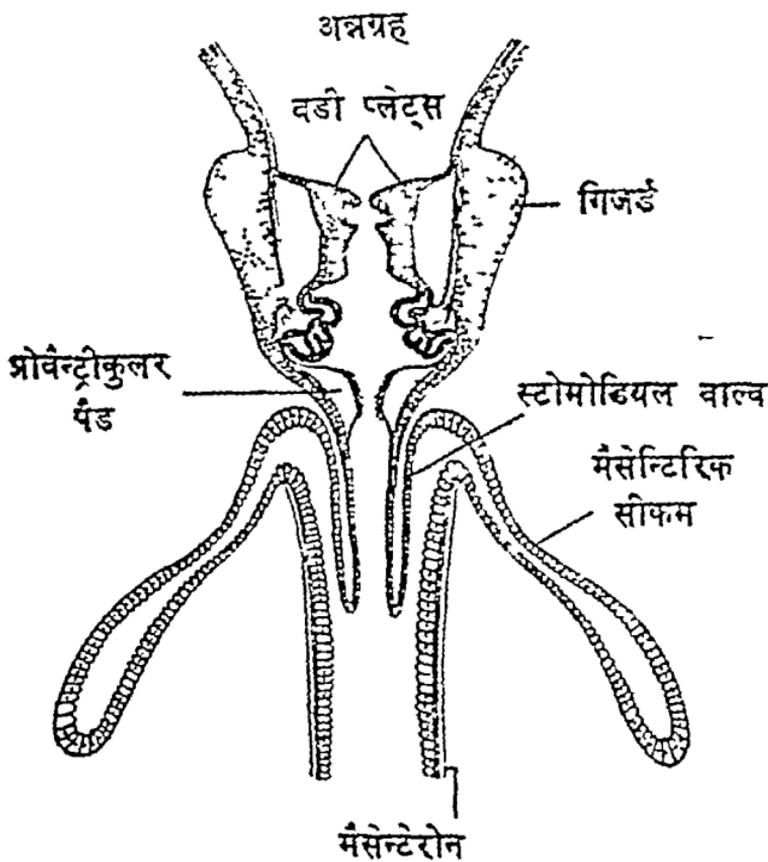
चित्र ३००—पैरीप्लैनेटा के गिजर्ड तथा मीसैन्टरान के अग्र भाग का लॉंगिट्यूडिनल सेक्शन

अनोखी होती है। बाहर से टटोलने पर यह पेशीय रचना कड़ी होती है। इसकी भीतरी सतह पर स्थित क्यूटिकल काफी मोटा हो जाता है और गोलाई में छ स्थानों पर विशेषरूप से मोटा होकर यह छ दाँतों की एक गोल कतार बनाता है। ये सभी भोजन के चर्वण में सहायता देते हैं। इन **क्यूटिकुलर दाँतों** के पीछे ६ गद्दियों की एक गोल कतार होती है। प्रत्येक गद्दी से जुड़े अनेक काइटिनस रोम (hairs) होते हैं जो पीछे की ओर झुके रहते हैं। ये सभी रोम मिलकर एक प्रकार की चलनी (sieve) बनाते हैं

जो केवल भोजन के नन्हे-नन्हे टुकडो को मीसेन्टरौन में जाने देती है। प्रोवैन्ट्रिकुलस की इन गद्दियो के पीछे एक स्टोमोडियल वाल्व (stomodeal valve) होता है जो कि मीसेन्टरौन के अगले भाग मे लटका रहता है। वह मीसेन्टरौन मे आये हुए भोजन को प्रोवैन्ट्रिकुलस मे वापस जाने से रोकता है।

चित्र ३०१—गिजर्ड का ट्रासवर्स सेक्शन

मीसेन्टरौन की भीतरी सतह एन्डोडर्म की बनी होती है। इसके अगले सिरे से आठ पतली नालाकार रचनाएँ निकलती हैं जिन्हे गैस्ट्रिक सीका (gastric caeca) कहते हैं। ये एक ओर तो मीसेन्टरौन के अगले भाग मे खुलते हैं किन्तु इनके दूसरे सिरे बन्द होते हैं। ये पाचक रस उत्पन्न करते है तथा साथ ही साथ पचे हुए भोजन
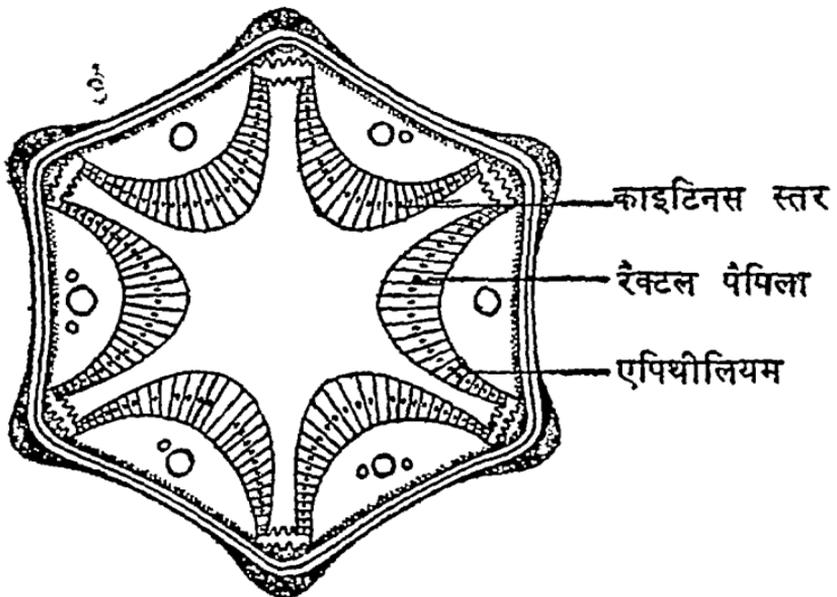
चित्र ३०२—पैरीप्लैनेटा के मलाशय का ट्रासवर्स सेक्शन

का अवशोषण करनेवाली सतह का क्षेत्रफल भी बढाते हैं। जिस स्थान पर मीसेन्टरौन तथा प्रौक्टोडियम मिलते हैं, वहाँ से लगभग ९०-१०० अशाखी,

पीली मैलपीगियन नालें (malpighian tubules) निकलती हैं। ये सभी कौकरोच मे उत्सर्जन या एक्सक्रीशन में सहायता देती हैं।

स्टोमोडियम की भाँति प्रौक्टोडीयम के विभिन्न भागो की भीतरी सतह भी क्युटिकल से ढकी रहती है। इसमें ईलियम, कोलन (colon) तथा मलाशय (rectum) होते हैं। इनमें कोलन अधिक लम्बा तथा कुडलित होता है। इसका पिछला सिरा एकाएक फैलकर मलाशय (rectum) वनाता है। इसकी भीतरी सतह पर ६ लौंगिट्यूडिनल उभार होते हैं जिन्हें रैक्टल ग्लैण्ड्स कहते हैं। मलाशय उदर के दसवें टरगम के नीचे स्थित गुदा (anus) में होकर वाहर खुलता है।

आहार-नाल से सम्वन्वित सैलाइवरी ग्लैण्ड्स (salivary glands) का एक जोडा होता है। ये वक्ष प्रदेश में अन्न-ग्रह या क्रौप के इधर-उधर स्थित होती है। प्रत्येक सैलाइवरी ग्लैण्ड मे दो स्पष्ट भाग होते हैं। ग्रन्थिल भाग दो पिंडको (lobes) का बना होता है और दूसरा भाग थैली के समान आशय (reservoir) होता है जिसे रिस्प्टेकिल (receptacle) कहते हैं प्रत्येक ओर के दोनो ग्रन्थिल पिंडको से एक एक डक्ट निकलती है।
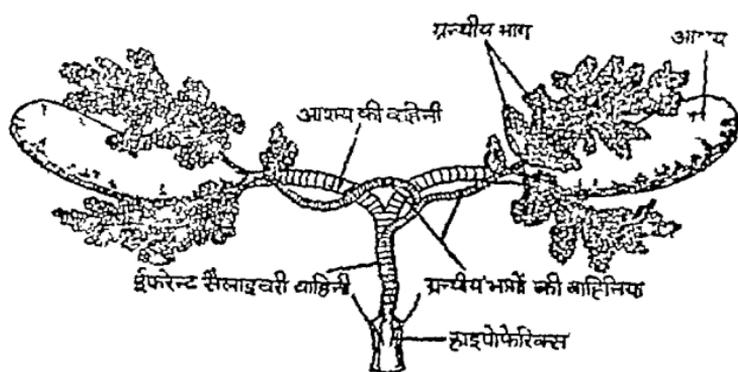
चित्र ३०३—पैरीप्लेनेटा की सैलाइवरी ग्लैण्ड

ये दोनों मिलकर प्रत्येक ओर एक सामान्य डक्ट (common duct) वनाती हैं। इसी प्रकार दोनो ओर के आशय से निकलनेवाली डक्ट्स भी मिलकर सामान्य डक्ट वनाती हैं। दोनो ओर के ग्रन्थिल पिंडको से आनेवाली सामान्य डक्ट्स और आशय से आनेवाली सामान्य डक्ट अब परस्पर मिलकर सामान्य इफरेन्ट डक्ट (common efferent duct) वनाती हैं जो गर्दन में होती हुई आगे वढ़ती है और मुखाग्र-गुहा (preoral cavity) में हाइपोफैरिक्स की निचली सतह पर खुलती है।

भोजन, प्राशन तथा पाचन

(Food, Feeding and Digestion)

चूहो की तरह कौकरोच भी हमारे मकानो में न केवल आश्रय वल्कि भोजन भी पाते हैं। ये सभी कुछ खाते पीते है जैसे रोटी, कागज, चमडा, कपडा, लकडी, सीग, कीडो का मृत शरीर इत्यादि। यहाँ तक कि अपना ही फेंका हुआ एक्सोस्कैलिटन भी इनसे नही वच पाता। सक्षेप में सीमेन्ट, लोहा, चूना आदि वस्तुओ को छोड ये सर्वभक्षी जन्तु सभी कुछ खा सकते हैं।

अपनी लम्वी ऐन्टिनी से कौकरोच भूमि की सतह को वुहारते चलते हैं और इस प्रकार ये सहज ही मे भोजन का पता पा जाते हैं। दोनो मैक्जिली (maxillae) की सहायता से ये भोजन को पकडकर मैंडिवल्स (mandibles) के वीच लाते हैं जिससे ये अपने दाँतो सदृश उभारो की सहायता से उसके टुकडे-टुकडे कर सकें। मैक्जिली तथा लेवियम भोजन के इन टुकडो को मुख मे ठेल देते है। लोगो का अनुमान है कि मैक्जिलरी पैल्प स्वाद का पता चलाने मे सहायता देते हैं।

जिस समय प्री-ओरल कैविटी में मैंडिवल्स द्वारा भोजन का चर्वण होता है, सामान्य इफरेन्ट सैलाइवरी डक्ट (common efferent salivary duct) के छेद से सैलाइवा निकला करता है। इस प्रकार नम भोजन आसानी से जवडो द्वारा कुचला जाता है और फिर आसानी से फेरिक्स तथा ईसोफेगस में होता हुआ क्रौप या अन्न-ग्रह में पहुँच जाता है। कौकरोच के सैलाइवा में एमीलोप्सिन या एमीलेज (amylase) नाम का एन्जाइम होता है जिससे माडी का पाचन प्रीओरल या मुखाग्र कैविटी मे ही आरभ हो जाता है और क्रौप में पूरा होता है। आहार-नाल का सवसे लम्वा तथा चौडा भाग होने के कारण क्रौप भोजन के अस्थायी सग्रह में सहायता देता है और आवश्यकतानुसार काफी फैल जाता है। मीसेन्टरौन तथा गैस्ट्रिक सीका मे उत्पन्न होनेवाले पाचक रस भी खिचकर क्रौप में आ जाते हैं। इन पाचक-रसो में कई एन्जाइम्स होते हैं जैसे पेप्टीडेज (peptidase), लैक्टेज (lactase), ट्रिप्टेज (tryptase), इनवर्टेज (invertase) इत्यादि। इनकी सहायता से भोजन के सभी भागो—प्रोटीन, माडी, चर्वी—का पाचन हो जाता है। जव अवपचा भोजन गिजर्ड मे होता हुआ मीसेन्टरौन में आने लगता है तो गिजर्ड की काइटिनस गद्दियाँ उसे पीसकर वहुत महीन कर देती हैं। काइटिन के वाल जो कि एक प्रकार की चलनी (strainer) वनाते हैं भोजन के केवल वहुत ही महीन टुकडो को मीसेन्टरौन में जाने देते है।

यदि हम तिलचट्टे के पूरे शरीर के पृष्ठपट्टो या टर्गा को सावधानी से काटकर निकाल दें तो **पृष्ठ सतह पर डौरसल रुधिर वाहिनी** (dorsal blood vessel) साफ-साफ दिखाई देती है। इसका पिछला सिरा बद रहता है और इसे हम दो भागो में बाँट सकते हैं—

(१) पिछले कुचनशील भाग को **"हृदय"** (heart) और

(२) अगले सँकरे नालाकार भाग को **पृष्ठ महाधमनी** (dorsal aorta) कहते है।

तिलचट्टे के शरीर में केवल **पृष्ठ रुधिर वाहिनी** होती है जो पेरीकार्डियल कैविटी के अदर स्थित होती है। हृदय में एक कतार में १३ वेश्म या चैम्बर्स (chambers) होते है। प्रत्येक चैम्बर का आकार फनल के सदृश होता है। इनमें से प्रत्येक चैम्बर अपने इधर-उधर स्थित छेदो या **औस्टिआ** (ostia) द्वारा पेरीकार्डियल साइनस से सम्बन्ध बनाये रखता है। इन छेदो
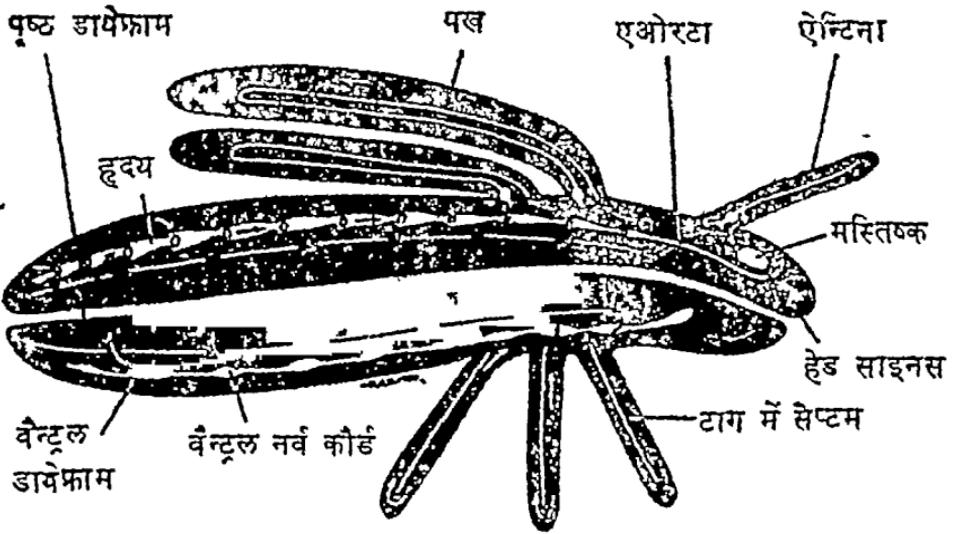
चित्र ३०५—पैरीप्लैनेटा का परिवहन-तत्र

द्वारा पेरीकार्डियल साइनस का **हीमोलिम्फ** (heamolymph) हृदय-वेश्मो के अदर प्रवेश करता है। इन वेश्मो के अदर कपाट या वाल्व भी होते हैं जिनकी सहायता से रुधिर-प्रवाह केवल पीछे से आगे की ओर होता है। प्रत्येक चैम्बर के पार्श्व भाग से व्यजन-सदृश (fan shaped) **ऐलेरी पेशियाँ** (alary muscles) निकलती हैं जो सब की सब पृष्ठ भित्ति से मिलकर एक प्रकार के डायेफ्राम (diaphragm) का निर्माण करती हैं। यह **डायेफ्राम पैरीविसरल हीमोसील** (perivisceral haemocoel) को **डौरसल पेरीकार्डियल साइनस** से अलग करता है। रुधिर परिवहन के लिए पेरीकार्डियम की पृष्ठ सतह पर छोटे-छोटे छेद होते हैं।

चित्र ३०६—तिलचट्टे में रुधिर परिवहन की दिशा

ऐलेरी-पेशियाँ (alary muscles) के कुचन के फलस्वरूप तिलचिट्टे का रंगहीन रुधिर पेरीविसरल हीमोसील (perivisceral haemocoel) मे पेरीकार्डियम में पहुँच जाता है। यहाँ से यह औस्टिया (ostia) द्वारा हृद्वेश्मों में पहुँचता है। क्रमाकुचन के फलस्वरूप रुधिर एक वेश्म से दूसरे वेश्म में होता हुआ पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) मे पहुँचता है और वहाँ से अन्त में हीमोसील (haemocoel) में फिर पहुँच जाता है। तिलचट्टे में केशिका सगम (capillary junctions) नही होते जिससे रुधिर का परिवहन केवल बडे-बडे साइन्यूसेस (sinuses) में हुआ करता है। यही कारण है कि जब केंचुए, मेढक और अन्य वरटिब्रेट जीवो में परिवहन तंत्र "संवृत" या "बन्द" (closed) होता है तो कीटो में यह सदैव "खुला" (open) होता है।
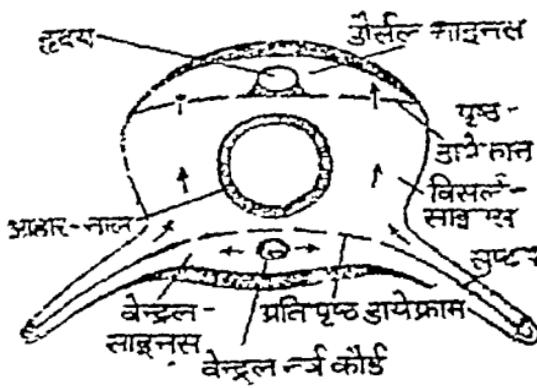
श्वसन तंत्र (Respiratory system)

तिलचट्टे जैसे स्थल-निवासी कीट में श्वास-नलियाँ या ट्रेकी (tracheae)
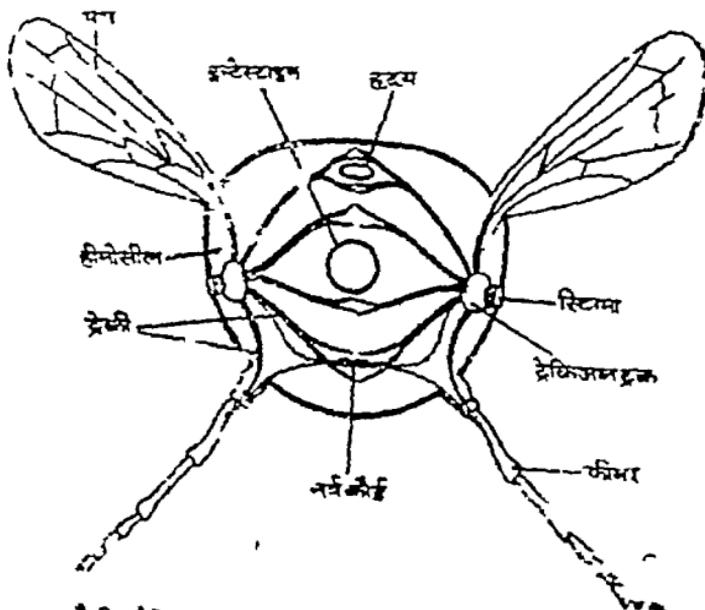
चित्र ३०७—पैरीप्लैनेटा के वक्ष (thorax) का ट्रासवर्स सेक्शन जिसमें स्टिग्मा, ट्रैकियल चैम्बर तथा प्रमुख ट्रैकी की स्थिति दिखाई गई है।

जो स्वय ऊतक कोशिकाओ में ऑक्सीजन पहुँचाती है, अत्यन्त विकसित होती हैं। श्वास-नलियो या ट्रैकी में श्वास-रंध्रों (spiracles) या स्टिग्मेटा (stigmata) द्वारा वाहरी वायु प्रवेश करती है। इन छेदो के दस जोडे होते हैं जो वक्ष (thorax) तथा उदर (abdomen) के दोनो किनारो (sides) पर मिलते हैं। इन श्वास-छिद्रो के दो जोडे वक्ष प्रदेश (thorax) में होते हैं—एक जोडा प्रोथोरैक्स (prothorax) तथा मीजोथोरैक्स के बीच मे तथा दूसरा जोडा मीजोथोरैक्स (mesothorax) तथा मैटाथोरैक्स के बीच।

उदर (abdomen) में आठ जोडे श्वास-छिद्र (spiracles) अगले आठ खडो के इधर-उधर होते है। इन्हे हम हेण्ड लेन्स (hand lens) द्वारा
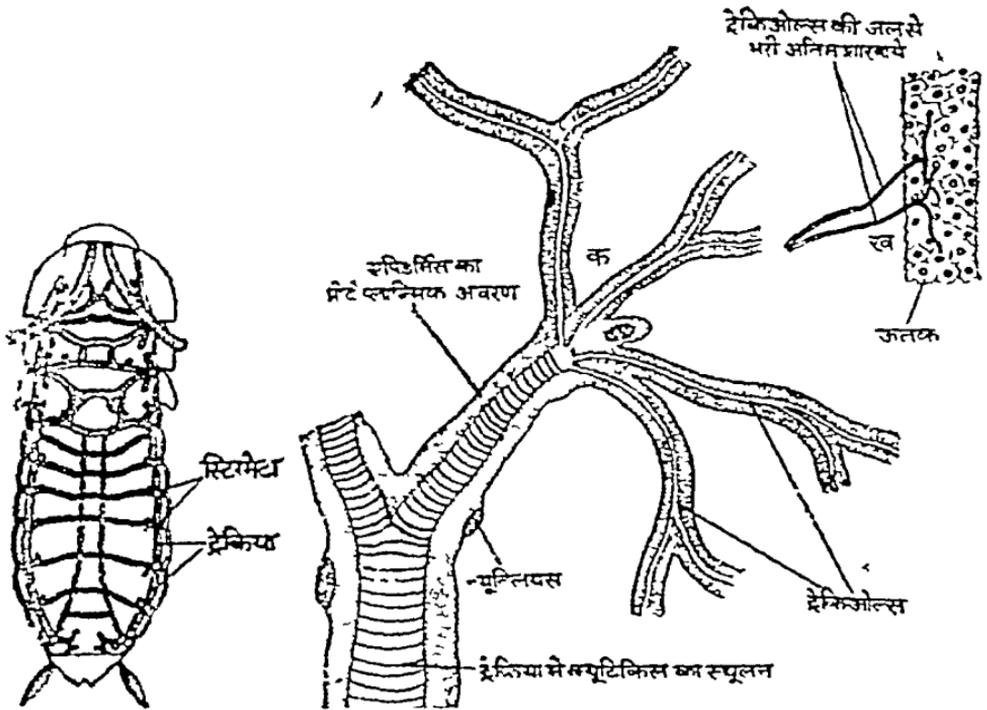
चित्र ३०८—श्वास नलियो का विन्यास

चित्र ३०९—क, पैरीप्लैनेटा की श्वास-नलियो की रचना; ख, ट्रैकिओल्स का अन्तिम भाग

देख सकते हैं। प्रत्येक श्वासछिद्र में अनेक कडे वाल (bristles) होते हैं और कपाटो की सहायता से स्टिग्मेटा वन्द भी किये जा सकते हैं। इनके कडे वाल धूल के कणों को भीतर जाने से रोकते हैं। प्रत्येक श्वास-छिद्र के ठीक पीछे एक ट्रैकीयल चैम्बर (tracheal chamber) होता है। इसी चैम्बर से श्वास-नलियाँ या ट्रैकी निकल-निकलकर ऊपर-नीचे और आगे-पीछे

जाती हैं। पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ भाग को जानेवाली श्वास-नलियाँ वारम्वार छोटी-छोटी शाखाओ में विभाजित होकर अन्त में वहुत ही महीन ट्रैकिओल्स (tracheoles) का रूप ले लेती हैं। श्वास नलियाँ और केशिकाएँ दोनो ही शरीर की वाहरी सतह (body surface) के भीतर धँस जाने से वनती हैं जिससे इनकी भीतरी सतह सदैव काइटिन (chitin) की एक पतली पर्त द्वारा आस्तरित (lined) रहती हैं। श्वास-नलियाँ या ट्रेकी इसीलिए एक्टोडर्मल (ectodermal) होती हैं। काइटिन की इस पतली पर्त के नियमित स्थूलीकरण (thickening) के फलस्वरूप एक मोटी सर्पिल रेखा-सी वन जाती है जो इन श्वास-नलियों को दृढता देती है जिससे हवा का लेन-देन विना किसी रुकावट से होता रहता है। इन्हीं सर्पिल-रेखाओं (spiral rings) की उपस्थिति से कीटो की ये श्वास-नलियाँ भी हमारे ट्रेकिया (trachea) के ही समान दिखाई देती है। श्वास-केशिकाएँ एक प्रकार के **प्रोटीन** (portein) जिसे ट्रैकीन (trachein) कहते हैं, से ढकी रहती हैं। श्वास-केशिकाएँ ऊतक कोशिकाओ के वीच-वीच में या कोशिकाओ के भीतर समाप्त होती हैं। इन श्वास-केशिकाओ का अन्तिम भाग एक तरल द्रव से भरा रहता है। औस्मोटिक दवाव (osmotic pressure) के वदलने के फलस्वरूप तरल द्रव के स्तभ (column) की लम्वाई घटा-वढा करती हैं।
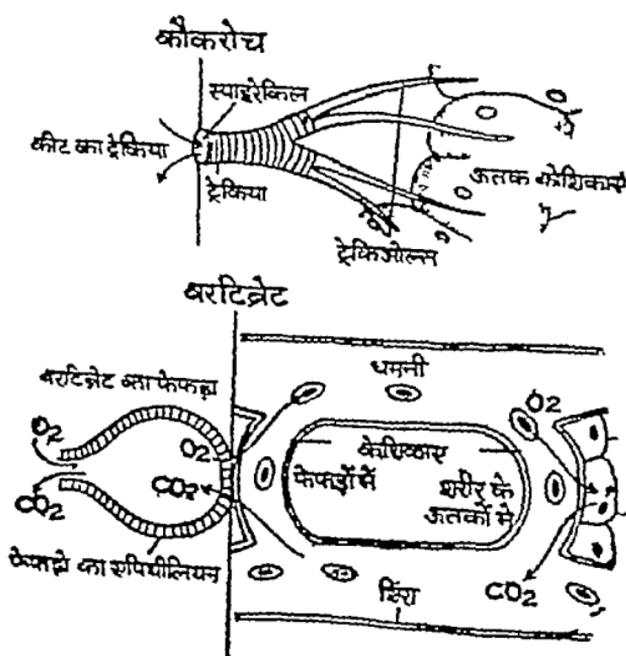
चित्र ३१०—पैरीप्लैनेटा तथा वरटिब्रेट में श्वसन-विधियो की तुलना

श्वसन-क्रिया की विधि (Mechanism of breathing)—इन्ही श्वास-नलियो (tracheae) द्वारा ऑक्सीजन इन जन्तुओ के शरीर के भीतर विसरण (diffusion) द्वारा प्रवेश करती है और कार्वन डाईआक्साइड वाहर निकला करता है। कुछ लोगो के मतानुसार कार्वन डाईआक्साइड का अधिकाश भाग तो इनके शरीर के एक्सोस्कैलिटन में होता हुआ वाहर

निकल जाता है। यह इसीलिए सम्भव है क्योकि काइटिन के बने हुए इनके एक्सोस्केलिटन में होकर पानी न तो भीतर घुस सकता और न बाहर ही निकल सकता है लेकिन विसरण द्वारा कार्बन डाईआक्साइड के बाहर निकलने मे किसी प्रकार की बाधा नही होती।

सवातन-गति (ventilation movement) के परिणामस्वरूप इनके श्वसन में सहायता मिलती है। सवातन गति में इसका उदर डार्सो-वेन्ट्रल प्लेन मे सिकुडता और फैलता है। **टर्गो-स्टर्नल पेशियों** (tergo-sternal muscles) के कुचन से इसका उदर अधिक चपटा हो जाता है किन्तु इनके शिथिलन (relaxation) के फलस्वरूप टर्गा (terga) तथा स्टर्ना (sterna) फिर से अपनी पूर्व स्थिति में आ जाते हैं। उदर के चपटे होने से श्वास-नलियो की वायु बाहर निकल जाती है, किन्तु जब टर्गा और स्टर्ना अपनी पूर्व स्थिति में लौट आते हैं तो बाहरी वायु श्वास नलियो में प्रवेश करती है। हवा का यह लेन-देन केवल बडी-बडी श्वास-नलियो में होता है किंतु छोटी-छोटी शाखाओ में आक्सीजन केवल विसरण (diffusion) द्वारा ही पहुँच पाती है। श्वास-केशिकाओ (tracheoles) के लम्बाई मे बढने के साथ-साथ वायु के प्रति उनका रोध (resistance) भी बढता जाता है। यही कारण है कि अधिकाश कीटो के शरीर छोटे होते हैं। कीटो की अधिकतम (maximum) लम्बाई १० इच के लगभग होती है किन्तु अधिकाश कीट लगभग १ इच या उससे भी कम होते है।

स्थलनिवासी कीटो में ट्रेकिया या श्वास-नलियो मे हवा के भीतर घुसने या बाहर निकलने से शरीर का काफी पानी भाप बनकर साथ मे उड जाता है। इसीलिए श्वसन-छिद्र या स्टिग्मेटा केवल इतने ही खुले रहते है जिससे वायु केवल आवश्यक मात्रा में भीतर प्रवेश कर सके। दूसरे प्रकार का श्वसन-सम्बन्धी नियन्त्रण श्वास केशिकाओ के अन्तिम भागो मे तरल द्रव की उपस्थिति से होता है। इस तरल द्रव की मात्रा घटाई-बढाई जा सकती है। जब शरीर में ऊतको को ऑक्सीजन की अधिक आवश्यकता होती है तो इन केशिकाओ में तरल द्रव गायब हो जाता है। इसके विपरीत यदि आक्सीजन की आवश्यकता कम होती है तो ये केशिकाएँ तरल द्रव से भर जाती हैं जिसके फलस्वरूप हवा का लेन-देन भी कम होता है। इस प्रकार श्वसन का नियन्त्रण पूरी तौर से आत्मग (automatic) होता है।

एक्सक्रीटरी तन्त्र

(Excretory system)

तिलचट्टे के प्रमुख एक्सक्रीटरी अग **मैलपीगियन नाल** (malpighian

tubules) हैं। फैट बॉडी तथा एपिडर्मिस भी एक्सक्रीशन में थोडी बहुत सहायता देते हैं। मैलपीगियन-नालें बहुत ही महीन, पीली और शाखारहित होती हैं। संख्या में ये ९० तक होती हैं और १५-१५ के गुच्छों में मिलती हैं। इस प्रकार कुल ६ समूह होते हैं। हीमोसील में ये नालें फैली होती हैं और हीमोलिम्फ में सदैव डूबी रहती है। प्रत्येक मैलपीगियन नाल वास्तव में प्रोक्टोडियम (proctodeum) से निकलती है। इसकी भीतरी सतह पर ग्लैंड्युलर एपिथीलियम होता है जिसकी भीतरी सतह पर विशेष
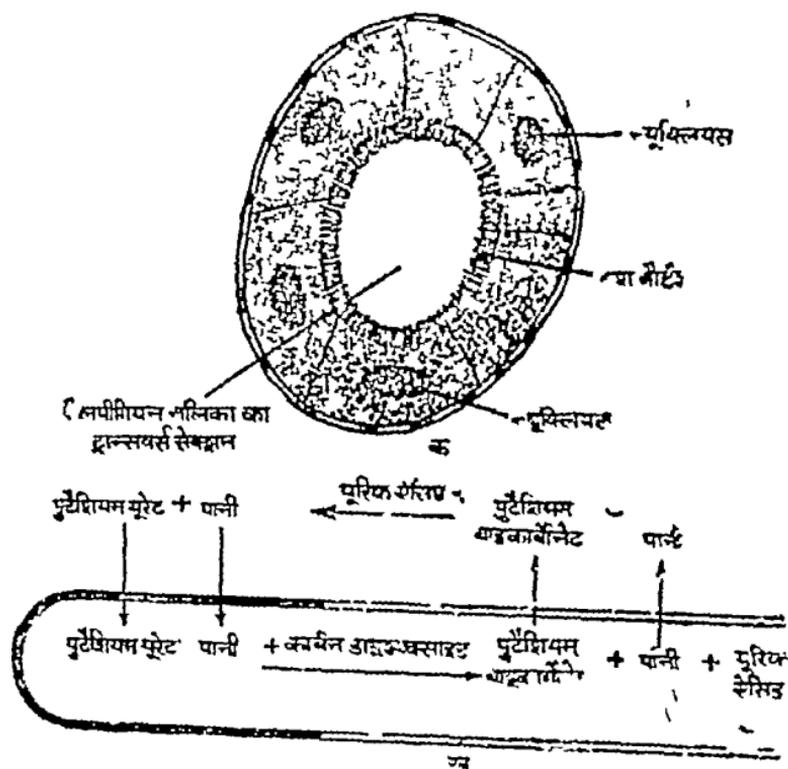
चित्र ३११—पैरीप्लैनेटा क मैलपीगियन नाल का ट्रासवर्स सेक्शन, ख, मैलपीगियन नाल में यूरिक ऐसिड (uric acid) के बनने की विधि

प्रकार का ब्रश-बोर्डर (brush border) होता है। कभी-कभी नाल के दूरस्थ तथा समीपस्थ भाग की हिस्टोलोजिकल रचना में भी प्रत्यक्ष अन्तर मिलता है।

प्रत्येक मैलपीगियन नाल का दूरस्थ भाग एक्सक्रीशन (excretion) में किन्तु समीपस्थ भाग केवल अवशोषण (absorption) में सहायता देता है। दूरस्थ भाग हीमोसील (haemocoel) में घुले हुए नाइट्रोजीनस वर्ज्य पदार्थों (nitrogenous waste products) जैसे यूरेट्स (urates) अर्थात् यूरिक अम्ल के लवणो (salts of uric acid) को सोखने में सहायता देता है। सोडियम या पुटैशियम यूरेट का घोल जब मैलपीगियन

नाल के समीपस्थ भाग में पहुँचता है तो इसका ग्रन्थिल एपिथीलियम जल, सोडियम तथा पुटैशियम वाईकार्वोनिट्स को सोख लेता है। इन लवणो के घोल में कार्वन डाइआक्साइड के मिलने पर यूरिक अम्ल (uric acid) का **प्रिसीपिटेशन** (precipitation) हो जाता है। यूरिक ऐसिड अन्त में प्रॉक्टोडियम (proctodeum) के अन्दर पहुँच जाती है जहाँ से वह मल के साथ वाहर निकलती रहती है। अघुलनशील (insoluble) यूरिक ऐसिड का वनना और उसका गुदा (anus) में होकर वाहर निकलना कदाचित् इन कीटो में पानी की वचत का एक सुन्दर साधन है।

हीमोसील का अधिकाश भाग **फैट बॉडी** (fat body) घेरे रहता है। इसमें अनेक असमितीय सफेद गुच्छे होते हैं जो सभी हीमोलिम्फ में डूबे रहते हैं। कीटो में फैट बॉडी के दो काम होते हैं। प्रथम यह हीमोलिम्फ में जितना भी चर्वी का अधिक भाग होता है उसे सोखकर अपनी कोशिकाओ में इकट्ठा करता रहता है। इसके अतिरिक्त यूरेट्स भी इसकी कोशिकाओ में मिलते हैं जिनका पाया जाना निस्सदेह इस वात का द्योतक है कि एक्सक्रीशन में भी ये अवश्य कुछ न कुछ सहायता देते हैं। लोगों का ऐसा अनुमान है कि जिस एक्सक्रीटरी पदार्थ को मैलपीगियन नालें (malpighian tubules) वाहर नही निकाल पाती उसे फैट बॉडी अपनी कोशिकाओ में इकट्ठा कर लेते हैं।

हीमोलिम्फ की **अमीबौयड कोशिकाएँ** (amoeboid cells) शरीर के विभिन्न भागो में घूमती रहती हैं और जो कुछ वर्ज्य पदार्थ ये इकट्ठा करती हैं उसे ले जाकर अन्त में क्यूटिकल (cuticle) के नीचे इकट्ठा करती हैं। ये पदार्थ इन कीटो के वहिर्कंकाल (exoskeleton) के निर्माण में सहायता देते हैं। परिवर्धन काल में प्रत्येक त्वक्-पतन (moulting) के समय काइटिनस एक्सोस्कैलिटन गिलाफ के समान उतारकर फेंक दिया जाता है। इसलिए त्वक्-पतन द्वारा भी एक्सक्रीटरी पदार्थों के वाहर निकलने में सहायता मिलती है।

तंत्रिका तंत्र
(Nervous system)

तिलचट्टे का केन्द्रीय तत्रिका तत्र वहुत कुछ केंचुए से मिलता-जुलता है। इनमें **सेरीब्रल गैंगलिआ** (cerebral ganglia), **सवईसोफेजियल गैंगलिआ** (suboesophageal ganglia) तथा **सरकमफेरिंजियल कौमीश्योर्स** (circumpharyngeal commissures) तो सिर में होते हैं और वक्ष तथा उदर में **वैन्ट्रल नर्व कौर्ड** (ventral nerve cord) होता है। मस्तिष्क या सेरीव्रल गैंगलिआ वास्तव में छ होते हैं किन्तु ये सभी मिलकर **सिनसेरीब्रम**

(syncerebrum) बनाते हैं। सबईसोफेजियल गैंगलिऑन वेन्ट्रल सतह पर **सबमेन्टम** (submentum) और ईसोफेगस के अगले सिरे के बीच में होता है। इसे **टेन्टोरियम** (tentorium) नामक काइटिन का बना हुआ **एन्डोस्कैलिटन** (endoskeleton) साधे रहता है। दोनो ओर के सरकम **फैरिंजियल कौमीस्योर्स** सबईसोफेजियल गैंगलिऑन से जुडकर नर्व-कौलर (nerve collar) बनाते हैं जिसके अन्दर से ईसोफेगस प्रवेश करता है। वेन्ट्रल नर्व कौर्ड दोहरा होता है। यह थोरैक्स के अगले सिरे से लेकर उदर (abdomen) के अन्त तक फैला होता है। प्रत्येक खड मे स्थित दोनो गैंगलिआ एक दूसरे से जुडे होते हैं किन्तु दोनों कौर्डस (cords) अलग होते हैं। वक्ष में इन गैंगलिआ के केवल तीन जोडे होते हैं किन्तु उदर में ग्यारह जोडों के स्थान पर केवल छ जोडे मिलते हैं। इनमें से पहले पांच अगले पांचो खडो में होते है किन्तु छठा कुछ पीछे होता है। अन्तिम एबडोमिनल गैंगलिऑन सबसे बडा होता है और वास्तव मे यह अनेक गैंगलिआ के मिलने से बनता है।
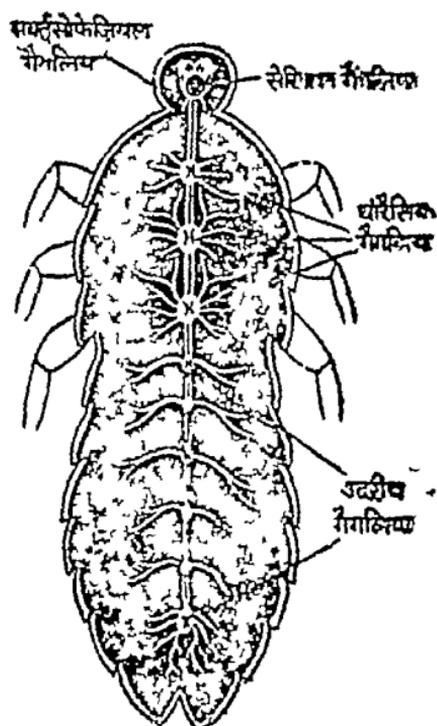
चित्र ३१२—पैरीप्लैनेटा का तन्त्रिका तन्त्र

सभी गैंगलिआ से तन्त्रिकाएँ (nerves) निकलकर शरीर के विभिन्न भागों में जाती हैं। ये सभी **पेरीफरल तन्त्रिका तन्त्र** (peripheral nervous system) बनाती हैं। सेरीब्रल गैंगलिआ से तन्त्रिकाओ के तीन जोडे निकलते हैं। **औप्टिक नर्व** (optic nerves) छोटी किन्तु मोटी होती हैं। इनके कुछ नीचे से **एन्टिनरी तन्त्रिकाएँ** (antennary nerves) निकलती हैं जो दोनो एन्टिनी (antennae) में जाती हैं। तन्त्रिकाओ का एक जोडा **लेबरम** (labrum) में भी जाता है। **सबईसोफेजियल गैंगलिआ** (suboesophageal ganglia) से भी तन्त्रिकाओ के तीन जोडे निकलते हैं। इनमें एक जोडा **मैंडिबल्स** में, एक जोडा **मैक्जिली** (maxillae) मे और एक जोडा **लेबियम** (labium) में जाता है। वक्ष तथा उदर के खडो (segments)

मे निकलनेवाली तन्त्रिकाएँ अपने-अपने खडो की विभिन्न रचनाओ को जाती हैं किन्तु उदर के आखिरी गैंगलिअन मे निकलनेवाली तन्त्रिकाएँ छठे खड और पीछे के अन्य सभी खडो मे स्थित रचनाओ को जाती है।

ग्राहक अंग (Receptor organs)

इसके ग्राहक अग या ज्ञानेन्द्रियाँ (sense organs) निम्न प्रकार हैं —

(१) सयुक्त-नेत्र (compound eyes) तथा **फीनेस्ट्री**
(२) सस्पर्शांग (tacile organs) जैसे **एन्टिनी**
(३) **मैक्जिलरी पैल्प**
(४) **लेबियल पैल्प**
(५) **एनल सर्काइ** (anal cerci)

ये सभी ग्राहक अग एक या अनेक एपिडर्मल कोशिकाओ के बने होते है।

कीटो में सूँघने की शक्ति बहुत विकसित होती है। औलफैक्टरी सेन्सिली एन्टिनी (antennae) मे विशेषरूप से मिलती है। फैब्रे (*Fabre*) के अनुसार कीटो को गध ज्ञान उस समय होता है जब किसी पदार्थ से निकलने-वाले कण (emanations) वायु में फैलकर औलफैक्टरी नर्व (olfactory nerves) के तन्तुओ को उद्दीप्त करते हैं। मनुष्य की अपेक्षा कीटो में औलफैक्टरी अग कही अधिक विकसित होते है जिससे जिन गधो को मनुष्य सूंघने में पूरी तौर पर असमर्थ होते है उन्हे ये सहज ही मे सूँघ लेते हैं।

मैक्जिली मे अनेक छोटे-छोटे **स्वाद-सेन्सिली** स्वाद का पता चलाने के लिए होते हैं। लेबियम की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्वाद के ग्राहक अगो (gustoreceptors) की सख्या सबसे अधिक होती है। मैक्जिलरी और लेबियल पैल्पस (labial palps) तथा दोनो एन्टिनी भी कुछ न कुछ स्वाद लेने में सहायता देते हैं।

श्रवणेन्द्रियो (organs of hearing) का ठीक-ठीक पता नही मिलता फिर भी यह तो निश्चित है कि जब कीट विभिन्न प्रकार की आवाज पैदा करते हैं तो सुनते भी अवश्य होगे। कदाचित् **पैल्पस** (palps), टाँग तथा एनल सर्काई में जो **स्पर्श सेन्सिली** होती हैं वे ही सुनने में सहायता देती हैं।

ग्राहक अग आमतौर पर एपिडर्मल सेल या सेल्स के रूपान्तर होते है। सीटा, ट्राइकोजेन सेल्स, नर्व सेल तथा तन्त्रिका तन्तु मिलकर ग्राहक-अग का निर्माण करते हैं जिसे **सेन्सिला** (censilla) कहते हैं।

संयुक्त नेत्र

(Compound eyes)

समस्त ग्राहक अंगों में सबसे अधिक विचित्र तथा आश्चर्यजनक **संयुक्त नेत्र** (compound eyes) होते हैं। दोनों संयुक्त-नेत्र सिर के इधर-उधर स्थित होते हैं। ये वृक्काकार (kidney-shaped), अवृन्त (sessile), रंग में काले और कुछ उभरे हुए होते हैं। लेन्स द्वारा देखने पर प्रत्येक संयुक्त नेत्र की सतह पर अनेक छोटे-छोटे षट्कोणीय फेसेट्स (facets) दिखाई देते हैं। संयुक्त नेत्र के लौंगिट्युडिनल सेक्शन को माइक्रोस्कोप द्वारा देखने
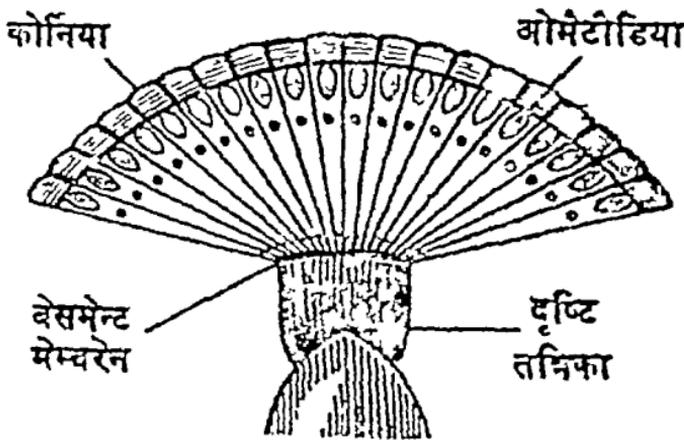
चित्र २१२—संयुक्त नेत्र का वर्टिकल सेक्शन

पर पता चलता है कि प्रत्येक फेसेट के नीचे कोई रचनाओं की एक ऐसी शृंखला या कतार (chain) होती है जो आकार में लम्बी तथा सँकरी होती है। ऐसी प्रत्येक रचना को **नेत्रिका या ओमैटीडियम** (ommatidium) कहते हैं। प्रत्येक संयुक्त नेत्र में लगभग दो हजार नेत्रिकाएँ (ommatidia) होती हैं, जो पास-पास स्थित होती हैं। एक नेत्रिका की रचना और उसकी क्रिया समझ लेने से संयुक्त-नेत्र की रचना समझना आसान होगा।

प्रत्येक नेत्रिका या ओमैटीडियम में सबसे ऊपर क्यूटिकल का उभतल (biconvex) लेन्स होता है जिसके नीचे दो एपिडर्मल कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **कोर्नी ओजेन सेल्स** (corneagen cells) कहते हैं। इन कोशिकाओं के नीचे चार कोशिकाओं का एक समूह होता है जिन्हें **विटरेली** (vitrellae) कहते हैं। इनमें से प्रत्येक कोशिका का भीतरी तट भुजायित (refractory) हो जाता है और ये सभी भुजायित रचनाएं मिलकर **क्रिस्टेलाइन कोन** (crystalline cone) का निर्माण करती हैं। इस भाग के नीचे सात

कोशिकाओ का एक समूह होता है जिन्हें मूर्ति-कोशिकाएँ या रेटीन (retinulae) कहते हैं। इनमें से प्रत्येक कोशिका की भीतरी स भुजायित होकर रैब्डोमीयर (rhabdomere) का निर्माण करती है।
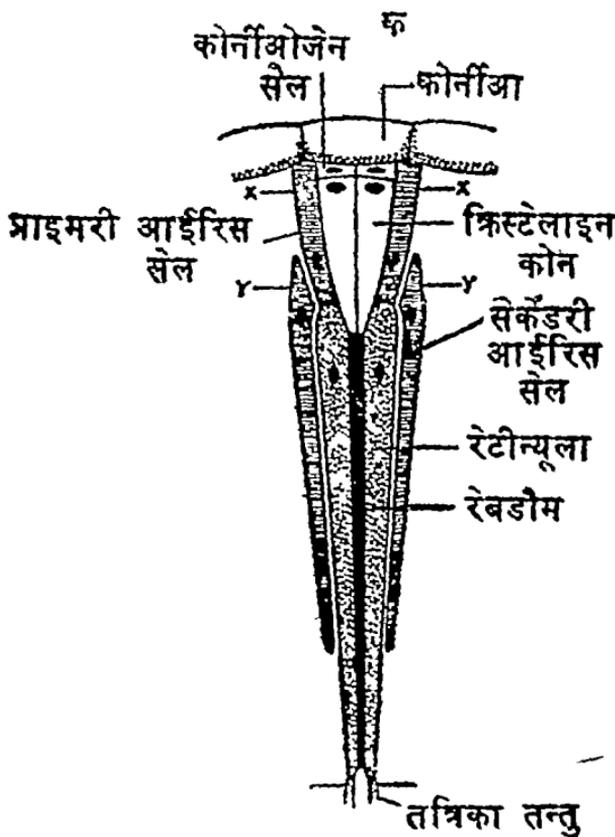
चित्र २१४—क, एक ओमेटीडियम का लौंगिट्यूडिनल सेक्शन, ख, कोन का ट्रासवर्स सेक्शन (x–x), ग, रैबडोम का सेक्शन (y–y)

सातो रैबडोमीयर्स मिलकर रैबडम (rhabdom) बनाते हैं। प्रत्येक मूर्तिकोशिका या रैटीन्यूला के निचले सिरे से तन्त्रिका तन्तु निकलते हैं, जो सेरीब्रल गैंगलिआ (cerebral ganglia) से जुड़े रहते हैं। दो

नेत्रिकाओं या ओमैटीडिया के बीच रंग कोशिकाओं (pigment cells) की एक पतली पर्त होती है जो दोनों को एक दूसरे से अलग करती है।

प्रत्येक नेत्रिका में अलग-अलग प्रतिमूर्ति (image) बनाने की क्षमता होती है। सभी नेत्रिकाएँ मिलकर एक कम्पोजिट प्रतिमूर्ति (composite image) बनाती हैं जो कि ऐसे अनेक संलग्न टुकड़ों द्वारा बनती हैं जिनमें से प्रत्येक "टुकड़े" को केवल एक ही नेत्रिका या ओमैटीडियम बना पाती है। इस प्रकार की प्रतिमूर्ति को चित्रकुट्टिम (mosaic) या एपोजीशन प्रतिमूर्ति (apposition image) कहते हैं। इस प्रतिमूर्ति की तुलना हाफटोन ब्लाक (halftone block) द्वारा बनाये चित्र से की जा सकती है। इस प्रकार कीटों में अनेक नेत्रिकाओं (ommatidia) द्वारा जो प्रतिमूर्ति (image) अंकित होती है वह हमारे नेत्रों द्वारा बनाई प्रतिमूर्ति की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट और विस्तृत (detailed) होती है। कीटों के नेत्रों में व्यवस्थापन या एकोमोडेशन (accommodation) की क्षमता नहीं होती। इसीलिए वे कुछ फुट से अधिक दूर की वस्तुओं को साफ-साफ नहीं देख पाते किन्तु फिर भी इनको दूर की चीजों की गति का ज्ञान तो हो ही जाता है।

वस्तुएँ नेत्रों की जितनी अधिक समीप होंगी, प्रतिमूर्ति बनानेवाली नेत्रिकाओं की संख्या भी उतनी ही अधिक होगी जिसके परिणामस्वरूप बाहरी वस्तुएँ उतनी ही अधिक साफ दिखाई देंगी।

बहुत से कीटों में गवाक्ष या फीनेस्ट्री (fenestrae) मिलते हैं। ये कदाचित् सरल नेत्रों के अवशेष मात्र हैं।

नर जनन अंग

(Male Reproductive Organs)

अन्य कीटों की तरह कॉकरोच भी एकलिंगी (unisexual) होता है। नर-कॉकरोच के जनन अंगों में दो वृषण या टेस्टीज (testes) होते हैं। ये उदर के पृष्ठ-पार्श्व (dorso-lateral) भाग में तीसरे से छठे सेग्मेन्ट तक फैले होते हैं। प्रत्येक टेस्टिस में अनेक वेसिकल्स (vesicles) होते हैं जो प्राय तीन या चार समूह में मिलते हैं। प्रत्येक वृषण से एक बहुत ही महीन नली निकलती है जिसे वास डेफरेन्स (vas deferens) कहते हैं। दोनों ओर की वासा डेफरेन्शिया पीछे तथा प्रतिपृष्ठ सतह की ओर बनती है और फिर पृष्ठ सतह की ओर उठकर अन्त में युट्रीकुलर ग्रन्थि के आधार पर इजेक्युलेटरी डक्ट (ejaculatory duct) की

ऊपरी सतह पर खुलती है। **क्षत्रा ग्रन्थि** (mushroom gland) या **यूट्रीकुलर ग्लैण्ड** (utricular gland) इजेक्युलेटरी डक्ट के अगले सिरे पर स्थित होती है और इसमें तीन प्रकार की ग्रन्थिल नलिकाएँ (glandular tubules) होती हैं—सबसे बाहर लम्बी **पेरीफरल नलिकाएँ** (glandular tubules) बीच में **सेन्ट्रल नलिकाएँ** (central tubules) तथा गुब्बारे जैसी फूली हुई धब्बेदार नलिकाएँ **शुक्राशय** (seminal vesicle) बनाती हैं। प्रत्येक शुक्राशय, जो इजेक्युलेटरी डक्ट की प्रतिपृष्ठ सतह से निकलता है, ६–७ गुब्बारे के आकार की सफेद नलिकाओं का बना होता है। इसमें शुक्राणु भरे रहते हैं।
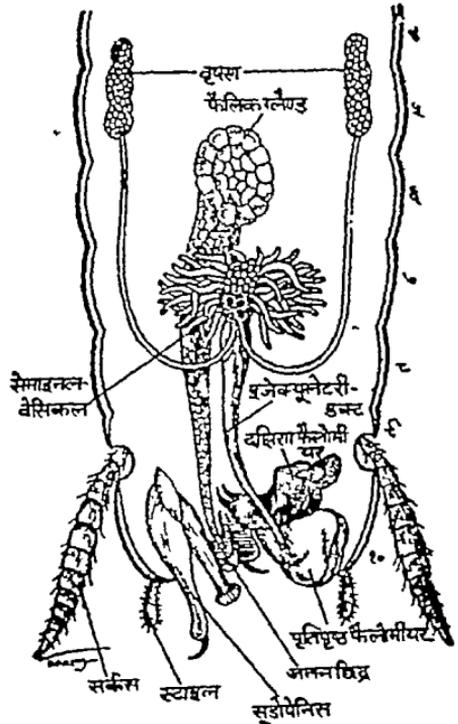
चित्र ३१५—पैरीप्लैनेटा के नर जननाग

नर-जनन अगो से जुडी एक लम्बी, चपटी सफेद ग्रन्थि होती है जिसे **कोंग्लोवेट** या **फैलिक** (conglobate or phallic) **ग्लैण्ड** कहते है। यह इजेक्युलेटरी डक्ट के नीचे स्थित होती है और इसकी संकरी डक्ट **टिटिलेटर** (titillator) तथा **स्यूडोपेनिस** (pseudopenis) के बीच खुलती है जब कि इजेक्युलेटरी डक्ट **प्रतिपृष्ठ फैलोमीयर** (ventral phallomere) पर खुलती है। **नर-जनन छेद** को घेरे हुए काइटिन की कई रचनाएँ मिलती हैं जिन्हे **गोनापोफाइसिस** (gonapophyses) कहते हैं। नर-कौकरोच मे **ये बाह्य जननाग** (external genitalia) का निर्माण करते हैं। इनमें तीन असमितीय (asymmetrical) रचनाएँ होती हैं जिन्हे **फैलोमीयर्स** (phallomeres)

चित्र ३१६—युट्रीकुलर ग्लैण्ड

कहते हैं। स्थिति के अनुसार इन्हें दाहिना (right) बायाँ (left) तथा प्रतिपृष्ठ फैलोमीयर (ventral phallomeres) कहते हैं। दाहिने फैलोमीयर की रचना जटिल होती है। इसमें आमने-सामने स्थित दो प्लेट्स और एक चौड़ी बड़ी प्लेट होती है। चौड़ी प्लेट में एक सिरेट लोब (serrate lobe) तथा हँसिया के आकार का एक हुक (hook) होता है। बायें फैलोमीयर में तीन प्रमुख रचनाएँ होती हैं जिन्हें स्यूडोपेनिस (pseudo-penis), टिटिलेटर (titillator) और एस्प्रेट लोब (asperate-lobe) कहते हैं। फैलिक ग्लैण्ड की डक्ट एस्प्रेट लोब तथा स्यूडोपेनिस के बीच खुलती है। वेन्ट्रल फैलोमीयर (ventral phallomere) एक सरल लोब के रूप में होता है। इसके पृष्ठ मुलायम भाग को पेनिस (penis) कहते हैं। इसी भाग में इजेक्युलेटरी डक्ट का छेद होता है।
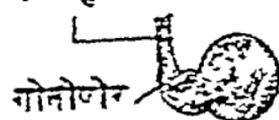
क
इजेक्युलटरी डक्ट
गोनोपोर
वेन्ट्रल फैलोमीयर
ख
एस्प्रेट लोब
टिटीलेटर
स्यूडोपेनिस
बायाँ फैलोमीयर
ग
विमुख प्लेट्स
हुक
सरेट लोब
दाहिना फैलोमीयर

चित्र ३१७—नर पेरीप्लैनेटा के एक्सटर्नल जेनीटेलिया

मादा जनन अंग

(Female Reproductive Organs)

मादा कॉकरोच में दो संयुक्त अंडाशय होते हैं। हल्के पीले रंग के ये अंडाशय (ovary) आहारनाल के इधर-उधर, फैटबॉडी से ढके हुए दूसरे से लेकर छठे उदर खंड तक फैले होते हैं। प्रत्येक अंडाशय में आठ ओवेरियन ट्यूब्स होते हैं। प्रत्येक अंडाशय के आठ ओवेरियन ट्यूब्स के अगले सिरे डोरों के समान पतले होते हैं और परस्पर मिलकर एक स्ट्रैण्ड (strand) बनाते हैं। प्रत्येक ओवेरियन ट्यूब में अंडों की एक कतार मिलती है। जिसमें परिपक्व अंडे नीचे तथा अपरिपक्व और छोटे अंडे ऊपर की ओर होते हैं। परिपक्व

अडे अडपीत या योक के काफी मात्रा में इकट्ठे हो जाने के कारण काफी बडे हो जाते है। प्रत्येक ओर के आठो ओवेरियन ट्यूब्स निचले सिरो पर ओवीडक्ट या अडवाहिनी (oviduct) मे खुलते है। दोनो ओर की ओवीडक्ट्स परस्पर मिलकर एक चौडी कौमन ओवीडक्ट (common oviduct) बनाती है। यह पेशीय होती है और कुछ दूर पीछे जाकर जनन-छिद्र या गोनोपोर (gonopore) द्वारा जनन-वेश्म (genital chamber) में खुलती है।
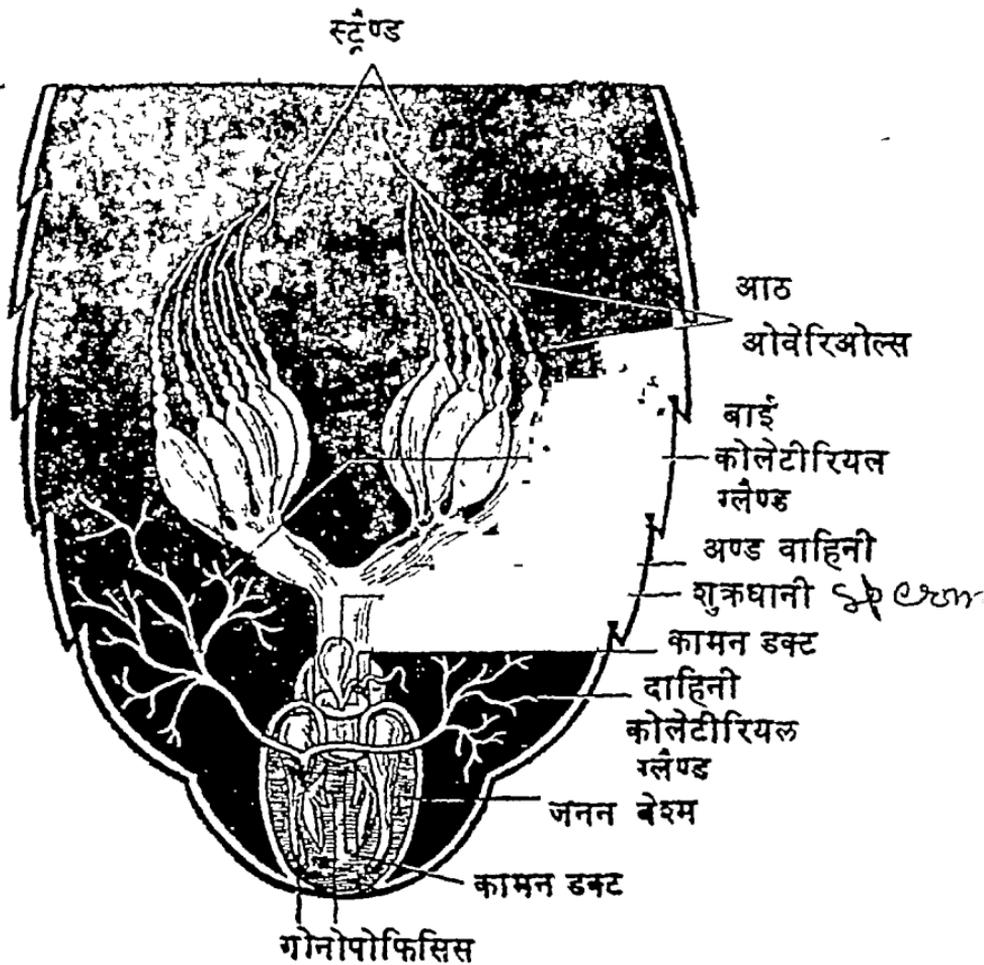
चित्र ३१८—मादा पैरीप्लैनेटा के मादा जनन अग

गोनोपोर आठवें स्टर्नम पर स्थित होता है। मादा कौकरोच का सातवां स्टर्नम बडा तथा नौकाकार (boat shaped) होता है और जनन-वेश्म (genital-hamber) या गिनएट्रियम (gynatrium') का फर्श तथा पार्श्व-भित्तियां बनाता है। सातवें स्टर्नम का पिछला भाग दो गाइनोवैलव्युलर प्लेट्स (gynovalvular plates) में बॅटा होता है। गिनएट्रियम का पिछला

भाग ऊथीकल चैम्बर (oothecal chamber) और अगला भाग जनन-वेश्म (genital chamber) कहलाता है। ऊथीकल चैम्बर वास्तव में कोकन या ऊथीका (ootheca) के निर्माण में साँचे (mould) के समान कार्य करता है। उदर के ८वें और ९वें स्टर्नम भीतर धँस जाते हैं और जनन वेश्म तथा ऊथीकल चैम्बर की पृष्ठ तथा पश्च सीमा बनाते हैं।

मादा-कौकरोच म जनन-छिद्र या गोनोपोर के चारो ओर मिलनेवाले गोनापोफाइसिस ओवीपौजीटर (ovipositor) बनाते हैं। सख्या में गोनापोफाइसिस छ होते हैं। पश्च गोनापोफाइसिस की सख्या दो जोडी होती है। ये ९वें टरगम से जुडे रहते हैं। इनमें से एक जोडा लम्बे और मोटे गोनापोफाइसिस का होता है और दूसरे जोडे के दोनों छोटे गोनापोफाइसिस को रोके रहता है। अग्र-गोनापोफाइसिस (anterior gonapophyses) का एक जोडा पीछे की ओर स्थित पश्च गोनापोफाइसिस के नीचे होता है। तीनो जोडे गोनापोफाइसिस मिलकर ओवीपौजीटर का कार्य करते हैं, अर्थात् ससेचन के वाद अडों को ऊथीकल चैम्बर में पहुँचाते हैं जहाँ पर ऊथीका (ootheca) वनता है।

मादा जननाग से सम्बन्धित कुछ और रचनाएँ मिलती हैं जिन्हें कोलेटीरियल ग्लैण्डस (colleterial glands) तथा शुक्रधानी (spermathecae) कहते हैं। वेन्ट्रल नर्व कौर्ड के अन्तिम गैंगलियन के कुछ पीछे एक शुक्रधानी होती है जिसमें दो असमान कुडलित नलिकाएँ होती हैं। इन दोनों नलिकाओं की लम्बाई एक-सी नहीं होती। दोनो परस्पर मिलकर एक ही छेद द्वारा जनन वेश्म में खुलती हैं।

दोनों कोलेटीरियल ग्लैण्डस (colleterial glands) बहुशाखी (much branched) नलिकाओं की वनी होती हैं और आकार में असमितीय होती हैं। दोनो ७वें से लेकर १०वें खड तक फैली होती हैं। वाईं कोलेटीरियल ग्लैण्ड दाहिनी की अपेक्षा वडी होती है और उसे घेरे रहती है। दोनो अलग-अलग खुलती है, वाईं का छेद वीच में किन्तु दाहिनी का थोडा दाहिनी ओर स्थित होता है। वाईं कोलेटीरियल ग्लैण्ड की नलिकाएँ सफेद होती हैं और इनमें एक द्रव भरा होता है जिसमें कैलशियम ऑक्जलेट के केलास (crystals) होते हैं। दाहिनी कोलेटीरियल ग्लैण्ड की नलिकाएँ पारदर्शी होती हैं और इनमें जल-सदृश एक द्रव रहता है। इन दोनो ग्लैण्डस के रस मिलकर ऊथीका बनाते हैं।

मैथुन (Copulation)

मार्च के महीने से लेकर सितम्बर तक कौकरोच का जनन काल (breeding season) होता है। इन्ही दिनो रात के समय नर और मादा मैथुन करते है। मैथुन के समय नर तथा मादा के उदर के पिछले सिरे परस्पर छूते हैं। नर कौकरोच अपने टिटिलेटर (titillator) की सहायता से मादा की दोनो गाइनोवैलव्युलर प्लेट्स को हटाकर जेनाइटल चैम्बर को खोल देता है और इस समय नर का स्यूडोपेनिस मादा के गोनोपोर (gonopore) मे घुसकर सट जाता है। इस पकड को मादा की दोनो अग्र गोनापोफाइसिस और अधिक दृढ कर देती है। ये दोनो नर के **दाहिने फैलोमीयर** को पकड लेती है। अब वेन्ट्रल फैलोमीयर नर-जनन छिद्र को खोल देता है जिससे स्परमैटोफोर (spermatophore) नाम की थैली स्परमेथीका के छेद से चिपक जाती है।

मैथुन के कुछ पहले ही स्परमैटोफोर बन जाता है। सेमाइनल वैसिकल्स मे भरे शुक्राणु परस्पर चिपक जाते है। जब यह गुच्छा इजेक्युलेटरी डक्ट के नीचे खिसकता है तो इसके चारो ओर एक थैली बन जाती है। इस थैली में तीन पर्तें होती है। सबसे भीतरी पर्त इजेक्युलेटरी डक्ट के ऊपरी भाग मे स्थित युट्रीकुलर ग्रन्थि की पेरीफरल नलिकाओ के स्राव (secretion) से बनती है। इस ग्रन्थि की सेन्ट्रल नलिकाओ का रस पोषक होता है। यह शुक्राणुओ के साथ थैली मे भरा रहता है। बीचवाली पर्त इजेक्युलिटरी डक्ट की दीवारो में स्थित ग्लैण्डस के रस द्वारा बनती है। जब स्परमैटोफोर शुक्रधानी के छेद से चिपक जाता है, उस समय फैलिक ग्लैण्ड का स्राव इस थैली की सबसे बाहरी पर्त बनाता है।

मैथुन क्रिया, लगभग १–१½ घटे तक होती है। इसके बाद नर तथा मादा कौकरोच अलग हो जाते हैं। लगभग २४ घटे में स्परमैटोफोर में इकट्ठे शुक्राणु खिचकर शुक्रधानी मे पहुँच जाते है और अब खाली स्परमैटोफोर अलग हो जाता है।

संसेचन तथा ऊथीका का निर्माण
(Fertilisation and Formation of Ootheca)

मादा जनन छिद्र या गोनोपोर से निकलकर अडे जनन-वेश्म (genital atrium) में इकट्ठे होते हैं। इनकी दो पक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पक्ति मे ८ अडे होते हैं। स्पर्मैथीका मे इकट्ठे शुक्राणु इनका संसेचन कर देते हैं। इसके बाद बाँई कोलेटीरियल ग्लैड एक घुलनशील प्रोटीन और दाहिनी कोलेटीरियल ग्लैण्ड **डाईहाइड्रो ओक्सीफीनोल** निकालती है। फीनौल का आक्सीडेशन

हो जाता है और फिर वह प्रोटीन से मिलकर स्क्लीरोप्रोटीन (sclero-protein) का अंडो के चारो तरफ एक खोल बना देता है। इस प्रकार ऊथीका (ootheca) बन जाता है। ऊथीकल वेश्म ऊथीका को एक निश्चित
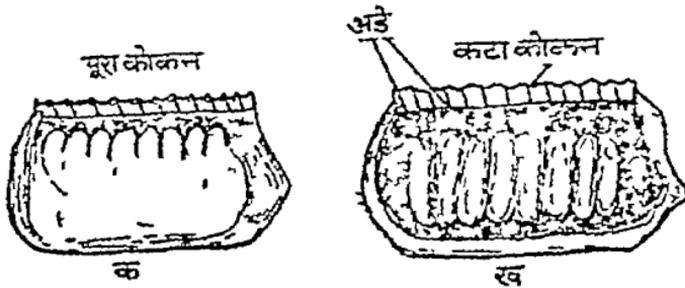
चित्र ३१९—क, पूरा कोकन, ख, कटा कोकन

आकार दे देता है। यह स्त्रियों के हैण्ड-बैग के आकार का होता है। मादा कौकरोच ऊथीका को १०वे उदर-टर्गम तथा गाइनोवैलव्युलर प्लेटस के बीच
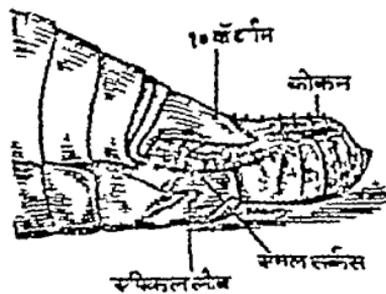
चित्र ३२०—मादा पैरीप्लैनेटा के उदर का अन्तिम भाग तथा ऊथीका

दावे इधर-उधर फिरती है और अन्त में किसी सूखे और अँधेरे स्थान में इसे रख देती है। आरम्भ में ऊथीका का रग सफेद होता है किन्तु शीघ्र ही यह गहरे कत्थई रग का हो जाता है।

परिवर्धन तथा मेटामौर्फोसिस
(Development and Metamorphosis)

कुछ समय पश्चात् ऊथीका के ऊपरी भाग में जो कि आरी की तरह दन्तुर होता है एक दरार बन जाती है। इस प्रकार ऊथीका फट जाता है और नन्हें बच्चे जिन्हें निम्फ (nymph) कहते हैं बाहर निकल आते हैं। प्रत्येक निम्फ शरीर रचना में बहुत कुछ प्रौढ कौकरोच के समान होता है किन्तु प्रौढ की अपेक्षा यह बहुत छोटा होता है तथा रग भी इसका हल्का होता है। इसमें न तो पख होते हैं और न जनद या गोनड्स (gonads)।

निम्फ खूब खाता है और तेजी से बढता है। चूंकि इसका शरीर एक काइटिनस आवरण से ढका रहता है, शरीर के परिमाण (size) मे बढ़ने
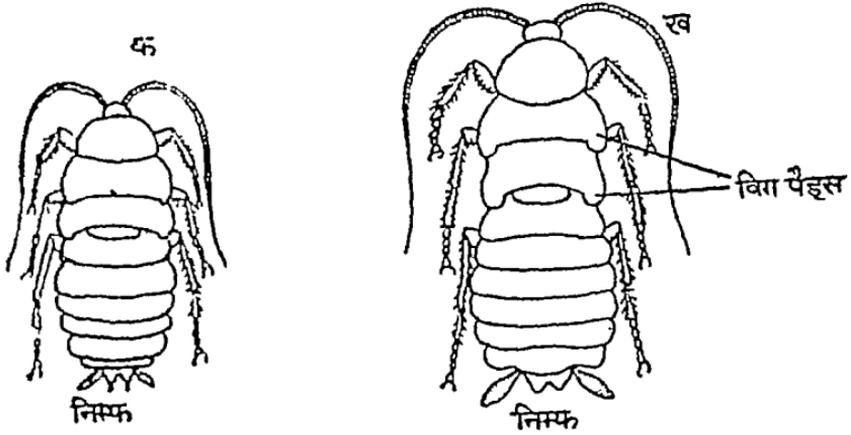
चित्र ३२१—क, प्रारभिक निम्फ, ख, वयस्क के ठीक पूर्व का निम्फ

के पूर्व इसे कडे आवरण को उतारकर फेंकना पडता है। इसे **त्वक्पतन** या **मोल्टिग** (moulting) कहते हैं। परिवर्धन काल जिसमें १३ महीने लगते हैं इसे १० बार त्वक्पतन करना पडता है। प्रत्येक त्वक्पतन में पूरे शरीर का कडा एक्सोस्कैलिटन गिलाफ की भाँति उतरकर गिर जाता है और इसी बीच निम्फ को बढने का अवसर मिलता है। शीघ्र ही उसकी त्वचा की एपिडर्मिस एक नया वाह्य-ककाल या एक्सोस्कैलिटन बनाती है जो आरम्भ मे लगभग सफेद तथा लचीला होता है। हवा के सम्पर्क में आने पर इसका रग गहरा भूरा और कडा हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक त्वक्पतन के वाद यह क्रमश लम्बाई में बढता जाता है। इस प्रकार इसके परिवर्धन में १० **निम्फल स्टेजेस** (nymphal stages) या **इनस्टार्स** (instars) होते हैं। १०वें या अन्तिम त्वक्पतन के पश्चात् कौकरोच पूरी तौर पर बढ जाता है। इसके पख निकल आते हैं तथा जननाग भी पूरी तौर पर विकसित हो जाते हैं। वयस्क या प्रौढ कौकरोच को इमैगो (imago) कहते हैं। सक्षेप में इसका जीवन-चक्र निम्न प्रकार है —

अडा ⟶ निम्फ ⟵ इमैगो

मच्छर, मक्खी, तितली इत्यादि के जीवन-चक्र की तरह कौकरोच में लार्वल तथा प्यूपल अवस्थाएँ नहीं मिलती जिससे इसमें अर्ध-रूपान्तरण (hemimetabolous metamorphosis) होता है। इसके विपरीत मच्छर, मक्खी, तितली इत्यादि में **पूर्ण-रूपान्तरण** (holometabolous metamarphosis) होता है।

प्रश्न

१—कौकरोच के आहार-नाल की रचना तथा विभिन्न भागो के कार्यों का सविस्तार वर्णन करो।

२—निम्नलिखित वस्तुओ पर सक्षिप्त टिप्पणियां लिखो —

कौकरोच में श्वसन, वहिर्कंकाल (exoskeleton), क्षत्राग्रन्थि (mushroom gland), कौकरोच के जननाग।

३—कौकरोच में मिलनेवाले सभी सामान्य आर्थ्रोपोडा के लक्षणो (Arthropoda characters) का वर्णन करो। कॉकरोच के नर-जननाग का सचित्र वर्णन करो।

४—फाइलम आर्थ्रोपोडा के सामान्य लक्षणो का वर्णन करो। इस फाइलम के किन्ही तीन प्राणियो के नाम लिखो और उन पर सक्षेप में टिप्पणी लिखो।

५—कौकरोच के जननागो का वर्णन करो तथा मैथुन और निषेचन की विधि समझाओ।

६—चित्र बनाकर कौकराच के मुखभागो (mouth parts) की रचना समझाओ और प्राशन (feeding) की विधि का वर्णन करो।

७—कौकरोच के जीवनचक्र (life history) का वर्णन करो। इसे विनाशी-कीट (insect pest) क्यो कहते है ?

अध्याय २२

आर्थ्रोपोडा : मच्छर तथा घरेलू मक्खी

१—मच्छर
(Mosquito)

मच्छर और घरेलू मक्खी ये दोनो ही डिप्टा (*Diptera*) समुदाय के कीट (Isect) है।

मच्छरो की विभिन्न स्पेशीज ससार के प्राय सभी कोनो मे पाई जाती है। विषुवत् रेखा से लेकर ध्रुव प्रदेशो तक और समुद्र तल से लेकर ७००० फुट की ऊँचाई तक मच्छर मिलते है। समशीतोष्ण प्रदेशो (temperate) की अपेक्षा उष्ण-कटिबध (tropics) मे इनकी अधिक स्पेशीज मिलती है। यहाँ पर सामान्य क्यूलेक्स पाइपेन्स (*Culex pipens*) का विस्तृत अध्ययन करेगे।

क्यूलेक्स पाइपेन्स

इसका छोटा शरीर अन्य कीटो की भाँति तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—(१) सिर (२) वक्ष (thorax) और (३) उदर (abdomen)। सिर छोटा तथा गोल होता है। वक्ष से यह एक बहुत छोटी-सी गर्दन (neck) द्वारा जुडा रहता है। सिर के दोनो ओर बडी तथा वृक्काकार (kidney shaped) सयुक्त आँखे (compound eyes) होती है। दोनो आँखे सिर के पृष्ठ-भाग पर करीब करीब एक दूसरे को छूती है। प्रत्येक सयुक्त नेत्र के सामने एक तिकोनी जगह होती है जो आगे की ओर लम्बी
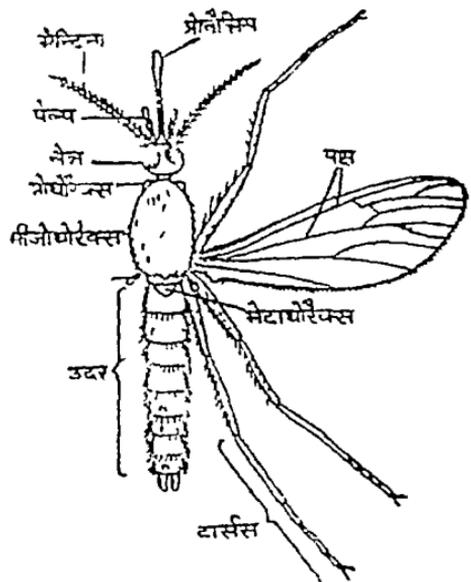
चित्र ३२२—मच्छर का पृष्ठ दृश्य

होकर क्लाइपियस (clypeus) का निर्माण करता है। इमी से दो लम्बे ऐन्टिनी (antennae) निकलते हैं। नर और मादा में ऐन्टिनी की बनावट बिलकुल भिन्न होती है जिससे नर और मादा को पहिचानना बहुत आसान होता है। प्रत्येक ऐन्टिना (antenna) में तेरह
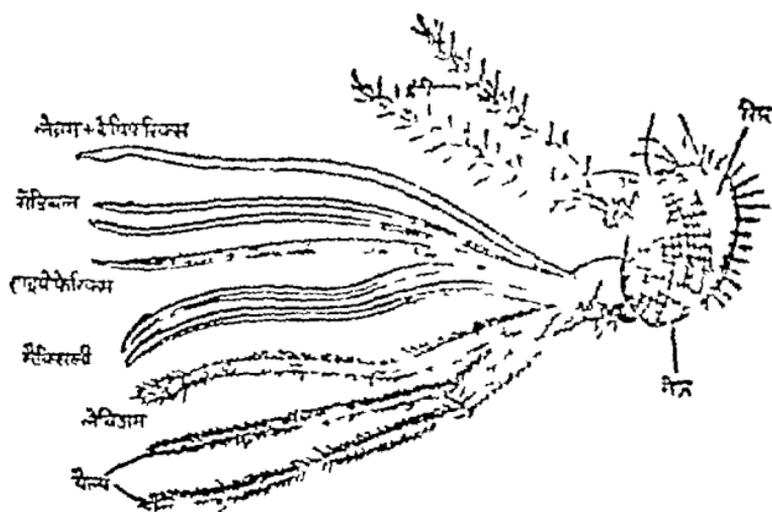
चित्र ३२३—एनोफिलीज के मुखभागो का पार्श्व-दृश्य

खड होते हैं और प्रत्येक खड के जोड में छोटे छोटे बाल निकलते हैं। नर के ऐन्टिनी में ये बाल बहुत बडे होते हैं और थोडा आगे की ओर झुके रहते हैं। लम्बे बालो के कारण नर के दोनो ऐन्टिनी बोतल साफ करनेवाले ब्रश के समान दीखते हैं। मादा क्यूलेक्स में ये बाल बहुत छोटे होते हैं। मुखद्वार के समीप और भी अवयव मिलते हैं जिन्हें मुखभाग (mouth parts) कहते हैं। इन मुखभागो की सहायता से मादा मच्छर त्वचा में छेद करके खून चूस लेती है। यदि हैण्ड लैन्स (hand lens) द्वारा देखा जाय तो तीन रचनाएँ दिखाई पडेंगी। बीच में भेदनी या शुड (proboscis) होती है और इसके दोनो ओर एक एक पैल्प (palp) होता है। मादा क्यूलेक्स में दोनो पैल्प प्रोबोसिस के ही बराबर लम्बे होते हैं किन्तु नर में ये बहुत छोटे होते हैं।

प्रोबोसिस का पूर्ण परिवर्धन केवल मादा मच्छर में होता है। इसमें छोटे-छोटे भालो के समान दीखनेवाली छ सरचनाएँ होती है। ये छहो स्टाइलेट्स सटे हुए एक म्यान-सी रचना मे रहते हैं। साथ में दिये चित्र ३२३ में मलेरिया-मच्छर (एनोफिलीज) के मुखभागो को दिखाया गया है।

मादा मच्छर के प्रोबोसिस में निम्न रचनाएँ मिलती है —

(१) मैंडिबल (mandible) का एक जोडा—ये कोमल सुई सदृश होते है और छोटी आरी के रूप मे समाप्त होते हैं।

(२) फर्स्ट मैक्जिली (first maxillae) का जोडा—ये भी सुई के समान होते है किन्तु इनके सिरे पर आरी-जैसे ब्लेड (blade) होते है।

(३) सेकेंड मैक्जिली (second maxillae)—दोनो ओर के सेकेंड मैक्जिली परस्पर मिलकर लेबियम (labium) बनाते है। यह एक म्यान (sheath) का काम कराती है। इसकी ऊपरी सतह पर एक नाली होती है जिसमें अन्य मुखभाग (mouth parts) सुरक्षित रहते है। इसके अन्तिम भाग पर दो सफेद पिंडक होते हैं जिन्हे "लेबिली" (labellae) कहते है। प्रत्येक लेबिला पर अनेक सवेदी रोम (sensory hair) होते है जिनके कारण ये विशेषरूप से सस्पर्शात्मक (tactile) होते है।

(४) दो और मुख भाग होते है। लेब्रम+ऐपीफेरिंक्स (labrum epipharynx) मिलकर नाली के समान एक रचना बनाते है जिसका अन्तिम भाग नुकीला होता है। लेबरम+ऐपीफैरिंक्स की प्रतिपृष्ठ सतह पर एक नाली होती है जो हाइपोफैरिंक्स द्वारा ढक जाने पर चूसने के लिए एक नली बनाती है। हाइपोफैरिंक्स एक लम्बी चपटी दोधारी तलवार-सी होती है जो सिरे पर नुकीली भी होती है। सैलाइवरी ग्लैण्ड्स की वाहिनी हाइपोफैरिंक्स के सिरे पर खुलती है।
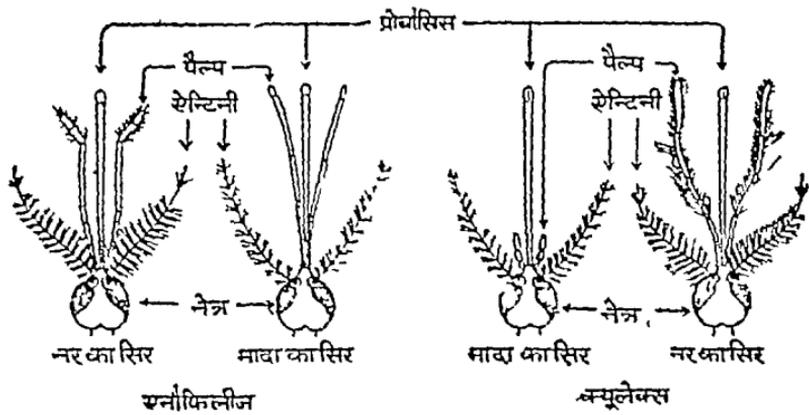
३२४—नर तथा मादा क्यूलेक्स और एनोफिलीज के मुख-भागो में अन्तर

मादा मच्छर मे पैल्प (palps) अपेक्षाकृत लम्बे होते है किन्तु मैंडिबल्स का पूर्ण अभाव होता है और हाइपोफैरिंक्स लेबियम से जुडी

होता है। इसीलिए नर सदा फूलों और फलों के रस पर ही जीवित रहता है। वह खून नहीं चूस सकता है।

अनुप्राशन (Feeding)

मादा मच्छर त्वचा में छेद करने के लिए सर्वप्रथम अपने लेबियम की दोनों लेबिलो (labellae) को त्वचा से छुआती है। लेबियम छेद करनेवाली चहों स्टाइलेट्स के लिए मार्गदर्शक और सहारे का काम करता है। स्टाइलेट्स (stylets) त्वचा में छेद करके भीतर घुस जाते हैं। जब दोनों फर्स्ट मैक्सिली के नन्हें नन्हें आरी-जैसे दांत घाव को अधिक चौड़ा कर देते हैं। जैसे जैसे सुइयां घाव के भीतर प्रवेश करते जाते हैं वैसे वैसे लेबियम धनुषाकार बन जाता है। लेब्रम-एपिफैरिंक्स (labrum-epipharynx) और हाइपोफैरिंक्स (hypopharynx) मिलकर एक नली बनाते हैं। फैरिञ्जियल चूषक पम्प (sucking-pharynx) की सहायता से रक्त ऊपर खिंचा चला जाता है और ईसोफेगस की तीन थैलियों (diverticula) में एकत्रित हो जाता है और वहां से आवश्यकतानुसार आमाशय में पहुंचता रहता है।

मच्छर के काट चुकने पर काटे हुए स्थान के चारों ओर का स्थान सफेद हो जाता है। इसके बाद उसका रंग लाल हो जाता है, कुछ सूजन आ जाती है और फिर खुजली और जलन होने लगती है। कुछ लोगों को मच्छर के काटने से बहुत पीड़ा होती है और कुछ लोगों को पता भी नहीं चलता। जहां तक खुजली का प्रश्न है वह भी थोड़ी देर के बाद बंद हो जाती है।

काटे हुए स्थान पर खुजली एक सहजीवी फफूंद (symbiotic fungus) के कारण होती है। यह सहजीवी फफूंद ईसोफेगस के अवकाशों में मिलता है और वहीं पर कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) तथा एक प्रकार का एन्जाइम (enzyme) बनाता है। यही कार्बन डाई-ऑक्साइड पेशियों में जलन पैदा करती है और एन्जाइम रक्त-दबाव (blood pressure) को बढ़ा देता है जिससे मच्छर को खून चूसने में कोई बाधा नहीं होती। मच्छर के सैलाइवा में ऐन्टीकोआगुलिन (anticoagulin) होता है जिसके प्रभाव से खून जमने नहीं पाता और इस प्रकार उसे खून चूसने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती।

क्यूलेक्स का जीवन-चक्र (Life-history of Culex)

यों तो मच्छरी फल-फूलों के रस को भी चूसती है परन्तु गर्भित होने पर खून चूसने की फिक्र में रहती है। अंडों के पोषण के लिए

रुचिर आवश्यक होता है। मैथुन के पश्चात् मच्छरी को तालाब, पोखर, नाली-नाले, दलदल, पानी से भरे टूटे फूटे मिट्टी के बरतन या टीन के डब्बों में, छतों पर, कुओं में, बरसाती पानी के गड्ढों में, फूलों के गमलों इत्यादि स्थानों पर अंडा देने के लिए जाना पड़ता है। अंडा देने के लिए स्थिर जल की आवश्यकता होती है। मैथुन तो अधिकतर शाम के समय ही होता है किन्तु अंडे प्रातःकाल ही दिये जाते हैं।

(१) अंडे (Eggs)—एक बार में मादा क्यूलेक्स एक एक करके २०० तक अंडे देती है। अंडे देने के बाद वह अपनी पिछली टाँगों की सहायता से उन्हें क्रमबद्ध सजाती है तथा पानी पर उतरानेवाला एक बेड़ा (raft) बनाने के लिए उन्हें एक दूसरे से जोड़ देती है। अंडे प्रारम्भ में सफेद होते हैं किन्तु शीघ्र ही इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है। प्रत्येक अंडा सिगार (cigar) के आकार का होता है। ऊपरी नुकीले सिरों के बीच बीच वायु के बुलबुले उलझे रहते हैं जिससे बेड़े (raft) का ऊपरी भाग निचले भाग की अपेक्षा हल्का होता है। यदि यह बेड़ा (egg-raft) उलट या डूब जाय तो अपनी उत्प्लाविता (buoyancy) के कारण वह फिर जल की सतह पर उतराने लगता है। जल की सतह पर तैरते रहने से अंडों को परिवर्धन के लिए ऑक्सीजन पाने में असुविधा नहीं होती।

(२) लार्वा (Larva)—प्रत्येक अंडे में एक लार्वा (larva) बनता है जो प्रौढ़ मच्छर के आकार और रचना से बिल्कुल भिन्न होता है। अंडोद्भेदन (hatching) के समय अंडे के निचले चौड़े सिरे पर स्थित ढक्कन को हटाकर लार्वा सीधा पानी में पहुँच जाता है यह लार्वा लगभग १ मिलीमीटर लम्बा होता है। इसका शरीर भी सिर, वक्ष और उदर में विभाजित रहता है।

चित्र ३२५—क्यूलेक्स का लार्वा

लार्वा का सिर बड़ा और लगभग वक्ष (thorax) के ही बराबर चौड़ा होता है। सिर के प्रत्येक ओर एक काला संयुक्त
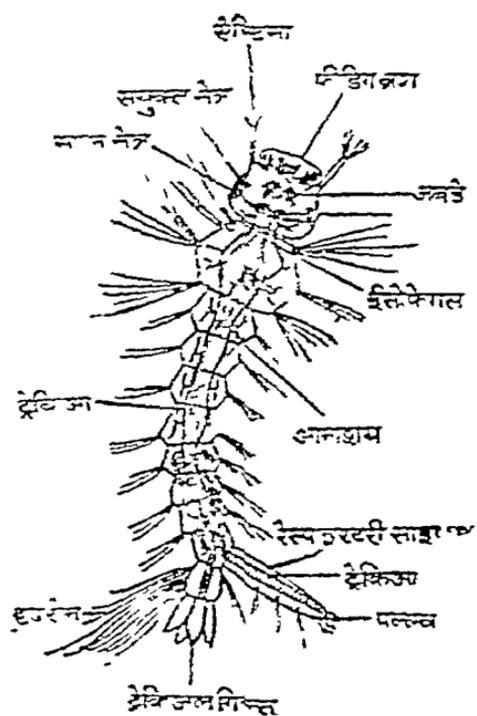
नेत्र होता है। अगले सिरे पर दो ऐन्टिनी होती है। आगे की ओर मुख होता है जिसके प्रत्येक ओर एक प्राशन-कूर्च (feeding brush) होता है। दोनो प्राशन-कूर्च तेजी से हिला करते हैं जिसके फलस्वरूप पानी में उतरानेवाले भोजन के छोटे छोटे टुकडे सहज ही मुख में पहुँच जाते हैं। मुख के समीप मैन्डिबिल्स और मैक्सिजली भी होते हैं।

वक्ष के इधर उधर लम्बे लम्बे कडे बालो के तीन तीन गुच्छे अवश्य मिलते हैं। उदर लम्बा किन्तु पतला होता है और इसमें ९ सेग्मेन्टस होते
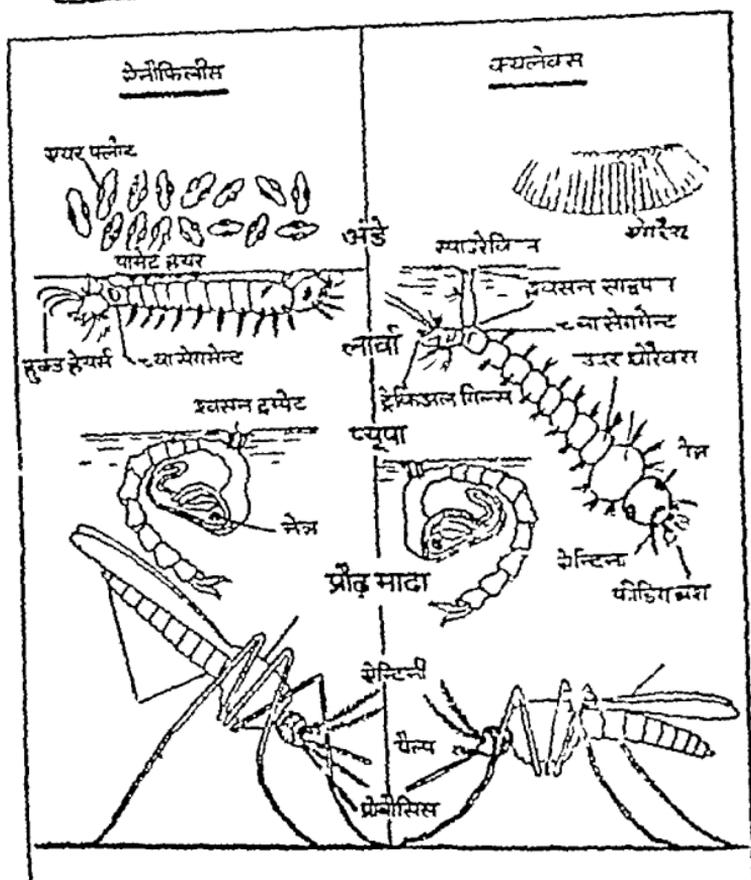
चित्र ३२६—क्यूलेक्स तथा एनोफिलीज के जीवन-चक्र की विभिन्न अवस्थाएँ

हैं। आठवें सेग्मेन्ट में एक लम्बी नुकीली श्वसन निनाल (respiratory siphon) होती है। साँस लेने के लिए लार्वा को थोडी थोडी देर बाद जल की सतह के सम्पर्क में आना पडता है। साइफन के ऊपरी सिरे पर दो श्वास-रंध्र (spiracles) होते हैं जिन्हे पांच फ्लैप्स (flaps) की सहायता से पूरी तौर पर बद किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त साइफन में दो ट्रेकी भी होती हैं जिनकी महीन महीन शाखाएँ लार्वा के समस्त शरीर में फैली होती हैं। जब कभी लार्वा

नाम सर्वप्रथम लीनियस (Linnaeus) ने तितली के प्यूपा को दिया था। क्योंकि आकृति में वह कपड़े में लिपटे हुए शिशु-सा लगता है। आगे चलकर प्यूपा शब्द का प्रयोग पूर्ण-रूपान्तरण (holometabolic) वाले
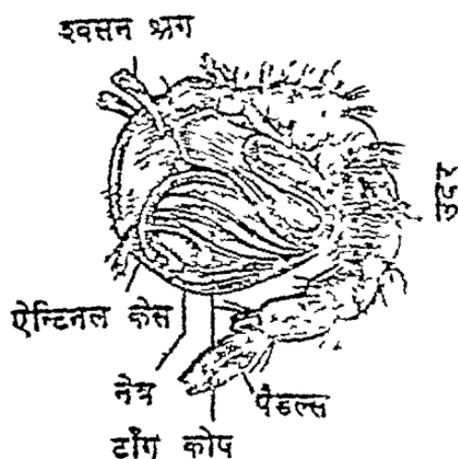
चित्र ३२७—मच्छर का प्यूपा

सभी कीटों के जीवन-चक्र में मिलनेवाली इस प्रकार की निष्क्रिय और भोजन न खानेवाली अवस्था के लिए किया जाने लगा।

प्यूपा में लार्वा के सभी अंग टूट-फूट जाते हैं और नये सिरे से मच्छर के सभी अंग बनते हैं। लार्वा के विभिन्न अंगों की तोड़फोड़ आमतौर पर फैगोसाइट्स करते हैं। टूट-फूट की इस क्रिया को हिस्टोलिसिस (histolysis) कहते हैं। इस तोड़-फोड़ से एक प्रकार का पोषक द्रव बन जाता है। लार्वा के विभिन्न अंगों की टूट-फूट के साथ साथ ऊतक निर्माण या हिस्टोजिनेसिस (histogenesis) भी चला करता है। इस प्रकार २ से ३ दिनों के अन्दर प्यूपा के अन्दर मच्छर बन जाता है। अब प्यूपा जल की सतह पर आकर उसके समान्तर पड़ा रहता है। एक या दो मिनट के बाद सेफेलोथोरैक्स की ऊपरी सतह फट जाती है जिससे मच्छर प्यूपेरियम (puparium) के बाहर सावधानी के साथ निकल आता है। निकलते ही वह उड़ नहीं सकता क्योंकि उसके पंख (wings) तथा टाँगें मुलायम होती हैं। इसी कारण यह कुछ समय तक प्यूपेरियम के सहारे टिका रहता है। मच्छर के जीवन-चक्र में यह बहुत ही संकट का समय होता है क्योंकि हवा का हल्का-सा झोंका भी उसे उलटने के

लिए पर्याप्त होता है। पखो और टाँगो के सूखने मे लगभग ५-१० मिनट लगते हैं। पखो के सूखते ही मच्छर हवा में उड जाते है।

नीचे दिये टेबिल मे मच्छर की दो सामान्य स्पेशीज के प्रमुख अन्तर सक्षेप मे दिये हैं —

एनौफिलीज (*Anophelcs*)	क्यूलेक्स (*Culex*)
(क) अण्डे (Eggs)	
(१) प्रत्येक नौकाकार अडे के इधर उधर हवा से भरी एक एक थैली होती है जिसे **एयर-फ्लोट** (airfloat) कहते हैं।	(१) ये सिगार के आकार के होते है और इनमें एयर फ्लोट नही होते।
(२) सव अलग अलग और पानी की सतह के समान्तर उतराते रहते हैं।	(२) इसके सभी अडे मिलकर एक वेडा बनाते हैं जो पानी की सतह पर तैरा करता है।
(३) यह एक साथ ४० से लेकर १०० तक अडे देती है।	(३) एक बार में २०० से लेकर ५०० तक अडे देती हैं।
(४) आमतौर पर यह साफ पानी में अडे देती है।	(४) प्राय इसके अडे हमारे घर के पास पडोस में इकट्ठे गदे पानी में मिलते हैं।
(ख) लार्वा (Larva)	
(५) इसका लार्वा जल की सतह के समान्तर तैरा करता है।	(५) इसका शरीर पानी की सतह के साथ कोण(angle)बनाता हुआ लटका रहता है।
(६) इसकी श्वसन निनाल बहुत ही छोटी होती है।	(६) इसकी श्वसन-निनाल लवी तथा नुकीली होती है।
(७) डौर्सल पामेट हेयर्स तथा नौच्चड् अग (notched organ) होते हैं।	(७) डौर्सल पामेट हेयर का सदा अभाव होता है।
(ग) प्यूपा (Pupa)	
(८) इसका रग हरा होता है और इसके श्वसन ट्रम्पेट्स, (respiratory trumpets) छोटे होते है।	(८) इसका प्यूपा लगभग रगहीन होता है और इसके श्वसन भृग अधिक लम्बे होते हैं।
(घ) मच्छर (Adult)	
(९) शरीर पतला तथा टाँगें सुकुमार होती हैं।	(९) इसका शरीर एनौफिलीज की अपेक्षा अधिक मजबूत और टाँगें सुदृढ होती हैं।

एनोफिलीज (*Anopheles*)	क्यूलेक्स (*Culex*)
(१०) इसका शरीर भूरा और बालदार होता है।	(१०) इसका शरीर भूरा होता है।
(११) इसके शरीर और पखो पर धब्बे होते हैं।	(११) पखो पर किसी विशेष प्रकार के धब्बे नही होते। सम्पूर्ण शरीर का रग लगभग एक-सा होता है।
(१२) उदर प्राय शल्को (scales) से ढका नही होता।	(१२) इसका उदर सदैव शल्को से ढका रहता है।
(१३) जब ये बैठते हैं तो इनका शरीर सतह के साथ एक एक्यूट कोण (acute angle) बनाता है।	(१३) विश्राम-स्थल की सतह के समान्तर इनका शरीर टिका रहता है और पृष्ठ भाग पर एक कूबड-सा बन जाता है।
(१४) पैल्पस (palps) प्रोबोसिस के बराबर लम्बे होते हैं।	(१४) इसके पैल्प प्रोबोसिस से बहुत छोटे होते हैं।

मच्छरो का आर्थिक महत्त्व

मच्छरो के काटने से पीडा होती है और नीद में बाधा पहुँचती है किन्तु इसके अतिरिक्त इनके काटने से चार भयानक रोग फैलते हैं—मलेरिया, यलो फीवर (*yellow fever*), डेंगू ज्वर (*dengu*) और फाइलेरियेसिस (*filariasis*)। व्यापकता के दृष्टिकोण से मलेरिया का प्रमुख स्थान है। इसी रोग से प्रतिवर्ष हजारो मनुष्य मर जाते है। इसके अलावा मलेरिया से पीडित होने के कारण ससार में लाखो मनुष्य काम नही कर पाते। काम पर जाने पर वे पूरी तौर पर मेहनत नही कर पाते। यही कारण है कि हमारे देश के कुछ भागो में खेती-बारी का पूरी तौर पर विकास नही हो पाता।

मलेरिया से बचने के उपाय

मच्छरो के काटने से मलेरिया होता है। अत मच्छरो की सख्या कम करने के लिए प्रौढ, अडे, लार्वा तथा प्यूपा को नष्ट करना और मच्छर को न काटने देना ही मलेरिया से बचने के उत्तम साधन हैं। कुछ विशेष उपायो का हम नीचे उल्लेख कर रहे हैं —

(१) दलदल तथा बंधे पानी को हटाना

(क) ऐसे स्थानो को जहाँ पर दलदल तथा बंधा पानी हो सुखा देना चाहिए जिससे मच्छर अडे न देने पायें। इसके अतिरिक्त गदी नालियो, पोखरो आदि स्थानो को कभी कभी साफ करते रहना

चाहिए जिससे घास-फूस न उगने पावे और जल में प्रवाह बना रहे। बहते पानी में अडे, लार्वा तथा प्यूपा बह जाते हैं और इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं।

(ख) मकान ऊंचे स्थान पर बनाना चाहिए और पास-पडोस में घास, जगल, फुलवाडी नही होनी चाहिए।

(ग) जहां पर दलदल या तालाबो को सुखाना असभव हो वहां जल के ऊपर मिट्टी का तेल, पेंट्रोल तथा मोटर का पुराना मोबिल आॅयल डालना चाहिए। यह तेल शीघ्र फैलकर पानी के ऊपर एक पतला फिल्म बना देता है जिससे पानी का सर्फेस टेन्सन बहुत कम हो जाता है। मच्छर के लार्वा और प्यूपा तैरकर बार-बार सांस लेने के लिए सतह पर आते हैं और अपनी श्वसन निनालों या शृगो (respiratory trumpets) को बाहर निकालते हैं। साधारण दशा में पानी की सतह का टेन्सन उनको साधे रखता है किन्तु तेल द्वारा सतह के ढक जाने के बाद जब लार्वा और प्यूपा सतह के समीप पहुँचते है तथा अपनी श्वसन निनालें उसके सम्पर्क में लाते हैं तो उनका शरीर सधने नही पाता जिससे उन्हे पानी मे नीचे उतरना पडता है। श्वसन-निनाल के शिखर पर स्थित पल्लव श्वसन-छेदो को बद नही कर पाते जिससे उनमे तेल भर जाता है। यही कारण है कि लार्वा सांस न ले सकने के कारण मर जाता है। प्यूपा का भी यही हाल होता है।

(घ) बडे तालाबो जिनमें मिट्टी का तेल डालने में काफी खर्च हो तो उनमें "पैरिस ग्रीन" (Paris green) नाम के रासायनिक पदार्थ का प्रयोग करना चाहिए। एक भाग पैरिस ग्रीन और तीन भाग राख मिलाकर वायुयान द्वारा जल की सतह पर छिडकवा देना चाहिए।

(च) हौज और फव्वारो में कुछ विशेष प्रकार की कीटभक्षी मछलियां पाली जा सकती हैं। ये मछलियां (*Sticklebacks*, *Gambusia*, and *Minnow*) मच्छरो के लार्वा तथा प्यूपा को खा जाती हैं।

(२) मच्छरो के काटने से अपनी बचत करनी चाहिए।

(क) सरसो का तेल, सिट्रोनिला तेल (citronella oil) तथा ऐन्टी मौस्किटो क्रीम (anti-mosquito cream) इत्यादि शरीर के उन भागो पर लगाई जा सकती है जो वस्त्रो से ढके नही रहते।

(ख) जहां तक बन सके अच्छी बनी हुई मच्छरदानी (मसहरी) का प्रयोग करना चाहिए। जहां मच्छर बहुत हो वहां बारहो महीने मसहरी लगाकर सोना चाहिए।

(३) मच्छरो का सहार

(क) गधक (sulphur), पाइरिथ्रम (Pyrethrum), टार-कैम्फर (tar camphor) तथा नैफथा (naphur) या अन्य पदार्थों को जलाकर धुआं पैदा करने से मच्छर भाग जाते हैं।

(ख) डी० डी० टी०, फिलट (flit) तथा मच्छर बॉम्ब (mosquito bombs) इत्यादि मच्छर मारने के काम में लाये जा सकते हैं। इन सब मे डी० डी० टी० सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। मच्छर-बाम्ब में फ्रियोन (freon), पाइरिथ्रम और तिल का तेल प्रयोग किया जाता है।

२—घरेलू मक्खी या मस्का डोमेस्टिका

(*Musca domestica*)

ससार में ऐसा कोई स्थान, ग्राम, नगर या देश नही जहां पर मक्खियां न होती हो। दुनिया में ऐसे स्थानो मे जहां मनुष्य नही होते वहा भी मक्खियो के दर्शन हुए हैं।

इस छोटे से कीट से जो हानियां मनुष्य-समाज को पहुंचती हैं, उनकी तुलना हम एटम-बॉम्ब (atom bomb) से कर सकते हैं। इसकी आदते इतनी बुरी होती हैं कि क्या छोटे क्या बडे, सभी इससे घृणा करते हैं। प्रातःकाल जबकि हम एक झपकी और लेना चाहते हैं, ये कभी नाक, कभी मुंह, कभी कान पर बैठकर हमें सताना आरभ करती हैं। ये सर्वभक्षक और पेटू होती हैं और सडे-गले और गदे पदार्थों को उसी लगन और चाव से खाती हैं जिस भांति हमारे स्वादिष्ट और सुगधित पकवानो को। पेटू होने के कारण ये दिन भर खाती हैं। यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह प्राणी अवपचे भोजन को वमन और विष्ठा के रूप मे त्याग कर फिर खाने के लिए तैयार हो जाता है। ये दिन भर खाती हैं और दिन भर वमन और विष्ठा करती हैं। घरो में लटकती हुई रस्सियां, लैम्प, किवाडो के शीशे—सभी तो इनके मल और वमन से काले पड जाते हैं। छोटा प्राणी होने के कारण यह खुली हुई खाद्य सामग्री पर स्वय बैठ जाता है और खाते समय उसी पर मल भी करता जाता है।

यहां पर यह समझ लेना चाहिए कि हमारे घरो में मिलनेवाली सभी मक्खियां "मस्का डोमेस्टिका" (*Musca domestica*) नही होतीं। एक दूसरी

मक्खी जो आमतौर से हमारे घरो मे मिलती है "ब्लो फ्लाई" (Blow fly) कहलाती हैं। इस मक्खी की रचना, आदते तथा जीवन-चक्र की बहुत-सी बातें घरेलू मक्खी से मिलती-जुलती हैं। इतना होने पर भी न तो ये घरेलू होती हैं और न इतनी अधिकता से पायी जाती हैं। इन सब मक्खियो से हम सहज ही में "घरेलू मक्खी" को पहचान सकते हैं। मस्का डोमेस्टिका के वक्ष की पृष्ठ सतह पर चार लम्बी खडी और उदर की पृष्ठ सतह पर एक मोटी काली धारी होती है। इसके अलावा घरेलू मक्खी का शरीर भूरा होता है किन्तु उदर की प्रतिपृष्ठ सतह पीली होती है।
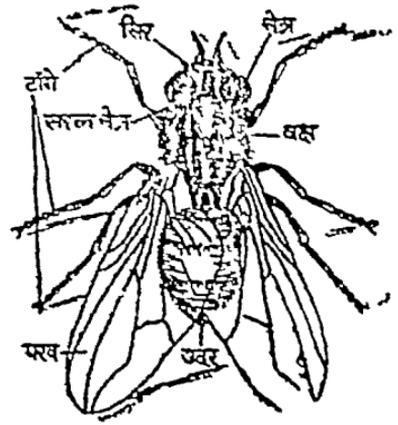
चित्र ३२८—मस्का डोमेस्टिका (*Musca domestica*) का पृष्ठ दृश्य

जीवन-चक्र (Life history)

उडते समय मक्खियो में मैथुन नही होता है। मैथुन के लिए इन्हे सदैव भूमि पर आना पडता है। नर छलांग मारकर मादा मक्खी पर सवार हो जाता है और तब मादा अपने अड निधानाग या ओवीपोजिटर (ovipositor) को बाहर निकालकर नर के जेनाइटल एट्रियम मे डाल देती है। इस प्रकार मैथुन हो जाता है। मैथुन में केवल १-२ मिनट लगते हैं।

मैथुन के कुछ दिनो बाद मादा सडी गली चीजों और कूडा करकट तथा गन्दी जगहो में अडे देती है। आमतौर पर यह घोडो की लीद पर अडे देना पसन्द करती है। किन्तु जहाँ पर यह नही मिलती वहाँ गोबर, मुर्गियों का मल, सडे हुए फल, मास, शाकपात और जानवरो के सडे-गले अवशेषो में अडे देती है। अड-निधानाग (ovipositor) की सहायता से ये अडे, लगभग सतह के ½ इच नीचे दिये जाते हैं। दिन भर में मादा १०० से लेकर १५० तक अडे दे सकती है। मक्खी का जीवन बहुत थोडे समय का होता है। यह अधिक से अधिक ६ से १० सप्ताह जीवित रहती है किन्तु फिर भी अपने इस छोटे से जीवन में एक मक्खी २१ बार में अर्थात् २ महीने मे लगभग २३८७ अडे दे सकती है।

(१) अडे (Eggs)

प्रत्येक अडा चमकीला सफेद, अडाकार (oval), और लगभग १ मिली-मीटर लम्बा होता है। अडे के बाहरी आवरण की पृष्ठ सतह के कुछ

मोटा हो जाने से दो पसली के आकार की मोटी रेखाएँ (ribs) बन जाती हैं। आम तौर पर अडा देने के ८ मे लेकर २४ घटे बाद अडोद्भेदन (hatching) होता है अर्थात् अडे से लार्वा निकलता है।

(२) लार्वा (Larva)

वृद्धि केवल लार्वल अवस्था (larval stage) मे ही होती है। अत लार्वा की कई परूपी अवस्थाएँ मिलती हैं। लार्वा क्यूटिकल के एक कोष्ठ में बद रहता है जिससे बढने के लिए थोडे-थोडे काल के बाद त्वक्मोचन या मोल्टिग (moulting) होना आवश्यक होता है। त्वक्मोचन के बीच की अवधि को स्टेडियम (stadium) और लार्वा की विभिन्न अवस्थाओ को इनस्टार्स (instars) कहते हैं। मक्खी के लार्वा में दो वार मोल्टिग होती है जिससे इसके तीन इनस्टार्स (instars) होते हैं। अडे से बाहर निकलने पर लार्वा को फर्स्ट इनस्टार (first instar) कहते हैं। प्रथम मोल्टिग के बाद सेकेण्ड इनस्टार (second instar) अवस्था आती है। इसी प्रकार दूसरी बार त्वक्मोचन के बाद थर्ड इनस्टार (third instar) अवस्था शुरू हो जाती है।
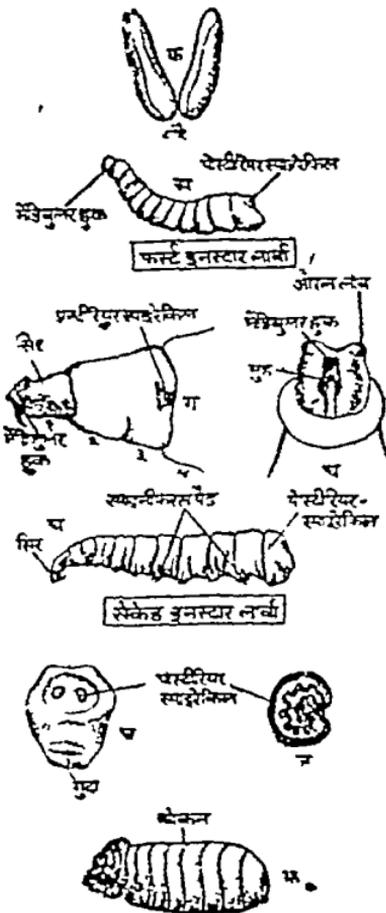
३२९—मक्खी का जीवन-चक्र, क, अडे, ख, फर्स्ट इनस्टार लार्वा, ग, सेकेंड इनस्टार लार्वा के प्रथम चार खड, घ, लार्वा का मुख द्वार, च, थर्ड इनस्टार लार्वा, छ, सेकेंड इनस्टार लार्वा के अन्तिम खड का पश्च दृश्य; ज, श्वासरध्र, झ, प्यूपा।

फर्स्ट इनस्टार लार्वा लगभग २ मिलीमीटर लम्बा होता है। इसमें टाँगे नही होतीं और सिर बहुत ज्यादा ह्रासित (reduced) होता है। इसका रग सफेद और आकार रमाकार होता है किन्तु इसका अगला सिरा बहुत ज्यादा पतला और नुकीला होता है और पिछला सिरा मोटा और खण्डित (truncated) होता है। पूरे शरीर में

एक सैफिलक सेग्मेन्ट (cephalic segment) तथा बारह ट्रंक सेगमेन्ट होते हैं। सैफिलक खड में दो ओरल लोन्स होते हैं जो पृष्ठभाग से जुडे रहते हैं। प्रत्येक ओरल लोब में दो नुकीले संवेदी ऑप्टिक टुबरकिल्स (optic tubercles) होते हैं। ओरल लोब की प्रतिपृष्ठ सतह पर बहुत ही महीन भोजन-नलिकाएँ होती हैं जो तरल भोजन इकट्ठा करके मुखद्वार में ले जाती हैं। मुखद्वार के अगले सिरे पर एक काला मेंडिबुलर हुक (mandibular-hook) होता है जो केवल लार्वा के चलने मे सहायता देता है।

बारहवें ट्रक सेगमेन्ट की पृष्ठ सतह के मध्यभाग में अग्रेजी के अक्षर D के आकार के दो पश्च श्वासरंध्र (posterior spiracles) होते है। प्रत्येक श्वासरध्र मे तीन छेद होते हैं जो ट्रकी में खुलते है। ६ से लेकर १२वें ट्रक सेगमेन्ट की वेन्ट्रल सतह पर आगे की ओर अर्धचन्द्राकार गद्दियाँ होती हैं जिनमें अनेक छोटे-छोटे काँटे होते हैं। ये काँटेदार गद्दियाँ तथा मेंडिबुलर हुक (mandibular hook) दोनो ही लार्वा को आगे और पीछे रेंगने में सहायता देते हैं। अन्तिम ट्रक सेगमेन्ट की प्रति पृष्ठ सतह पर गुदा (anus) होती है।

१-२ दिन बराबर खाने के बाद प्रथम इनस्टार लार्वा मोल्टिग करके सेकेन्ड इनस्टार बन जाता है। इसकी रचना में कुछ अन्तर होता है। इसमे पश्च श्वासरध्रो (posterior spiracles) के अतिरिक्त अग्र श्वासरध्रो (anterior spiracles) का भी एक जोडा होता है। प्रत्येक अग्र श्वासरंध्र जो तीसरे खड के पिछले किनारे पर होता है, आकार में जापानी पखे के समान दिखाई देता है। प्रत्येक अग्र श्वास-रध्र में छ से लेकर आठ बटन के आकार के उभार होते हैं।

दो या तीन दिनो के पश्चात् सेकेंड इनस्टार लार्वा दूसरी बार मोल्टिग (moulting) करके तृतीय इनस्टार (third instar) बन जाता है। यह अब $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इच तक लम्बा होता है। त्वचा के ठीक नीचे चर्बी के इकट्ठे हो जाने से इसका रग हल्का पीला हो जाता है। प्रकाश से ये घबडाते हैं। इसीलिए ये सडी-गली वस्तुओ के नीचे दबे हुए मिलते हैं। ऐसे स्थानो पर इन्हें अनुकूल गर्मी तथा नमी मिलती है।

(३) प्यूपा (Pupa)

पूरी तौर पर बढ जाने पर लार्वा (larva) सूखे स्थानो में पहुँचकर कुछ समय तक विश्राम करते है और फिर प्यूपा में बदल जाते हैं। प्यूपा बनने के लिए सर्वप्रथम लार्वा का शरीर सिकुडने लगता है जिससे वह रभाकार हो जाता है और उसके अगले तथा पिछले सिरे दोनो गोल हो जाते है। रग गहरा

भूरा हो जाता है और लार्वल-त्वचा (larval skin) एक कठोर, जलरोधी, (waterproof) अंडाकार प्यूपल केस (pupal case) या प्यूपेरियम (puparium) बनाता है जो एक रक्षक आवरण का काम करता है। प्यूपा की लम्बाई ६ ३ मिलीमीटर होती है। इसके मुख और गुदा नही होते। मच्छर के प्यूपा के विपरीत ये चल-फिर नही सकते और सांस लेने के लिए इनमें अग्र और पश्च स्पाइरेकिल्स होते हैं।

चित्र ३३०—मक्खी का प्यूपा

रूपान्तरण (Metamorphosis)

रूपान्तरण का अर्थ (*meta*, परिवर्तन, *morphe*, रूप) रूप परिवर्तन है। प्यूपा से लेकर प्रौढ अवस्था के परिवर्तनो को पहले रूपान्तरण कहते थे किन्तु अब यह परिभाषा बदल गई है। आधुनिक मत के अनुसार **अंडे से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होनेवाले सभी परिवर्तनो को रूपान्तरण या मेटामोर्फोसिस कहते हैं।** यद्यपि प्यूपा अचल तथा प्रत्यक्षरूप से निष्क्रिय होता है किन्तु उसके भीतर महान् परिवर्तन होते हैं। केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र को छोडकर लार्वा के अगो को फैगोसाइट्स तोड़-फोड डालते हैं। इस तोड-फोड को हिस्टोलिसिस (histolysis) कहते हैं जिसके परिणामस्वरूप एक तरल द्रव बन जाता है जो पोषण में सहायता देता है। इस तरल द्रव में कुछ विशेप प्रकार की सेल्स के समूह मिलते हैं जिन्हें **इमेजिनल** डिस्क (imaginal discs) कहते हैं। प्रत्येक इमेजिनल डिस्क की सेल्स में विभाजन की विशेप क्षमता होती है और इस प्रकार बननेवाली नई सेल्स की सहायता से प्यूपा के अन्दर प्रौढ मक्खी के सभी अगो का निर्माण होता है। इस पुनर्निर्माण को ऊतक-जनन या हिस्टोजिनेसिस (histogenesis) कहते हैं। यह क्रिया गर्मी या वर्षा के दिनो में प्राय ४-५ दिनो में समाप्त हो जाती है किन्तु जाडे के दिनो में इसके पूरे होने में कई सप्ताह लग जाते हैं।

रूपान्तरण की समाप्ति पर मक्खी प्यूपल केस (pupal case) को फाडकर बाहर निकालने में एक थैली सदृश (bladder like) रचना की सहायता लेती है। इसको **टाइलीनम** (ptilinum) कहते है। यह मक्खी के सिर पर होती है। रुधिर से भर जाने पर यह फूल जाती है और

फिर इसके दवाव से प्यूपल केस का ऊपरी भाग ढक्कन की भाँति अलग हो जाता है। मक्खी के वाहर निकलते ही टाइलीनम सिकुड जाता है और D के आकार का एक चिह्न मात्र रह जाता है। आरम्भ में मक्खी सफेद होती है। उसके पख छोटे छोटे होते हैं और उसमें उडने की शक्ति नही होती। शीघ्र ही वह भूरे रग की हो जाती है, पख फैल जाते हैं और सूखने से इनमें दृढता भी आ जाती है। इस प्रकार रूपान्तरण की समाप्ति पर प्रत्येक पादहीन (limbless), सिररहित (headless) तथा प्रकाश से दूर भागनेवाला लार्वा जो गदे स्थान पर रहना पसन्द करता है, हवा में उडनेवाली मक्खी बन जाता है।

शरद ऋतु के आरम्भ में जो प्यूपा वनते हैं, वे प्राय जाडे भर हाइवर्नेशन (hibernation) करते है। वसन्त या गर्मी आने पर प्यूपो (pupae) से मक्खियाँ निकलती हैं। अधिकाश प्रौढ मक्खियाँ शरद ऋतु के आरम्भ में ही मर जाती है, किन्तु कुछ ऐसी भी होती हैं जो हमारे मकानो में अँधेरे और गरम कोनो में छिपी रहती हैं और जिस किसी दिन जाडा कम होता है वे सभी बाहर निकल आती हैं।

मक्खियों का आर्थिक महत्त्व

हम ऊपर लिख चुके है कि मानव-समाज को जो हानि मक्खी पहुँचाती है उसकी तुलना हम एटम वाम्व (atom bomb) से कर सकते हैं। इसका यह महत्त्व निम्नलिखित रोगो के रोगाणुओ (germs) के फैलने के कारण है—आत्र ज्वर (Typhoid), पेचिस, हैजा, अमीविक पेचिश, यक्ष्मा, डिफ्थिरिया या कोय, ऐन्थ्रेक्स, सुजाक तथा आँख दुखना।

इस प्रकार की सक्रामक वीमारियो को फैलाकर मक्खियाँ मनुष्य को भयकर स्थिति मे डाल देती हैं। साथ ही साथ ये हुकवर्मस (*Hookworms*) राउड वर्म (*Roundworms*) तथा सेस्टोड्स (*Cestodes*) के अडो के वहन में भी सहायता देती हैं।

मक्खी रोग कैसे फैलाती है

घरेलू मक्खियाँ स्वय रोग नही उत्पन्न करती वरन् रोगवाहक (vector) का कार्य करती हैं। ये रोगियो के मल-मूत्र, थूक तथा अन्य प्रकार की सडी-गली वस्तुओ पर वैठती है और फिर खुले रक्खे हुए खाद्य पदार्थों पर बैठती हैं तथा उन्हे खाती है। अत ये निम्न दो विधियो से रोग फैला सकती है —

(१) वाह्य रोगान्तरण (External transference)—मक्खी के सम्पूर्ण शरीर की रचना इस प्रकार रोग फैलाने के लिए सवसे अधिक

उपयुक्त होती है। उसके मुख भाग (mouth parts), पंख तथा शरीर के अन्य भाग घने रोयों से ढँके होते हैं। जब कभी मक्खी मल-मूत्र, थूक और सड़ी-गली वस्तुओं पर बैठती है तो उसकी टाँगों की लसलसी गद्दियों तथा बालों में हजारों जीवाणु चिपक जाते हैं। इसकी टाँगें वास्तव में नन्हें नन्हे ब्रश (brush) के समान होती हैं जिससे उनमें चिपके जीवाणु किसी भी प्रकार छुटाये नहीं जा सकते। जब यही मक्खी हमारे भोजन पर बैठती हैं तो ये जीवाणु भोजन में पहुँच जाते हैं।

(२) आन्तरिक रोगान्तरण (Internal transference)—रोग फैलाने की इस विधि का सम्बन्ध मक्खी के भोजन करने और वमन या उल्टी करने की आदत से होता है। मक्खी जब हैजे के रोगी के वमन या मल पर बैठती है और उसे बड़े चाव से खाती है तो हैजे के जीवाणु उसकी आहार-नाल में पहुँच जाते हैं। मक्खी की आहार-नाल में एक थैली के समान रचना होती है जिसे क्रौप (crop) कहते हैं। यह मक्खी का भोजन-भंडार है। समय-कुसमय भोजन न मिलने पर यह थैली बहुत उपयोगी होती है। किन्तु रोगों के फैलाने में भी यह अत्यन्त भयानक काम करती है। भोजन के साथ निगले हुए रोग के बैक्टीरिया इसके भीतर रहकर भी जीवित रहते हैं। यह देखा गया है कि टाइफॉएड (typhoid) के बैक्टीरिया इसके क्रौप में एक महीने के बाद भी रोग उत्पन्न कर सकते हैं। ये बैक्टीरिया मनुष्य के भोजन में दो प्रकार से पहुँच पाते हैं—एक तो मक्खी के वमन और दूसरे उसके मल के साथ।

मक्खी द्वारा फैलाये जानेवाले रोगों से बचने के उपाय

जो भी साधन इनके निदमन (control) के लिए काम में लाये जायँ उनके निम्न तीन उद्देश्य होने चाहिए —

(क) अंडे देने में रुकावट

(ख) मक्खियों को मारना

(ग) इनके रोग फैलाने में रुकावट

(क) अंडे देने में रुकावट

(१) मक्खियाँ आमतौर से ६००-७०० गज तक उड़कर चली जाती है। इससे स्पष्ट है कि घर का कूड़ा, घोड़े की लीद और गाय-बैल के गोबर को इकट्ठा करने का स्थान आबादी से कम से कम एक मील की दूरी पर होना चाहिए।

(२) यदि घर का कूड़ा रोज उठा ले जाने की व्यवस्था न हो तो उसे ढकनेदार टीनों में डालकर बन्द कर देना चाहिए।

(३) गोबर और लीद के ढेर लगा देने पर सडने से ढेर के अन्दर गर्मी पैदा होती है जिससे मक्खी के लार्वे ढेर के भीतर जीवित नही रह सकते। सतह के ठीक नीचे तरी भी रहती है और गर्मी भी अधिक नही होती। इसलिए ढेर को बराबर उलटते-पलटते रहना चाहिए।

(४) यदि खाद, कूडा-करकट, लीद, गोबर आदि को मकान के पास-पडोस मे इकट्ठा करना पडे तो अडे, लार्वों और प्यूपो को मारने के लिए कुछ रासायनिक पदार्थों की सहायता ली जा सकती है। इसके लिए **चूना** ५%, **सुहागे** (borax) **का घोल**, ५% **क्रिसौल** (cresol) का घोल, **फार्मलीन** (formalene), **तूतिया** (copper sulphate) आदि का प्रयोग किया जा सकता है। रासायनिक उपचार के फलस्वरूप अडे और लार्वे तो अवश्य मर जाते हैं किन्तु मल और गोबर फिर खाद बनाने के काम नही लाये जा सकते। सब बातो का ध्यान रखते हुए सुहागा (borax) और हेलबोर (hellbore-sodium flourosilicate) ही सर्वोत्तम हैं।

(ख) प्रौढ मक्खियों का सहार

(१) **मक्खी-पकड कागज** (fly paper) बाजार मे मिलता है। इसमे मक्खियाँ खूब चिपकती हैं।

(२) तार की जाली के पखो से भी मक्खियाँ मारी जा सकती हैं। अगर हाथ से मारने का प्रयत्न किया जाता है तो वे शीघ्र ही बढते हुए हाथ को देखकर भाग जाती हैं किंतु तार की जाली के पखो को ये नही देख पाती।

(३) **फ्लिट** (flit), डी० डी० टी० (Dichloro-diphenyl-trichlorethane) तथा अन्य कीटनाशक रासायनिको के प्रयोग से मच्छर, मक्खी और अन्य घरेलू कीडे मारे जा सकते हैं। इन दोनो में डी० डी० टी० सर्वोत्तम **कीटनाशक रासायनिक** है। यदि डी० डी० टी० दीवारो, फर्श और कपडो पर छिडका जाय तो मक्खियाँ, दीमको, खटमल तथा अन्य प्रकार के कीडों से महीनो के लिए छुट्टी मिल जाती है। डी० डी० टी० की सबसे बडी विशेषता यह है कि इससे मनुष्य को किसी प्रकार की हानि नही पहुँचती।

(ग) **सक्रामक रोगों से बचत**—जब तक पूरी बस्ती से मक्खियाँ गायब न हो जायँ, अच्छा यही होगा कि हम अपने घरो में खाने-पीने की वस्तुओ को बचाकर रक्खें। अत निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए —

(१) घर मे तथा बाहर, हर जगह सफाई रखनी चाहिए।
(२) घर में खाने-पीने की वस्तुओ को खुला नही रखना चाहिए।
(३) रसोई गृह के द्वार और खिडकियो पर महीन तार की जाली लगा देना चाहिए।
(४) विशेषकर उन दुकानो से जो खाद्य सामग्री खुली रखकर वेचते हैं, हमे कभी भी खाने-पीने की वस्तुएँ नहीं खरीदना चाहिए।

आर्थ्रोपोडा का वर्गीकरण (Classification)

आर्थ्रोपोडा को पाँच वर्गो या क्लासेस (Classes) में बाँटा जा सकता है —

(१) क्लास **क्रसटेशिया** (class *Crustacea*)
(२) क्लास **इनसेक्टा** (class *Insecta*)
(३) क्लास **औनीकोफोरा** (class *Onychophora*)
(४) क्लास **मीरियोपोडा** (class *Myriopoda*)
(५) क्लास **एरेकनिडा** (class *Arachnida*)

(१) क्लास क्रसटेशिया (*Crustacea*)

इस क्लास में जलीय आर्थ्रोपोडा होते है। इन प्राणियो का क्यूटकिल (cuticle) कैलशियम कार्बोनिट की उपस्थिति से अधिक कडा हो जाता है। इनके सिर पर दो मेंडिबल, चार मैक्जिली और चार **ऐन्टिनी** (feelers) होते हैं। वक्ष (thorax) के कुछ अथवा सभी खडो से सिर जुडा रहता है और इस प्रकार सिर और वक्ष के मिलने से **सफलोयोरैक्स** वन जाता है। **ऐन्टिन्यूली** (antennulae) के पहले जोडे को छोडकर अन्य उपाग (appendages) द्विशाखान्वित (biramous) होते हैं। क्रसटेशिया के प्राणी समुद्र मे और नदी तथा तालाव के जल में मिलते हैं। इस क्लास में **पैलीमौन** (*Palaemon*), **डैफनिया** (*Daphnia*), **क्रैव** (crab), **लौवस्टर** (*Lobsters*) **झींगा मछली** (*Crayfish*), **वर्नेकिल** (*Barnacle*) इत्यादि होते हैं।

(२) क्लास औनीकोफोरा (*Onychophora*)

इस क्लास में **"चल कृमि"** (*Walking worm*) होते हैं जो पत्थर अथवा सडी-गली लकडी के टुकडे के नीचे अँधेरे और नम स्थानो मे मिलते हैं। इनमें काइटिन का एक्सोस्कैलिटन (chitinous exoskeleton) कडा नहीं वल्कि कोमल होता है। ये ट्रेकी (tracheae) से साँस लेते हैं। अन्य आर्थ्रोपोडा के प्रतिकूल इनमें जवडो का एक ही जोडा होता है। मैटामेरिक सैगमेन्टेशन स्पष्ट नहीं दिखाई पडता। दोनो वेन्ट्रल नर्व

कॉर्ड भी अलग अलग होते हैं और इनमें गेंगलिआ नही होते। इसमें
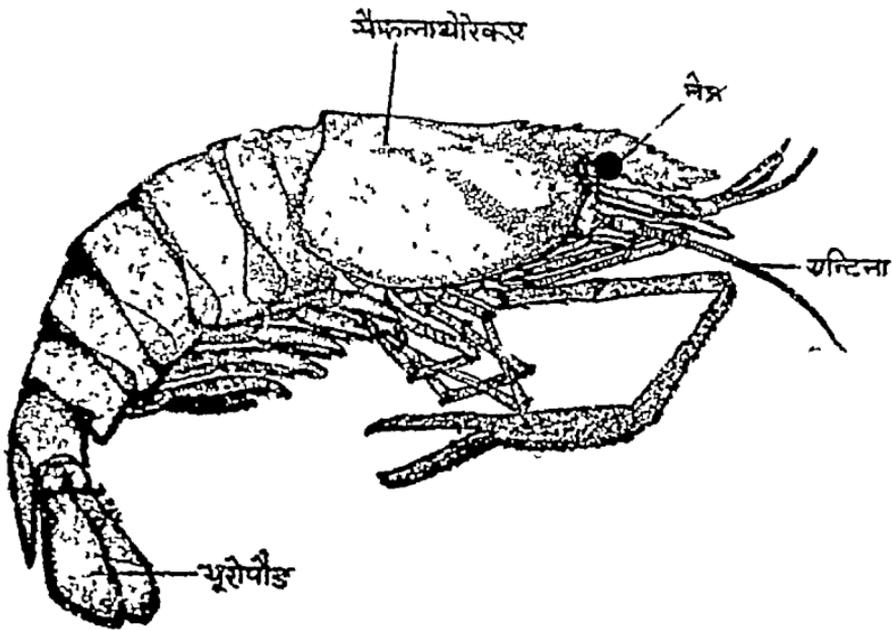
चित्र ३३१—सामान्य भारतीय पैलिमोन (*Palaemon*)

पैरीपेटस (*Peripatus*) नाम की एक अकेली स्पेशीज (species) मिलती है।

(३) क्लास मीरियोपोडा (*Myriopoda*)

इस क्लास के आर्थ्रोपोडा मे शरीर अधिक लम्बा होता है और उसमे अनेक खड होते है और शरीर के दोनो ओर अनेक अवयव (appendages) होते हैं। कांतर या कनखजूरा (*Centipede*) तथा मिलीपीड (*Millipede*) इस क्लास के परिचित प्राणी हैं जो प्राय पत्थर, लकडी तथा पेडो की छाल (bark) के नीचे छिपे रहते हैं। "सेन्टी" और "मिली" विशेषणो से यह न समझ लेना चाहिए कि इन प्राणियो में वास्तव मे १०० या हजार टाँगे होती हैं। टाँगो को देखकर हम इन दोनो को सरलता से पहचान सकते है।

चित्र ३३२—क, कनखजूरा (centipede), ख, मिलीपीड, (Millipede)

(४) क्लास एरेकनिडा (class *Arachnida*)

इस क्लास के आर्थ्रोपोडा में ऐन्टिनी (antennae) का अभाव होता है। इन प्राणियों में असली जबड़े भी नहीं होते। अवयवों (appendages) की प्रथम जोड़ी को ग्राहिका (chelicerae) कहते हैं। इनका शरीर केवल दो भागों में बाँटा जा सकता है, (१) प्रोसोमा (prosoma) या सेफलोथोरेक्स (cephalothorax) और (२) उदर (abdomen)। स्थल निवासियों में श्वसन क्रिया "लंग बुक्स" (lung books) द्वारा किन्तु जलीय प्राणियों में "गिल बुक्स" (gill books) द्वारा होती हैं। इनमें सबसे अधिक विख्यात मकड़ी (spider), बिच्छू, किलनी (ticks), लिम्यूलस (*Limulus*) इत्यादि होते हैं।
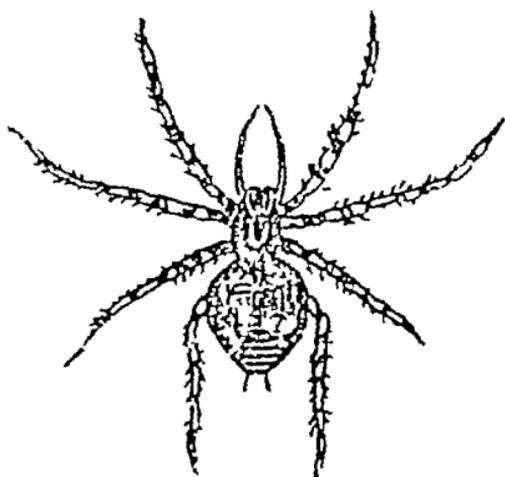
चित्र ३३३—सामान्य मकड़ी

(५) क्लास इनसैक्टा (*Class Insecta*)

इस वर्ग में हवा में साँस लेनेवाले आर्थ्रोपोडा होते हैं। इनका शरीर सदैव तीन भागों में बाँटा जा सकता है—सिर, वक्ष तथा उदर। सिर पर ऐन्टिनी (antennae) का एक जोड़ा होता है। जहाँ तक मुखभागों (mouth parts) का सम्बन्ध है, ये चबाने, चूमने तथा काटने की क्रियाओं के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं। वक्ष में तीन खंड होते हैं और प्रत्येक खंड से जुड़ा हुआ टाँगों का एक जोड़ा होता है। इस प्रकार कीट वर्ग के सभी **प्राणियों में तीन जोड़ी टाँगें होती हैं।** वयस्क अवस्था में अधिकतर कीटों में पंख के एक या दो जोड़े मिलते हैं। साँस लेने के लिए सभी कीटों में ट्रैकी (tracheae) होती हैं। ये वक्ष तथा उदर के पार्श्व भागों में श्वासरंध्र (spiracles) द्वारा खुलती हैं। इसके अतिरिक्त इनके एक्सक्रीटरी अंग भी विशेष प्रकार के होते हैं। एक्सक्रीशन दो या अनेक मैलपीगियन नालों (Malpighian tubules) द्वारा होता है। ये सभी नालें प्रोक्टोडियम के अगले सिरे से जुड़ी होती हैं।

संसार में पाये जानेवाले अन्य प्राणियों की संख्या इनसैक्टा की विभिन्न

स्पेशीज से कहीं कम होती है। कीटो के वर्गीकरण में निम्नलिखित तीन लक्षणो की सहायता ली जाती है —

(१) मुख भागो की रचना,

(२) मेटामौर्फोसिस की विधि और

(३) पक्षो (wings) की सख्या, अभाव या उपस्थिति।

चित्र ३३४—सामान्य बिच्छू (scorpion)
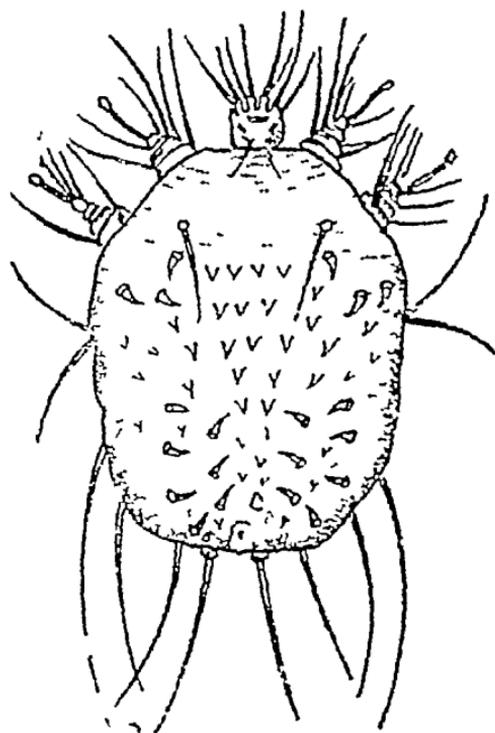
चित्र ३३५—खुजली का कीडा (*Sarcoptes scabei*)

क्लास इनसैक्टा निम्नलिखित उल्लेखनीय औंर्डर्स (orders) में विभाजित किया जा सकता है —

(१) औंर्डर एपट्रा (*Aptera*)—इन औंर्डर (order) के कीट सबसे पुरातन माने जाते हैं। इनमें पख नही होते है और इनके परिवर्धन में रूपान्तरण की भी कोई व्यवस्था नही होती। अडे मे निकलने पर निम्फ (nymph) अन्य मभी बातो में बिल्कुल वयस्क के ममान होता है। इस औंर्डर में स्प्रिग टेल (Spring tail) और सिल्वर फिश (Silver fish) होते हैं।

(२) औंर्डर औरथौपट्रा (*Orthoptera*)—अर्थात् ये कीट जिनके पख सीधे होते हैं। इनके अगले पख सीधे होते हैं और इन्हे इलिट्रा (elytra)

कहते हैं। ये पिछले पखो की अपेक्षा अधिक कडे होते है। इनके ठीक नीचे जापानी पखे के समान मुडे हुए पिछले पख होते हैं जो इन्हें यदा-कदा उडने में सहायता देते हैं। उडते समय इनके अगले पख वायुयान के पखो की भाँति इधर-उधर सीधे व अचलरूप से फैले रहते हैं और पिछले पंख **प्रणोदि अंग** (propellar) का कार्य करते हैं। इनके मुखभाग (mouth parts) कुतरने में और टाँगें कूदने तथा दौडने में सहायता देती हैं। इन कीटो में **सामिरूपान्तरण** (Hemimetamorphosis) अर्थात् अधूरी मेटामोर्फोसिस होती है क्योकि अडो से निकलनेवाले निम्फ (nymph) वहुत कुछ अपने जनक (parents) के अनुरूप ही होते हैं। **औरथोप्ट्रा में टिड्डे** (grass-hoppers), **टिड्डियाँ** (locusts), **झींगुर** (crickets), **तिलचट्टे** (cockroach) और **पत्र कीट** (leaf insect) होते हैं।

(३) **ऑर्डर न्युरोप्ट्रा** (*Neuroptera*)—इनमें झिल्ली के समान पखो के दो जोडे होते हैं। प्रौढ कीटो के मुखभाग (mouth parts) काटने के लिए उपयुक्त होते है। इसकी विभिन्न स्पेशीज में रूपान्तरण में पर्याप्त भेद मिलता है। न्युरोप्ट्रा ऑर्डर में **ड्रैगन-फ्लाई** (*Dragon fly*) होती है।

(४) **ऑर्डर हेमिप्ट्रा** (*Hemiptera*)—यह ऑर्डर अपेक्षाकृत वडा होता है। इन कीटो के मुखभागों द्वारा एक प्रोवोसिस (proboscis) वन जाती है जिससे छेदने तथा चूसने का काम लिया जाता है। कुछ कीटो में चार पख मिलते हैं किन्तु कुछ ऐसी भी स्पेशीज मिलती हैं जिनमें पखो का पूर्ण अभाव होता है। इनमें भी **सामिरूपान्तरण** (hemi-metamorphosis) होता है। पखहीन स्पेशीज में **सिकेड्स** (Cicades), **खटमल** और **पेडों के खटमल** या **एफिड्स** (plant bugs) होते हैं।

(५) **ऑर्डर डिप्ट्रा** (*Diptera*)—इन कीटो में पखो का केवल एक ही जोडा होता है। पिछले पखो का अभाव होता है। इनके मुख-भाग प्रमुखरूप से चूसने का काम करते हैं किन्तु किमी किसी कीडे में ये छेदने का भी कार्य करते हैं। इनमें **पूर्ण रूपान्तरण** (complete metamorphosis) होता है। कीटो का यह सवमे महत्त्वपूर्ण समुदाय है। उष्ण कटिवन्ध प्रदेशो में तो इन कीटो का विशेष ध्यान रखना पडता है क्योकि इनमें से वहुत से अनेक भयकर रोगो को फैलाने के नाते वडे घातक हैं। इस समुदाय में **डाँस** (*Gnats*), **मच्छर** (mosquito), **मक्खियाँ** (flies), **अश्व-मक्षिकाएँ**, **फल-मक्षिकाएँ** (fruit flies) इत्यादि होती है।

(६) **ऑर्डर कोलिओप्ट्रा** (*Coleoptera*)—इसमें **गुबरैले** (*beetles*)

होते हैं जिनमें पखो के दो जोडे होते हैं। पखो का अगला जोडा कडा होता है और उडने में सहायता नही देता। इनके अगले पख इलिट्रा (elytra) कहलाते हैं। ये कभी-कभी बडे सुन्दर ढग से सजे (decorated) होते हैं। इनकी सुन्दरता अत्यन्त नयनाभिराम होती है। मुखभाग (mouth parts) काटने तथा चवाने में सहायता देते हैं। इन कीटो के परिवर्धन में प्राय पूर्णरूपान्तरण (complete metamorphosis) होता है।
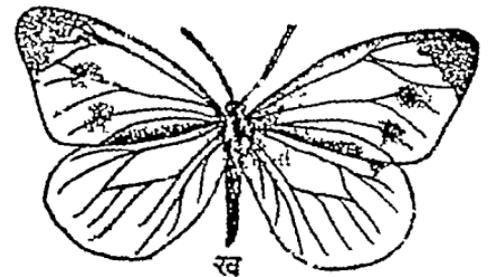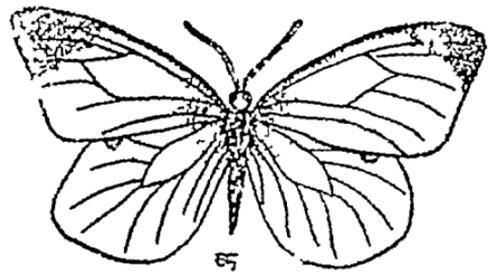
चित्र ३३६—तितलियाँ क, नर, ख, मादा

(७) ऑर्डर लेपीडोप्ट्रा (*Lepidoptera*)—इस ऑर्डर मे तितलियाँ (butterflies) तथा शलभ या पतगे (moths) होते हैं। इनमें पखो के दो जोडे होते हैं जो रगीन शल्को (scales) से ढके रहते हैं। मुखभाग (mouth parts) मिलकर एक लम्बी नली के आकार की प्रोबौसिस (proboscis) वनाते हैं। निष्क्रिय अवस्था में प्रोबौसिस घडी की कमानी के समान कुडलित होकर सिर के नीचे छिपी रहती हैं। यह फूलो का रस या मकरन्द चूसने में सहायता देती है। इनके परिवर्धन में पूर्ण रूपान्तरण (complete metamorphosis) होता है। तितलियो को शलभ (moth) या पतगो से पहचानना आसान है फिर भी सामान्य मनुष्य धोखा खा सकता है।

(८) ऑर्डर हाइमिनोप्ट्रा (*Hymenoptera*)—यह भी कीटो का एक वहुत वडा ऑर्डर है। इसमें मधु मक्खियाँ (honey bee), बरैया (wasps) तथा चीटियाँ (ants) होती हैं। इस ऑर्डर के अधिकाश कीटो में दो जोडी पख होते हैं। कुछ कीट ऐसे भी मिलते हैं जिनमें या तो पख निकलते ही नही या केवल थोडे समय के लिए निकलते हैं और बाद में झड़ जाते हैं। मुख (mouth part) से काटने तथा चूसने दोनो ही का काम लिया जाता है परिवर्धन में इन सभी में पूर्ण रूपान्तरण (complete metamorphosis होता है। मादा के उदर के पिछले सिरे पर डक (sting) के समान एक र मिलती है। आर्थिक महत्व के अलावा इनकी स्पेशीज अपने उच्च कोटि

सगठित मामाजिक जीवन के नाते भी हमारे लिए अध्ययन की बडी मनोरजक सामग्री है।

(९) ऑर्डर आईसोप्ट्रा (*Isoptera*)—इस ऑर्डर में दीमक होती है जिन्हे प्राय **"श्वेत चींटियाँ"** (white ants) भी कहते हैं। वास्तव में इनका वर्गीकरण सहज नहीं है फिर भी हम इन्हे चींटियाँ नही कह सकते।

प्रश्न

१—ऐनोफिलीज के जीवन-चक्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। मलेरिया की रोकथाम के लिए तुम किन किन उपायो को काम में लाओगे?

२—मक्खी (*Musca domestica*) के जीवन-चक्र का वर्णन करो। मक्खी किम प्रकार रोग फैलाती है?

३—ऐनोफिलीज या घरेलू-मक्खी के जीवन-चक्र का मचित्र वर्णन करो। मनोनीत कीट के परिवर्धन काल की विभिन्न अवस्थाओं में किम प्रकार अनुप्राशन (feeding) करता है?

४—रूपान्तरण में किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं? मक्खी में रूपान्तरण (metamorphosis) के समय श्वसन तथा अनुप्राशन से सम्बन्धित कौन कौन से परिवर्तन होते हैं?

५—(क) क्यूलेक्स तथा ऐनोफिलीज में कौन कौन से अन्तर होते हैं?

(ख) ऐनोफिलीज मच्छर के जीवन-चक्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

६—क्यूलेक्स के मुखभागो की सरचना समझाओ। मादा किम प्रकार मनुष्य का रक्त चूसती है?

अध्याय २३

अन्य इनवर्टिब्रेट्स

पिछले अध्यायो मे तुम निम्नलिखित फाइला (phyla) के कुछ प्राणियो की रचना और फिजियालोजी के सम्बन्ध मे पढ चुके हो —

(१) फाइलम प्रोटोजोआ (Potozoa)
(२) फाइलम सीलनट्रेटा (Coelenterata)
(३) फाइलम ऐनिलिडा (Annelida)
(४) फाइलम आर्थोपोडा (Arthropoda)

उपरोक्त फाइला के जन्तुओं के अलावा और भी फाइला मिलते है। इनमें से प्रमुख फाइला के नाम निम्न प्रकार है—

(५) फाइलम पोरीफेरा (porifera)
(६) फाइलम प्लैटीहैलमैन्थीस (Platyhelminthes)
(७) फाइलम निमैटहैलमैन्थीस (Nemathelminthes)
(८) फाइलम मलस्का (Mollusca)
(९) फाइलम इकाइनोडरमेटा (Echinodermata)

इन सभी फाइला के अध्ययन के विना प्राणि-विज्ञान का अध्ययन अधूरा रहेगा। इसलिए इन सभी का कम से कम सामान्य आपरीक्षण (survey) आवश्यक है। सर्वप्रथम हम फाइलम पोरीफेरा लेंगे।

(१) फाइलम पोरीफेरा
(Phylum Porifera)

पोरीफेरा या स्पौन्जेस (Sponges) अलवण तया लवण जल (sea-water) दोनो ही मे मिलते है। इनके आकार और परिमाण (size) दोनो में वहुत अन्तर मिलता है। वडे वडे स्पन्ज का व्यास २½ इच से लेकर ३ फुट तक हो सकता है किन्तु इनकी कुछ स्पेशीज झील में चट्टानो के ऊपर एक रगीन पपडी के रूप में मिलती है।

रचना के दृष्टिकोण से स्पौन्जेस (sponges) वहुकोशिकीय जन्तुओ मे सरलतम होते हैं। ये पैराजोआ (*Parazoa*) का निर्माण करते है

जिसमें अनेक स्पेशीज मिलती हैं। इन मेटाजोअन (metazoan) प्राणियो में अत्यन्त सरल ऊतक मिलते हैं किन्तु विशिष्ट अगो का अभाव होता है। यद्यपि इन प्राणियो में आन्तरिक गुहाओ (internal cavities) का बडा व्यापक सिस्टम (extensive system) मिलता है किन्तु आहार-तत्र का पूर्ण अभाव होता है। फिर भी इन प्राणियो में **इन्टरनल स्कैलिटन** (internal skeleton) आमतौर मे मिलता है। इनके शरीर की सतह पर अनेक नन्हें नन्हे छेद (pores) होते हैं जिनके द्वारा जल निरन्तर भीतर पहुँचा करता है। इन्ही असख्य छेदो की उपस्थिति के कारण इन प्राणियो को **पोरीफेरा** (Porifera) कह कर पुकारा जाता है।

चित्र ३३७—पोरीफेरा स्पन्ज

(२) फाइलम प्लैटीहेलमैन्थीस (Phylum Platyhelminthes)
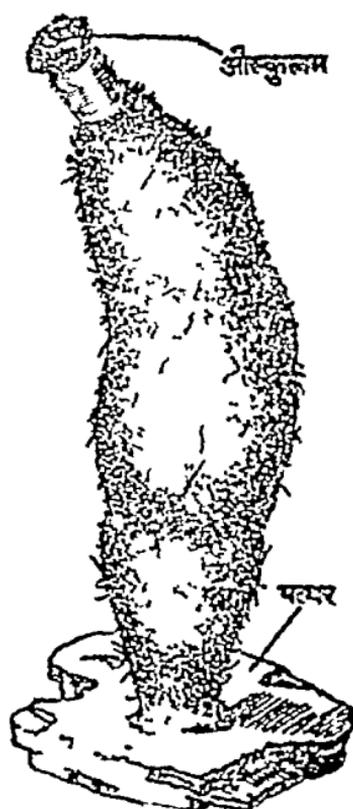
इस फाइलम के जन्तुओ को **फ्लैट वर्म** (flatworm) का नाम इसीलिए दिया जाता है क्योंकि पृष्ठ प्रतिपृष्ठ समतल में ये चपटे (flattened) होते हैं। ये सभी ट्रिप्लोब्लास्टिक होते हैं और इनमें **सीलोम** (coelom) का पूर्ण अभाव होता है। इनको निम्न तीन क्लासेस में विभाजित किया जाता है —

(क) **क्लास टर्बिलेरिया** (*Turbellaria*)
(ख) **क्लास ट्रिमैटोडा** (*Trematoda*)
(ग) **क्लास सिस्टोडा** (*Cestoda*)

इन तीनों में **टरबिलेरिया** क्लास के जन्तु परजीवी (parasitic) **ट्रिमैटोडा** (*Trematoda*) तथा **सिस्टोडा** (*Cestoda*) की भांति हमारे सहज परिचित नही हैं। ट्रिमैटोड्स पत्तियों की भांति पतले और चपटे होते हैं। सिस्टोडा फीते की भांति लम्बे तथा चपटे होते हैं और इनके पूरे शरीर में अनेक खड (segments) होते हैं। ये प्राणियों के शरीर पर या शरीर में **परजीवी** (parasite) बनकर रहते हैं। जिन प्राणियो में ये आश्रय लेते हैं उन्हें **होस्ट** (hosts) कहते हैं। एक परजीवी के लिए एक या एक से अधिक होस्ट हो सकते हैं। कुछ अपना सम्पूर्ण जीवन एक ही होस्ट के अन्दर बिता देते हैं किन्तु कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें अपने जीवन

चक्र (life cycle) को पूरा करने के लिए दो होस्ट की आवश्यकता पड़ती है। ये परजीवी अपने जीवन की **प्रौढावस्था** (adult stage) एक होस्ट में और परिवर्धन काल की अवस्थाएँ दूसरे होस्ट में व्यतीत करते हैं। जो होस्ट प्रौढावस्था को आश्रय देता है उसे **फाइनल होस्ट** (definitive or final host) कहते हैं। परिवर्धन काल की अवस्थाओ को आश्रय देनेवाले को **सेकेंडरी होस्ट** कहते हैं।

चित्र ३३८—लिवर फ्लूक (Liver fluke)

लिवर फ्लूक भेड, गाय, बैल, सूअर तथा अन्य ढोरो की पित्त वाहिनियो में मिलता है। कभी-कभी यह मनुष्य की पित्त वाहिनियों (bile ducts) में भी मिलता है। लिवर फ्लूक की लम्बाई लगभग एक इच होती है।

सिस्टोड्स (Cestodes) की आकृति फीते के समान चौडी, चपटी तथा लम्बी होती है। इनमें आहार नाल का पूर्ण अभाव होता है, जिससे ये अपने शरीर की समस्त सतह से होस्ट की इन्टेस्टाइन मे मिलनेवाले पचे हुए भोजन को सोखते रहते हैं। सम्पूर्ण प्रचूषित भोजन का ये स्वागीकरण (assimilation) कर लेते है जिससे मल विसर्जन करने की आवश्यकता नही पडती। **टीनिया सोलियम** तथा **टीनिया सेजीनेटा** इस क्लास के सामान्य उदाहरण हैं।
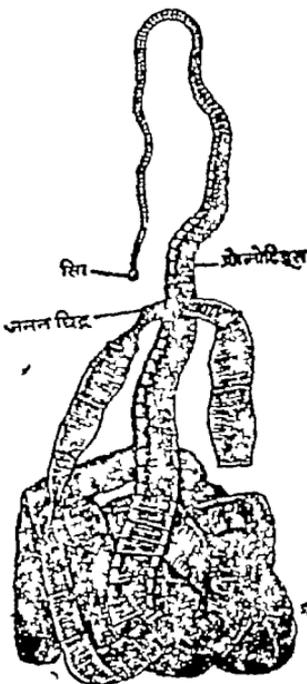
(३) फाइलम निमॅटहेलमॅन्थीस (Phylum Nemathelminthes)

इस फाइलम के सदस्य ट्रिप्लोब्लास्टिस, लम्बे, रम्भाकार तथा तर्क्वाकार (spindle shaped) होते हैं। इनका पूरा शरीर **काइटेनस क्यूटिकल** (chitinous cuticle) से ढका रहता है। डोरे के समान होने के ही कारण इनको **निमॅटोड** कहते हैं। इनमें श्वसन तथा

चित्र ३३९–सिस्टोडा–टेपवर्म

परिवहन तंत्र का पूर्ण अभाव होता है। ये कृमि प्राय सभी स्थानों मे पाये जाते हैं और इनकी सख्या भी किसी प्रकार कम नही होती, ये मिट्टी में, लवण तथा अलवण जल में और परजीवी के रूप में अन्य प्राणियो तथा विभिन्न प्रकार के पौधो में पाये जाते हैं। ये १ इच से लेकर चार फुट तक लम्बे होते हैं। उदाहरण—एस-कॅरिस लम्ब्रीकोयडिस।

(४) फाइलम मलस्का
(Phylum Mollusca)

फाइलम मलस्का (Mollusca) के जन्तुओ का शरीर कोमल तथा अखडित (unsegmented) होता है। इसका शरीर तीन मुख्य भागों मे बांटा जा सकता है —(१) सिर (head), (२) वेन्ट्रल फुट (ventral foot) और (३) पृष्ठ विसर्ल पुंज (visceral mass)। शरीर का मुख्य भाग एक झिल्ली से ढका रहता है जिसे मेन्टिल (mantle) कहते हैं। अधिकाश प्राणियो मे मेन्टिल के बाहर कॅलशियम कार्बोनेट का एक दृढ़ प्रकवच (shell) होता है। फुट (foot) आमतौर पर प्रकवच के बाहर रहता है और चलन (locomotion) में सहायता देता है।

इस फाइलम में क्लेम (*Clam*) सीपी, मयर घोघे (*Snail*), मृदु-मथर (*Slug*) शख, कटिल फिश (*Cuttle fish*), ऑक्टोपस (*Octopus*) इत्यादि प्राणी मिलते हैं।

इस फाइलम को निम्न तीन क्लासेस में बांटा जा सकता है —

(१) क्लास पॅलीसिपोडा (class Pelecypoda)
(२) क्लास गॅस्ट्रोपोडा (class Gastropoda)
(३) क्लास सॅफलोपोडा (class Cephalopoda)

(१) क्लास पॅलीसिपोडा (class Pelecypoda)

इस क्लास में खाद्य-शुक्ति (*oysters*), क्लॅम (*clam*) तथा मसल (*mussel*) होते हैं। इन सभी में कुठारी के समान पृष्ठ-पाद (dorsal foot) होता है। द्विकपाटीय प्रकवच या बाईवल्व शॅल (bivalve shell) होने के कारण इन्हे द्विकपाटिक या बाइवल्व (bivalve) नाम से ही आमतौर पर पुकारा जाता है। इनका सिर अलग नहीं दिखाई पड़ता। मनुष्य के लिए इस क्लास के प्राणी बड़े ही महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(२) क्लास सॅफलोपोडा (class *Cephalopoda*)—इस क्लास मे मिलनेवाले मलस्क सबसे अधिक विकसित होते हैं। कुछ प्राणियो मे दो नेत्र होते हैं जो रचना में वरटिब्रेट्स के नेत्रो के सदृश होते हैं। इनमें प्राय

एक स्पष्ट सिर भी होता है जो वास्तव मे सिर और प्रतिपृष्ठ पाद के मिलने से बनता है। पाद (Foot) के मध्य भाग में मुख-द्वार होता है जो चारो ओर अनेक बाहुओ (arms) से घिरा होता है। वास्तव में इन प्राणियो में प्रतिपृष्ठ पाद के विभाजन से ही बाहुओ का निर्माण होता है, प्रत्येक बाहु में अनेक सकर्स (suckers) होते हैं जिनकी सहायता से ये शिकार को आसानी से पकड लेते हैं।

इस क्लास के सुविख्यात प्राणी वास्तव में स्क्विड (*Squid*) और ऑक्टोपस (*Octopus*) हैं।
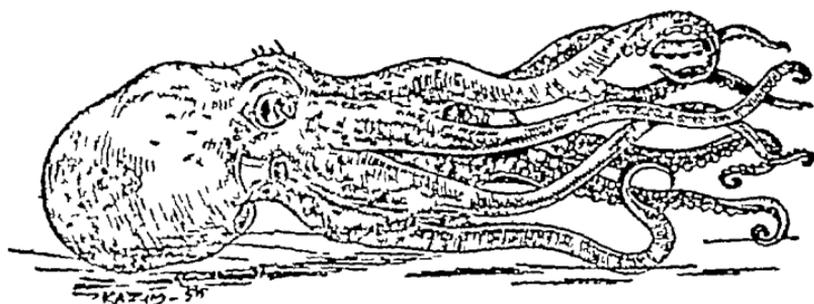
चित्र ३४०—सैफलोपोडा ओक्टोपस (*Octopus*)

(३) गैस्ट्रोपोडा (*Gastropoda*)—मलस्का फाइलम मे यह क्लास सबसे बडा है। इनका प्रकवच (shell) कुन्तल विधि से कुडलित (spirally coiled) होता है। मुखपाद (oral foot) चपटा होता है। ये लवण जल (sea water), अलवण जल (fresh water) तथा भूमि में पाये जाते हैं। शरीर के सामनेवाले भाग में सिर होता है जो शरीर से थोडा ही अलग होता है। सिर पर दो आँखें होती हैं और टेन्टिकिल्स (tentacles) भी होते हैं। इनके मुख में दांत नही होते, केवल खुरदरी जीभ होती है। पाइला ग्लोबोसा (*Pila globosa*) तथा उत्कोल मयर या ऐपिल स्नेल (*Apple snail*) अलवण जल में मिलनेवाले सभी गैस्ट्रोपोडा मे बडा होता है।

(५) फाइलम इकाइनोडर्मेटा
(Phylum Echinodermata)

इस फाइलम मे कटक-चर्म प्राणी (spiny skinned animals) मिलते हैं जो सबके सब समुद्र के पानी मे पाये जाते है। इस समुदाय मे स्टार फिश (*Starfishes*), सी-अरचिन (*Sea urchin*), होलोथूरियन (*Holothurian*) या "सामुद्रिक खीरा" सामुद्रिक नलिनी (*Sea-lily*) इत्यादि प्राणी होते हैं। इनमे शल्य तारक या स्टारफिश अन्य सभी

की अपेक्षा अधिक परिचित प्राणी है। कुछ प्राणी समुद्र के किनारे छिछले पानी में इधर-उधर रेंगा करते हैं या चट्टानों के छेदों में छिप रहते हैं किन्तु सामुद्रिक नलिनी समुद्र के पेंदे में इधर उधर चिपकी रहती है। इन फाइलम के अधिकतर प्राणियों के शरीर में एक प्रकार का अन्तकंकाल (endoskeleton) होता है जो कैलशियम कार्बोनेट की पट्टियों (plates) का बना होता है। ये पट्टियाँ कायभित्ति (body wall) में स्थित होती हैं।

समस्त इकाइनोडर्मेटा निम्न पाँच क्लासेस (classes) में विभाजित किया जा सकता है —

(१) क्लास एस्टेरोयडिया (class *Asteroidea*)—इस वर्ग में विभिन्न प्रकार की स्टारफिश होती है। इनके बाहु केन्द्रीय बिम्ब (central-disc) से स्पष्ट रूप से अलग नहीं होते। नालपाद (tube feel) एमब्यूलेकरल प्रसीता में, प्रत्येक बाहु की निचली सतह पर होते हैं।
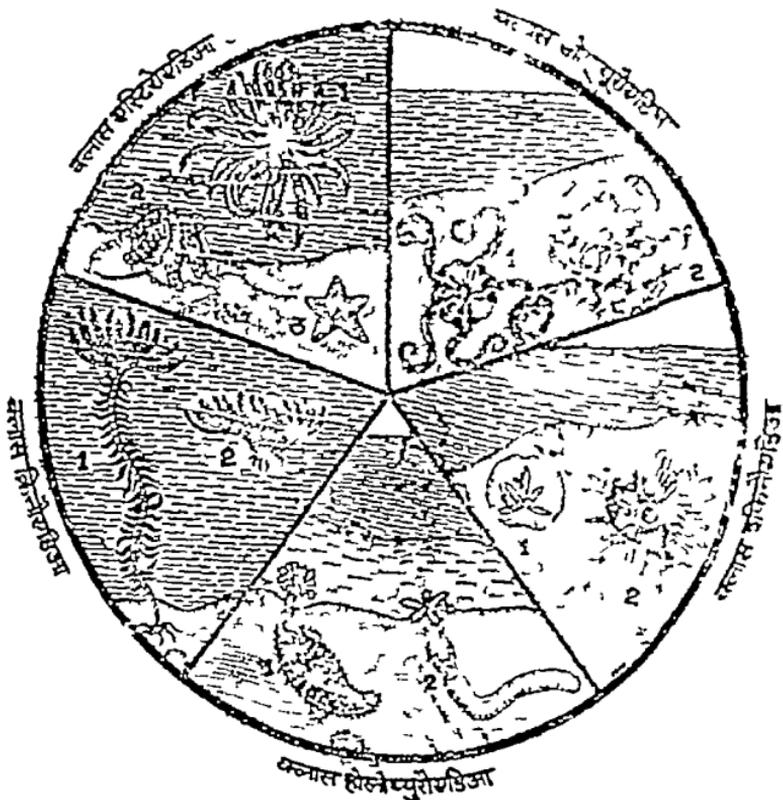
चित्र ३४१—इकाइनोडर्मेटा का वर्गीकरण

(२) क्लास ओफ्युरोयडिया (class *Ophiuroidea*)—इनके विभिन्न बाहु (arms) केन्द्रीय बिम्ब (central disc) से बिलकुल साफ साफ अलग दिखाई पडते हैं, एमब्यूलेकरल प्रसीता का पूर्ण

अभाव होता है और नालपाद (tube feet) चलने में सहायता नही देते। इनकी वाहु लचीली (flexible) होती हैं। इसमें ब्रिटिल स्टार (*Brittle stars*), सर्पेन्ट स्टार्स (*Serpent stars*), वास्केट स्टार (*Basket star*) इत्यादि प्राणी होते हैं।

(३) क्लास होलोथ्यूरीयडिया (class *Holothurioidea*)—इस वर्ग मे सी-क्यूकम्वर या सामुद्रिक खीरा (*Sea cucumber*) आते हैं। इन प्राणियो का शरीर लम्वा पेशीय (muscular) तथा शल्यहीन (spineless) होता है। इनकी कायभित्ति कोमल या चमडे के समान दृढ होती है। शरीर के अगले सिरे पर शाखान्वित तथा कुचनशील टेन्टेकिल्स (tentacles) होते हैं।

(४) क्लास इकीनोएडिया (class *Echinoidea*)—इसमें सी-अरचिन होते हैं जिनका शरीर गोल होता है तथा कांटो से ढका होता है। इनमे वाहुओ (arms) का पूर्ण अभाव होता है।

(५) क्लास क्रिनोएडिया (class *Crinoidea*)—इसमें जल-नलिनी (*Sea lily*) तथा फैदर स्टार (*Feather star*) होते हैं। ये प्राणी प्राय एक डठल के समान रचना द्वारा समुद्र की तह में लगे रहते हैं। इनके वाहु प्राय वहुशाखान्वित होते हैं।

अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली

A

Abdomen उदर
Abdominal pouch उदर धान
Abdominal viscera उदरआतरग
Abnormal life cycle असमान्य जीवन वृत्त
Abode प्राकृतवास
Accommodation व्यवस्थापन
Acrodont कूटदत
Acrosome शुक्र कोशाग्र
Active सक्रिय
Activity क्रियाशीलता
Acoelomata एसीलोमेटा
Acoustic spot श्रवण विन्दु
Alary muscle पक्ष पेशी
Alecithal अपीती
Algae एल्गी
Alkaline क्षारीय
Analysis विश्लेषण
Analytic विश्लेषी
Anatomy शारीर
Ancestor पूर्वज
Anemic रक्तहीन
Animal heat प्राणिउष्मा
Ankle गुल्फ
Ankle joint गुल्फ-सन्धि
Anterior अग्र
Aortic valve महाधमनी वाल्व
Apex शीर्ष
Apendicularskeleton उपाग ककाल
Aquarium जलजीवालय
Aquatic जलीय
Aquatic animal जलचर
Aquatic habit जलचारी स्वभाव
Aquatic life जलजीवन
Aquatic respiration जलीयश्वसन
Arm बाहु
Artery धमनी
Ascending colon आरोही मलाशय
Associated सबद्ध
Auditory hairs कर्णरोम
Auditory meatus कर्णमार्ग
Auricle अलिन्द
Automatic आत्मग
Axon एक्सान

B

Back ground पृष्ठभूमि
Bad conductor कुसवाहक
Balance सतुलन
Balancer सतोलक
Bifurcation द्विशाखन
Bile पित्त
Bile capillary पित्तकेशिका
Bile pigment पित्तरग
Bipolar द्वि ध्रुवीय
Blind spot अन्धविन्दु
Blood रक्त, रुधिर
Body cavity देहगुहा
Bone अस्थि
Bone marrow अस्थि मज्जा
Buccal cavity मुखगुहा
Burrow विल, भाट

C

Calcium कैलशियम
Capillary केशिका
Carbohydrate कार्बोहाइड्रेट
Carbon dioxide कार्बन डाई-आक्साइड

Carnivorous मांसभक्षी
Carrier वाहक
Centrolecithal केन्द्रपीती
Chain शृंखला
Chamber वेश्म
Cilia रोमिका
Circulation परिवहन
Class वर्ग, क्लास
Classification वर्गीकरण
Claw नखर
Colon मलाशय
Colony मंडल
Common सामान्य, मूल
Composition संरचना
Complete पूर्ण
Complex जटिल
Concentration संकेन्द्रण
Conical शंक्वाकार
Coordination आसजन
Copulation मैथुन
Cornu शृंग
Crest शिखर
Cylindrical गोल, रम्भाकार
Cyst कोष्ठ, सिस्ट

D

Dentition दन्त विन्यास
Descending colon अवरोही मलाशय
Differentiation भिन्नन
Digest पाचन
Dissection विच्छेदन
Distal दूरस्थ
Dormant सुषुप्त
Dormant embryo सुषुप्त भ्रूण
Dorsal पृष्ठ
Dorsal aorta पृष्ठ महाधमनी
Dorsal blood vessel पृष्ठ रुधिर वाहिनी

E

Earthworm केंचुआ
Ecology पारिस्थितिकी, इकालोजी
Endoskeleton अन्तःकंकाल
Enemy शत्रु
Energy ऊर्जा
Entomology कीटशास्त्र
Environment पर्यावरण
Equation समीकरण
Evidence साक्ष्य
Evolution उद्विकास
Excretion उत्सर्जन
External बाह्य
External ear बाह्य कर्ण

F

Facultative वैकल्पिक
Factor कारक
Fat वसा
Fibre तन्तु
Fish मत्स्य
Floor भूमि, फर्श
Flight उड़ान
Floor भूमि
Foot पाद, आधार
Foramen छिद्र
Forelimb अग्रपाद
Fore brain अग्र मस्तिष्क
Forked tongue द्विशाख जिह्वा
Food vacuole अन्न रसधानी

G

Gall bladder पित्ताशय
Generation सन्तति, पीढ़ी
General science सामान्य विज्ञान
Germ जीवाणु
Germinal layer रोहि स्तर
Groove प्रसीता
Growth वृद्धि

H

Habitat प्राकृतवास
Hand lens हस्तवीक्ष
Heart हृदय

Heat ऊष्मा, तापन
Heel एडी
Hind brain पश्च मस्तिष्क
Hind limb पश्चपाद
Homodont समदन्त
Hydra हाइड्रा

I

Identical एकसम
Ileum शेषान्त्र
Indirect परोक्ष
Insect कीट, कीडा
Internode पर्व
Intestine आन्त्र
Invasion आक्रमण
Irregular अनियमी
Irritability क्षुपता

J

Joint सन्धि
Juice रस

K

Kidney वृक्क
King-cobra सर्पराज
Kingdom सृष्टि
Kingdom of animals प्राणिसृष्टि

L

Larva लार्वा
Latent heat गुप्त ऊष्मा
Leishmania लेशमानिया
Leech जोक
Leg पाद
Level समतल
Locomotion चलन
Lung फुफ्फुस

M

Machine यंत्र
Male नर
Malformation कुनिर्माण
Malaria मलेरिया
Mammary gland स्तन ग्रन्थि
Marrow मज्जा
Mastication चर्वण
Mature प्रौढ़
Mechanical energy तान्त्रिक ऊर्जा
Median plane मध्यतल
Meiosis अर्ध सूत्रण
Membrane कला, झिल्ली
Membrane bone कलाजात अस्थि
Microbe जीवाणु
Mouth मुख
Mouth part मुखभाग
Movement गति
Mushroom gland छत्रा ग्रन्थि
Mutation उत्परिवर्तन

N

Naked नग्न
Narrow सकीर्ण
Natural selection प्राकृतिक वरण
Nature प्रकृति
Neck ग्रीवा
Normal सामान्य
Notochord नोटोकॉर्ड
Nucleus न्यूक्लियस
Nucleolus न्यूक्लियोलस
Nuptial flight विवाहोड्डयन
Nutrient पोषक

O

Obligate parasite सदा परजीवी
Odour गन्ध
Oil gland तेल ग्रन्थि
Oogenesis अडजनन
Oogonium ऊगोनियम
Ooplasm ऊप्लाज्म
Opaque पारान्ध
Optimum temperature अनुकूलतम ताप

Oral lobe मुख पालि
Organ अंग
Origin उद्भव

P

Parasite परजीवी
Parasitism परजीवता
Pelvic girdle श्रोणि मेखल
Pelvis श्रोणि
Pigment रंग
Poison gland विष ग्रन्थि
Posterior पश्च
Precaution पूर्वोपाय
Pregnancy गर्भावस्था
Process प्रवर्ध
Pseudopodium कूटपाद
Pulsatile स्पन्दक
Pupil तारा

R

Races जातियाँ
Reaction प्रतिक्रिया
Regulation नियमन
Renal वृक्क
Renal artery वृक्क धमनी
Reproduction प्रजनन
Reproductive organ जननेन्द्रिय
Respiration श्वसन
Rudimentary अल्पविकसित

S

Saprophyte मृतोपजीवी
Science of life जीवन विज्ञान
Sebaceous gland स्नेह ग्रन्थि
Segregation पृथक्करण
Sensitivity हृषता
Series श्रेणी
Signet ring stage मुद्रिकावस्था
Skeleton कंकाल
Solitary एकल
Species जाति, स्पेशीज
Sperm शुक्र
Spermatogenesis शुक्रजनन
Spleen प्लीहा
Spore बीजाणु
Square वर्ग
Staining अभिरंजन
Starch मंड
Sterile वन्ध्य
Stomach आमाशय
Streaming प्रवाही
Striated रेखित
Striated muscle रेखित पेशी
Structure संरचना
Structural संरचनात्मक
Struggle for existence जीवनसंघर्ष
Suction चूषण
Supply प्रदाय
Support आलंबन
Surface view तलदृश्य
Symbiosis सहजीवन
Symbiotically सहजीवी
Systole हृत्कुंचन

T

Tail पुच्छ
Tailless पुच्छहीन
Tarsus गुल्फ
Taste स्वाद
Technical पारिभाषिक
Technical term पारिभाषिक शब्द
Telolecithal एकतःपीती
Temperature ताप
Testicle वृषण
Testis वृषण
Thigh ऊरु
Tissue ऊतक
Translucent पारभास
Transparent पारदर्श
Transport परिवाहन, परिवहन
Transverse अनुप्रस्थ
Transverse process अनुप्रस्थ प्रवर्धन

Tympanum कर्ण पटह
Typical प्रारूपिक

U

Unipolar एकध्रुवीय
Unit एकक
Unstriated अरेखित
Urinary bladder मूत्राशय
Uterus गर्भाशय

V

Vein शिरा
Ventilation सवातन
Villi रसांकुर
Virus विषाणु
Vomitting वमन
Vshaped काकपद

W

Walking leg गमन पाद
Water fowl जल कुक्कुट
Weight भार
Well-developed सुविकसित
White matter श्वेत द्रव्य

Y

Yellow marrow पीत मज्जा
Yolk अण्ड पीत